

अथश्री वेदान्त सिद्धांत मुक्तावली भाषापूर्वाद्धगत विषयानुक्रमणिका ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अथफलसहितटीकाकेआरम्भ		आत्मामेंश्रुतिप्रमाणकीअपेक्षा	
की प्रतिज्ञा५	निरूपणपूर्वकअव्ययपदार्थका	
अथमूलग्रन्थव्याख्या		निरूपण२१
प्रारम्भः५	अथपूर्वपक्षीआत्मामेंप्रमाण	
आत्माकेचारविशेषणोंका		के अभावसे असत्यताका	
फलनिरूपण६	निरूपण२३
शंकापूर्वकग्रन्थके व्याख्यान		आत्मामेंलौकिकप्रमाणका	
कीयोग्यताकानिरूपण७	अभावनिरूपण२३
आत्मपदार्थकीविशेष्यता		अथआत्मामेंवेदप्रमाणकीवि	
कानिरूपण१०	पयताकानिपेधनिरूपण२६
श्रुतिपदकेअर्थकानिरूपण११	अथएकदेशिवेदान्तीकीरीति	
अबपूर्वपक्षीकीरीतिसेआत्मा		सेपूर्वपक्षकासमाधाननिरूपण	२६
मेंश्रुतिप्रमाणकीनिर्पेक्षताऔ		अथएकदेशीकीरीतिसेअविद्या	
देहादिकोंकीआत्मरूपताका		केआश्रयतथाविषयकाभेद	
निरूपण१२	निरूपण३१
पूर्वपक्षकेसंग्रहकाश्लोक१४	प्रत्यक्षादिकों में प्रामाण्यका	
अथपूर्वपक्षकेनिराकरणपूर्वक		निपेध३४
अव्ययपदव्याख्याननिरूपण१५	अथएकदेशीकेमतकाखंडन४२

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
आत्मा तथा सुख के संबन्ध		कार्ममतथा ब्रह्म में तात्पर्य	
ऽभावकानिरूपण ५१		निरूपण ६८	
अथ स्वाश्रयास्वविषयाश्च वि		अज्ञान के एकत्वकानिर्धार ७१
द्याकानिरूपण ५२		अथ अज्ञान के एकत्वसाधन	
अथ जीवब्रह्म के भेद का खंडन ✓ ५४		का फल निरूपण ७२	
अथ भेद में उपाधिके अभाव ✓		अथ अज्ञान तथा जीव के एकत्व	
कानिरूपण ५६		तथा अनेकत्व कथन करने वाली	
अज्ञान को उपाधिरूपता		श्रुतियों की व्यवस्था कानिरूपण: ७३	
निरूपण ५८		अथ एक जीववाद में बद्ध मुक्ता	
अथ औपाधिक भेद का खंडन ५८		दिव्यवस्था का प्रकार निरूपण ७६	
त्रिविधतन्त्रता कानिरूपण ६०		अथ वेद के तात्पर्य का एक	
अथ अज्ञान को जीवब्रह्म प्रति		अद्वैत में निर्धार ८३	
योगिक भेद की अधिकरणता		अथ पूर्वपक्षी की रीति से अधि	
का निषेध ६१		कारी के अभाव से मोक्ष का अ	
अज्ञान को शुद्ध चेतन आश्रय		भावनिरूपण ८६	
औ विषयत्व का स्थापन ६४		अथ स्वप्न दृष्टान्त में द्रष्टा के	
शंका पूर्वक अज्ञान के एकत्व की		एकत्व का प्रतिपादन ८८	
प्रतिज्ञा ६६		अथ दार्ष्टान्त में द्रष्टा के एक	
अथ अज्ञान में लौकिकादि प्रमाण		त्व का प्रतिपादन ९४	
के खंडन पूर्वक लाघव सहकृत तर्क		अथ पूर्वार्थ के अनुवाद पूर्वक एक	
से तिसके एकत्व का स्थापन ६७		देशि पूर्वपक्षी की रीति से अज्ञात	
पूर्वकांड तथा उत्तरकांड रूप वेद		सत्ता कानिरूपण ९८	
		अथ त्रिविध सत्ता के खंडन पूर्वक	

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
ख्यातियों का स्वरूप निरूपण १०२		लब्धिका स्थापन	१२६
अथ दृष्टि समकालीन दृष्टि		शंका पूर्वक प्रपंच को अविद्यो	
सृष्टिवाद में प्रतिज्ञान सृष्टिका		पादान कत्व स्थापन ✓	१३०
भेद और अतिम में प्रत्यभिज्ञा के विरोध		अथ अवान्तर विषय की	
की शंका का समाधान निरूपण १०८		समाप्ति पूर्वक प्रपंच निष्ठ ज्ञात	
शंका पूर्वक सुषुप्ति में प्रपंचा		सत्ता के निरूपण का उपसंहार	१३१
भाव की बोध कृता श्रुति को		अथ पूर्वपक्षी की रीति से	
देवता अधिकरण न्याय की रीति		अविद्या को प्रपंच की कारणता	
से निरूपण ११३		का असंभव निरूपण	१३२
अथ पूर्व पक्षी की रीति से		अथ सिद्धांत सत्तत्वा अथ सत्	
पूर्व उक्त अर्थ के अनुवाद पूर्वक		की उत्पत्तिके निरास पूर्वक अवि	
सर्पज्ञान से जाग्रत ज्ञान में विल-		द्या को जगत् कारणता की	
क्षणता का निरूपण ११५		सिद्धि का प्रकार	१३६
पूर्व अर्थ के अनुवाद पूर्वक		परिशेष से प्रपंच की अनिर्व	
इन्द्रियादिकों को प्रपंच ज्ञान के		चनीयता के स्थापन पूर्वक	
प्रतिकारणता का खंडन ११६		अविद्योपादान कत्व का निर्धार	१४४
अथ प्रमाणिष्ठ कार्यता की		अविद्या मात्र कारणवाद में	
दुर्निरूप्यता निरूपण १२०		वादी उक्त दोषों का परिहार	
अथ प्रमाण के विषय विवे		निरूपण	१४५
चन पूर्वक चक्षु आदिकों में		प्रपंच के आविद्यक पक्ष में पूर्व	
प्रमाणता का खंडन १२२		कांड निष्ठ प्रमाणता का निरूपण	१४६
मन की कारणता के निषेध		जगत् के आविद्यकत्व साधन	
पूर्वक अविद्या मूलक प्रपंचोप		का फलतया दृष्टि समकालीन	

विषय	पृष्ठ
दृष्टिसृष्टिपक्षका उपसंहार निरूपण	१५०
अथ दृष्टि मात्र सृष्टिरूप दृष्टिसृष्टिवाद। तथाज्ञानज्ञेय केभेदका निराकरणनिरूपण	१५१
अथज्ञानज्ञेयकेभेदमें प्रत्यक्ष प्रमाण का खंडन	१५३
स्वप्रकाशप्रत्यक्षको भेदकी ग्राहकताकानिषेधनिरूपण	१५४
ज्ञान पर प्रकाश पक्षमें प्रत्यक्षां तरकोज्ञानज्ञेयकेभेदकी ग्राहक ताकानिषेध	१५९
अथ अनुमान प्रमाण को ज्ञानज्ञेय के भेद की ग्राहकता का निराकरण	१६१
अथज्ञानज्ञेयकेभेदमें आगम को प्रमाणाताका निराकरण	१६३
अथज्ञानज्ञेयकेभेदमें अर्था पक्ष प्रमाण का निराकरण	१६८
अथसिद्धांत निरूपण	१८२
अथप्रमाणाभावसे आत्मा मेंअसत्पनेकीशंकाकासमाधान	१८५
अन्यप्रकार से उसी शंका	

विषय	पृष्ठ
का समाधान	१८८
प्रमाणाभाव से आत्मा में असत्त्वापत्तिका अन्य प्रकारसे परिहार	१९१
प्रमाणके अभावसे आत्मा मेंअसत्त्वापत्तिका अन्यप्रकार सेपरिहार	१९४
आत्मा के असत्पने की शंका का अन्यप्रकारसेपरिहार	१९५
प्रमाणाभाव से आत्मा में असत्पने की शंका का अन्य प्रकारसेपरिहार	१९७
अथ आत्मा में सर्वप्रमाणों कीविषयताकानिरूपण	२००
अथ अनात्मा के भानका प्रकार निरूपण	२०२
अथ स्वयंप्रकाश चिदात्मा मेंअज्ञानकी विषयताका अन्य प्रकारसेनिरूपण	२०५
अथआत्माकीस्वयंप्रकाशता मेंअनुमानप्रमाण कानिरूपण	२०६
अथआत्माकीस्वप्रकाशताके साधकअनुमानका खंडन	२०६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अथसिद्धांतरीतसेतिसअनु मानकामंडन २१३	अथशून्यादीकोअभिमत आत्माकेखंडनकाप्रकार २५३
अथपुनःशंकासमाधानपू र्वकआत्माकी स्वयंज्योतिरूप		अथआत्माकीसुखरूपता कानिषेध २५५
ताकाप्रकारांतरसेनिरूपण २१८	अथदुःखाभावकीपुरुषार्थरूप तानिरूपण २६५
अथआत्मासेभिन्नघटके स्वरूपकाखराडन २३०	अथसिद्धान्त।पूर्वपक्षकेअनु वादपूर्वकआत्माकीपुरुषार्थरूप	
अथआत्मासेभिन्नकरकेसर्व अनात्माकाखराडन २३५	ताकामंडन २६१
शंकाकेनिराकरणपूर्वकज्यो तिपदकीव्याख्याका		अथ आत्माकोसर्वशेषित्व निरूपण २७७
उपसंहार २३६	अथआत्मामेंसुखतथादुःखा भावरूपताकानिरूपण २७८
(इतिपूर्वार्द्धम्)		अथज्ञानीतथाअज्ञानीकी विलक्षणताकानिरूपण २९०
अथउत्तरार्द्धम् । -		अथआत्मसाक्षात्कारके करणकाविचार २९३
अथआनंदपदव्याख्या २४०	अथएकदेशीकेमतकीरीति सेपूर्वपक्षकाखंडनऔरमनको	
अथपूर्वपक्षाआत्माकीपुरुषार्थ रूपताकाखंडन २४०	आत्मसाक्षात्कारकीकरणता कानिरूपण २९६
अथसिद्धान्तीद्वारा अनुपादे यत्वसाध्यकाखराडन २४७	शब्दकोसाक्षात्कारकीकरण ताकाप्रतिपादन २९८
अथपूर्वपक्षीकासमाधान । उपादेयत्वकानिरूपण २५२		
अथआत्मामेंदुःखाभावत्व कानिषेध २५३		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अथ अपरोक्षत्वका स्वरूप निरूपण ३०२	अथ स्वरूपभेदकानिरूपण	
अथ पुनः पूर्वपक्ष। महावाक्यों में लक्षणाकानिषेध ३०६	पूर्वपक्षीकामाधान ३४७
अथ एकदेशीकी रीतिसे महा वाक्योंमें लक्षणाकानिषेध ३१३	अथ किसीवादीकी रीतिसे भेदत्रयकानिरूपण ३५१
अथ एकदेशीके मतसे जीव के स्वरूपका विचार ३१५	अथ दोनों भेदोंके निराकरण पूर्वक स्वरूपभेदका स्थापन ३५२
अथ महापूर्वपक्षीकी रीतिसे सिद्धान्तमुद्राको आश्रयणकर एकदेशीके मतका खंडन ३१७	अथ तटस्थकी शंकाके समा धान पूर्वक पूर्वपक्षका उपसंहार	३६०
अथ सिद्धान्त। महावाक्यों में लक्षणाके संभवका प्रकार ३२२	अथ सिद्धांत। तत्त्वपदार्थके शोधन पूर्वक वाक्यार्थनिरूपण	३६१
अथ साक्षीकी सिद्धिका प्रकारनिरूपण ३३३	अथ स्वरूपभेदका खंडन ३६८
अथ उभयपक्षमें लक्षणाका प्रकारनिरूपण ३३६	अथ अज्ञानकारणत्ववादिनी तथा ब्रह्म कारणत्ववादिनी श्रुतियोंके विरोधका परिहार निरूपण ३७४
अथ ब्रह्मात्माके अभेदरूप प्रमेयमें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके विरोधका परिहार शंका समा धान पूर्वकनिरूपण ३३८	अथ अज्ञानकी असिद्धिका निरूपण । पूर्वपक्ष ३८०
अथ धर्मभेदके निराकरणका प्रकारनिरूपण। सिद्धांतीकी आशंका ३४३	अथ सिद्धान्त। अज्ञानकी सिद्धिका प्रकारनिरूपण ३८०
		अथ पूर्वपक्ष। जिज्ञासा पूर्वक बाधशब्दका अर्थ निरूपणकर नेके लिये अन्यमतोंकी रीतिसे बाधका स्वरूप तथा तिसके	

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
निराकरणका प्रकार ३६८	रूपताकी असिद्धि निरूपण ४३३
अथ सिद्धान्तरीतिसे वाधका		अथ एकदेशीसंक्षेपशारीका	
स्वरूपनिरूपण ४०२	ऽचार्यके मतसे पूर्वपक्षका समाधान निरूपण ४१८
अथ पूर्वपक्ष । संक्षेपसे अन्य		अथ एकदेशीके मतकी असमीचीनताका निरूपण ४३३
ख्यातियोंके स्वरूपप्रदर्शन पूर्व		अथ एकदेशीविवरणाचार्य	
कअनिर्वचनीयख्यातिका खंडन ४०७	४०७	की रीतिसे पूर्वपक्षका समाधान	४३६
अख्यातिवादादिकों के खंडन		अथ एक देशीके मतका	
पूर्वकअनिर्वचनीयख्यातिका		निराकरण ४४१
स्थापन तथा वाधका उपसंहार	४०८	अथ सिद्धान्तरीति से पूर्व	
अथ पूर्वपक्ष । विद्या औ		पक्षका समाधान ४४२
अविद्या के विरोधका असंभव		अथ आचार्यकी कृतकृत्यता	
निरूपण ४१२	का निरूपण ४४५
अथ सिद्धान्त । विद्या		अथ आत्मा की आनंद	
तथा अविद्या का उपमर्द्य		रूपता के अस्फुरण में प्रति	
उपमर्दकभाव लक्षण विरोध		बंधक निरूपणद्वारा ग्रहद्वय	
निरूपण ४१४	पद की व्याख्याका प्रारंभ ।	
अथ पूर्वपक्ष । जीवन्मुक्ति		अथ पूर्वपक्ष ४५३
के अभावप्रतिपादनद्वारा संप्र		अथ आनंदरूपताके अभान	
दायकालोपनिरूपण ४१८	में प्रतिबंधकका विचार ४५५
अथ सिद्धान्त । तात्का		अथ द्वैतद्रष्टाके स्वरूपका	
लिक मुक्तिपक्ष का स्वीकार		विचार और तिसकानिषेध ४५८
तथा संप्रदायके लोप का परिहार	४२८		
अथ पूर्वपक्ष । आत्मा की आनंद			

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अथगुरुशिष्यकेसंवादद्वारा		पुरुषोंकरतुच्छत्ववादकाअनंगी	
पुनःद्वैतद्रष्टाकेस्वरूपकाविचार	४६२	कारनिरूपण	४६५
अथसंक्षेपसेदेहात्मवाददि		अथश्रुतिप्रमाणसे तुच्छत्व	
कोंकानिरूपण ४६५	वादकाउपपादन	४६७
देहात्म वादादिकों का		विवर्तवाददिकोंकेस्वीकार	
निराकरण ४६७	की व्यवस्था तथा जगत्की	
अथसिद्धान्त ४७१	तुच्छतानिरूपणकाउपसंहार	५००
अथआत्मदर्शनसेसर्वजगत्		अथ अदृष्टद्वयपदकी व्या	
कादर्शननिरूपण ४७६	ख्याका उपसंहार ५०१
अथविधिनिषेधउपदेशकी		अथ आत्मासाक्षात्कारका	
व्यवस्थानिरूपण ४७७	फलतथातिसको निपेक्षामोक्ष	
पुनः द्वैतद्रष्टाके स्वरूपका		कीसाधनताकानिरूपण ५०२
विचार ४८०	अथ विद्यासेसंसारकीअनि	
द्वैतद्रष्टापदार्थकेअवयवन		वृत्तिनिरूपण ५१०
का निरूपण ४८१	अथ तत्त्वज्ञानसे संसारकी	
अथअसत्कानिवर्तकरूपकर		निवृत्तिकाप्रकारनिरूपण ५१२
शास्त्रकीसफलताकानिरूपण	४८१	अवान्तरप्रयोजन निरूपण	
अथअद्वैतनिष्ठअप्रामाणिक		तथाग्रंथकाउपसंहार ५१५
त्वशंकाकापरिहारनिरूपण	४८३	(इति उत्तरार्द्धम्)	
अथ द्वैतदर्शित्व पदार्थके		अथ भूलकारिकाकी भाषा टीका	
विचारनिरूपणपूर्वक द्वैतनिष्ठ		इति विषयानुक्रमणिका	
तुच्छत्वकाप्रतिपादन	४८४	ममात्मा ॥	
अथलौकिक तथापरीक्षक			

❀ ओ३म् ❀

भूमिका

~*~*~*~

इस संसार मंडल में महा मोह रूप महान् शत्रु को तथा तिसकी कामादिक सैना को समूल नाश करने वाला विचारजन्य ब्रह्मात्मा का अभेदज्ञान एक ही अतिरथि योधा समर्थ है। जिसके होने से सत् ब्रह्म भाव की प्राप्ति तथा जिसके न होने से महान् हानि की प्राप्ति श्रुति भगवती बोधन करती है ॥ तथाहि—

इहचेदेवेदीदथ सत्य मस्तिनचे दिहवेदीन् महति
विनाष्टिः के० ३० ॥ २ ॥ १२

अ०—इस लोक में यदि यह मनुष्य ब्रह्म को अपना आत्मा रूप कर साक्षात्कार करता है तो सत्य ब्रह्म स्वरूप ही होता है। और यदि इसलोक में यह मनुष्य ब्रह्म को अपना आत्मा रूप कर नहीं जानता तो जन्मादि रूप अनंत विस्तारवाली हानि को प्राप्त होता है ॥ इति ॥ और तिस अभेद ज्ञान को सर्व अनर्थ का साधकपना तथा मोक्ष का साधकपना यह अर्थ भी श्रुति भगवती ने बोधन किया है तथाहि—

तमेव विदित्वाति मृत्यु मेतिनान्यः पन्था विद्यते
ऽयनाय ॥ अ० ३० ॥ ६ ॥ १५

अ०-तिस ब्रह्म को अपने आत्मा से अभिन्न जानकर ही यह पुरुष अज्ञान तत्कार्य को बाध करता है । इसलिये मोक्ष के अर्थ अन्य कोई साधन नहीं किंतु ब्रह्मात्मा का अभेद ज्ञान ही एक साधन है ॥ इति ॥ याते जो अधिकारी मनुष्य अभेद ज्ञानरूप अतिरिधि बोधा की शरण को प्राप्त होता है । अर्थात् साधन संपत्ति से अपने अन्तःकरण में तिसको संपादन करता है सो अधिकारी महामोह रूप शत्रु को सैन्य के सहित समूल नाश करके अमृत भाव रूप मोक्ष को प्राप्त होता है । यह अर्थ भी श्रुति में प्रसिद्ध है-

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशाऽपहानिः ॥ श्वे० ३० ॥ १॥ ११॥

ये पूर्वं देवा ऋषयश्च तद्धिदुस्ते तन्मया अमृतावे
वभूवुः ॥ श्वे० १॥ ६॥

अ०-स्वप्रकाश ब्रह्मको अपने से अभिन्न मात्मात्कार करकरके यह अधिकारि । अविद्यादिपञ्च क्लेशरूप पाशोंको अत्यंत नाशकरता है । और पूर्वकाल में जिसदेवता तथा ऋषियों मनुष्यादि ने तिम ब्रह्मको अपना आत्माजाना वह सर्व ही मृत्यु से रहित ब्रह्मभाव रूपमोक्ष को प्राप्तहुए इति । और जिस आत्मज्ञान कामहान् प्रभाव देवराजइन्द्र ने महाराज प्रतर्दन के प्रति कथन किया है और मनुष्यों के प्रति अत्यंत हिततमरूप कर जिमका वर्णन किया है । यह वार्ता कौपीतिकी उपनिषद् मे प्रसिद्ध है । और श्री वसिष्ठ भगवान् जी ने श्री रामचन्द्र जी के प्रति जिम अभेद ज्ञानका ही वात्वार उपदेश किया है । तथा श्री मद्भगवद्गीता मे श्री कृष्ण भगवान्

जी ने अनेक प्रकारसे जिस अभेद ज्ञान का प्रशंसन किया है ॥ और इस कलियुगमें होने वाले श्री शंकराचार्य तथा श्री गुरु नानक देव आदिक सर्वज्ञ महापुरुषों ने भी अभेद ज्ञान ही मोक्ष का साधन अनेक विध से निरूपण किया है ॥ इस प्रकार श्रुतिस्मृति इति हास पुराण तथा सर्वज्ञ पुरुषों को संमत वह अभेद ज्ञान ही मोक्ष के अर्थ मुमुक्षु जनों को अत्यंत यत्न से संपादन करने योग्य है । और भेद ज्ञान दूर से ही त्यागने योग्य है । क्योंकि भेद अनर्थ का हेतु है । तथा हि—

यदाह्यैवैष एतस्मिन्दुर मन्तरं कुस्ते अथ तस्य भयं भवति ॥ तै० उ० ब्र० अ० ७॥

सर्वतंपरादाद्यो ऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद ॥

ब्र० उ० पै० ब्रा०

अ०—जिस काल में यह पुरुष इस ब्रह्मात्मामें अल्प मात्र भी भेद देखता है तिस को भेद दर्शन से अनंतर भय अर्थात् जन्मादि अनर्थ की प्राप्ति होती है । और सर्व ही तिस का तिरस्कार करते हैं । जो सर्व को अपने आत्मा से भिन्न जानता है ॥ इति ॥ इत्यादिक अनेक श्रुतियोंने भेदको अनर्थ की हेतुता प्रतिपादन की है । और पक्षपात से रहित होकर यदि विचार किया जाए तो व्यवहार भूमि में भी भेद दर्शन अनर्थ का हेतु है परमार्थ में भेद दर्शन को अनर्थ की हेतुता में तो क्या ही कथन करना है । ॥ तथाहि ॥ यदि राजा मंत्री को अथवा मंत्री राजा को अपने आत्मा से भिन्न जानता है तो दोनों द्वेष को प्राप्त होकर राज्य

संपदा से भ्रष्ट होजाते हैं और गृहस्थ में पति स्त्री को अथवा स्त्री पति को यदि अपने आत्मा से परस्पर भिन्न जानते हैं तो तिस द्वैत दर्शन से वह दोनो सांसारिक सुख से भ्रष्ट होजाते हैं । तैसे सूक्ष्म शरीर गत इन्द्रिय तथा मन एक भाव को यदि न प्राप्त हों तो वह किसी रूपादिक विषय के ज्ञान को नहीं प्राप्त हो सकते ! और स्थूल शरीर गत वात पित्त कफ यह तीनों दोष जब समता को त्याग विषमता रूप भेद को पाते हैं तब अनेक रोगों कर यह शरीर पीडित होता है । बहुत क्या कहें अद्वैत के आश्रयण से बिना कोई व्यवहार नहीं सिद्ध हो सकता । इस प्रकार व्यवहार दशा में भेद दर्शन अनर्थ का कारण है । और आत्मा से ब्रह्म का भेद दर्शन तो महान् जन्मादि अनर्थ का हेतु है इस कारण से अनर्थकारि भेद भ्रम को त्याग कर अभेद साक्षात्कार मुमुक्षु पुरुषों को अवश्य संपादनीय है यह सिद्ध हुआ । तिस अभेद ज्ञान के दो साधन श्रुति में प्रसिद्ध हैं । तथाहि—

तत्कारणं सांख्य योगाधि गम्यं ॥ श्वे० उ० ६।१.३।

अ०—वह प्रकृतकारणता उपलब्धित ब्रह्म सांख्य तथा योग करके विद्या द्वारा प्रत्यक्ष रूपता से प्राप्त होने योग्य है । और श्री कृष्ण भगवान् जी ने भी यह दो ही साधन अर्जुन के प्रति निरूपण किये हैं ॥ तथाहि ॥—

यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ॥

एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विदते फलम् ॥

गी० ५।४।

अ०—जिस ब्रह्म को अपना आत्मारूप कर विद्या द्वारा सांख्यी अर्थात् श्रवणादिकों के अनुष्ठान करने वाले पुरुष प्राप्त होते हैं। तिसी ब्रह्म स्वरूप को योगी अर्थात् निर्गुण ध्यान करने वाले पुरुष भी प्राप्त होते हैं। इन दोनों साधनों में किसी एक को भी सम्यक अर्थात् सांगोपांग अनुष्ठान करता हुआ पुरुष दोनों के फल को अर्थात् मोक्ष को विद्या द्वारा प्राप्त होता है ॥ इति ॥ यद्यपि इस वाक्य में योगपद को निर्गुण ध्यान परता नहीं सिद्ध होसकती। क्योंकि गीताभाष्य में भाष्यकारों ने तिस पदको कर्म योग परताकर व्याख्यान किया है। तिन से विरोध होगा। तथापि योग पद को ध्यान में रूढ होने कर वास्तव से कर्म परता का अभाव है ॥ और इस वचन के मूलभूत पूर्व उदाहरण की हुई श्रुति में योग पद का ध्यान अर्थ भाष्यकारों ने शारीरिक भाष्य में कथन किया है इस कारण से इस गीता वाक्य में भी योग पदध्यान का ही वाचक है। और कर्मयोग को मुख्ययोग अर्थात् निर्गुण ध्यान द्वारा ब्रह्मज्ञान की साधनता है। साक्षात् साधनता नहीं। इस अर्थ के बोधन करने के लिये कर्म विषयक योगपदका प्रयोग श्रीभगवान् जीका तथा तिसके अनुसारी भाष्यकारों का व्याख्यान कर्मपरता से संभवता है। याते तिनसे किंचित् भी विरोध नहीं। और गीता के त्रयो दशोऽध्याय में श्रीभगवान् जीने स्पष्ट ही 'आत्मविद्या' के दोनों साधन विकल्प करके निरूपण किये हैं ॥ तथाहि ॥

ध्यानेनात्मनि पश्यंतिकेचिदात्मान मात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरं ॥

अ० नी० १३ । २४ ।

अ० । शब्दादिक विषयों से श्रोत्रादिक इन्द्रियों को मनमे उपसंहार करके और मन को ब्रह्मात्मामे उपसंहाकर एकाग्रता से जोचितन है अर्थात् तैल धाराकी न्याई निरंतर विच्छेद रहित प्रत्ययों का नाम ध्यान है ॥ तिस ध्यान करके योग मार्ग में निष्ठा वाले कोईक अधिकारि अपने अंतःकरण में ध्यान संस्कृत मन से आत्मा को ब्रह्मरूप कर साक्षात्कार करते हैं । और यह सत्व रज तम तीनों गुण तथा तिनके कार्य्य मुझ आत्मा के दृश्य हैं और मैं गुण तथा तिनके कार्य्यों से भिन्न तिनके व्यापार का साक्षि नित्य गुणों से विलक्षण ब्रह्मस्वरूप हूं । इस प्रकार के विचार का नाम सांख्य है । तिस सांख्य योग करके सांख्य मार्ग में निष्ठा वाले कोईक अधिकारि अपने अंतःकरण में विचार संस्कृत मन से आत्मा को ब्रह्म रूपता से साक्षात्कार करते हैं । और कोईक अधिकारी कर्म योग से अंतःकरण की शुद्धि द्वारा सांख्य अथवा योग मार्ग में आरुढ़ होकर आत्मा को देखते हैं । इति ॥ कोईक सज्जन योग मार्ग के अत्यंत प्रेमी सांख्य मार्ग को भी योग के अंतः पाति ही निरूपण करके योग मार्ग से विना आत्म साक्षात्कार का असंभव कथन करते हैं । परंतु यदि पक्षपात से रहित होकर पूर्व उक्त वाक्यों को तथा इनके सदृश और अनेक वाक्यों को अवलोकन किया जाय तो योग की

न्याई सांख्य नाम वेदांत विचार स्वतंत्र आत्म-साक्षात्कार का साधन है। और श्रीवसिष्ठ भगवान् जी ने वासिष्ठ ग्रंथ में बाहु-
ल्यता से विचार को ही आत्मज्ञान की हेतुता निरूपण की है।
तिस के कितनेक वचन यहां पर इसी अर्थ के बोधक लिखे
जाते हैं।

सामान्येन विचारेण क्षयमायाति दुष्कृतं ।

योग्य वाक्य विचारेण कोनयाति परं पदम् ।

उ० प्र० स० ८। ४१

अ०—यदि सामान्य से वेदांत विचार कर पाप नाश को प्राप्त
होता है। तो अभेद बोधक वाक्यों के विशेष विचार से कौन
अधिकारि परम पद को नहीं प्राप्त होता किंतु अवश्य प्राप्त होता है।
इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं।

अज्ञान मुच्यते पापं तद्विचारेण नश्यति ।

पाप मूलच्छिदं तस्माद्विचारं न परित्यजेत् ।

स० ८। ४२

अ०—सर्व पापों का हेतु होने से यहां अज्ञान को ही बुद्धिमानों
ने पाप कहा है वह अज्ञान वेदांत विचार कर नाश होता है। तिस
से पापों का मूल अज्ञान जिस विचार से विद्या द्वारा बाधित हो
जाता है। तिसी कारण से यह अधिकारि विचार को कभी न
त्यागे। तथा—

वल्लिखत् प्रविवेकेन नित्योहमिति निश्चयात्

पदमासादयाद्वैतं पौरुषेणैवराधव । उ० स० २६। ४०।

अ०—हेराम बलि की न्याई पुरुष प्रयत्न से तीक्ष्ण विवेक कर नै नित्य ब्रह्मस्वरूप हूं ऐसा निश्चय उत्पन्न होता है तिससे तुम अद्वैत पदमोक्ष को संपादन करो । तथाहि—

सर्वसंभ्रम संशान्त्यै परमाय फलाय च ।

ब्रह्म विश्रांति पर्यंतो विचारो ऽस्तुतवानघ ।

अ०—हे निष्पाप श्रीराम सर्व भ्रमों को अत्यंत नाश करने के लिये और परमफल अर्थात् मोक्ष के लिये और ब्रह्म में विश्रांति पर्यंत तुम्हको विचार ही करने योग्य है । तथाहि—

नास्त्यविद्येति संजाते निश्चये शास्त्र युक्तिः

गलत्यविद्या तापेन तुषार कणिका यथा

उ० स० ३७।४०

अ०—शास्त्र तथा युक्तिसे अविद्या तत्कार्यतीनो काल में मुझ ब्रह्मात्मा में नहीं है ऐसा निश्चय उत्पन्न हुए यह अविद्या कार्य सहित बाधित हो जाती है । जैसे सूर्य के तेज से हिमकाकण विनाश होजाता है । और—

विचारोत्थात्म विज्ञानं ज्ञान मंगविदुर्बुधाः

स० ६३।२१

अ०—हे प्रिय श्रीरामजी वेदांत विचार से उत्पन्न हुआ जो अपरोक्ष ज्ञान है तिसी को तत्त्वदर्शी महात्मा ज्ञान कहते हैं । तिस विचार का ही अभ्यास सर्वदा करना योग्य है यह कहते हैं ॥

अश्नन्गच्छन्स्वपंस्तिष्ठन्निति राघवचेतसा ।
सर्वत्र प्रज्ञया तज्ज्ञः प्रत्यहं प्रविचारयेत् ॥

उ० स० ८२ । १७ ॥

अ० ॥ हे श्रीरामब्रह्मतत्त्वकाजिज्ञासुशुद्धचित्ततथा एकाग्रबुद्धि से सर्वदेशोंमें तथा सर्वकालोंमें अर्थात् भोजन करता हूया तथा गमन करता हूया औ शयन करता हूया तथा स्थित हूया निरंतर ब्रह्मात्मा का विचार करे । इति और—

अथातो ब्रह्माजिज्ञासा—

इस वेदान्त शास्त्र के आदि सूत्र में श्रीवेदव्यासजी ने भी ब्रह्मज्ञानके अर्थ वेदान्त विचारही विधान किया है और महाभारत के शांति पर्वगत मोक्ष धर्म में स्वपुत्रके प्रति तिन्होंने दोनों मार्ग पृथक् निरूपण करके सांख्यमार्गको योगसे श्रेष्ठता कथन की है । तथाहि सांख्ययोगौ तु या बुक्तौ मुनिभिः समदर्शितौ । मार्गौ तावप्युभावेतौ संश्रितौ न च संश्रुतौ ॥

मो० अ० १८६ । ८

अ० ॥ ब्रह्मदर्शनसम्पन्न मुनियोंने सांख्य तथा योग यह दोनों जो मार्ग कथन किये हैं । वह दोनों ही मार्ग मुमुक्षुपुरुषोंने आत्म-साक्षात्कारके अर्थ सम्यक् आश्रयण किये हैं । तिन दोनोंमें सांख्यमार्ग में जपादिक्रियाका विधान नहीं । इस प्रकार दोनों मार्गोंको कथन करके सांख्य तथा योगके अनुष्ठाना पुरुषोंके लक्षण और तिनको ब्रह्मविद्या द्वारा मोक्षकालाभ कथन करके सांख्यमार्गको योगमार्गसे श्रेष्ठ कथन किया । तहां नीलकंठी टीका ॥

सांख्ययोगपक्षयोर्मध्येसांख्यमेवश्रेय इत्याह ।
अथेति ॥

अ० ॥ सांख्य तथायोग इनदोनोपक्षोंमें सांख्यही बुद्धिमान् पुरुषको आत्मज्ञान द्वारामोक्षका श्रेष्ठसाधनहै । यहअर्थअगलेश्लोक में कहते हैं ॥

अथज्ञानप्लवांधीरोगृहीत्वाशांतिमात्मनः ।

उन्मज्जंश्चनिमज्जंश्चज्ञानमेवाभिसंश्रयेत् ॥

अ० ॥ गुरुके उपदेशसे अनन्तर यहविवेकादि साधन सम्पन्न पुरुष अपने मोक्षका साधन ज्ञानाभ्यासरूपनावको ग्रहणकरकेविषय रूप संसार सागर में ऊर्ध्व अधः को प्राप्तहोताहूयाज्ञानाभ्यासको ही सम्यक् आश्रयणकरे ॥

और सिद्धांतलेशकेसंग्रहकर्ताअप्ययदीक्षित आचार्यनेप्रथम श्रवणादिरूपसांख्यमार्गकोनिरूपणकरकेपश्चात्तत्त्वयोगमार्गकानिरूपण किया और तिसयोगमार्गके निरूपणकीसमाप्तिमें यह कथन किया—

इयांस्तुविशेषः प्रतिबंधरहितस्यपुंसः श्रवणादि प्रणाड्याब्रह्मसाक्षात्कारोभटितिसिद्ध्यतिइतिसांख्य मार्गोमुख्यः कल्पः । उपास्त्यातुविलंबेन इतियोग मार्गोऽनुकल्पः ॥ मि० ले० १० ३

अ० ॥ परन्तु योगमार्गसे सांख्यमार्गमें इतनी विशेषताहै कि बुद्धिमंदतादिप्रतिबंधसे रहितपुरुषको श्रवणादिकों की परंपरासे ब्रह्म साक्षात्कारशीघ्रसिद्धहोताहै । यातेसांख्यमार्गही प्रधान्यतासेअनुष्ठान करने योग्य है और निर्गुणध्यानसे विलंबकरके ब्रह्मसाक्षात्कारसिद्ध

होता है। याने योगमार्ग अनुकल्प है अर्थ यह कि सांख्य के अलाभ हुए पश्चात् योग अनुष्ठान करने योग्य है। इस प्रकार शीघ्र सिद्धि का हेतु सांख्य मार्ग ही सुमुचुकों को अनुष्ठान करने योग्य है। और जिस अधिकारिकी रुचि योग मार्ग में हो वह तिसी का अनुष्ठान करे इसमें कुछ आग्रह नहीं ॥ क्योंकि रुचियों की विचित्रता है। दोनों का फल एक ही आत्मसाक्षात्कार है। याते दोनों में से जिस मार्ग में रुचि हो उसी को श्रद्धा पूर्वक अनुष्ठान करे। केवल दोनों मार्गों की वार्ता में कुशल पुरुष फल को नहीं पाता ! फल तो किसी एक साधन के अनुष्ठान से ही होगा। याते तिनके अनुष्ठान परायण सुमुचुको होना उचित है ॥ इति ॥ पूर्व श्रेष्ठ रूपता कर कथन किया जो सांख्य मार्ग है तिसमें यह भी विचारणीय है। बहुत आचार्यों के मत में तो श्रवण मनन निदिध्यासन इन तीनों का नाम सांख्य है। तथा विचार भी इन तीनों को ही कहते हैं। और वार्तिककार सुरेश्वर आचार्यों के मत में श्रवण तथा मनन को ही सांख्य या विचार कहा है ॥ तथा हि ॥ बृहदारण्यक उपनिषद् के चतुर्थ तथा षष्ठ्याय गत मंत्रेयी ब्राह्मण में यह पठन किया है—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ॥

तिसके अनन्तर चतुर्थाऽध्याय गत मंत्रेयी ब्राह्मण में यह पठन किया—

आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्त्या विज्ञानेन ।

और षष्ठाध्याय गत मंत्रेयी ब्राह्मण में यह पठन किया—

आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते ।

तहां यह शंका रूप वार्तिक वचन है =

अनुवादेयथोक्तानां प्रक्रांते दर्शनादिषु ।

विज्ञानेनत्यथकथंनिदिध्यासनमुच्यते ॥ १ ॥

अ०—“आत्मा वाच्येद्रष्टव्यः”

इत्यादि श्रुतिसे कथनकिगुण दर्शनादिकोंका अनुवादप्राप्तहुए तिन दर्शनादिकोंके मध्यश्रवणक्रिया जो निदिध्यासनहे । सोविज्ञान पदसेकेसेअनुवादक्रियाहे । क्योंकिदर्शनादिदोंकासमानपदोंसेअर्थात् दर्शनादिपदोंसेही अनुवाददेखने में आताहे । याते निदिध्यासनका भी “निदिध्यासनेन” इस समान पदसेही अनुवादहोना योग्य था “विज्ञानेन” इसपदसेतिसका अनुवादकरनायुक्तनहीं ॥इति॥इसशंका समाधान रूपवार्तिक वचन—

ध्यानाशंकानिवृत्त्यर्थं विज्ञानेनेति भण्यते ।

निदिध्यासनशब्देन ध्यानमाशंक्यते यतः ॥ २ ॥

अ० ॥ निदिध्यासनशब्दध्यानकावाचकहे । इसकारणसेश्रवण तथा मननसे अनंतर आत्मसाक्षात्कारका अंग रूपताकरध्यानही निदिध्यासनशब्दसे श्रुतिनेविधानक्रियाहे । ऐसीआशंकापूर्वपक्षिकी जिसकारणसेप्राप्तहोतीथी इसीकारणसेतिस आशंकाको निवृत्तकरने के लियेअनुवादकालमेस्थितहोकर पूर्वावाक्यमे “निदिध्यासन” जो है वह ज्ञानरूप विवक्षित है तहां तिसपदसे ध्यानविवक्षित नहीं याते“निदिध्यासितव्यः” इसपदसेपूर्वउक्तश्रुतिमेध्यानविधिकीआशंका काअवकाशनहीं।इसअभिप्रायवालीश्रुतिभगवती‘विज्ञानेन’इसविज्ञान पदसे निदिध्यासनकाअनुवादकरतीहे । इति । ध्यानकोअनुभवका अंगमाननेमे कौनदोषहे जिससे तिसआशंकाको श्रुतिनिरासकरती है ऐसीजिज्ञासाके हुए कहते हैं ॥

विज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वं ध्यानादेः प्रागवादिषम् ॥

अ० ॥ ध्यानादिकोंको विज्ञान उत्पत्तिकी कारणतामे जो दोष कहने योग्य था सो हम पूर्वग्रंथमे विस्तारपूर्वक कह आये हैं। और तिसी वार्तिक के अन्यस्थलमे भी यह अर्थ निरूपण किया है तत्त्वपदार्थ विषयक श्रवण तथा मनन का अनेकवार अभ्यास करनेमे तत्त्वपदार्थोंके लक्ष्य अर्थोंका निर्णय हुए वाक्यार्थज्ञानका ही अवसर प्राप्त होनेकर ध्यान विधिका अवकाश नहीं और यदि ऐसे कहो कि तिन दोनोसे प्रमाण तथा प्रमेयगत असंभावना के निवृत्त हुए भी विपरीत प्रत्ययकर प्रतिबंध होनेसे वाक्यार्थरूप अभेद ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होगी तिस प्रतिबंधके निवारण करनेके लिये ध्यान की आवश्यकता है सो यह कथन भी नहीं संभवता। क्योंकि श्रवण तथा मनन का अनेकवार किया जो अभ्यास तिसके प्रभावसे ही विपरीत प्रत्यय की निवृत्ति भी संभवती है। और वाक्यार्थज्ञानकर निवृत्त होने योग्य विपरीत प्रत्ययको वाक्यार्थज्ञानका प्रतिबंध कपना भी नहीं संभवता। क्योंकि लोक मे विपर्यय को स्वविरोधि ज्ञानका प्रतिबंध कपना कहीं भी देखा नहीं। याते विपर्ययकी निवृत्ति अर्थ ध्यानकी अपेक्षा नहीं ॥ इति। यदि निदिध्यासन शब्द का अर्थ यहां ध्यान नहीं है तो तिसका क्या अर्थ है। ऐसी आकांक्षा के हुए कहते हैं। वार्तिकवचन ॥

अपरायत्तबोधोऽत्र निदिध्यासनमुच्यते ॥

अ०—“श्रोतव्यः” इस वाक्यमें अपरायत्तबोध ही निदिध्यासन शब्दसे कहा जाता है। जैसे ध्यानमें पुरुष प्रयत्नकी अपेक्षा है तेसे बोध में नहीं किन्तु पुरुष प्रयत्न अनपेक्षत्व है यह ही तिस बोधमें अपरायत्तत्व है। ऐसे बोधके अर्थ श्रवण तथा मनन का अभ्यास करने योग्य

है यह कहते हैं ॥

यावद्यथोक्तविज्ञानमाविर्भवतिभास्वरम् ।

श्रवणादिक्रियातावद्कर्तव्येति प्रयत्नतः ॥

अ०—यावत्कालपर्यंतपूर्वजैमाकथनक्रियाबोधप्रकाशात्मकप्रादुर्भाव
अर्थात् उत्पन्नहो तावत्काल पर्यंत श्रवण तथा मनन अत्यंत प्रयत्न से
अनुष्ठान करने योग्य है ॥ इति ॥ श्रवण तथा मनन के अभ्यास की प्रपक्वता
से आत्मसाक्षात्कार होता है यह कहते हैं ॥

श्रुत्वामत्वा तु तं साक्षादात्मानं प्रतिपद्यते ॥

अ०—श्रवण तथा मनन की प्रपक्वता से उत्पन्न हुआ जो
तत्त्वपदों के लक्ष्यार्थों का निर्णय तिस से अनंतर यह अधिकारि महावाक्य
से ब्रह्म को अपना आत्मारूप करके साक्षात् अनुभव करता है ॥ इति ॥

इस प्रकार वाक्यार्थ के ज्ञान वाले पुरुष को कृतार्थता की प्राप्ति होती
है यह कहते हैं ।

अनन्यायत्तविज्ञानेशूवणादेरुपायतः ।

जातेनापेक्षते किंचित्प्रतीचोऽनुभवात् परम् ॥

अ०—श्रवण तथा मनन रूप उपाय के अभ्यास से अपरायत्तबोध
के उत्पन्न हुए तिस कर अविद्या तत्कार्य की निवृत्ति पूर्वक निजस्वरूप
प्रत्यगात्मा में ब्रह्मभाव के स्फुरण से अनंतर यह अधिकारि किंचित्मात्र
भी अपेक्षा नहीं करता किंतु कृतकृत्यता को प्राप्त होता है ॥ इति ॥ इस रीति
से वार्तिककार के मत में श्रवण तथा मनन का नाम ही सांख्य है । यद्यपि
वार्तिककार का पूर्व उक्त श्रुति का व्याख्यान माने हुए निदिध्यासनपद
की द्रष्टव्यपद के साथ पुनरुक्ति होगी ॥ क्योंकि दो नोपदों से साक्षात्कार

काही ग्रहण किया है। तथापि दर्शनका उद्देशकरके श्रवण और मननके विधानसे अनंतर पुनः फलका जो कथन है तिसको पूर्व उपक्रम किये दर्शन के उपसंहार परताका संभव होनेसे पुनरुक्तिकी शंका नहीं संभवती। अथवा द्रष्टव्यपदसे विचारके प्रयोजक आपात दर्शनका अनुवाद है। और निदिध्यासनपदसे विचारके फलभूत साक्षात्कारका अनुवाद है। इस प्रकार पुनरुक्तिकी शंकाका परिहार संभवता है ॥ इति ॥ इस प्रकार वार्तिककार सुरेश्वराचार्यके मतमें सांख्यमार्गमें ध्यानका अभाव है। और भाष्यकारोंको भी सांख्यमार्गमें ध्यानका अभाव समत है। तथा हि—

एतेन योगः प्रत्युक्तः ॥ शा० २।१।२

इस अधिकरण के भाष्य में ॥

तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ॥

इस श्रुतिके व्याख्यानमें भगवान् भाष्यकारोंने यह कथन किया है ॥

वैदिकमेव ज्ञानं ध्यानं च सांख्ययोगशब्दाभ्यामभिलप्येते ॥

अ०—पूर्वोक्त श्रुतिमें सांख्य और योग शब्दसे वेदोक्त ज्ञान अर्थात् ज्ञानाभ्यास और ध्यान यह दोनों ही कथन किये हैं ॥ इति ॥ और सांख्य मार्गमें ध्यानाभावके अभिप्रायसे ही सर्वज्ञात्म मुनियों ने भी निदिध्यासन पदका ज्ञान ही अर्थ कहा है ॥ तथा हि—

श्रवणमनन बुद्धयोजातयोर्यत्फलं तन्निपुण-
मातिभिस्त्वैरुच्यते दर्शनाय। अनुभवनविहीनायैवमेवे-
ति बुद्धिः श्रुतमननसमाप्तौ तन्निदिध्यासनं हि ॥ सं० शा०

अ०—श्रवण तथा मनन जन्य निश्चयके उत्पन्न हुए जो फल होता है वह कुशल बुद्धि वाले पंडितों ने आत्म दर्शन के अर्थ उच्च स्वर से कहा है इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं । श्रवण तथा मनन यह दोनों ही दीर्घ काल तथा निरंतर और आदर से अनुष्ठान किये हुए तिनकी प्रपक्वता से अविद्या के निवर्तक साक्षात्कार से भिन्न “यह इस प्रकार ही है” ऐसी जो बुद्धि उदय होती है अर्थात् मे चिदात्मा ब्रह्मस्वभावही हूं और ब्रह्मचिद् एकरस प्रत्यगात्म स्वभाव ही है । इसप्रकार जो तत्त्वंपदके लक्ष्यार्थका निर्णयरूप ज्ञानसो निदिध्यासनशब्द का अर्थ है ध्यान तिसका अर्थ नहीं ॥ इनके मत में भी श्रवण तथा मननही दीर्घकाल पर्यंत अनुष्ठान करने योग्य हैं निदिध्यासन अनुष्ठान करने योग्य नहीं । क्योंकि तिसके उत्पन्न हुए उत्तर काल में साक्षात्कार उत्पन्न हो जाता है । इस प्रकार जो आचार्य्य श्रवणादि तीनों को ही सांख्य कहते हैं । तिनके मत में भी निदिध्यासन ध्यान रूप विवक्षित नहीं । और जिन आचार्यों के मत में निदिध्यासन क्रिया रूप माना है तिन की रीति से भी वह योग मार्ग गत ध्यान से विलक्षण है । क्योंकि निदिध्यासन श्रवण तथा मनन पूर्वक ही होता है और ध्यान में तिन की अपेक्षा नहीं । और सांख्य मार्ग में ध्यानाभाव के अभिप्राय से ही स्वामि विद्या राय जी ने भी ध्यान दीप में ज्ञान के उदय होने पर्यंत विचार की कर्तव्यता ही विधान करी है ॥ तथाहि—

विचार्याप्यपरोक्षेण ब्रह्मात्मानं न वेति चेत् ।

अपरोक्ष वसानत्वात् भूयोभूयो विचारयेत् ॥

विचार यन्नामरणं नैवात्मानं लभेत् चेत् ।
जन्मांतरे लभेतैव प्रति बंधन्ये सति ॥

पं० द० ध्या० दी० ३२।३३

अ०—यदि यह अधिकारिपुरुष वेदांतविचारकरके भी अपरोक्षरूपताकर ब्रह्मात्मा को नहीं जानता । तो पुनः पुनः विचारका ही अनुष्ठान करे। क्योंकि अपरोक्षबोधपर्यंत विचारही करनेयोग्य है ॥१॥ और यदि किसी प्रतिबंधके बलसे मरणपर्यंत विचारकरते हुए पुरुषको भी आत्मसाक्षात्कार उदय नहो तो प्रतिबंधके नाश हुए दूसरे या तीसरे जन्ममें अवश्य आत्मसाक्षात्कारको यह पुरुष प्राप्त होता है। इति। और तिसी पंचदशीगत आत्मानंद प्रकरण के अंत में ध्यानसे रहित केवल सांख्यनामवाले विचारको भी सर्व अंशमें ध्यानके तुल्य आत्मसाक्षात्काररूप फलकी जनकता बहुत प्रकार से निरूपण की है। इति। पूर्वोक्त समग्र श्रुति आदिक वचनोंका यह रहस्य है। कि विचारका अपरपर्याय सांख्यमार्ग योगमार्गसे भिन्न स्वतंत्र आत्मसाक्षात्कारका साधन है। योगसे विना बोध नहीं होता यह कई पुरुषोंका कथन श्रुति स्मृति तथा विद्वानोंके अनुभवसे विरुद्ध है। इस प्रकार समुच्च पुरुषोंको आत्मसाक्षात्कारका सुगम तथामुख्य उपाय सांख्यसंज्ञक विचार है। सो विचार श्री गंगाचार्य तथा तिनके शिष्यसंप्रदायमें प्रविष्ट सुरेश्वराचार्यादिकोंने बहुत विस्तारसे स्वस्वग्रन्थों में निरूपण किया ॥ तिन ग्रंथोंको अतिविरतृत तथा कठिन देखकर श्री प्रकाशानंदसरस्वतीसंज्ञक महानुभाव ने वेदांतसिद्धांतमुक्तावलीग्रन्थमें इस मार्गका निरूपण संक्षिप्त और मनोहर युक्तियोंसे किया ॥ यह महानुभाव श्री सर्वज्ञात्ममुनियोंसे कुछ कालपश्चात् हुए हैं। ऐसा अनुमान होता है ॥ क्योंकि उनके वचनप्रमाण

रूपतासे अनेकस्थानोंमें इसग्रंथमें देखेजाते हैं । इनका रचनाकिया हुआ यह एकहीग्रंथभेदवादर्प अंधकारके दूर करनेको मार्तराट्टकी न्याईप्रसिद्ध है ॥ इसग्रन्थकी अद्भुत रचनासर्वविद्वानों के चितकोंरंज न करनेवाली तथाविस्मयकाजनकहै । और एकहीप्रथमकारिकाका व्याख्यानरूप समग्र ग्रंथ है ॥ क्योंकि तिसमेंकथनकियेविशेष्य आत्म वस्तुके चारविशेषणोंकाहीविस्तारसे निरूपणसमग्रग्रंथमें है । और तिन विशेषणोंके निरूपणकालमें प्रसंगसे प्राप्त अन्यभी वेदांतप्रक्रियाका समस्त तथाव्यस्तरूपतासेनिरूपण है ॥ तथाहि ॥ प्रथम देहादिकों की आत्मरूपता पूर्वपक्षीकी रीतिसे कहकर सिद्धांत मेदेहादिभिन्न आत्माकीसिद्धि तथाअव्ययपदकी व्याख्यानिरूपणकी। पुनः एकदेशी कीरीतिसे अज्ञानके आश्रय और विषयका भेदकहकर सिद्धान्तमतमे अज्ञानके आश्रयऔर विषयका अर्थभेदनिरूपण किया । और पुनः तिस मे उपयोगी जीवब्रह्मके स्वाभाविकतथाऔपाधिकभेदका खंडनकरके अज्ञानतथाजीवका एकत्वस्थापनकिया। और पुनः उत्तमअधिकारियोंको अद्वैतबोधमेंउपयोगी एकजीववादमेंबंधमोक्षादि व्यवस्थाश्रुतिप्रमाण पूर्वक अनेक युक्तियोंसेस्थापनकी। और सर्वअनात्मपदार्थोंकी अज्ञात सत्ताका खंडनकरके ज्ञातसत्तातिनमेंस्थापनकी । और तिसके अन्तर मध्यमअधिकारियोंको दृष्टिसमकालीनसृष्टि पक्षकाभीनिरूपण किया। और पुनः उत्तम अधिकारियोंकेलिये ज्ञानज्ञेयकाभेद अनेकयुक्तियोंसे निराकरणकरके दृष्टिमात्रसृष्टिपक्षकानिरूपण किया। पुनः प्रमाणके अभाव से आत्माको असत् कहनेवाले नास्तिकका पक्ष अनेकयुक्तियोंसे निराकरणकरके आत्माका स्वतःसद्भाव और खंयंज्योतिपनानिरूपण किया ।

और पुनः विशेष्य आत्म पदार्थकानिरूपण करके तिसमें अपुरुषार्थत्वकी आशंकाके निषेधपूर्वक तिसकी परमपुरुषार्थरूपतानिरूपण की। तिसके अनंतर आत्मसाक्षात्कारमें एकदेशिके मतसे मनको करणता दिखलाकर तिसके निराकरणपूर्वक महावाक्यरूप शब्दको करणता स्थापन की। तिसके अनंतर महावाक्योंमें लक्षणाके अभावकी शंका करके तिसके निषेधपूर्वक भागत्यागलक्षणाका निरूपण तथा बीचमेंही लक्ष्यार्थके उपस्थायक सत्यादिपदोंमें शक्तिवृत्तिसे लक्ष्यार्थका उपस्थापकत्व नूतन रीतिसे प्रतिपादन किया। और पुनः अनात्मप्रतियोगिक और आत्म अनुयोगिक धर्मभेद तथा स्वरूपभेदका निराकरण अनेक नूतन युक्तियोंसे करके प्रपंचमें मिथ्यात्वकी सिद्धिके अर्थ ब्रह्मकारणत्ववादिनी और अज्ञान कारणत्ववादिनी श्रुतियोंका परस्परविरोध परिहार करके साक्षिसिद्ध अज्ञानको प्रपंच भ्रममें निमित्तमात्रता स्थापन की। और पुनः अज्ञानकी असिद्धिकी शंकाके निषेधपूर्वक भ्रमसिद्ध अनादि अनिर्वचनीयत्वादि रूप अज्ञानका स्वरूप निरूपण किया॥ और पुनः अज्ञानादिकोंके बाधका स्वरूप निरूपण में एक देशियोंकी रीतिसे बाधका स्वरूप निषेधकर के नूतन रीतिसे बाधका स्वरूप निरूपण किया। और तिससे अनंतर विद्या औ अविद्याके विरोधका स्वरूप निरूपण करके एक जीववादमें गुरुशिष्यकी परम्परा रूप संप्रदायके लोपकी आशंकाका समाधान निरूपण किया॥ और पुनः आनंदस्वरूप आत्मामें आनंदत्वादि धर्मोंका विचार चलाकर आनंदत्व सामान्य तथा आनंदव्यक्ति उभयरूपता आत्माकी अपूर्वरीतिसे प्रतिपादन की॥ और तिससे अनंतर आत्माकी आनंद रूपता दृढ़ करानेके लिये अद्वयानंदके आविर्भावमें मिथ्याद्वैत दर्शनको

प्रतिबंधकपना निरूपणाकिया। औरपुनःद्वैतदृष्टाके स्वरूपविषयकगुरु शिष्यद्वारा अनेकप्रकारका विचारचलाकरद्वैतदृष्टाका अभावनिरूपण करकेआत्माकी अदृष्टद्वयता प्रतिपादनकी औखीचंभही उत्तमअधिकारियोंकेप्रति पूंचका तुच्छवाद और मध्यम अधिकारियोंके प्रति विवर्तवादभी अनेकयुक्तियोंसे निरूपणाकिया ॥

औरपुनः विद्वान्केअनुभव सिद्धकृतकृत्यताकोनिरूपणकरकेग्रंथ कोसमाप्तकिया। इसप्रकारउक्तानुक्त अनेकवेदांत सिद्धांतरूप अमूल्य मौक्तिकोंकीयहश्रेणीहै। जोसुकृतिपुरुषइसकोअपने कंठमेंधारणकरतेहैं वहअतिशयशोभावालेहोतेहैं। औरमुमुक्षुपुरुषोंकोयहग्रंथश्रवणरूपभीहै क्योंकिवेदान्तवाक्योंकेतात्पर्यकानिर्णयअनेकस्थानोंमेंकियाहै। और यहग्रंथमननरूपभीहै क्योंकिभेदकीबाधक तथाअभेदकीसाधक अनेक श्रुतिअनुसारीतर्केंइसमेंनिरूपणाकीहैं। इससेयहग्रंथसाक्षात्हीआत्मज्ञान काजनकहै। औरग्रंथोंमेंकहींकहींआत्मविचारकालाभहोताहै। औरइस ग्रंथमें शीघ्रही जिज्ञासुकी बुद्धि आत्मविचारको प्राप्तहोतीहै। यहभी अन्यग्रंथोंसे विचित्रता है। इसलिये संस्कृतके पाठकजिज्ञासु जनोंको यहग्रंथ आत्मविद्याके संपादनमें अत्यंतहीउपयोगीहै। औरवादियोंके जयकरनेकी इच्छावाले पुरुषोंकोभी इसीकाअभ्यास करनेयोग्यहै। यहअथांतरफलभी इसका स्वयंमूलकारने कयनकियाहै। सर्वथायह ग्रंथअनुपम है। औरजैसे उत्तमजातिवाले मौक्तिकोंकी श्रेणी सुंदर मंदरमेंदीपकसे प्रकाशितकीहुई अत्यन्तशोभाको धारणकरतीहै तैसे यहसिद्धान्तसुक्तावली जिज्ञासुओंके हृदयरूपमंदिरमें श्रीनानादीजित विद्वान्कर निर्मित दीपकानाम्नी दीकारूपदीपककर प्रकाशितकीहुई

अत्यन्तशोभायुक्त है । परन्तु व्याकरणादिरूप द्रव्यसेविना भाषाग्रंथों के पठनपाठनमें निपुणमति सज्जनपुरुष अत्युत्तम इसमुक्तावलीको स्वः कंठमेंधारणकर अपूर्वशोभाको नहींलेसकतेथे वहसज्जनभीइसको कंठमेंधारणकर सुशोभितहों यहविचारकरके शमादिनिस्त श्रीमुक्ति-
 प्रदमृगेंद्रशांतात्मास्वमित्रवर्य ने मुझको इसग्रंथकेभाषाकरनेकीप्रेरणा की।तिनकीप्रेरणाकोहृदयमें धारणकरजुन्हीकीसहायतासेइसदुर्गमग्रंथ वालेग्रंथकेमूलतथाटीकाकोयथायोगमिलाकरभाषाकरना आरंभकिया। यहशरीरप्रायःव्याधिग्रस्तथा । परंतुजिसजिसकालमेशरीरकी किंचित् स्वस्थदशादेखीतिसतिसकालमें किंचित् भाषाअनुवाद लिखतेहुएयह ग्रंथनिर्विघ्नसमाप्तहोगया । तिस से अनंतर रिपोकेशनिवासी श्रीमान् विरक्तात्मापंडितस्वयंज्योतिजीकी सहायता से यहग्रंथसंशोधनकिया गया । यद्यपिइसग्रंथकोभाषाकस्तेहुएअनेरुवारचित्तमेलज्जाभी आती थी । क्योंकिशास्त्र में निपुणमति पंडितइसकेदेखकरहंसेंगे।यहविचार करचित्तऊपरतभी होजाताथा परंतु यह वक्षमाण विचारचित्तको पुनः उसीकार्यमेलगादेता था कि शास्त्र में निपुणमतिपंडित इसभाषाको दूषितजानकरऔर सुंदर रचनावाली इसग्रंथकीभाषाकरनेमें प्रवृत्तहोंगे तिससेभीसर्वउपयोगीयहकार्यसिद्ध होजायगा । अथवावहपंडितजन दयालुभीहोतेहैं।इसलिये इसकीही न्यूनता तथादोषोंकोदूरकरकेइसी भाषाकोसुधारकरसुभूषित करदेंगे तिससे भी यहकार्य सिद्धहोगा । औरपरमकारुणिकश्रीगुरुके मुखाविंदसे श्रवणकियाहूआथर्थविस्मरण नहो।इसलियेभी इसग्रंथकोभाषामेलिखनाउचितजाना । यद्यपिवेदांत सिद्धांतमुक्तावलीगत सिद्धांत मौक्तिकों की पहचान अत्यंत दुर्लभ

तथा वह अमोलिक हैं । तथापि जैसे अमोलिक मौक्तिकों की पहचान स्वस्वबुद्धि अनुसार सवीपरीजिक पुरुष करते हुए अन्यपुरुषों को तिनका स्वरूप स्वस्वभाषामें यथायोग्य कहते हैं । तैसे इन सिद्धांत मौक्तिकों की पहचान स्वबुद्धि अनुसार परमकारुणिक श्रीगुरु से पाकर भाषामें इनके स्वरूप का अनुवाद करना उचित ही है । आशा है कि समग्र महात्मा विद्वान् तथा और सज्जन विचारशील पुरुष मेरे दोषों को क्षमा करेंगे और इसको अवलोकन करके मेरे प्रयत्न को सफल करेंगे ।

॥ इति ॥



❀ ओ३म् ❀

अथ

श्रीवेदान्तसिद्धान्तमुक्तावलीभाषा

पूर्वार्द्ध प्रारम्भः ।

दोहा—सत्यचिदानन्द, विभुजो कर्तापुरुषयकाल ॥

ताहि निजातमलखरिदे, होवत सदा अकाल ॥ १ ॥

कवित्त—सांख्यआदितर्कसेन चालितकदापिजोऊ वेदकेसिद्धान्त
माहि जोऊसेदागतहै । मूलहीनथागमन ताहिकोऊजानसके
यातेभूतपञ्चककी जनिलयथित है ॥ जनमविनाशते विहीन
जोचिदातमाहै व्यापककर्तासब जननकोगत है । ताहिजान-
कीशको भर्जोमें सदाबारबारजोऊजगनामरूप प्रकटकरतहै॥२॥

दीनप्रतिपारनको संतनउचारनको असुरसंहारनको सदाजह
चाउहै । एकनारीव्रतजोऊ पितुआज्ञारतजोऊ धरमधरतजोऊ
सीतलस्वभाउहै ॥ पटभगपूरन नहोवेंकवीजरन त्रिलोकमाहि
पूरन सुजाहिकोप्रभाउहै । ताहिरघुनाथको निवाजंसदामाथको
दिखावेंमोछपाथको जोआनन्दस्वभाउहै ॥ ३ ॥

वेदीकुलव्योममाहि जगगुरुशशिआहि सुयशप्रभाहैताहि
फेलीतीनलोकमें । गुरुमुखचकोर दोनोदृगनकोजोर करेंध्यान
ताहियोर हीहोवतअशोकमें ॥ मनमुखब्रेहीवाम जलेंदुःखथाठो
जाम सुनकरजाहिनाम धरेचितशोकमें । शशिशुलानक त्रिताप
करेहानक सुध्यावोंसुखदानक नसावेपापरोकमें ॥ ४ ॥

स्वैया-भूमिसमानक्षमाजिनमे पुनःशोधकवायु समानहैजोई।व्योमसमंजु
 असंगसुभाव रुदोपनदाहकपावकजोई ॥ शीतल नीरसमंषिखिये
 वरतेंसबकेहितमेपुनजोई ॥ तागुरुअंगदके पदपंकजजोर नमो
 करहोंकरदोई ॥ ५ ॥

स्वैयाछंद-जाकीकरनीसकललोकमेंहैप्रसिद्धजानतसबकोय । गुरु
 सेवाकीरीतिदिखारीजिन सम कर नसकत है कोय ॥ शीलवंत
 तपसातनुधारी सहनशीलजासमनहिकोय । श्रीगुरुअमर अमर
 पदवीप्रदध्यावों विघ्ननलागेकोय ॥ ६ ॥

त्रिभंगीछन्द-सोढीकुलभानू कलितमभानू भक्तिप्रभानुनामरते ।
 जहवाक्यरसाम्रित अचकरपाप्रितहोवतआम्रित सामगते ॥ जो
 जनहितकारी परमउदारी भवदुखटारी शरणगते । तागुरुमदा-
 सह पदकमलासह गमरिदवासह जामहते ॥ ७ ॥

स्वैया-जहहारद के तमनाशनको रविकीरसमं उपदेश विधारा ।
 भवसिन्धुपरे जनतारनको गुरुग्रंथ जहाज कियोबहुसारा॥ गण
 आसुरकौरव कोदलजो समयजुन के जहने दलडारा । तागुरु
 अर्जुनपापविभर्जन केपदकज्जनमो बहुवारा ॥ ८ ॥

द्वैलछंद-रमीलजुवेन सुलोचनहैं करुणास्ममाते । पीरन
 पीरसुमीरनमीर जुवीरनवीरसदा रणमाते ॥ अमरास्मितेच्छन
 मेघनकेदलवायु समानकरे जिनहाते । ताहरिगोविन्द राजनके
 पदकज्ज सदा मनमोर सुहाते ॥ ९ ॥

यहयाहजहान असायमहा तहमाहियिजीवसहें दुखभारे ।
 तांयतिदीनदशा पिखेके हरियाय गुरुकरुणा चितधारे॥ हारसमं

निजदैउपदेशह काढ्यराय सुकीनसुखारे । पंकजतेवरतांशुके
पद वारहिवार प्रणामहमारे ॥ १० ॥

चौ०—कृष्णभये हरिकृष्ण स्वरूपा । इन्द्रियगणगोपिनके भूषा ॥
मनकाली रिपुमर्दनहारे । नमोंकरोंसदवयसकुमारे ॥ ११ ॥

कवित्त—जाहिउपदेशसुन होवतवैरागमन भयेज्ञानवानजन काटें
भवबन्धको । संपदविपदमाहि सदासमचित्तजाहि पालहशरणा-
गताह धर्मधुरन्धको ॥ तिलकजनेऊकाज निजशिरदीनोगाज
हिन्दुनकीराखीलाज काटीजरथन्धको । तांहरिखिन्दनन्द
जुकेजोपदाविंद करोंसदाताहिवन्द काटहपापबन्धको ॥ १२ ॥

स्वैया—शेशनिशेशदिनेशमहेश सदापदपंकजजाहिमनावें । व्यास
पराशरनारदथौ सनकादिकसेजहकोयशगावें ॥ सोउअकालभये
गुरुगोविन्द सिंहसरूपमलेच्छनघावें । तांगुरुतेगवहादुरनन्दन
दूखनिकन्दनकोहमध्यावें ॥ १३ ॥

कवित्त—कोऊव्यासमुनिभनेरामगुरुकोऊगने कपिलस्वरूपकहकोऊ
गुनगावते । योगवचजिनोसुनाशेषरूपतिनोभना भीषमस्वरूप-
कोऊअौरनवतावते ॥ जाहिकोचस्तिपेख होवतहुलासमन विसम
विसमहीयेहोतसवीजावते । यातेसरवातमस्वरूपहरिहरजानताहि
गुरुमूरतिकोसदाहमध्यावते ॥ १४ ॥

दो०—तां गुरुके पदपद्मकी, गहीशरण जवथाय ।

हरीहीयकी जाब्यता दोषमूलसवधाय ॥ १५ ॥

चौपाई—महानुभाव जुजगतमफारी । अभिवंदन है तिनैहमारी ॥

॥ यहममकाजहोयनिर्विघ्नो । जोसबजनकेहितकरवरो ॥ १६ ॥

दो०—विदांतसिद्धान्तमुक्तावलिदुर्गमार्थविशाल ।

तहभाषाकरनेविषेमममतिअल्पविहाल ॥ १७ ॥

तथापिश्रीगुरुवदनतेजहविधश्रवणसुकीन ।

तामे जोस्मरन रहियोवरनों तिसे अदीन ॥ १८ ॥

सोरठा—श्रीगुरु चरन मनाय वाकवादिनी ध्यायकै ।

भाषा करों बनाय पेख मुदित ह्वैधीरजन ॥ १९ ॥

❀ अथमूलटीकाकारकृतमंगल ❀

सर्वजगत् के ईश्वर जो श्रीमहादेव तिनको मैं प्रणामकरता हूँ । तथासर्वजगत्कीउत्पत्ति औ स्थिति तथा संहारके करनेवाले जो श्रीगणेशजी हैं । तिनकोमैं प्रणाम करता हूँ । तथावाक् अभिमानी देवता जो श्रीसरस्वती जी हैं तिनकोमैं प्रणामकरताहूँ । तथा अल्पअक्षरोंवालेपदोंकर घटितऔविस्तृततथासारभूतार्थ के कर्ता जो श्रीवेदव्यासजीहैं । तिनको मैं प्रणाम करता हूँ । तथासूत्रअनुसारीपदोंसेसूत्रकेार्थ जिसमेकथनकीएजाएं औ अपनेकठिनपदों की व्याख्याहोजिसमे इसलक्षणयुक्तभाष्यके कर्ता औतीनोंलोकोंमे प्रकटताहैजिनकी ऐसेश्रेष्ठआचार्यजो श्रीशंकरजीहैंतिनकोमैं प्रणाम करताहूँ ॥ १ ॥

तथा आनंददेवतमेजिसके सो आनंदअंतकहीएहै । तिससे अभिन्नजो प्रकाशानुभवपद अर्थात् प्रकाशकेअनुभवकाजनक जो प्रकाशपद वहहैपदकहियेनामजिनका सो आनंदान्त प्रकाशानुभव पदपदकहेजातेहैं ॥ ऐसेजो सद्गुरुश्रीप्रकाशानंदसरस्वतीतिनको मैं प्रणामकरताहूँ । औविद्याकेनिधि जोश्रीनृसिंहाश्रम तथाशमदमादि

साधनोंमें प्रीतिवाले तथा संन्यासीयों के स्वामीश्रीराघवेन्द्रसरस्वती इनदोनों विद्यायुक्तोंमें प्रणाम करताहूं ॥ २ ॥

संन्यासियोंकरके वंदनाकरनेयोग्य तथाजिनके शिष्यपरशिष्यों केसमूहसे भारतवर्षके सर्वदेशप्रतिहो रहेहैं तिन ईश्वरस्वरूप श्री प्रकाशानन्द स्वसद्गुरुको पुनः मैं प्रणामकरताहूं ॥ ३ ॥

✽ अथफलसहितटीकाकेआरम्भकीप्रतिज्ञा ✽

वेदान्त सिद्धान्तरूपी गौक्तिकोंकी जोश्रेणीतिसके प्रकाशार्थ तथाप्रतिपक्षरूपीसमूहग्रन्थकारके नाशकरनेवाली प्रदीपिकानाम्री टीकाको रचनाकरताहूं ॥ ४ ॥

✽ अथमूलग्रन्थव्याख्याप्रारम्भः ✽

प्रथमतिसग्रन्थके आदिमें शिष्टपुरुषोंके आचारसे प्राप्तत्वानुसंधानरूपमंगलकोसूचनकरतेहुए औरवेदान्तोंका विषयतथाप्रयोजन साक्षात् प्रतिपादनकरके कर्तव्यार्थकी प्रतिज्ञाकरतेहैं क्योंकि प्रतिज्ञा से अनन्तरहीनिरूपण करनेयोग्य अर्थनिरूपण कियाजाताहै ॥

अदृष्टद्वयमानंदमात्मानंज्योतिरव्ययम् ।

विनिश्चित्यश्रुतेः साक्ष्यवृत्तिस्तत्राभिधीयते ॥ १ ॥

दो०—अद्वय दृष्टि आनंद चित अव्यय आत्म जान ।

साक्षात् वेदसे ताहमे युक्ती करो वखान ॥ १ ॥

जाके चितन करते होवत बुद्धि विशाल ।

तति ज्ञान सुदृढ भयो नाश करे अमजाल ॥ २ ॥

टीका—यहां मूलकारिकामें 'अदृष्टद्वय' और 'आनंद' तथा 'ज्योति' और 'अव्यय' यहचारआत्माके विशेषणहैं औरआत्मवस्तुविशेष्यपदार्थ

हे । तिनकथनकिये चारविशेषणयुक्त आत्माको साक्षात् उपनिषत् प्रमाणसे जानकर चारविशेषणयुक्त तिसआत्मामें श्रुतिअनुसारीतर्क निरूपण करतेहैं ॥ अर्थयह किद्वेतदर्शनसेरहित तथा परमपुरुषार्थ तथास्वप्रकाश तथाविनाशसे रहित आत्माको सोमैंहूं इसप्रकारसाक्षात्महावाक्योंसे जानकर तिसकेज्ञानकीप्रतिष्ठाकेलिये श्रुतिअनुसारीतर्क निरूपणकरतेहैं । क्योंकि श्रुतिसेविरुद्धतर्क आत्मज्ञानमें उपयोगीनहीं यहवार्ताश्रुतिमें प्रसिद्धहै ॥

नैपातर्कणमतिरामेया ॥ क० ३० अ० १। ३०२ प० ६

अ०—यहआत्मविद्या शुष्कतर्कसे प्राप्तहोनेयोग्यनहीं । याते श्रुतिअनुसारीतर्कही यहांग्रहणकरनेयोग्यहै । तिसके चिंतनकरनेसे बुद्धितीक्ष्णअर्थात्सूक्ष्मअर्थके ग्रहणकरनेयोग्यहोतीहै । औरबुद्धिकी सूक्ष्मतासे आत्मज्ञान अतिदृढ़ताकोप्राप्तहोताहै । भावयहहैकिभेदवादीपुरुषोंकी तर्कोंसेसंशयरूप कलंकसहित नहींहोता । औरदृढ़ अपरोक्षज्ञानसे अविद्यातत्कार्यरूपभ्रमजालकी अत्यन्तनिश्चितीपूर्वक ब्रह्मभावकीप्राप्तिरूप मोक्षहोताहै ॥ इति ॥

*** आत्माकेचारविशेषणोंकाफलनिरूपण ***

देहादिकोंसे आत्माकेभेदकी सिद्धिकेलिये (अव्ययं) यह विशेषणकथनकियाहै । औरआत्मामेंयदि कोईप्रमाणकहो तोप्रमाण काविषय होनेसे घटादिकोंके समान अनात्मपनाहोगा । औरयदि आत्मामेंकोई प्रमाणनहींकहोगेतो वंध्यापुत्रकेसमान असत्यपनाहोगा । ऐसीप्रतिवादीकीशंका दूरकरनेकेलिये (ज्योतिः) यहविशेषणकथन

किया है। और आत्मा ही परम पुरुषार्थ रूप है इस अर्थ के कथन करने के लिये (आनन्द) यह विशेषण कथन किया है। और सजातीय विजातीय स्वगत भेद के दूर करने के लिये तथा प्रपञ्च को मिथ्यात्व प्रतिपादन करने के लिये (अदृष्टद्वय) यह विशेषण कथन किया है। और यद्यपि "श्रुतेः विनिश्चित्य" इतने कथन से ही आत्मामें श्रुतिप्रमाण की सिद्धि हो सकती थी पुनः साक्षात्पद कथन करना निष्फल है। तथापि महावाक्य रूप श्रुति ही अपरोक्ष ज्ञान का साधन है। इस अर्थ के प्रकट करने के लिये (साक्षात्) यह पद कथन किया है ॥ इति ॥

शंका पूर्वक ग्रन्थ के व्याख्यान की योग्यता का निरूपण

शंका—यह ग्रन्थ व्याख्यान के योग्य नहीं। क्योंकि विप्रलिप्तादिक दोषों से रहित अथवा वेदप्रमाण के अंगीकार करने वाला जो शिष्ट पुरुष तिसकराचित नहीं है। जो शिष्ट पुरुष होता है वह ग्रन्थ के आदिमें मंगल का अनुष्ठान अवश्य करता है। इस ग्रन्थ के कर्ताने मंगल अनुष्ठान नहीं किया या तो अशिष्ट है। और नमः आदिक पद के अभाव से मंगल का अभाव स्पष्ट ही है। और ते से ही ग्रन्थ के आरम्भमें चार अनुबंध अवश्य निरूपण करने योग्य होते हैं क्योंकि अनुबंधों के जाने बिना श्रोताजनों की ग्रन्थ के पठन पाठनमें प्रवृत्ति नहीं होती। यह सम्प्रदाय वेता पुरुषों की मर्यादा है। यद्यपि तिन अनुबंधोंमें युक्तिको विषय पना प्रतीत होता है। तथापि प्रयोजन का कथन यहां नहीं किया। जो ऐसे कहो कि महावाक्य जन्य अपरोक्ष ज्ञान ही युक्तिका प्रयोजन है। सो कथन भी नहीं संभवता। क्योंकि यहां "क्त्वा" प्रत्यय का कथन होने से तिस ज्ञान की प्रथम ही सिद्धि है। जैसे (स्नात्वा गच्छति) अ०—स्नान करके गमन करता है यहां परस्नान प्रथम

हीसिद्धहै। तैसे (श्रुतेः विनिश्चित्य) अ०—श्रुतिसे निश्चयकरके तिसमें युक्ति कहते हैं। यहां पर भी ज्ञान प्रथम ही सिद्ध है। याते तिसको युक्तिका प्रयोजन नहीं कह सकते। और जो ऐसे कहो कि यहां “आनन्द” पद प्रयोजन कथन करने के लिये है सो कथन भी नहीं संभवता। क्योंकि तिसको महावाक्यजन्य ज्ञानका प्रयोजन होनेसे युक्तिका प्रयोजन तिसको नहीं कह सकते। तैसे विषय और प्रयोजनके अभावसे अधिकारी और संबन्ध भी यहां निरूपण नहीं किये। याते अनुबंध चतुष्टयके अभावसे भी यह ग्रन्थ व्याख्यान करने के योग्य नहीं ॥

समाधान—हे वादिन् प्रथम जो मंगल केन अनुष्ठान करनेसे दोष कहा। सो नहीं संभवता क्योंकि अनारोपित ब्रह्मतत्त्वका अनेक प्रकार से चिंतन रूप मंगल यहां किया है। और ब्रह्मके बोधक अनेक पदों का यहां प्रयोग होनेसे चिंतनको अनेक पना है। और जो पूर्व कहा कि यहां प्रयोजन नहीं कहा सो भी संभवे नहीं। क्योंकि आनंद पद ही तिस प्रयोजन का बोधक है। और महावाक्यजन्य अपरोक्ष ज्ञानका फल आनंद है युक्ति का फल नहीं। यह कथन भी नहीं संभवता। क्योंकि प्रधानके फल करके ही अंग फल वाले होते हैं। जैसे दर्शादिक अंगीयागके फल करके ही प्रयाजादिक अंग फल वाले होते हैं। तैसे महावाक्यजन्य अपरोक्ष बोध रूप अंगीका फल आनंद है और तिस ज्ञानमें अंग युक्ति है। याते जो ज्ञान का फल है वही युक्तिका फल है। ज्ञानमें युक्तिको अंग पना भट्टपादों ने भी कथन किया है ॥

धर्मे प्रमीयमाणो हि वेदेन करणात्मना ।

इति कर्तव्यता भागं मीमांसा पूर्यिष्यति ॥ १ ॥

अ०—प्रमाणरूपवेदसेहीधर्मकानिश्चयसंपादन करनेमे कथं भावग्रहणांशरूपइतिकर्तव्यता भागको युक्तिपूर्णकरेगी ॥ १ ॥ जैसे यहांधर्मज्ञानमेयुक्तिकोअंगरूपताहै। तैसेहीब्रह्मज्ञानमेंयुक्तिकोअंगरूपताहै यद्यपिज्ञानकोपूर्वहीसिद्धहोनेसेतिसकेप्रतियुक्तिकोअंगरूपतानहीं संभवती। तथापि ज्ञानकोपूर्वसिद्ध मानेहूएभीतिसकीदृढताका हेतु पनायुक्तिकोसंभवताहै। यहवार्ताभाष्यकारोंनेभीकथनकी है ॥

ब्रह्मात्मैक्यविद्याप्रतिपत्तयेसर्ववेदान्ताभ्यस्तइति॥

शा० भा० अ० १ पा० १.

अ०—ब्रह्मात्माके अभेदज्ञानकीदृढताकेअर्थसर्ववेदांत आरंभ अर्थात्विचारकियेजातेहैं। औरयदिवादीऐसेकहेकियुक्तिकोआत्मज्ञान कीदृढताकाहेतुमानेहूए आत्मज्ञानकीदृढताही तिसकाफलहै आनंद तिसकाफलनहीं यहकथनभीनहींसंभवता। क्योंकिसाक्षात्तथापरंपरा करकेदोनोफलपुक्तिकेमाननेमेकोईविरोधनहीं। तहां साक्षात्फलतो आत्मज्ञानकीदृढताहै। औरपरंपरा फल आनंदहै जैसेग्रंथकासाक्षात्विषय युक्तिहैऔरपरंपराविषय जीवब्रह्मकाअभेदहै। तैसेप्रयोजनभीदोप्रकारका जानना। इसप्रकारदोप्रकारकाविषयऔरप्रयोजनहोनेसेही“वेदांतोंका विषयऔरप्रयोजनसाक्षात्प्रतिपादनकरकेकर्तव्यकीप्रतिज्ञा करतेहैं”ऐसा पूर्व कथनकियाहै ॥ इति ॥

अथवा—युक्तिकाकथनआचार्य को अपनेअर्थतोनहींसंभवता क्योंकिवहआपतोदृढज्ञानवालाहै। किंतुजिज्ञासूकेअर्थयुक्तिकाकथन है। तिसकोज्ञानकीउत्पत्तिके लिये युक्ति कीअपेक्षाहैयातेयुक्तिको अभिधेयताहै। इसप्रकारजिज्ञासूको आत्मसाक्षात्कारकेअर्थयुक्तिकी

अपेक्षाहोनेसे वह ज्ञान का ग्रंथ कैसे नहीं हो सकती किंतु हो सकती है। और मूलकारिकामें (अदृष्टद्वयमात्मानं) इन दोनों पदों की समानाधिकरणता से ब्रह्मात्मा का अभेद रूप विषय साक्षात् कथन किया है। सोयह ग्रंथ का परंपरा विषय है। और (आनंदं) इस पद से प्रयोजन साक्षात् कथन किया है। सोयह ग्रंथ का परंपरा प्रयोजन है। और इस ग्रंथ में युक्ति प्रतीति पादन करने योग्य है या ते कथन का विषय युक्ति इस ग्रंथ का साक्षात् विषय है यद्यपि साक्षात् प्रयोजन इस ग्रंथ का आदिमें नहीं कथन किया। तथापि ग्रंथ के अंत में कथन की जो बुद्धि की अतिशय तारूप विशालता सो यहां ग्रंथ आदि में भी जानने योग्य है। और साक्षात् तथा परंपरा भेद से जो दो प्रकार का प्रयोजन तिसकी कामना वाला पुरुष ही अधिकारी जानना। और विषयादिकों के साथ ग्रंथादिकों का प्रतिपाद्य प्रतिपादकतादिरूप संबंध भी भली प्रकार संभवता है। या ते अनुबंध चतुष्टके संभव से भी यह ग्रंथ अवश्य व्याख्यान करने योग्य है ॥ इति ॥

❀ आत्मपदार्थ की विशेष्यता का निरूपण ❀

शंका ॥ जिस वस्तु के बोधक शब्द का प्रथम उच्चारण करें सो वस्तु उद्देश्य कहा जाता है ॥ इस न्याय से अदृष्टद्वय पदार्थ की प्रधानता प्रतीत होती है ॥ क्योंकि तिसके बोधक शब्द का प्रथम उच्चारण होने से तिसको उद्देश्यता है ॥ और जो उद्देश्य होता है वही प्रधान होता है ॥ इसी तिसे अदृष्टद्वय को प्रधानता होने से विशेष्यता है आत्मा में विशेष्यता नहीं ॥ समाधान ॥ हेवादिन्, “प्रसिद्ध पदार्थ का उद्देश्य करके अप्रसिद्ध पदार्थ विधान किया जाता है” इस न्याय से आत्मा को विशेष्य पना है क्योंकि, यह मस्मि, इस प्रकार के अनुभव से आत्मा सर्व को प्रसिद्ध है तिसका उद्देश्य

॥ करके अग्रसिद्ध 'अदृष्टद्वयादि' पदार्थविधानकियेहैं ॥ औरजोउद्देश्य होताहैवहीप्रधानहोताहै । इसप्रकारप्रधानता होनेसेआत्माकोविशेष्य पनासंभवताहै औरइतरपदार्थ गौणहोनेसेतिसकेविशेषणहैं॥औरश्लोकों मेंयो जनावाक्यसे अन्वयबोधहूआकरताहै इमलियेयहां " आत्मानं अदृष्टद्वयमित्यादि" योजनाकरनेसे पूर्वउक्तन्यायका विरोधभी नहीं प्राप्तहोता ॥ इति ॥

✽ श्रुतिपदकेअर्थकानिरूपण ✽

यहां मूलकारिकामें कथनकियाजो श्रुतिपदतिससे उपनिषदग्रहणकरने योग्यहै ॥ क्योंकि—

तत्त्वौपनिषदंपुरुषंपृच्छामि । उ० उ० अ० १ ब्रा० ६ क० २६

अ०॥ उपनिषदोंकरकेजाननेयोग्यआत्माकास्वरूप मैं तुम्हको पूछताहूं ॥ इसश्रुतिमें "औपनिषदत्वं"अर्थात् उपनिषदोंकरकेजानने योग्य यह आत्माका विशेषणकथनकियाहै । यातेश्रुतिपदसेउपनिषद् का ग्रहणहै ॥ अथवा ॥

सर्वेवेदायत्पदमामनन्ति ॥ क० उ० अ० १ ब० ११० १५॥

अ० ॥ सर्ववेद जिसपरमपदको तातपर्यवृत्तिसेबोधनकरतेहैं ॥ इस श्रुतिकोआश्रयणकरनेसे श्रुतिपदवेदमात्रका बोधकहै ॥ इति ॥ शंका ॥ मूलकारिकामें "तत्र"इसपदसेआत्माकापरामर्शनहींसंभवता क्योंकि अनेक पदोंका व्यवधान है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् सर्व नामशब्दोंको बाधकके अभावहुए प्रधानपरामर्शित्वका ही नियमहै याते"तत्र"इसपदसेचारविशेषणयुक्त आत्माकाहीपरामर्शसंभवताहै । क्योंकि आत्मपदार्थप्रधानहै ॥ और इतरपदार्थनका "तत्र" पदसे

परामर्शनहींसंभवता॥क्योंकिवहआत्माकेविशेषणहोनेसेगौणहैं॥इति॥

✽ अवपूर्वपक्षीकीरीतिसेआत्मामेंश्रुतिप्रमाणाकी
निर्पेक्षताऔरदेहादिकोंकीआत्मरूपताकानिरूपण ✽

शंका ॥ मूलकारिकामें श्रुतिपदइतरप्रत्यक्षादिक प्रमाणोंके
बोधन करनेकेलियेहै ॥ अथवातिनकी निवृत्तिकेलियेहै ॥ प्रथमपक्ष
में श्रुतिकोव्यर्थनाहोगी ॥ क्योंकि श्रुतिसेभिन्नप्रत्यक्षादिकोंकरके
हीआत्माकासाक्षात्कार होजायेगा ॥ पुनः श्रुतिकीकृद्ध्यपेक्षानहीं
औरशक्यार्थकी अनुपपत्तिसेविनाहीलक्षणाकीप्राप्तिरूपदोषभीहोगा॥
औरयदिइनदोनों दोषोंके दूरकरनेकेलिये श्रुतिपद “अवहन्यात्”इस
पदके समान अपने विधानकेलिये और दूसरेप्रमाणोंके निषेधकेलिये
है अर्थ यहजेसेयागमे उपयोगी ग्रीहोंके लुपोंकी निवृत्ति दोउपायनसे
होतीहै ॥ एकनखविदलनसे या दूसरामूलयवहननसे ॥ तहां ॥
“अवहन्यात्”यहपदनखविदलनकीनिवृत्तिकरके अपनाविधायकहै ॥
तेसेश्रुतिपद अन्यप्रमाणोंका निषेधकरके अपनाविधायकहै ॥ यह
दूसरापक्षयादिस्वीकारकरो तोयहभी नहींसंभवता । क्योंकि आत्म
साक्षात्कारमेंश्रुतिकी किंचित्भीअपेक्षानहीं । यद्यपिबुधापिपासादि
पट्टर्मायोंसेरहितआत्माका प्रत्यक्षादिकप्रमाणविषयनहींकरसकते ॥
तिममेंश्रुतिकीअपेक्षा केमेनहींसंभवती । तथापिदेहादिकोंमें भिन्न
औरफोर्डआत्मानहीं । किंतुदेहादिकहीआत्माहैं ॥ यहांयहतात्पर्यहै ।
ज्ञानकाआश्रयआत्माहोनाहै यहवार्ताविवादरहितहै ॥ औरज्ञानप्रथम
देहकाधर्मप्रतीतहोताहै क्योंकि “भेमानुप्यहं” इसप्रतीतिकेवलमेअहं

शब्दके अर्थ चेतनका मनुष्यत्व जातिवाले देह के साथ धर्म धर्मी भाव प्रतीत होता है ॥ और चेतन ही ज्ञान है या ते स्थूल देह को ज्ञान का अधिकरण होने से आत्मपना प्रसिद्ध है । इसी रीति से इन्द्रियादिकों को भी आत्मपना ऊहा करने योग्य है ॥ तथाहि ॥

काणोऽहम् “वधिरोऽहम्” इत्यादिक प्रतीतियों से काणत्वादि धर्मविशिष्ट इन्द्रियन के साथ अहंशब्द के अर्थ चेतन का धर्म धर्मी भाव प्रतीत होता है । और चेतन ही ज्ञान है और ज्ञान का अधिकरण आत्मा होता है यह पूर्व कथन किया है । या ते ज्ञान का अधिकरण इन्द्रियादिक भी आत्मा हैं । यहां (इन्द्रियादिक) इस आदिपद से प्राण और मन तथा बुद्धि आदिकों का ग्रहण करना । इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण से देहादिकों में आत्म रूपता सिद्ध है । तैसे ही इच्छादि परिशेषाऽनुमान से भी तिनमें आत्म रूपता सिद्ध है तिस अनुमान का यह आकार है—

* इच्छादयः देहाद्याश्रिताः अन्यानाश्रितत्वे सति गुणात्वात् व्यतिरेकेण घटादिवत् *

अ० इच्छादिक जो हैं वह देहादिकों के आश्रित हैं । अन्य के अनाश्रित हुए गुण होने से । जो जो देहादिकों के आश्रित नहीं हैं सो सो अन्य के अनाश्रित हुआ गुण भी नहीं है । जैसे घटादिक हैं ॥ इति ॥ इस प्रकार इच्छादिकों की अधिकरणात्ता देहादिकों में सिद्ध हुए पुनः इच्छादि मत्त्वलिङ्ग से तिनमें आत्मता सिद्ध करनी तिस अनुमान का यह आकार है ।

* देहोन्द्रियादयः आत्मा भवितुमर्हन्ति इच्छादि-
मत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा घटादि *

अ० देह तथा इन्द्रियादिक आत्मा होने को योग्य हैं । इच्छादि धर्मवाले होने

से। जो आत्मानहीं है। सो इच्छादि धर्मवाले भी नहीं हैं जो से घटादिक जड पदार्थ हैं। इति। और जो सिद्धांती ऐसे कहें कि देहादिकों की आत्मता हम निवारण नहीं करते। तथापि तिस देहादिरूप आत्मा को श्रुति प्रमाण की अपेक्षा क्यों न हो।

सो यह कथन भी नहीं संभवता क्योंकि अनधिगत अर्थ का बोध कही प्रमाण होता है और देहादिरूप आत्मामें प्रत्यक्षादिक प्रमाण की विषयता होने से अनधिगत पने का अभाव है। इसी कारण से श्रुति को तिसमें प्रमाण तानहीं संभवती।

यद्यपि साक्षिरूप प्रत्यक्ष से देहादिरूप आत्मा की सिद्धि माने हुये भी अनधिगत पना दूसरी हो सकती क्योंकि साक्षी करके ही विषय निष्ठ अज्ञात पना मिद्ध होता है। और चेतन रूप साक्षि से विना अन्य किसी प्रमाण से अज्ञान की सिद्धि भी नहीं संभवती। क्योंकि अज्ञान के साथ इन्द्रियादिकों के संबंध का अभाव है। याते देहादिरूप आत्मामें अज्ञातता के सिद्ध हूये तिसमें श्रुति प्रमाण की विषयता संभवती है। तथापि लौकिक प्रत्यक्षादिकों के सिद्ध देहादिरूप आत्मामें अनधिगत पने का अभाव है याते तिसमें श्रुति प्रमाण की विषयता नहीं संभवती अथवा अव्यय पद से निवृत्तिके योग्य देहादिकों की आत्मरूपता सो इस पूर्व पक्ष में कथन की है ॥ इति ॥

❀ पूर्व पक्ष के संग्रह का श्लोक ❀

देहादिरात्मानः सिद्धो लौकिकादेव मानतः ।

नापेक्षते श्रुतिं तस्मात् स्वसाक्षात्कृतये पुनः ॥ १ ॥

अ० ॥ चौ० ॥ देहादिक आत्म है जो ई॥ लौकिक मान सिद्ध भा सोई॥ याते स्वे सिद्धी के माहीं॥ श्रुति प्रमाण सुचाहे नाहीं १॥ समाधान॥

❀ अथपूर्वपक्षके निराकरणपूर्वक

अव्ययपदव्याख्या निरूपणा ❀

आत्मानित्योऽथवा नित्योभेदस्त्वाद्येस्फुटोमतः ।

अन्त्येतुकृतहानिः स्यादकृताभ्यागमस्तथा ॥ २ ॥

॥ स्वैयाच्छंद ॥ आत्मनित्यकहोतुमवादिन अथवाताहिअनि
त्यवखान ॥ आदिपक्ष महिभेदस्पष्ट यहउरनीकेलेहुपचान ॥ अंत-
पक्षमेंकृतकर्मनकोभोगे विनासुहोवतहान । तथानकीयेद्वोवहप्राप्तयही
दोषभाषेंमतिमान ॥ ३ ॥

टी० हेवादिन् आत्मानित्यहैअथवाअनित्यहै ॥ प्रथमपक्षजो
स्वीकारकरोतोदेहादिकोंसे भेदस्पष्टहीसिद्धहोताहै । औरजोदूसरापक्ष
कहोतो “कृतनाश” अर्थात्कियेहुयेकर्मनकाफलभोगसे विनाहीनाश
रूपदोषतथा “अकृताभ्यागम” अर्थात्नकियेहुयेकर्मनकीप्राप्तिरूपदोष
प्राप्तहोगा । यहांयहतात्पर्यहै । आत्माको नित्यहोनेसे देहादिकोंको
आत्मरूपतानहींसंभवती ।

यद्यपि देहात्मवादि के प्रति आत्माका नित्यत्व असिद्ध है ।
तथापि आगे कथनकीहुईयुक्तिसे सो नित्यत्वप्रसिद्धहै । तिसयुक्तिको
ही दिखलातेहैं ॥ इससंसारमंडलमें कोईसुखीहै कोईदुःखीहै कोईबर्द्धहै
कोईमुक्तहै ॥ इसप्रकार जगत्की रचना विचित्र प्रतीतहोतीहै ।
इसमें कोईविवादनहीं । सोविचित्रता कार्यहोनेसे हेतुसहितहै । यहां
यह अनुमान जानना ।

। जगद्वैचित्र्यं सहेतुकं कार्यत्वात् पटवत् ।

॥ अ०--जगत्कीविचित्रता कारणसहितहै कार्यहोनेसे जोजोकार्य

होता है सो सो कारण पूर्वक ही होता है पट की न्याई ॥ इति ॥ इस अनुमान से जगत् की विचित्रता को कारण पूर्वकता के सिद्धि हुये सो कारण भी विचित्र ही कथन करना होगा अन्यथा कार्य की विचित्रता सिद्ध नहीं होगी । यह वार्ता अन्य ग्रंथ में कथन की है ।

वैचित्र्यं न समस्येति ।

अ०--विचित्रता से रहित पदार्थ को विचित्रता की कारणतानहीं संभवती ॥ इति ॥ सो विचित्र कारण अदृष्ट ही मानना होगा । क्योंकि दृष्ट जो यागादिक हैं तिनको शीघ्र विनाशी होने से कालांतर में होने वाले सुखादिकों का वह कारण नहीं हो सकते इसी अभिप्राय से जगत् की विचित्रता के हेतु अदृष्ट कथन किये हैं । यहां यह अनुमान जानना—

इदं जगत् विचित्रकारणकं विचित्रकार्यं

त्वात् विचित्रपटवत् ।

अ०--यह जगत् विचित्र कारण वाला है विचित्र कार्य होने से जो जो विचित्र कार्य होता है सो सो विचित्र कारण पूर्वक ही होता है विचित्र पट की न्याई ॥ इति ॥ इस अनुमान से विचित्रता की सिद्धि है सो विचित्र कारण अदृष्ट ही है । इस प्रकार विचित्रता के कारण अदृष्ट की सिद्धि हुये तिसका आश्रय रूपता करके नित्य आत्मा की सिद्धि होती है ॥ इति ॥ शंका । विचित्र कार्य क्रियाजन्य होता है वह क्रिया देह जन्य है । क्योंकि देह में ही क्रिया देखी जाती है । या तो देह को ही क्रिया द्वारा सुखादिकों का जनक होने से वह देह ही आत्मा है । और वह ही विचित्रता का कारण है । तिस से भिन्न और कोई अदृष्ट विचित्रता का कारण नहीं । जिसका आधार रूपता कर नित्य आत्मा की सिद्धि हो । समाधान । दृष्ट कारण जो क्रिया

रूपतुमने कथनकिया है । तिसकोशीघ्र विनाशी होनेसे चिरकालमें होनेवाले सुखादिकों का वहसाचात् कारणतो नहीं संभवता । और यदि कोई द्वार कल्पना करोगे । तौहमको अभिमत अदृष्टवलात्कार से सिद्ध होगा ॥ शंका ॥ शरीरके सिद्ध हुये अदृष्टकी सिद्धितथा अदृष्ट के सिद्धहुए शरीरकी सिद्धि ऐसे माने हुये दोनोंको अपनी सिद्धि में परस्पर आपेक्षा होनेसे अन्योन्याश्रय दोषकी प्राप्ति है ॥ समाधान ॥ जैसे बीज और अंकुरका परस्पर कार्यकारणभाव निमित्तक अन्योन्याश्रय दोष प्रवाहरूपताकर अनादि होनेसे परिहार किया जाता है । तैसे शरीर और अदृष्टके प्रवाहको अनादि होनेसे परस्पर आपेक्षा हुये भी अन्योन्याश्रय दोषकी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ शंका ॥ अदृष्टको अनादि माने हुये भी तिसका आश्रयरूपता करके आत्मा की सिद्धि नहीं संभवती । क्योंकि अदृष्ट आकाशादिक भूतोंके आश्रित है ॥ समाधान ॥ पञ्चभूतों को सर्वशरीरोंमें सम होनेसे तिनके आश्रित अदृष्टभी सर्वको साधारण होगा । और तिसका फल सुख तथा दुःखका भोग भी सर्वको साधारण होगा । सो यह वार्ता अनुभवसे विरुद्ध है । क्योंकि सर्वको भिन्नभिन्न ही भोग देखा जाता है । याते प्रतिनियत भोगके असंभवसे अदृष्टका आश्रय पञ्चभूत नहीं हैं । और निराश्रय भी वह अदृष्ट नहीं रह सकता इसलिये अन्य प्रकारसे अनुपपन्न हुया वह अदृष्ट अपना आश्रयरूपता करके आत्मा की कल्पना करता है । इस प्रकार अदृष्टका आश्रय आत्मा सिद्ध हुया ॥ शंका ॥ पूर्व उक्त प्रकारसे आत्मा की सिद्धि हो तथापि तिसको नित्यपना कैसे सिद्ध हुया ॥ समाधान ॥ अदृष्टको पूर्वजन्म का संबंधि होनेसे प्रवाहरूपता कर तिसकी अनादिता सिद्ध है । तिस अनादि अदृष्टके प्रवाहका आधार होनेसे आत्मा भी अनादि है । याते

आत्मानित्यहै ॥ शंका ॥ अनादित्वमात्रहेतु नित्यत्वकासाधकनहीं क्योंकि प्रागभावमें अनादित्वहेतु व्यभिचारीहै ॥ समाधान ॥ जो अनादिभावहोताहै सो नियमकरके नित्यहोताहै । आत्माभीअनादि भावरूपहै यातेनित्यहै औरप्रागभावमें अनादित्वकेहुयेभी भावरूपता नहीं यातैअनादि भावत्वहेतु निर्दोषहै ॥ शंका ॥ जगत्के उपादान कारणअज्ञानको अनादिभावरूपता आपके सिद्धांतमें स्वीकारहै । यातेपूर्वउक्तहेतुका पुनःअज्ञानमे व्यभिचारहै॥समाधान ॥ अज्ञानको अनिर्वचनीयरूप होनेसे सद्रूप भावत्व तिसमें स्वीकारनहीं । इस लियेपूर्वउक्त हेतुनिर्दोषहै ॥ शंका ॥—

❀ आत्मानित्यः अनादित्वेसतिसद्रूपभावत्वात् ❀

इस अनुमानमेंयदि आकाशादिकोंको दृष्टांतमानोगेतो तिस दृष्टांतमें हेतुकी विकलता होगी ।

क्योंकिवेदान्तसिद्धांतमेंआकाशादिकोंको अनिर्वचनीयहोनेसेसद्रूप भावत्वतिनमें स्वीकारनहीं । समाधान ॥ आकाशादिकोंमेहेतुकी विकलताहमकोइष्टहै । शंका॥ अनादिसद्रूपभावत्वहेतुकोआकाशादिकसपक्षसेव्यावृत्तमानेहुये वहअसाधारणहैत्वाभासहोगा । क्योंकि जोविपक्षसपक्ष दोनोंसेव्यावृत्तहोकर पक्षमात्रमेंवृत्तिहो सोअसाधारण हैत्वाभासहोताहै । औरयहअसाधारणकालक्षणपूर्वउक्तहेतुमेप्राप्तहै । क्योंकि अनादिसद्रूपभावत्वहेतु घटादिकविपक्षतथाआकाशादिक सपक्षसेव्यावृत्तहोकर पक्षमात्रआत्मामेंवृत्तिहै यातेदुष्टहेतुहै । समाधान श्रुतिमेंआकाशादिकोंकी उत्पत्तिकथनकीहै औरउत्पत्तिवाला पदार्थ घटादिकोंकीन्याईनियम करकेअनित्यहीहोताहै । यातेनित्यत्वसाध्य

काभीआकादिकोंमें अभावहोनेसेसपत्तत्वकाअभावहै।यातेहेतुगतपूर्व उक्तदोषनहींप्राप्तहोसकता । औरयहांकेवलव्यतिरेकिलिंग स्वीकार होनेसेभीपूर्वउक्तदोषनहीं । यहांकेवलव्यतिरेकियाहआकारहै ।

***आत्मानित्यः अनादिभावत्वात्**

यन्नैवं तन्नैवयथा घटादि *

अ०॥ आत्मानित्यहैअनादिभावरूपहोनेसेजिसमेंनित्यत्वकाअभावहै तिसमेंअनादिभावत्वकाभीअभावहैजैसेघटादिकहैं॥इति॥यद्यपि केवल व्यतिरेकिलिंगमानेहुयेनित्यत्वसाध्यकीअप्रसिद्धिहोगी तथापिसामान्य तोदृष्टानुमानसे अनिशितद्वैधर्मिजिसका ऐसेनित्यत्वधर्मके सिद्धहुये केवलव्यतिरेकिअनुमान आत्मामेढीनित्यत्वको स्थापनकरताहै॥याते नित्यत्वसाध्यकी अप्रसिद्धिनहीं । यहांसामान्यतोदृष्टानुमानका यह आकार है ।

*** नित्यत्वं कचिदाश्रितं धर्मत्वात् रूपादिवत् ***

अ० ॥ नित्यत्वधर्मकिसीके आश्रितहै धर्मरूपहोनेसेजो जो धर्महोताहैसोसोकिसी धर्मिकेआश्रितहोताहै रूपादिकोंकीन्याई ।इति। अथवायहानैयायिकमतकेअनुसारआत्मामेंनित्यत्व सिद्धकरनेसेआकाशादिकसपत्तमेंनित्यत्वसाध्यऔरअनादिभावत्वहेतुइनदोनोंकीविकलता नहीं । क्योंकि वह आकाशादिकोंको नित्य तथा अनादिभावरूप मानते हैं ॥इति ॥ यहांतककारिका के पूर्वार्द्धका व्याख्यानहुया ॥ अब नित्यत्वके साधकअनुमानमें विपक्षविषयक बाधकको निरूपण करतेहुये कारिकाके उत्तरार्द्धका व्याख्यान करतेहैं । यदिआत्मा को अनित्यमानोगे तो कियेहुयेकर्मनका फलभोगसेविनानाश और न

कियेंहुएकर्मनका फलभोगजो कृतनाशतया अकृताभ्यागमरूप दोष तिसकीप्राप्ति होगी, भावयहपूर्वउक्तअनुमानसे आत्माकी नित्यता सिद्धहोनेपरभी जोवादीका अनित्यताकथनहै यहहीविपक्षहै, और पूर्वउक्तदोषकी प्राप्तिही विपक्षमेंबाधक है । औरआत्माको अनित्य मानेहुयेकर्ता और्भोक्ताकाभी एकत्वनहींहोगा । क्योंकि वादीकेमत मेंदेहरूप आत्माहीकर्मकाकर्ता है । वहतोयहांहीभस्मीभूत होगिया औरनवीन उत्पन्नहुयादेव शरीररूपआत्मा कर्मफलकाभोक्ताहोगा । ऐसेमानेहुयेलोकमें प्रसिद्धकर्ताभोक्ताकेएकत्वका नियमभंगरूपदोष वादीकोप्राप्तहोगा । क्योंकिलोकमेंजोभक्षणक्रियाकाकर्ता है वहीतिस केफलतृप्तिकोप्राप्तहोताहै । अन्यनहीं यदि ऐसानमाने तोदेवदत्तके भोजनकरनेसेयज्ञदत्ततृप्तहुयाचाहिये । सोऐसादेखनेमेंनहींआता याते कर्ताऔर् भोक्ताका एकत्वहीमानना उचितहै । जब ऐसे माना तब आत्माकीनित्यता बलात्कारसेसिद्धहुयी ॥ शंका ॥

❀ धर्मिकल्पनातोधर्मकल्पनावरमिति ❀

अ० ॥ धर्मिकीकल्पनासेधर्ममात्रकी कल्पनाकरनेमेंलाघवहै । इसन्यायसे शरीरादिक प्रसिद्धधर्मियोंमें आत्मत्व धर्मकीकल्पना क्यों नहींकरते । समाधान ॥ शरीरादिककार्यवर्गमें आत्मत्वकाअसंभव है । क्योंकि, इसकोअनित्यहोनेसेऔर् कार्यहोनेसे तथारूपवालाहोनेसे और्जडहोनेसे तथापरिच्छिन्नहोनेसे और्दृश्यहोनेसे अनात्मतानिश्चित है । इसकथनसेकारिकाके द्वितीयपादका व्याख्यानहुया ॥ शंका ॥ पूर्वउक्त युक्तिकेवलसे आत्माकीनित्यता सिद्धहुयेभी नैयायिकमतमें तिसकोमानसप्रत्यक्षका विषयहोनेसे तिसके साक्षात्कारकेअर्थ श्रुति प्रमाणकीकिंचितभी अपेक्षानहीं ॥

* आत्मामे श्रुतिप्रमाणकीअपेक्षानिरूपण

पूर्वक अव्ययपदार्थका निरूपण *

समाधान ॥ विशिष्टआत्माकोमानस प्रत्यक्षका विषयहूयेभी शोधनकियाहूयातत्त्वपदकालद्वयार्थअकर्ताअभोक्ताशुद्धआत्मामानस प्रत्यक्षका विषयनहीं होसकता याते ।

* अविनाशीवाजेअयमात्मानुद्धितिधर्मा ।

निष्कलमिति *

दृ० ड० पै० ब्रा० कं० (१४)

अ० ॥ अरेमैत्रेयीयहआत्माअविनाशीहै तथाविनाशसेरहित धर्मवालाहै और निरवयव है । इत्यादिक श्रुति सिद्धनित्यआत्माके साक्षात्कारकेअर्थअन्यप्रमाणका अभावहोनेसे श्रुतिप्रमाणकीअवश्य अपेक्षाहै । यहांपूर्वउक्तश्रुतिनेतीनप्रकारका विनाशजोआत्मामेभ्रान्ति करप्राप्तथा।तिसकानिपेधकियाहै । वहतीनप्रकारकाविनाशयहहै । एक तोस्वरूपनाशप्रयुक्तनाशहै । जैसेविद्युतकाविनाश स्वरूपसेहोताहै । औरदूसराधर्मनाश प्रयुक्तनाशहै । जैसेकुंडलरूपधर्मके अभावहोनेसे सुवर्णरूपधर्मका अभावहै । क्योंकिउत्पत्तितथा विनाशकोप्राप्त होता हुआधर्मअपनेआश्रयरूप धर्मकोभीविकारिकदेताहै । औरतीसरा अवयवोंके विनाशप्रयुक्तनाशहै । जैसे तंतूरूप अवयवके विनाश होनेसेवस्त्रकानाशहै । इसीकोशास्त्रमेअपक्षयशब्दसेकथनकियाहै । इनमे स्वरूपनाश प्रयुक्तनाशका आत्मामे निपेध करने के लिये "अविनाशी" यह पद श्रुतिने कथनकिया है । और दूसरेनाश

कें निषेधकरनेकेलिये “अनुद्धितिधर्मा” यहपदकथनकियाहै । और तीसरेविनाशकें निषेधकरनेकेलिये “निष्कलं” यहपदकथनकियाहै । इसीअभिप्रायसेप्रथमकारिकामें (अव्ययं) यहआत्माकाविशेषणकथन कियाहै । यद्यपियहांअव्ययनामविनाशकाहै नजोविनाशहोउसकानाम अव्ययहै । इसप्रकारकासमास कियेहुयेअविनाशीरूपताआत्माकी सिद्धनहींहोसकती । क्योंकिअपनेविनाशसेभिन्नजो घटादिकप्रतियोगीहैं तिनमेंअनित्यपनाहीदेखाहै । तैसेस्वनाशसेभिन्नआत्मामेंभी अनित्यपनाहोगा । तथापियहांपूर्वउक्तसमासनहीं किन्तुसमासांतर है । सोदिखलातेहैं ॥

न विद्यतेव्ययेविनाशोधर्मतः स्वरूपतोऽव्यवतो यस्यसअव्ययः ॥

अ०—जिसकाधर्मसे औरस्वरूपसे तथाअव्यवसे विनाशनहो तिसकोअव्ययकहतेहैं । “अर्थयह” आत्माकोनिरव्यवहोनेसे अव्यवनाशप्रयुक्त नाशनहींहोता । और निर्धर्मकहोनेसे धर्मनाश प्रयुक्तनाश नहींहोता ॥ औरनित्यहोनेसे स्वरूपनाशप्रयुक्त नाश नहींहोता ॥ शंका ॥ सांख्यमतमें प्रकृतिको परिणामिनित्यमानाहै तिसका स्वरूपसे जैसेनाशहोताहै तैसे आत्माकाभीनाशहोगा समाधान । परिणामिनित्यपदार्थकीन्याई आत्माकास्वरूपसे अर्थात्परिणामरूपसेनाशनहींहोता, क्योंकिआत्माकूटस्थनित्यहै, अर्थात्परिणामरूपविकासे रहितनित्यहै और परिपूर्णहै ॥ इतिअव्ययपदव्याख्या ॥

❀ अथ ज्योतिपदव्याख्याप्रारंभः ॥ ❀

॥ अतिसिद्धआत्माके साक्षात्कारकेअर्थ श्रुतिप्रमाणकीअपेक्षाहै ॥

यह अर्थ पूर्व निरूपण किया ॥ तहां आत्मा को श्रुतिसिद्ध्यत्वनिषेध करने
के लिये पूर्वपक्षी कोई एक नास्तिक भूमिका रचना करता है ॥

॥ अथ पूर्वपक्ष ॥

❀ आत्मामे प्रमाण के अभावसे,

असत्यता का निरूपण ❀

हे सिद्धांतिन् जिस आत्मा की नित्यता आप प्रतिपादन करते हो
तिसमें कोई प्रमाण है अथवा नहीं ॥ यहां प्रथम पक्ष में बहुत वक्तव्य होने से
द्वितीय पक्ष में प्रथम दूषण दिखलाते हैं ॥ तहां द्वितीय पक्ष तो नहीं संभवता।
क्योंकि प्रमाण के आधीन ही वस्तु की सत्ता है। प्रमाण के अभाव हुआ आत्मा
को असत् रूपता की प्राप्ति अवश्य होगी ॥ शं १ ॥ हेवादिन् प्रमाण के
आधीन वस्तु की सत्ता है। इस तुम्हारे नियम का प्रमाण में व्यभिचार है ॥
क्योंकि प्रमाण में प्रमाण का अभाव हुआ भी तुमने प्रमाण की सत्ता मानी है।
समाधान ॥ हे सिद्धांतिन् यह आपका कथन नहीं संभवता ॥ क्योंकि
स्वपरका साधक जो प्रमाण तिसको हम प्रकाशक स्वभाव मानते हैं ॥ याते
तिसमें प्रमाण के अभाव हुआ भी असत् रूपता नहीं हो सकती ॥ और आत्मा
तो प्रमेय एक स्वभाव है ॥ इसीसे प्रमाण के अभाव हुआ आत्मा को असत्
रूप की प्राप्ति आवश्यक है ॥ यदि ऐसे माने तो प्रमाण के अभाव हुआ नर
शृंगादिक भी सत्य हुआ चाहिये। सो नरशृंगादिकों की सत्ता हम देखते नहीं ॥
याते प्रमाण के अभावसे जैसे नरशृंगादिक असत् हैं। तैसे आत्मा भी असत्
रूप होगा ॥

❀ आत्मामे लौकिक प्रमाण का अभाव निरूपण ❀

और यदि प्रथम पक्ष माने तो तिसमें यह कहना चाहिये। वह प्रमाण

लौकिक है अथवा वेद है । प्रथम पक्ष में भी यह विचार करने योग्य है । वह लौकिक प्रमाण प्रत्यक्ष है वा अनुमान है अथवा शब्द है वा इनसे कोई भिन्न है । प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता क्योंकि शब्दादिक गुणों को आकाशादिक भूतों का धर्म होने से और सृष्टि ज्ञान तथा इच्छादिक गुणों को अंतस्करण का धर्म होने से आत्मा सर्व धर्मों से रहित है । और यदि निर्धर्मक आत्मामे भी इन्द्रिय की विषयता मानो तो नहीं संभवती । क्योंकि नेत्र इंद्रिय रूपवान् वस्तु को ही विषय करता है । रूप रहित को नहीं । अन्यथा वायु का प्रत्यक्ष भी नेत्र इंद्रिय से दृष्टा चाहिये । ऐसे ही श्रोत्रत्वक् रसना प्राणायह चारों इंद्रिय भी शब्द और स्पर्श चान्त धारस और गंध भात्र को विषय करते हैं । शब्दादिकों से विलक्षण आत्मा को नहीं विषय कर सकते । और इंद्रियों को बाह्य वस्तु के देखने का स्वभाव है । आत्मा तुमने सर्व से अंतर माना है । याते भी इंद्रियों की आत्मामें प्रवृत्ति नहीं हो सकती । और अनुमान प्रमाण का भी आत्मा विषय नहीं । क्योंकि आत्मव्याप्त हेतु का अनिश्चय है । भाव यह आत्मा का निश्चयक जो हेतु है सो आत्मा करके व्याप्त ही ग्रहण करने योग्य है । तिस आत्मव्याप्त लिंग के ग्राहक इंद्रिय हैं यह कथन तो नहीं संभवता । क्योंकि रूपादि चान्त धा बाह्य वस्तु को ही इंद्रिय विषय करते हैं । यह पूर्व कथन किया है । और अनुमान से भी तिस आत्मव्याप्त लिंग का ग्रहण नहीं हो सकता । क्योंकि अनवस्था दोष की प्राप्ति है । भाव यह आत्मा को अतीन्द्रिय होने से आत्मविशिष्ट हेतु भी अतीन्द्रिय कहना होगा । तिस हेतु के ज्ञान अर्थ और अनुमान की अपेक्षा होगी । तथा दूसरे अनुमान को भी लिंग ज्ञान जन्य होने से लिंग के ज्ञान अर्थ तीसरे अनुमान की अपेक्षा होगी । और तीसरे अनुमान को चौथे की अपेक्षा होने से अनवस्था की प्राप्ति अवश्य होगी ॥ शंका ॥

हेवादिन् जहां अन्वयिलिंगसे साध्यकी सिद्धि होवहां साध्यव्याप्तहेतुका निश्चय अनुमानका अंग है । और जहां केवल व्यतिरेकिलिंगसे साध्यकी सिद्धि होवहां व्यतिरेकव्याप्तिका निश्चय अनुमानका अंग है । इस कथनसे यह अर्थ सिद्ध हुआ । प्राणादिमत्त्व रूप व्यतिरेकिलिंगसे आत्माकी सिद्धि होती है । तिस अनुमान का यह आकार है ।

❀ जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्वात्
यन्नैवं तन्नैवं यथा घटादि ❀

अ०—जीवत्शरीर आत्मा सहित है । प्राणादिवाला होनेसे जो जो आत्मा सहित नहीं है । सो सो प्राणादि वाला भी नहीं है । जैसे घटादिक हैं ॥ इति ॥ समाधान ॥ हे सिद्धांतिन् प्रतियोगी ज्ञान विना अभाव का ज्ञान नहीं होता यह नियम है । जैसे अग्निरूप प्रतियोगी के ज्ञान विना अग्निके अभावको कोई नहीं जान सकता । तैसे ही आत्मारूप प्रतियोगी के ज्ञान विना आत्माके अभावरूप साध्याभावकी प्राणादिमत्त्वाभावरूप साधनाभावके साथ व्याप्तिका ग्रहण कैसे होगा । और इसी अनुमानसे आत्मा का ज्ञान माने हुए कैसे अन्योऽन्याश्रय दोष नहीं प्राप्त होगा क्योंकि आत्माकी सिद्धि हुए इस अनुमानकी प्रवृत्ति औ अनुमानके प्रवृत्त हुए आत्माकी सिद्धि माननी होगी ॥ ऐसे दोनोंको अपनी सिद्धि में परस्पर आपेक्षा होनेसे अन्योऽन्याश्रय दोष स्पष्ट ही है ॥ और इसकेवल व्यतिरेक अनुमानमें अप्रसिद्ध विशेषण वाला पक्ष भी है ॥ क्योंकि ॥

सर्वकार्यं सर्ववित्तकर्तृपूर्वकं कदाचित्क-
त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा आकाशादि ।

अ०—सर्वकार्य सर्ववित्तकर्तृपूर्वक है अर्थात् किसी सर्वज्ञकर्ताकर

रचितहैं । कदाचित्कहोनेसे जोजोसर्ववित्कर्तृपूर्वकनहींहैं सोसोकदा-
चित्कभीनहींहैं । जैसेआकाशादिकहैं ॥ इति ॥ जैसेइसअनुमानसे
पूर्वसर्ववित्वादिविशेषणकीअप्रसिद्धिहोनेसे अप्रसिद्धप्रविशेषणवाला
पक्षहै । तैसेहीसिद्धांतीनेआत्माकीसिद्धिअर्थकथनकियाजो अनुमान
तिसकीपूवृत्तिसेप्रथमजीवतशरीररूपपक्षमें सात्मकत्वरूपसाध्यकीअप्र-
सिद्धिहोनेसे अप्रसिद्धविशेषणवालापक्ष प्रसिद्धहीहै । यातेप्राणादि
मत्वहेतु आथयसिद्धिरूपदोषकर दुष्टहोनेसेभी आत्माकासाधकनहीं ।
इसप्रकारआत्माअनुमानकाविषयनहीं। अवतीसरेपक्षकोदूषितकरतेहैं ।
औरलौकिकशब्दभी आत्माकोविषयनहींकरसकताहैं । क्योंकिप्रत्यक्ष
औरअनुमानकीजहांविषयताहोवहांहीलौकिकशब्दपूवृत्तहोताहै। और
आत्मामेंपूर्वउत्तरीतिसे प्रत्यक्षादिकोंकी विषयताकाअभावहै । याते
लौकिकशब्दभीतिसमें प्रमाणनहीं । औरइनतीनोंसेभिन्नअन्यकिसी
प्रमाणकीसंभावनाभीनहींहोसकती । क्योंकिअर्थापत्तिप्रमाणतो अन्य
प्रकासे उपपन्नहै । सोऐसेहैं । शरीरकाजीवनप्राणोंसेबिना अनुप-
पन्नहुया प्राणआत्माकी कल्पनाकरताहै ॥ इति ॥ औरअनुपलब्धि
प्रमाणकी आत्मामेंयोग्यताहीनहीं ।

❀ अथआत्मामेंवेदप्रमाण की विषयता का निषेध निरूपण ❀

अवथादिमें कथन कियाजो दूसरापक्षथा तिसको वादीनिषेध
करताहै । दूसरेपक्षमेंभी यहविचारकरने योग्यहै। वेदजन्यज्ञानभास्यत्व
रूपविषयत्वआत्मामेंहै ॥ अथवा ॥ प्रकारांतरसेभासमान आत्मामें
वेदजन्य ज्ञानसे निवृत्तहोनेयोग्य अज्ञानकी विषयतारूप विषयत्व है

यहाँवेदजन्यज्ञानसेनिवृत्तिके योग्यअज्ञानकरजोआच्छादितपनाहैयही
आत्मामेंअज्ञानकीविषयताजाननी॥ वेदजन्यज्ञानभास्यत्वरूपविषयत्व
हैइसप्रथमपक्षकोदूषितकरतेहैं । प्रथमपक्षमेंआत्माकोवेदजन्यज्ञानका
विषयहोनेसेघटादिकोकीन्याईजडताहोगी । औरजडताहोनेसेअनात्म
पनाहोगा । यहांयहअनुमानजानना ॥

आत्माअनात्माभवितुमर्हतिजडत्वात्घटादिवत्

अ० ॥ आत्माअनात्माहोनेकेयोग्यहै । जडहोनेसे । जोजो
जडहोताहैसोसोअनात्माहोताहै । जैसेघटादिकहैं ॥ इति ॥ शंका॥
हेवादिस्यहांचिद्काविरोधिजडत्वकहतेहोअथवाचिद्काअनधिकरणत्व
जडत्वहै । यहदोनोंप्रकारकाजडत्वआत्मामेंनहींसंभवता । क्योंकि
आत्माचिद्रूपहै । तिसमेंज्ञानकीविषयतासेजडपनातुमकैसेआपादन
करतेहो । औरजडत्वहेतुअनात्मताकासाधकभीनहीं । क्योंकितिसमें
ज्ञानाज्ञाश्रयत्वउपाधिहै । सोएसेहै । जहांजहांअनात्मत्वहैतहांतहां
ज्ञानाज्ञाश्रयत्वहै । जैसेघटादिकोंमेंहै । औरजहांजहांजडत्वहैतहां
तहांज्ञानाज्ञाश्रयत्वनहीं । जैसेआत्मामेंहै । इसप्रकारअनात्मत्वसाध्य
केसाधन्यापकऔरजडत्वहेतुकेसाधन्यापकहोनेसे ज्ञानाज्ञाश्रयत्व
कोउपाधिरूपताकासंभवहै । यातेजडत्वहेतुसोपाधिकनामाहेत्वाभासे
है । स्वसाध्यकासाधकनहीं । समाधान । हेसिद्धांतिन्आत्मामेंज्ञान
भास्यत्वमानेहूएचेतनरूपताकीअसिद्धिहै ॥ क्योंकि भास्यरूपअर्थात्
दृश्यभीहोपुनः वहचेतनहोऐसेकहींभी प्रसिद्ध नहींहै । औरज्ञानमें
वेद्यत्वभीस्वीकारनहींउलटातिसकोअवेद्यस्वभावमानाहै। औरज्ञानाज्ञा
श्रयत्वमेउपाधिरूपताभीनहींसंभवती । क्योंकिनैयायिकमतमेवदपक्ष

इतरत्व है । यदि पक्षेतरत्वको भी उपाधिरूपमान लें तो सर्वही सतहेतु दुष्ट हो जायेंगे । क्योंकि सर्वही सतहेतु पक्षेतरत्वरूप उपाधिकर युक्त ही हैं । या तो पक्षेतरत्वको उपाधिरूप तान हीं संभवती । किंवा यह उपाधिसाधन के साथ भी व्यापक है । क्योंकि जहां जहां जडत्व है तहां तहां ज्ञानाज्जाश्रयत्व भी है । जैसे शरीर बाह्य देशावच्छिन्न आत्मा में है । इसरीति से ज्ञानाज्जाश्रयत्वको उपाधि पने के नवनने से जडत्व हेतु निर्दोष हूया अनात्मत्वका साधक है ॥ इति ॥ और द्वितीय पक्ष में भी यह विचार कर्तव्य है । वह प्रकारांतर से आत्मामे भासमानत्व क्या है । स्वयं भासमानता है अथवा अन्य किसी प्रमाण से भासमानता है । अंत्य पक्ष में तो दोष पूर्व कथन कर आये हैं या तो पुनः कथन की आवश्यकता नहीं । और स्वयं प्रकाशरूपता से भासमान आत्मा या ज्ञान कर आच्छादित है यह प्रथम पक्ष शेष रहता है वह भी नहीं संभवता । क्योंकि स्वयं प्रकाश स्वरूप आत्मामे अज्ञान की विषयता का ही असंभव है । अर्थ यह । अज्ञान का विषय आत्मा को माने हूये अभासमानता होगी । तो स्वयं भासमान आत्मामे निरूपण नहीं हो सकती ॥ शंका ॥ हेवादि नृजैसे स्वयं भासमान सूर्य में अभासमानता की संभावना उल्लूकादिक करते हैं । तैसे ही स्वयं भासमान आत्मामे भी अभासमानता की संभावना अज्ञानों को हो जायेगी ॥ समाधान ॥ हे सिद्धांति नृजैसे मध्याह्नकाल वर्ति स्वयं प्रकाशमान सूर्य में कोई भी अंधकार की संभावना नहीं कर सकता । और सूर्य को अंधकार करके आच्छादित होने से उल्लूकादिक तिसको नहीं देखते यह वार्ता नहीं । किन्तु सूर्य के प्रकाश से तिनकी दृष्टि मंद हो जाती है तिसदिवांधत्वरूप दोष से वह सूर्य को नहीं देख सकते । तैसे ही स्वयं प्रकाश आत्मामे अज्ञान विषयत्व के असंभव से वेद प्रमाण की विषयता नहीं संभवती ।

यातेदेहादिकोंसेभिन्नआत्माअसतहै । यहअर्थसिद्धहुआ ॥ इति ॥

* अथएकदेशिवेदांतिकीरीतिसेपूर्वपक्षका समाधाननिरूपण *

हेवादिन्आत्मामें अज्ञानविषयत्वके अभावसे वेदप्रमाणकीवि-
षयतानहीं संभवती यहपूर्वतुमनेकथनकिया। सोक्याअज्ञानकीविषयता
जीवमेंनहींसंभवती यहतुमकहतेहो । अथवा ब्रह्ममेंनहींसंभवती यह
तुमकहतेहो । तिनमेंप्रथमपक्षतोहमकोभी स्वीकारहै । क्योंकिकर्ता
औरभोक्तारूपसंसारीजीवको वेदनहींप्रतिपादनकरता । तिसकेप्रति-
पादनमेंकोईप्रयोजननहीं । औरद्वितीयपक्षतोनोंसंभवता । क्योंकि
ब्रह्ममेंअज्ञानकीविषयता “ब्रह्मनजानामि”इसअनुभवसेसिद्धहै । याते
वेदजन्यज्ञानकरके निवृत्तिकेयोग्य अज्ञानविषयत्वरूपवेदप्रमाणकीवि-
षयताकैसेनहींसंभवती । इसप्रकारकाजोएकदेशीकामतहै । तिसको
दूषितकरनेकेलिये पूर्वपक्षीतिसकोप्रकटकरताहै । पूर्वआत्मामेंप्रमाण
काअभावनिरूपणकिया। तिसप्रमाणकपनेके निषेधमेंकोईकमंडनमत
को आश्रयणकरनेवाले औरआगेकथनकीहुईरीतिसे आत्माअज्ञान
काविषयहै इसकोनसहनकरतेहुये उत्तरदेनेकोपूर्वपक्षीके सन्मुखअव-
स्थितहोतेहैं ॥ शंका ॥ पूर्वब्रह्माविषयकअज्ञान तुमनेमानाहै और
जीवविषयकनहींमाना ॥ सोकथननहींसंभता ॥ क्योंकि-

* अयमात्माब्रह्म *

अ०-यहआत्माब्रह्मस्वरूपहै। इसश्रुतिवचनसेजीवब्रह्मसेअभिन्नहै
यातेवहकैसेअज्ञानकाविषयनहीं किंतुअज्ञानकाविषयहै॥समाधान॥ हे
वादिन्श्रुति सिद्धअद्वैतकोसंकोचकरके जीवऔरब्रह्म तथाजीवोंका

परस्परभेदहमकल्पनाकरतेहैं । यातेजीवअज्ञानकाविषयनहीं ॥शंका॥
यदिवास्तवद्वैतके आश्रयणकरनेसेही जीवात्माअज्ञानका विषयनहीं
यहनिषेधवनसकताहै तोप्रमाणशून्यअद्वैतकामंकोच किसलियेकरतेहो
॥ समाधान ॥ हेवादिन् ॥

❀ यत्परःशब्दःसशब्दार्थ ❀ पृ० पौ०

अ०-जिसकोतात्पर्यवृत्तिसे शब्दबोधनकरे सोईशब्दकाअर्थ
होताहै । इसन्यायकोआश्रयणकरनेसे अद्वैतश्रुतिप्रत्यक्षादिकप्रमाणों
को अभासरूपताकरके प्रत्यक्षादिसिद्धद्वैतकोबाधकर अद्वैतकोस्थापन
करतीहै । यातेअद्वैतअप्रमाणकनहीं । इसीकारणसे अपनेमतकीसिद्धि
केअर्थअद्वैतकासंकोच अवश्यकरनेयोग्यहै । इसमेंकारणयहहै । एक
जीवऔरतिसकासंपादक एकअज्ञानस्वीकारकियेहुये साधनोंके अनु-
ष्ठाताकिसी एकपुरुषकोतत्त्वज्ञानके उत्पन्नहुयेजगत्के उपादानभूतअ-
ज्ञानकाविनाशहोनेसे इसवर्तमानकालमें किसीकोभी संसारकाअनुभव
नहींहोगा । औरतैसेहीकोईबद्धहै कोईमुक्तहै । इसप्रकारकीव्यवस्था
भी सिद्धनहींहोगी । यातेजीवब्रह्मकेभेदसे विनावृद्धमुक्तादिकव्यव-
स्थाकीअनुपपत्तिसेअद्वैतकासंकोचअवश्यकरनेयोग्यहै॥इति॥शंका॥
हेएकदेशिन् यदिआत्माविषयकअज्ञाननहींहै तोक्याअज्ञाननिर्विषयही
है । औरयदियहकहो अज्ञानकाविषयब्रह्महै॥मोनहींसंभवता॥ क्योंकि
ब्रह्मस्वयंप्रकाशस्वरूपहै । तेसेअज्ञानकाआश्रयभी कोईनहींनिरूपण
होसकता।यद्यपिजीवहीअज्ञानकाआश्रयहेतयापितिसकोअज्ञानविशि-
ष्टहोनेसे अज्ञानकीआश्रयतानहींसंभवती । क्योंकिआत्मआश्रयदोष
रहितहोताहै ॥ सोइसप्रकारहै ॥

❀ विशिष्टवृत्तिधर्मस्यविशेषणवृत्तित्वनियमात् ❀

अ०—विशिष्टमेंवर्तनेवाले धर्मकाविशेषणमे वर्तनेकानियमहै । इसन्यायसे अज्ञानविशिष्टमेंवृत्तिजोअज्ञानकीआधारता सोविशेषणी भूतअज्ञानमेंभी अवश्यवर्तेगी यातेआत्माआश्रयदोषहोनेसे जीवभीअज्ञान का आश्रयनहीं । औरब्रह्मकोभी अज्ञानकीआश्रयतानहींसंभवती । क्योंकि ब्रह्मकोतुमनेअज्ञानकाविषयमानाहै । विषयहोनेसेहीतिसको आश्रयतानहींसंभवती । औरअज्ञानकोआश्रय तथाविषयके भेदकी अपेक्षाहोनेसेभीएकहीआश्रय तथाविषयनहीं बनसकता । औरब्रह्मको अज्ञानकाआश्रयमानेहुये जीवकीन्याई अल्पज्ञहोनेसे सर्वज्ञताकीभी हानीहोगी । इसरीतिसेअज्ञानकाआश्रय तथाविषयकोईभी निरूपण नहीं होसकता ॥ इति ॥ समाधान ॥

❀ अथएकदेशीकीरीतिसेअविद्याकेआश्रय
तथाविषयकाभेदनिरूपण ❀

जीवाश्रयाब्रह्मपदाह्यविदयातत्त्वविन्मता ।

तद्विरुद्धमिदंवाक्यमात्मात्वज्ञानगोचरः ॥ ३ ॥

चौ०—जीवाश्रितऔरब्रह्मविपैनी । आहियविद्याबुधजनवैनी ॥ अज्ञान विषयआत्मपुनगायो । ततविरुद्धयहवचननभायो ॥ ४ ॥

टी०—ब्रह्मकोस्वयंप्रकाशहोनेसे तिसमेंअज्ञानकी विषयतानहीं संभवती यहपूर्ववादीनेकथनकिया सोअसंगतहै । क्योंकिअविद्याकी कल्पनाकरनेवालेजीवकेप्रति वहब्रह्मस्वयंप्रकाशरूपतासे सम्यक्भाव

नहीं होता । और जिसके ज्ञानसे मोक्ष हो तिसके अज्ञानसे ही बंध होता है यह निर्विवाद है । और ब्रह्मके ज्ञानसे मोक्ष होता है यह वार्ता —

❀ ब्रह्मवेदब्रह्मैवभवति ❀

अ०—ब्रह्मके जाननेवाला ब्रह्मस्वरूप होता है । इस श्रुतिमें प्रसिद्ध है । इसी कारणसे बंध भी ब्रह्मके अज्ञानसे ही होता है । याते किस प्रकार तुम ब्रह्ममें अज्ञानकी विषयताका अभाव प्रतिपादन करते हो । और जीव को अज्ञानका आश्रय मानने में जो आत्माश्रय दोष तुमने पूर्व कहा था । वह भी नहीं संभवता । क्योंकि अज्ञानको उपाधिरूपता से तटस्थ होकर जीवभावकानियामक होनेसे जीवकोटिसे वह ब्रह्म है । इतना मूलकारिका में जो (हि) शब्द है तिसका अर्थ जानन ॥ शंका ॥ व्याकरण में (आप्ल) धातु व्याप्ति अर्थान् पूर्ण अर्थ में है तिस धातुसे आत्म शब्दकी सिद्धि होनेकर तिसको ब्रह्मका वाचक बना ही प्रतीत होता है ॥ और ब्रह्ममें अज्ञानकी विषयता तुम मानते हो ॥ और पूर्व उक्तरीतिसे ब्रह्म और आत्मा एक ही पदार्थ है ॥ याते आत्मामें अज्ञानकी विषयताका अभाव तुम कैसे कथन करते हो ॥ समाधान ॥ हेवादिन्यद्यपि योगवृत्तिसे आत्मशब्द ब्रह्मका वाचक है ॥ तथापि ॥

❀ रूढियोगमपहरति ❀

अ० ॥ रूढिवृत्तियोगवृत्तिको हर लेती है ॥ इस न्यायसे आत्मशब्द जीवका ही वाचक है ॥ सो जीव अज्ञानका आश्रय है विषय नहीं ॥ विषय तो अज्ञानका ब्रह्म ही है ॥ इस प्रकार अज्ञानकी विषयता होनेसे ही वेदजन्य ज्ञानकरके निवृत्तिके योग्य अज्ञानविषयत्वरूप जो वेदप्रमाणकी विषयता सो ब्रह्ममें संभव है ॥ इति ॥ शंका ॥ जीव अज्ञानका आश्रय हो परन्तु तिस

को एक होने से ब्रह्ममुक्तादिक व्यवहार कैसे सिद्ध होगा ॥ समाधान ॥ हे
 वादिन् ब्रह्मज्ञानका आश्रयरूप जीवनाना हैं अन्यथा ब्रह्ममुक्तादिक
 व्यवहार नहीं बनेगा। जीवोंका भेद ब्रह्ममुक्तादिक व्यवहारका साधक है इसी
 अर्थको स्पष्ट करते हैं ॥ जिस अधिकारिको श्रवणादिकोंके अभ्यासकी
 पुष्कलतासे ब्रह्मही आत्मा में हूँ ॥ इस प्रकारका साक्षात्कार हुआ है ॥ तिस
 पुरुषका मोक्ष होता है और तिससे भिन्न ब्रह्म रहता है ॥ यहां मुख्य सामानाधि
 करण की न्याय पदोंका बाध सामानाधिकरण माने हुये भी ब्रह्मस्वरूपही
 आत्मा है तिस ब्रह्मसे इतर नहीं क्योंकि कल्पित पदार्थकी आधिष्ठानसे भिन्न
 सत्ता नहीं होती ॥ याते पूर्व उक्त बोधका आकार बन सकता है ॥ यह भाव
 है ॥ शंका ॥ यद्यपि पूर्व उक्तरीतिसे जीव अनेक हों तथापि तिनका उपाधि
 रूप ब्रह्मज्ञानको एक होनेसे ब्रह्मज्ञान करतिस एक ब्रह्मज्ञानके निवृत्त हुये पुनः
 संसारकी प्रतीतिकिसीको नहीं होगी ॥ समाधान ॥ हे वादिन् पूर्व उक्त
 ब्रह्ममुक्तादिक व्यवहारकी अनुपपत्तिसे ब्रह्मज्ञानभी अनेक कल्पना किये
 जाते हैं ॥ याते संसारकी प्रतीतिका संभव है ॥ शंका ॥ साधारणतया
 असाधारण पूर्णचका उपादान और प्रतिविम्बतुल्य अनेक जीवोंके आश्रित
 और ब्रह्मको विषय करने वाला एकही ब्रह्मज्ञान ब्रह्ममुक्तादिक व्यवहार
 का साधक क्यों न हो ॥ इसी अर्थको दिखलाते हैं जिस अधिकारि जीव
 में तत्त्वसाक्षात्कार उत्पन्न होता है । तिरा आश्रयको विरोधसे त्याग
 कर और आश्रयरूप जीवोंमें ब्रह्मज्ञान वर्तता है । जिस आश्रयको ब्रह्म
 न त्यागता है । तिसको मुक्त कहते हैं । जिनमें स्थित होता है तिन
 को ब्रह्म कहते हैं । तैसे माने हुये एक ब्रह्मज्ञानसे ही अनेक प्रकार का
 ब्रह्ममुक्तादिक व्यवहार सिद्ध हुये पुनः अनेक ब्रह्मज्ञानोंकी कल्पना

निष्फल है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् हमयहपूछते हैं । तत्त्वज्ञान अपने
 आश्रयसे अज्ञानको निकास देता है यथवा तिसको नाश कर देता है ।
 यदि प्रथम पक्ष मानो तो अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होगी । क्योंकि ज्ञानसे
 भिन्न और कोई अज्ञान का निवर्तक है नहीं और न तुमने माना है । तेसामाने
 हुये अज्ञानको नित्यत्व प्रसंग होगा । और अज्ञानको नित्य होनेसे द्वैतकी
 भी प्राप्ति होगी याते प्रथम पक्ष असंगत है । और यदि द्वितीय पक्ष कहो
 तो अज्ञानको एक माने हुये एक पुरुष के ज्ञानसे अज्ञान तत्कार्य सर्व प्रपञ्चकी
 निवृत्ति हुये प्रत्यक्षादि प्रमाण मिछ जगत् का किसीको भी अनुभवन नहीं होगा
 और यदि वादी ऐसे कहें यथ पर्यन्त किसीको ज्ञान ही नहीं हुआ सो कथन
 असंगत है । क्योंकि पूर्व काल में जो व्यास वसिष्ठादिक महात्मा पुरुष हुये हैं ॥ औ
 सम्यक् ग्रंथों तथा उपांगों सहित साधनों का अनुष्ठान जिन्होंने किया है ॥
 तिनको भी जव ज्ञान नहीं उत्पन्न हुआ तो इस काल में होनेवाले अस्मदादिक
 जीवों को ज्ञान उत्पत्तिकी संभावना भी अशक्य होनेसे श्रवणादिक साधनों
 के अभ्यास में प्रवृत्ति का अभाव हुये अनिर्मात्त प्रसंग होगा अर्थात् किसीको
 भी मोक्ष कालावन नहीं होगा ॥ यहां गमादिक ज्ञान के ग्रंथ हैं और अज्ञादिक
 उपांग हैं और श्रवण आदिक साधन हैं ॥ और दीर्घ काल तथा आदर और अंत
 राय से रहित जो श्रवणादिकों का अनुष्ठान है यह ही अनुष्ठान में सम्यक् रूप ना है
 ॥ इति ॥ शंका ॥ जैसे वेद मुक्तादिक व्यवस्था के अनुसार अनेक अज्ञान
 कल्पना किये हैं जे में प्रत्यक्षादिक प्रमाणों के अनुसार मत्त्व ही द्वैत क्यों न हो
 ॥ समाधान ॥

ॐ प्रत्यक्षादिकों में प्रामाण्यता का निषेध ॐ

हेवादिन् प्रत्यक्षादिक प्रमाणों के अनुसार द्वैत को मत्त्व माने हुये ति-
 समंतुमको यह कथन करने के योग्य है ॥

प्रत्यक्षादिप्रमाणानां प्रमात्वं परतोयदि ।

अनवस्थास्फुटांतत्रस्वतस्त्वेदोषसंशयः ॥ ४ ॥

स्वैया ॥ यहलौकिकमानजितेजगमेपरतोपरमात्वयदीति न
मार्ही ॥ अनवस्थविख्यातभयीति न मेयहनीकविचारकरो मनमार्ही ॥
परमात्वसुतस्त्वकहोजवहीतवदोषसंदेहभयोतहिमार्ही ॥ इहकारण
दैतथसत्यविचारधरोअदुतीयसदामनमार्ही ॥ ५ ॥

टी० ॥ प्रत्यक्षादिकप्रमाणोमेयहप्रमात्वक्याहै ॥ अर्थयहसो
प्रमात्वजातिरूपहैथथवाउपाधिरूपहै ॥ प्रथमपक्षनहींसंभवता ॥
क्योंकि 'इंदरजतं' इसभ्रमज्ञानमेसंकरहै ॥ सोपेसैहै ॥ केवलप्रमात्व
'अयंघटः' इसज्ञानमेरहताहै ॥ औरकेवलअप्रमात्वस्वान्नगजादिज्ञान
मेवर्तताहै ॥ तिनदोनोंकाएकत्रप्रवेश 'इंदरजतं' इसभ्रमज्ञानमेअंश
भेदसेविद्यमानहै ॥ सोसंकरदोषजातिकाबाधकहोताहै ॥ यातेप्रमात्व
जातिरूपनहीं ॥ परस्परअत्यंतभावकेअधिकरणमेरहनेवालेदोधमों
काजोएकत्रप्रवेशहैइसीकानामसंकरहै ॥ इति ॥ अथउपाधिरूपप्रमात्व
पक्षकेदूषितकरनेकेलियेदोविकल्पदिखलातेहैं ॥ तहां "व्यवहारमे
समर्थअर्थविषयत्वरूपप्रमात्वहै" अथवा सर्वकालमे अनाधितअर्थ
विषयत्वरूपप्रमात्वहै ॥ प्रथमविकल्पमेअर्थविषयत्वरूपप्रमात्वकहेंतोभ्रम
ज्ञानमेअतिव्याप्तिहोगी ॥ तिसदोषकेदूरकरनेकेअर्थ"व्यवहारमेंसमर्थ"
यहअर्थकाविशेषणकहाहै ॥ भ्रमकाविषयजोअर्थसोव्यवहारमेसमर्थ
नहीं ॥ यदितिसकोभीव्यवहारमेसमर्थमाने ॥ तोमरुस्थलमेजलके
भ्रमसेप्रवृत्तहुयेपुरुषकीभीपिपासानिवृत्तहूयीचाहिये ॥ औरैसरुस्थल
केजलसेकिसीकीभीपिपासाउपशमनहींहोती ॥ यातेभ्रमकाविषयजो

अर्थवहव्यवहारमेसमर्थनहीं ॥ इसलिये “व्यवहारमेसमर्थ” यहअर्थ काविशेषणकथनकीयाहै ॥ तैसेसर्वकालमेअवाधितअर्थविषयत्वरूप प्रमात्वहै ॥ इसदूसरेविकल्पमेयदि “सर्वकाल” यहपदनकहतेतोभ्रम ज्ञानमेअतिव्याप्तिहोती ॥ क्योंकिअवाधितअर्थविषयत्वभ्रमकालमे भ्रमज्ञानमेभीहै ॥ यातेभ्रमज्ञानमेअतिव्याप्तिकेपरिहारअर्थ “सर्वकाल” यहविशेषणकथनकीयाहै ॥ इसप्रकारदोनोंविकल्पोंमें विशेषणोंकी सफलतादिखलाकरअवतिनदोनोंविकल्पोंकोक्रमसेनिषेधकरतेहैं ॥ हे वादिन्भ्रमकेविषयभूतअर्थकोव्यवहारमें समर्थपनाकिया? भ्रमकालमें नहीं है ॥ अथवावाधकालमेनहीं है ॥ प्रथमपक्षतोनोंसंभवता ॥ क्योंकिभ्रमकालमेप्रवृत्त्यादिकरूपव्यवहारकी सामर्थ्यरजतादिरूपअर्थमे देखीजातीहै ॥ औरद्वितीयपक्षभीअसंगतहै ॥ क्योंकिवाधकालमेभ्रमज्ञान काअभावहोनेसेतिसकेविषयभूतअर्थकाभीअभावहै ॥ यातेभ्रमज्ञान मेप्रथमप्रमात्वकेलक्षणकीअतिव्याप्तिहोनेसे प्रमात्वकालक्षणदुष्टहै ॥ औरभ्रमकालमेकल्पितपदार्थकोव्यवहारकासाधकमाननेमे कोईविरोध नहीं ॥ यातेप्रथमपक्षनहींसंभवता ॥ औरद्वितीयपक्षमेभीयहविचार कर्तव्यहै ॥ वहसर्वकालमे अवाधितअर्थविषयत्वरूपप्रमात्वक्यास्वतः ग्राह्यहै ॥ अथवापरतोग्राह्यहै ॥ अर्थयहप्रमात्वकाआश्रयजोप्रमाज्ञान तिसकाग्राहकजोसामग्रीतिसकरग्राह्यत्वहै ॥ अथवा ॥ अपनेआश्रयकाग्राहक जोसामग्रीतिससेभिन्नसामग्रीकरग्राह्यपनाहै ॥ तिनमेप्रथमपक्षनहींसंभवता क्योंकिप्रत्यक्षादिकप्रमाणोंमेदोषकीसंभावनाहै ॥ यहांयहअनुमान जानना ॥

❀ विमतं प्रत्यक्षादिज्ञानं दोषवत्करणाजन्यं

जन्यज्ञानत्वाऽविशेषात् भ्रमवत् ❀

अ०—विवादकातिषयं जो प्रत्यक्षादिज्ञान है सो दोषवाले करणसे जन्य है। जन्यज्ञान पनातुल्य होनेसे जो जो जन्यज्ञान होता है सो सो दोषवाले करणसे जन्य है जैसे भ्रमज्ञान है ॥ इति ॥ इस अनुमानसे प्रत्यक्षादिज्ञानमें दोषकी संभावना हुए तिस दोषकी निवृत्ति अर्थ प्रवृत्ति संवादि रूप दोषाभाव का ग्राहक जो अन्य प्रमाण तिसकी प्रत्यक्षादि ज्ञान अपेक्षा करता है वा नहीं। यदि अपने प्रमात्व ग्रहणमें दोषाभावके ग्राहक अन्य प्रमाणकी प्रत्यक्षादिज्ञान अपेक्षा नहीं करता यह अन्य पक्ष कहो तो निष्कंप प्रवृत्ति पुरुषकी नहीं होगी ॥ क्योंकि दोषका संदेह प्रवृत्ति का प्रतिबंधक है । और यदि अन्य प्रमाण की अपेक्षा करता है यह प्रथम पक्ष कहो तो स्वप्रमात्वके प्रति दोषाभावके ग्राहक अन्य प्रमाणकी अपेक्षा होनेसे स्वतः ग्राह्यत्व का भंग होगा । और वह दोषाभावका ग्राहक प्रमाण कोई ज्ञान मात्र का ग्राहक तो है नहीं । जिससे तिसकी अपेक्षा हुये भी स्वतः ग्राह्यता बनी रहे । और यदि दोषाभावके ग्राहक प्रमाणको ज्ञान मात्र का ग्राहक मान लें । तो भ्रमज्ञान का ही उच्छेद हो जायेगा । या तो द्वितीय पक्ष भी असंगत है । और ज्ञान मात्रके ग्राहक से भिन्न प्रमाण क स्वप्रमात्व ग्रहण होता है यह आदिमें कथन किया जो द्वितीय पक्ष सो भी नहीं संभवता क्योंकि ग्रहण हुआ है प्रमाण जिसका तिस प्रमाणको प्रमात्वका निश्चायक माने हुए अनवस्था दोषकी प्राप्ति होगी । यहां यह अर्थ जानने योग्य है । प्रथम ज्ञानके प्रमात्वका जो ग्रहण है । सो अपने विषयके निश्चय अर्थ है । वह प्रमात्व स्वाश्रय भूत ज्ञानके ग्राहकसे किसी भिन्न पदार्थकर ही ग्रहण करने योग्य है । तहां वह प्रमात्वका ग्राहक क्या ज्ञेयरूप है ॥

अथवाज्ञानरूपहे । यहविचार कियाचाहिये । इनमें प्रथमपक्षतोन्हीं संभवता । क्योंकि तिसज्ञेयपदार्थको जडहोनेसे प्रकाशकताकाही अभाव है । और द्वितीय पक्षमेंभी यहविचार कियाचाहिये । प्रथमज्ञान के प्रमात्वका ग्राहक जोज्ञानहे सो गृहीत प्रमात्वहुया अपने विषयभूत प्रथमज्ञानके प्रमात्वकाग्राहकहे अथवाअगृहीतप्रमात्वहुया निश्चायक है। जिसका प्रमात्व किसीदूसरे ज्ञानकर ग्रहणहुयाहो तिसको गृहीत प्रमात्व कहतेहैं । और जिसका प्रमात्वकिसी करग्रहण न हुयाहो । तिसकोअगृहीत प्रमात्वकहतेहैं । प्रथमपक्षमेंभी यहविचारकरनेयोग्य है । ग्रहण करनेयोग्य प्रमात्वके ग्राहकभूतज्ञानका प्रमात्व किसने ग्रहणकियाहै । क्याआपही अपने प्रमात्वका ग्राहकहै । अथवा ग्रहणकरनेयोग्य प्रमात्वका आश्रयभूतजो प्रथमज्ञानवह तिसकेप्रमात्व काग्राहकहै । अथवाइनदोनोंज्ञानोंसे भिन्नकोईतृतीयज्ञानतिसप्रमात्व काग्राहकहै । इनमेंप्रथम पक्षनहीं संभवता । क्योंकि अपनेग्रहणमें अपनीअपेक्षा होनेसे आत्माश्रयदोषकीप्राप्तिहे । औरस्वतः प्रमात्व काग्रहणप्रसंगभीहोगा । तिमसे परतोग्राह्यत्वपक्षकी हानीहोगी । भावयह । स्वप्रमात्वकाआश्रयजोद्वितीयज्ञानवहआपको विषयकरता हुया अपनेप्रमात्वकोभी आपही विषयकरताहे याते आपको विषय करनेसे तथा आपही प्रमात्वकाग्राहकहोनेसे आत्माश्रयदोष तथा स्वतस्त्वपक्षकीप्राप्तिस्पष्टहीहै । औरद्वितीयपक्षभी अन्योऽन्याश्रय दोषकीप्राप्तिसेनहींसंभवता । सोइसप्रकारहै । प्रथमज्ञानको अपनेप्रमात्वकेग्रहणमें द्वितीयज्ञानकीअपेक्षाहै । औरद्वितीयज्ञानकोअपनेप्रमात्व केग्रहणमेंप्रथमज्ञानकीअपेक्षाहै । यातेअन्योऽन्याश्रयदोषहै । और

प्रथमज्ञानको स्वप्नमात्रकेग्राहकीभूतज्ञानकेप्रमात्वका ग्राहकपनाभी नहींसंभवता । क्योंकिजोज्ञानजिसपदार्थको विषयकरताहै । सोज्ञान तिसपदार्थकीआकारताकोप्राप्तहोताहै । औरयहांप्रथमज्ञानकोस्वप्नमात्रके ग्राहकद्वितीयज्ञानकाविषयहोनेसेस्वविषयकज्ञानकेप्रमात्वकीआकारता तिसकोनहींसंभवती । यातेद्वितीयपक्षभीअसंगतहै । औरद्वितीयज्ञानके प्रमात्वकाग्राहक इनदोनोंसेभिन्नकोईतृतीयज्ञानहैयहतृतीयपक्षभीअशुक्तहै । क्योंकिवहतृतीयज्ञानभीगृहीतप्रमात्वहीकहनाहोगा । तिस तृतीयज्ञानकेप्रमात्वकाग्राहकतिसीकोमानेतो आत्माश्रयदोषतथास्वतस्त्वपक्षकीप्राप्तिहोगी । औरतृतीयज्ञानकेप्रमात्वकाग्राहक यदिद्वितीय ज्ञानकोमानेतो अन्योऽन्याश्रयदोषकीप्राप्तिहोगी । औरप्रथमज्ञानको तृतीयज्ञानकेप्रमात्वकाग्राहकमानेतो चक्रकादोषप्राप्तहोताहै । औरयदि इसचक्रकादोषकेदूरकरनेकीइच्छासेतृतीयज्ञानके प्रमात्वकाग्राहककोई चतुर्थज्ञानमानोगेतो अनवस्थादोषप्राप्तहोगा । यातेपरतोग्राह्यत्वपक्ष भीअसमीचीनहै । अथअगृहीतप्रमात्ववालाजो द्वितीयज्ञानवहप्रथम ज्ञानके प्रमात्वकाग्राहकहै इसपहिलेकथनकियेहुये द्वितीयपक्षकोदूषित करतेहैं । औरअगृहीतप्रमात्ववालेद्वितीयज्ञानको प्रथमज्ञानकेप्रमात्व काग्राहक माने तो प्रथमज्ञानके प्रमात्वका निश्चय व्यर्थ होगा ॥ क्योंकिअगृहीतप्रमात्वजोप्रथमज्ञानहैतिसकरहीअपनेविषयकानिश्चय होजायेगा ॥ प्रमात्वकेग्रहणकीकुछआपेक्षानहीं ॥ यातेद्वितीयपक्ष भीअसंगतहै ॥ सर्वकालअवाधितअर्थविषयत्वरूपप्रमात्वप्रत्यक्षादि ज्ञाननिष्ठग्राहककेअभावसेनहींसंभवता ॥ अथवाजिसकिसीप्रकारसे अर्थात्स्वतस्त्ववापरतस्त्वरीतिसेप्रमात्वकाग्रहणहो ॥ परन्तुसर्वकाल अवाधितअर्थविषयत्वरूपप्रमात्वप्रत्यक्षादिज्ञानमेनहींसंभवता ॥ क्योंकि

श्रुतिहीतिसकोनिपेधकरतीहै ॥ इसदूसरेहेतुकोकथनकरतेहैं ॥ किंवा
प्रत्यक्षादिकोंकीअप्रमाणताश्रुतिनेहीदिखलाईहै ॥ यद्यपिप्रत्यक्षादिक
अप्रमाणरूपहैंऐसेश्रुतिनेसाक्षात्तनहींकथनकिया ॥ तथापिप्रत्यक्षादि
ज्ञानकेविषयभूतजगत्कामिथ्यापनादिखलातीहुईश्रुतिप्रत्यक्षादिकोंकी
अप्रमाणताअर्थसेबोधनकरतीहै ॥ शंका ॥ प्रत्यक्षादिकज्ञानअप्रमाण
रूपहैं ॥ जगत्कोमिथ्याहोनेसे ॥ यहहेतुव्यधिकरणहै ॥ क्योंकि
प्रत्यक्षादिकज्ञानमेतोअप्रमात्वसाध्यवर्तताहै ॥ औमिथ्यात्वहेतुजगत्
मेवर्तताहै ॥ यातेभिन्नअधिकरणमेवृतिहोनेसेयहहेतुअपनेसाध्यका
साधकनहीं ॥ समाधान ॥ हेवादिप्रत्यक्षादिज्ञानकेविषयभूतजगत्
कोश्रुतिमिथ्यापनादिखलातीहै ॥ यातेयहांयहअनुमानविवक्षितहै ॥

✽ प्रत्यक्षादिरप्रमाणमिथ्यार्थकत्वात् रजतज्ञानवत् ✽

अ० ॥ प्रत्यक्षादिज्ञानअप्रमारूपहै ॥ मिथ्याअर्थविषयकहोने
से ॥ जोजोज्ञानमिथ्याअर्थविषयकहोताहैसोसोअप्रमारूपहोताहै ॥
जैसेरजतज्ञानहै ॥ इति ॥ शंका ॥ अर्थकोअबाधितहोनेसेमिथ्यापना
अयुक्तहै ॥ समाधान ॥ हेवादिप्रत्यक्षादिहीसर्वप्रपंचकानिपेधकरतीहैं ॥
सोश्रुतियहहै ॥

✽ नेहनानाऽस्ति किंचन ✽ सं० उ० अ० ६ ब्रा० ४ मं० १६

अ० ॥ असिद्धजगत्काअधिष्ठानरूपजोब्रह्महेतिसमेभेदविशिष्ट
प्रपंचकिंचत्मात्रभीनहीं ॥ इसश्रुतिमेसकलप्रपंचको निपेधकाप्रतियो
गिपनाकथनकियाहै ॥ औरजोनिपेधकाप्रतियोगिहोताहैसोमिथ्याही
होताहै ॥ निपेधशब्दसेयहांत्रैकालिकनिपेधग्रहणकरना ॥ शंका ॥

जो बाधित होता है सो अज्ञानजन्य देखा है ॥ जैसे बाधित रजतादिक शुक्त्यादिकों के अज्ञान से जन्य हैं ॥ और घटादि जगत् अज्ञानजन्य नहीं ॥ क्योंकि मृत्तिकादिक तिसके उपादान कारण हैं और मृत्तिकादिक उपादान गोचर ज्ञानवाले कुलालादिक तिसके निमित्त कारण हैं ॥ याते भ्रमं च मिथ्या नहीं किन्तु सत्य है ॥ समाधान ॥ हेवादि न्श्रुति ने जगत् का उपादान कारण अज्ञान ही कहा है ॥ सो श्रुति यह है ॥

❀ माया तु प्रकृतिं विद्यात् ❀ श्वे० उ० अ० ४ मं० १०

अ० ॥ माया को जगत् का उपादान कारण जाने यद्यपि श्रुति मे माया पद है ॥ अज्ञान पद नहीं तथापि माया और अज्ञान दोनो एक ही पदार्थ हैं ॥ याते विरोध नहीं ॥ और वह अज्ञान ही मृत्तिकादि रूप परिणाम को प्राप्त हुआ घटादिकों का उपादान कारण है ॥ याते अज्ञान को उपादान माने हुये भी कोई विरोध नहीं यहाँ मूल ग्रंथ मे (निषिद्धमानत्वमाया प्रकृति त्वाभ्याम्) यह तृतीया विभक्ति अंतपद कथन किया है ॥ वह तृतीया विभक्ति कर्ता करणादि अर्थ मे नहीं किन्तु इत्थं भाव अर्थ मे तृतीया जाननी ॥ याते यहाँ ऐसा अर्थ करना ॥ निषेध श्रुति योगित्व तथा माया उपादानत्व रूप मिथ्या भूत जो जगत् है ॥ इति ॥ इसरीति से व्यवस्था के अनुसार अनेक अज्ञान माने हुये भी प्रत्यक्षादि प्रमाण के अनुसार जगत् का सत्यत्व जिस कारण से पूर्व उक्त युक्तिकेवल से नहीं संभवता । तिसी कारण से व्यवस्था के अनुसार जीव आश्रित और ब्रह्म को विषय करनेवाले अनेक अज्ञान बन सकते हैं ॥ शंका ॥ व्यवस्था की अनुपपत्ति रूप तर्क से ही अनेक अज्ञान तुमने सिद्ध किये हैं ॥ परन्तु वह तर्क आभासरूप है । क्योंकि तिसमे उपजीव्य प्रमाण का अभाव है ॥ जिस प्रमाण के आश्रित होकर तर्क अपने

अर्थकोसिद्धकरेसोप्रमाणतर्ककाउपजीव्यकहियेहै ॥ समाधान ॥ हे
वादिन्यहांउपजीव्यप्रमाणरूपश्रुतिविद्यमानहै ॥ यातेतर्ककोआभास
रूपतानहीं ॥ सोश्रुतियहहै ॥

* इन्द्रोमायाभिःपुस्तरुर्इयते * ६०३० अ० ४ ब्रा ५ कं० १.६

अ० ॥ परमात्मायावोंसेनानारूपप्रतीतहोताहै ॥ इसश्रुति
मे (मायाभिः) इसबहुवचनकेअनुसार अनेकअज्ञानप्रतीत होतेहैं ॥
यहांमायाऔरअज्ञानदोनोंपर्यायशब्दहैं॥वहअनेकअज्ञानब्रह्मकोविषय
करतेहैं ॥ इसलियेआत्माकोअज्ञानविषयत्वतुमनेकैसेकथनकिया ।
यहांआत्माअज्ञानकाविषयनहींयहजोनिषेधहैसोइसअर्थकाभीबोधकहै
ब्रह्मकोअज्ञानकाविषयहोनेसेतिसमेश्रुतिप्रमाणकत्वका आक्षेपजोपूर्व
पक्षीनेकहाथासो कैसेकथनकिया किन्तुवहभीनहींसंभवता ॥ यहां
तकएकदेशीकेमतकासंक्षेपसेनिरूपणहुआ ॥ यहांइसमतकेसंग्रहका
श्लोक ॥

* अज्ञानं प्रति जीवं स्याद्भिन्नं ब्रह्म पदं च तत् ॥ बद्धमुक्तव्य
वस्थास्तो ब्रह्मश्रौतं च सिद्ध्यति ॥ १ ॥ *

दो० ॥ बद्धमुक्तविवहासेश्रुतीजीवअज्ञान ॥ भिन्नब्रह्मगोचर
अहैब्रह्मश्रौतपहचान ॥ १ ॥

* अथ एकदेशि के मत का खंडन *

अब सिद्धांतमतको आश्रयणकरके एकदेशिकेमतकोपूर्वपक्षी
निषेधकरताहै ॥ यहांसिद्धांतमतकोआश्रयणकरकेएकदेशिकेमत
खंडनकरनेमेपूर्वपक्षीकायहगूढ़अभिप्रायहै ॥ परमसिद्धांतीनेचेतन

मात्रके आश्रित और तिसी को विषय करने वाली अविद्या मानी है ॥ और
स्वयंप्रकाशचेतन में अविद्या की विषयता नहीं संभवती ॥ यह वार्ता सर्व
निरूपण की है ॥ और अविद्या की विषयता का अभाव होने से वेद प्रमाणाता
का भी तिस आत्म में अभाव है ॥ या ते देहादिकों से भिन्न कोई आत्मा नहीं
यह हमारा मत सुखेन ही सिद्ध होगा ॥ इस गूढ़तात पर्यवाला पूर्वपक्ष जीव
आश्रित और ब्रह्मविषयक अविद्या है इस पूर्व कथन किये हुये एक देशी के मत में
दूषण कथन करता है ॥

मू० ॥ जीव ब्रह्म प्रयोगाभ्यामेकं वस्त्वथवा द्वयम् ॥

आद्ये त्विष्टं ममैव स्यात् द्वितीये त्वन्मतक्षतिः ॥५॥

तोटकछंद ॥ यह जीव परेश दुःख पद जो भन एक पदार्थ वा द्रव्य को
पञ्च आदि विषे मम वाञ्छित है । पछ दूसर हान हिते मत है ॥६॥

टी० ॥ हे एक देशी न तु म जीव और ब्रह्म शब्द से एक ही वस्तु प्रति
पादन करते हो । अथवा दो पदार्थ कथन करते हो ॥ यद्यपि जीव और ब्रह्म शब्द
का वाच्यार्थ भिन्न ही है या ते विकल्प नहीं संभवता ॥ तथापि जीव और ब्रह्म
के उपाधिका परित्याग करके एक लक्ष्य प्रतिपादन करते हो अथवा लक्ष्यों
का भेद कथन करते हो ॥ ऐसा विकल्प संभवता है ॥ प्रथम पक्ष मानोगे तो मेरा
ही इष्ट सिद्ध होगा ॥ यद्यपि जीव और ब्रह्म का अर्थ भेद एक देशी को भी इष्ट है ॥
इस लिये मूलकारिकामे (एव) शब्द का उच्चारण अयुक्त है ॥ तथापि
अज्ञान के आश्रय तथा विषय का अर्थ भेद एक देशी को अनिष्ट है ॥ या ते
(एव) शब्द का उच्चारण अयुक्त नहीं किन्तु युक्त है ॥ और द्वितीय पक्ष अंगी
कार करोगे तो तुम्हारे मत की हानी होगी ॥ क्योंकि लक्ष्यार्थ का भेद एक देशी
को भी स्वीकार नहीं ॥ यहां मूलकारिकामे (तु) यह शब्द हेतु का सूचक

है ॥ सो आगे स्पष्ट होगा ॥ अथवा वाच्य और लक्ष्य के भेद को त्याग करके सामानता से ही दूषण देने के लिये विकल्प करते हैं ॥ हे एक देशिन् जीव और ब्रह्म इन दोनों शब्दों से एक आत्मा ही तुम कह सकते हो अथवा जीव शब्द तो आत्मा का वाचक है और ब्रह्म शब्द तिस से भिन्न अर्थ का वाचक है ॥ ऐसे कहते हो ॥ प्रथम पक्ष में आत्मा को अज्ञान की विषयता कैसे नहीं बनेगी। यहां पर (कैसे) और (नहीं) इन दोनों निषेधक शब्दों से आत्मा को अज्ञान विषयता की प्रतिज्ञा करके अतिसमे (तु) शब्द से सूचन किये हुए हेतु को कहते हैं ॥ क्योंकि ब्रह्म शब्द से भी जीव शब्द की न्याय आत्मा का ही कथन होने से तिस में अज्ञान की विषयता का संभव है ॥ यहां यह निष्कृष्ट अर्थ है ॥

❀ आत्मा अज्ञान विषयः अज्ञानाभासकत्वे सति ब्रह्म शब्द वाच्यत्वात् ब्रह्मवत् ❀

अ० ॥ आत्मा अज्ञान का विषय है ॥ अज्ञान का अप्रकाश कहुया ब्रह्म शब्द का वाच्य होने से जो जो अज्ञान का अप्रकाश कहुया ब्रह्म शब्द का वाच्य है सो सो अज्ञान का विषय है ॥ जैसे ब्रह्म है ॥ इति ॥ इस अनुमान से आत्मा में अज्ञान की विषयता सिद्ध है ॥ याते तु म आत्मा में अज्ञान की विषयता का अभाव कैसे कहते हो ॥ शंका ॥ हेवादि न्यह तुम्हारा अनुमान सत्प्रतिपक्ष रूप हेत्वा भासवाला होने से दुष्ट है ॥ जिस हेतु के साध्या भाव का साधक और हेतु हो तिस हेतु को सत्प्रतिपक्ष कहते हैं ॥ सो इस प्रकार है ॥

❀ आत्मानतमो विषयः भासमानत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा अंधकारावृतो घटः ❀

अ० ॥ आत्मा अज्ञान का विषय नहीं ॥ भासमान होने से जो जो अज्ञान का विषय होता है सो सो भासमान नहीं होता जैसे अंधकार से आवृत

वट्टहै ॥ इस अनुमानसे पूर्वकथन किया वादी का अनुमान सत्प्रतिपक्ष रूप
हेत्वाभास युक्त है ॥ और तुम्हारे अनुमान में अभासमानत्व उपाधि भी है ॥
सो इस प्रकार है ॥ जहाँ जहाँ अज्ञान की विषयता है तहाँ अभासमानता
है ॥ जैसे ब्रह्म है ॥ इस रीति से उपाधिसाध्य के साथ व्यापक है ॥ और
जहाँ जहाँ अज्ञान का प्रकाशक हुआ ब्रह्मशब्द का वाच्य है ॥ तहाँ तहाँ
अभासमानत्व नहीं ॥ जैसे आत्मा है ॥ इस रीति से उपाधिसाधन के साथ
अव्यापक है ॥ यत्ने पूर्वकथन किया जो हेतु वह सोपाधिक हेत्वाभास होने
से दुष्ट है। स्वसाध्य का साधक नहीं ॥ समाधान ॥ हे एक देशिन् यह जो लुमने
पूर्वकथन किया सत्प्रतिपक्ष और अभासमानत्व उपाधि इन दोनों को तंत्र से
निये धरते हैं ॥ एक बार उच्चारण किया हुआ वचन बहु अर्थ का जो ज्ञापक हो
तिस को तंत्र कहते हैं ॥ जैसे एक दीपक प्रज्वलित किया हुआ अनेक पदार्थों को
प्रकाश करता है । तैसे यहाँ एक ही उक्ति से सत्प्रतिपक्ष और उपाधिकानि रा
करण करते हैं । तिस उक्ति रूप तंत्र को ही दिखलाते हैं । हे एक देशिन् अद्वया
नंद रूपता से तिस आत्मा में अज्ञान की विषयता है । और चेतन मात्र रूपता से
तिस आत्मा को भासमान होने से अज्ञान की विषयता का अभाव है । अन्यथा
प्रकाशक के अभाव से अज्ञान की भी सिद्धि नहीं होगी । यहाँ यह अर्थ जानने
योग्य है ॥ एक देशिने प्रतिपक्षाऽनुमान में आत्मशब्द से क्या ? अद्वयानंद
रूप पक्ष किया है । अथवा चेतन मात्र पक्ष किया है । तहाँ प्रथम पक्ष माने हुये
प्रतिपक्षाऽनुमान बाधित होगा । क्योंकि अद्वयानंद रूप पक्ष में अज्ञान की
विषयता विद्यमान होने से अज्ञान विषयत्वाभाव रूप साध्य का अभाव है ।
और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता । क्योंकि प्रथम अनुमान में चेतन मात्र को
पक्षत्व का अभाव है । इसी से प्रतिपक्षाऽनुमान में भी चेतन मात्र को उल्लेखना

युक्तनहीं ॥ शंका ॥ हेवादिन् अद्वयानंदरूपको पञ्चमानने
 मेवाध है यह तुम्हारा कथन असंगत है ॥ क्योंकि तिस अद्वयानंदको आत्मा
 से अभिन्नरूपता कर भासमान होने से तिसमें अज्ञानकी विषयता नहीं संभवती
 समाधान ॥ अद्वयानंदको आत्मा से अभिन्न हुये भी अविद्याके प्रभाव से चेतन
 मात्र का ही भान होता है अद्वयानंद का नहीं । इस कथन से यह सूचन किया
 प्रतिपत्ता अनुमान स्वरूपा सिद्ध है ॥ क्योंकि अद्वयानंद पक्ष में भासमानत्व
 हेतु स्वरूप से ही अस्ति है ॥ शंका ॥ हेवादिन् अज्ञानका विषय आत्मा है
 और चेतनको ही आत्मा कहते हैं तिस चेतन स्वरूप आत्मामें अज्ञानकी
 विषयता होने से तिसकी भासमानता कैसे कहते हो ॥ समाधान ॥ हे एक
 देशिन् चैतन्यरूपता से तिस आत्माको अज्ञानका विषय होने से भासमानता
 है ॥ और यदि ऐसे कहो कि चेतन रूप भी अज्ञान कर क्यों नहीं आवृत्त होता
 किन्तु हुया चाहिये । सो यह कथन भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि चेतनको भी
 आवृत्त माने हुये अज्ञानकी ही सिद्धि नहीं होगी ॥ भाव यह ॥ अज्ञान
 चेतन रूपसाक्षि मात्र कर सिद्ध होता है किसी प्रमाण कर नहीं यह वार्ता हम
 दोनों को स्वीकार है ॥ याते चेतन रूपता से आत्मा आवृत्त नहीं हो सकता
 और प्रकाशक के अभाव से जगत् में किसी वस्तु का भान भी नहीं होगा ॥ इतने
 कथन से सत्प्रतिपक्ष के निषेध पर ग्रंथ का व्याख्यान किया ॥ अब उपाधिके
 निषेध करने के लिये भी इसी ग्रंथकी पुनः योजना करते हैं ॥ स्थापना अनु-
 मान में अर्थात् प्रथमा अनुमान में अद्वयानंद स्वरूप आत्माको पक्ष पना है ॥
 तिस अनुमान में अभासमानत्व उपाधि नहीं संभवता ॥ क्योंकि साधन के
 साथ वह व्यापक है ॥ इसी अभिप्राय से अद्वयानंद स्वरूप आत्मामें अज्ञान
 की विषयता रवीकार की है ॥ तिस अद्वयानंद रूप पक्ष में अभासमानत्व
 उपाधिके वर्तने से वह साधन के साथ कैसे व्यापक नहीं किन्तु व्यापक है

यहभावहै॥शंका॥आत्मासेअभिन्नअद्वयानंदकैसेनहींभानहोतेकिंतुहुये चाहिये॥समाधान॥आत्मत्वभानकाप्रयोजकनहींकिंतुभानकाप्रयोजक चैतन्यहै यातेचेतनमात्रको अज्ञानकाअविषयहोनेसे भासमानताहै । अद्वयानंदकोनहीं।इसप्रकार उपाधिकेअभावसेपूर्वउक्तअनुमाननिर्दोष है।शंका॥ अद्वयानंदरूपतासे आत्माकोअभासमानहोनेसे अज्ञानकी विषयताहै । औरचेतनरूपताकर भासमानहोनेसे तथाअविद्याकासाधकहोनेसे आत्माको अज्ञानकीविषयतानहींहैं । यहपूर्वकथनकिया सोअसंगतहै । क्योंकि-

❀ विज्ञानमानंदब्रह्म ❀

अ०-विज्ञानऔरआनन्दस्वरूपब्रह्महै । इसश्रुतिवचनसे अद्वयानंदऔरचैतन्यएकस्वरूपहैं । इनकाभेदनहीं। यद्यपिअभेदकीन्याई भेदभीहै तथापिविरुद्धस्वभावहोनेसे भेदऔरअभेददोनों एकअधिकरणमेंनहींरहसकते । यातेअद्वयानंदको अज्ञानकीविषयताकाकथन नहींसंभवता ॥ समाधान ॥ अद्वयानंदऔरचेतनकावास्तवभेदनहीं इसलियेअद्वयानंदकोभी भासमानहोनेसेअज्ञानकी विषयतावास्तवसे नहींहै यहतुमकहतेहो अथवा । कल्पितभीअज्ञानकीविषयतानहींहै यहकहतेहो । प्रथमपक्षतोहमकोभीस्वीकारहै । क्योंकिवास्तवअज्ञान कीविषयताहमभीनहींमानते । द्वितीयपक्षको प्रश्नपूर्वकनिषेधकरतेहैं । प्रश्न-अद्वयानंद औरचेतनकेभेदका अभावहुये अज्ञानविषयताकी व्यवस्थाकिसप्रकारहै ॥ समाधान ॥ हेएकदेशिन् अद्वयानंदस्वरूप आत्माको अज्ञानकीविषयताकाकथनहै । चेतनकोनहींयातेव्यवस्था नसकतीहै । यद्यपिभेदकाअभावहोनेसे विषयतानहींसंभवती यह

पूर्वकथनकियाहै । तथापिस्वयंप्रकाशपरिपूर्ण आनन्दस्वरूपतासे भासमानआत्मामेंभी भेदकीमिथ्याकल्पनाकरकेही अज्ञानकीविषयता काकथनहै वास्तवसेनहीं ॥ इति ॥ शंका ॥ जोभानहोताहै सोअज्ञान करआवृत्तनहींहोता औरअद्वयानंदरूपता आत्माकीभान नहींहोती यदिभानहोतो निर्यतहीसर्वपुरुषोंकोमोक्षकालाभहोगायातेभेदकल्पना व्यर्थहै । भावयहचेतनसे अद्वयानंदकी भेदकल्पनाअभानताकेलिये करतेहो सो अभानतापूर्व कथनकियेप्रकारसे बनसकतीहै पुनः भेद कल्पना से क्या प्रयोजन है ॥ समाधान ॥ हे एकदेशिन् आत्मातोप्रथमभानहोताहीहै । यदिआत्माकाभाननमानेतोतूकौनहैंऐसे पूछेहुयेमैंहूंबानहींहूँऐसासंदेहपुरुषकोहोनाचाहिये ॥ औरऐसासंदेह किसीको नहींहोता ॥ यातेआत्माकाभानसर्वको प्रसिद्धहै ॥ तिस आत्मासेअभिन्नअद्वयानंदकैसेनहींभानहोंगे ॥ औरवहइसअविद्याकाल मेंनहींभानहोतेइसीसेतिनअद्वयादिकोंकेअभानकाप्रयोजकभेदकल्पना संभवतीहै इसीकारणसेपूर्वग्रंथमेकहाहै ॥ चैतन्यमात्रहीभानहोताहै अद्वयानंदस्वरूपकाभाननहींहोता ॥ इति ॥ शंका ॥ मैंअद्वयानंद स्वरूपनहींहूँ ॥ इसप्रकारकीअद्वयानंदऔरचेतनकेभेदकोविषयकरने वालीप्रतीतिकाबाधनदेखनेसेतिसप्रतीतिकाविषयजोभेदहै ॥ सोवास्तव हीक्योंनहो ॥ समाधान ॥ भ्रमप्रतीतिकेअनुसारभेदकीकल्पनाहैयाते भ्रमप्रतीतिकाविषयभेदवास्तवनहींबनसकता । यद्यपित्रह्य अद्वितीयहैतिस कोभ्रमकिसीरीतिसेनहींसंभवता ॥ क्योंकि अपनेस्वरूपमेंआपकोहीभ्रम होनाअयोग्यहै ॥ तथापिजैसेभूताविष्टजोमनुष्यहै ॥ तिसकोअपने हीशरीरमेंभूतकाभ्रमहोताहै ॥ तेसेहीअविद्याकेप्रभावसेअद्वितीयब्रह्म कोभीभ्रमबनसकताहै ॥ शंका ॥ देवीभावकानामभेदहैअर्थात्एक

वस्तुकेदोखंडनकानामभेदहै ॥ सोसावयवकाशदिकोंकाधर्महै ॥ और
आत्मानिखयवहै ॥ क्योंकि (निष्कलं) इसश्रुतिमेआत्माकोनिखयव
कहाहै ॥ यातेतिसआत्मामेभेदकल्पनाअयोग्यहोनेसेकिसीप्रकारभी
नहींसंभवती ॥ समाधान ॥

✽ निर्गुणोनिरूपेज्यखंडोचितिसर्वकल्पनाशून्यघट
यतिजगदीशजीवभेदान्तस्मादघटनघटनापटीयसी
माया इति ✽

अ० ॥ निरूपऔरनिर्गुणतथाअखंडचेतनतथासर्वकल्पनासे
शून्यआत्मामेजगत्त्र्योईशतथाजीवकेभेदकीकल्पनानहींवनतीतिसके
वनानेमेजोकुशलहोतिसकोमायाकहतेहैं ॥ सोऐसामायारूपअज्ञानहै
इति ॥ इसन्यायसेनिखयवआत्मामे भीअनादि सिद्धअनिर्वचनीय
अज्ञानकेसंबंधसेमिथ्याभेदकल्पनावनसकर्ताहै ॥ शंका ॥ चेतनमात्र
हीभानहोताहैअद्वयानंदस्वरूपनहीं इसप्रतीतिकोभ्रम रूपताकैसेहै ॥
क्योंकिभ्रमरूपताकेहुयेहीवाधितपनायुक्तहै ॥ समाधान ॥ परमप्रीति
केविषयभूतआत्माकोआनंदरूपतासेहीभासमानहोनेसेपूर्वउक्तप्रतीति
कोभ्रमरूपहमकहतेहैं यहांयहअनुमानजानना ॥

✽ आत्मापरमानंदरूपःपरमप्रेमास्पदत्वात्विषया
नंदवत् ✽

अ०—आत्माआनन्दस्वरूपहै परमप्रीतिकाविषयहोनेसे जोपरम
प्रीतिकाविषयहोताहै सोआनन्दस्वरूपहोताहै जैसेविषयानंदहै॥इति॥
मैंनहोवों ऐसेमतहोकिंतुमैंसदाहीहोवों इसप्रकारकी इच्छाकानामैंहै

सोयहइच्छाकिसीउपाधिके सम्बन्धसे आत्माविषयकनहीं किंतुनिरुपाधिकहै । यदिकेवल “प्रेमास्पदत्वात्” इतनाहीहेतुकहते परमयह विशेषणनकहते । तोदुःखाभावऔरसुखकेसाधनोंमेंयहहेतुव्यभिचारी होता । क्योंकिसुख तथादुःखाभावके साधनोंमेंभीपुरुषोंकाप्रेमहै परन्तु परमप्रेमनहीं।परमप्रेमतोदुःखाभावरूपतथासुखस्वरूपआत्मामेंहीहै।याते हेतुव्यभिचारीनहीं ॥इति॥ इसप्रकारसुखऔरआत्माका अभेदहोनेसे आत्माकेभासमानहुयेतिससेअभिन्नआनंदअवश्यमानहोताहीहै। याते आनंदकेअभासमानताकीजोप्रतीतितिसकोवाधितहोनेसेभ्रमरूपतायुक्त है॥शंका॥हेवादिन्विषयानंदरूपदृष्टांतमेंजोप्रेमहैसोआत्म उपाधिकहै क्योंकिसुखमात्रकीकोईप्रार्थनानहींकरता।किंतुसुखकोसुखहोइसप्रकार आत्माकेसम्बन्धसे सुखकीप्रार्थनाकरतेहैं । यदिऐसेनमाने तोवैरीके सुखविषयकभी प्रार्थनाकी प्राप्तिहोगी । औरवैरीके सुखकी कोई वांछानहींकरता ॥ याते विषयानंदरूप दृष्टांतमें निरुपाधिकप्रेम विषयत्वकाअभावहोनेसे साधनकीविकलताहै । समाधान ॥ हेएक देशिन् सुखमेंप्रेमकीविषयताआत्मउपाधिकनहीं।क्योंकिसुखतथादुःखा भावरूपजोफलहेतिसफलरूप उपाधिके संबंधसेसाधनोंमेंप्रेमहोताहै । और आत्माकोनित्य होनेसेवहसुखका फलनहींहै । जिसकारणसे सुखमेंप्रेमआत्मउपाधिकहो । औरआत्माविषयकसुखसेउत्पन्नहुयाकोई उपकारभीनहींपूतीतहोता । क्योंकिसुखसेभिन्न औरउपकारकाअभाव है।तिसीसेसुखमें आत्मउपाधिकप्रेमनहीं । यद्यपिसुखमात्रकीप्रार्थना मानेहुयेवैरीकासुखभी उपादेयहुयाचाहिये । तथापिस्वरूपसेसुखको उपादेयताकेहुयेभीतिसमेंदेयताबुद्धिग्रन्थउपाधिकहै ।

❀ आत्मा तथा सुख के संबंधाभावका निरूपण ❀

और सुख तथा आत्मा का कोई संबंध भी नहीं निरूपण हो सकता या तो भी सुख में प्रेम आत्मा और पाधिक नहीं ॥ सुख तथा आत्मा का संबंधाभाव ही स्पष्ट करते हैं ॥ हे एक देशिन् सुख तथा आत्मा का कौन संबंध है ॥ संयोग संबंध है वा समवाय संबंध है अथवा तादात्म्य संबंध है वा और ही कोई संबंध है ॥ इनमें प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता क्योंकि सुख द्रव्य नहीं है ॥ संयोग द्रव्यों का ही होता है ॥ और द्वितीय पक्ष भी असंगत है ॥ क्योंकि आत्मा को निर्गुण कहने वाली श्रुति का विरोध है ॥ और सुख को अतःकरण में समवेत होने से भी सुख और आत्मा का समवाय नहीं संभवता ॥ और तृतीय पक्ष में यह विचार किया चाहिये । तादात्म्य अभेद कानांम है अथवा भेदाभेद कानांम है । प्रथम पक्ष नहीं संभवता । क्योंकि सुख तथा आत्मा का अत्यंत अभेद प्रसंग होने से तिनका उपाधि उपहित भाव नहीं सिद्ध होगा । और भेदाभेद का परस्पर विरोध होने से द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता । और इनसे भिन्न चतुर्थ पक्ष कोई निरूपण ही नहीं हो सकता । या तो विषयानंद रूप दृष्टांत में परम प्रेम विषयत्वरूप हेतु की विकलता नहीं । इसलिये पूर्व उक्त अनुमान निर्दोष है । तिसका अद्वयानंद और आत्मा के भेद को विषय करने वाली प्रतीति का नाश संभवता है ॥ शंका ॥ यद्यपि चेतन से कल्पित भेद करके भिन्न जो अद्वयानंद स्वरूप आत्मा है । तिसमें अज्ञान की विषयता पूर्व कथन की ॥ तथापि वास्तव से अविद्या के आश्रय और विषय का भेद नहीं निरूपण किया क्योंकि जैसे घट पद की शक्ति घट पद में रहती है ॥ और कंचू ग्रीवादि मानव्यक्ति को विषय करती है या तो आश्रय और विषय का भेद वास्तव है ॥ तैसे अविद्या भी एक शक्ति है तिसको भी वास्तव

आश्रय और विषय के भेद की अपेक्षा सहित होने से तिसके विषय और आश्रय का कल्पित भेद अयुक्त है ॥ समाधान ॥ हे एकदेशिन् अविद्या के आश्रय तथा विषय का भेद वास्तव से नहीं निरूपण किया यह तुम्हारा कथन सत्य है ॥ शंका ॥ हे वादिन् यदि आश्रय और विषय का भेद वास्तव से नहीं निरूपण किया तो तुमको निरूपण किया चाहिये ॥ क्योंकि आश्रय और विषय के वास्तव भेद की अविद्या को अविद्या अपेक्षा है ॥

✽ अथ स्वाश्रयास्वविषया अविद्या कानिरूपण ✽

समाधान ॥

मू०—अविद्या स्वाश्रयाभिन्नविषया स्यात्तमो यतः ॥

यथा बाह्यतमो दृष्टं तथा चैतन्ततस्तथा ॥६॥

संकर ब्रह्म ॥ सुन ले अविद्या स्वाश्रयापुनरेक्य विषया जान ॥

जिस हेतु ते है तमो रूपा तापनी मे गान ॥ बाह्यतम सजियुं देखियो है तथा विषय यह आहि ॥ तिस हेतु ते है तथा विध की कहित बुध जन ताहि ॥७॥

टी० ॥ प्रथम यह अहम् अनुमान जानने योग्य है ॥

अविद्या स्वाश्रयाभिन्नविषयिणी तमस्त्वात् बाह्यतमो वत्

अ० ॥ अविद्या अपने आश्रय से अभिन्न को विषय करने वाली है

तम रूप होने से। जो जो तम है सो सो अपने आश्रय से अभिन्न को विषय करता है जैसे बाह्यतम है ॥ याते अविद्या को आश्रय तथा विषय के भेद की अपेक्षा नहीं ॥ शंका हे वादिन् इस अनुमान में बाह्यतम को दृष्टांतर का है ॥ वह बाह्यतम द्रव्य रूप है। अथवा आलोकाभावरूप है ॥ यदि प्रथम पक्ष स्वीकार करो तो दृष्टांत साध्य से ही न होगा। क्योंकि जैसे अपने अवयवों के आश्रित जो भ्रम है सो अन्य देश को आच्छादन करता है ॥ ते से ही तम रूप द्रव्य अपने

अवयवों के आश्रित हूया ग्रह के उदरवर्ती देश को आच्छादन करता है ॥ याते
जिम को आश्रयण करता है तिसी को विषय करता है यह “स्वाश्रयाभिन्न विष
यत्व” रूप जो साध्य है तिसको बाह्यतम रूप दृष्टांत में नहीं वर्तने से साध्य
विकल दृष्टांत है ॥ और द्वितीय पक्ष में भी यह दृष्टांत में साध्य की विकलता रूप
दोष ही प्राप्त होता है ॥ क्योंकि आलोकभाव का प्रतियोगी जो आलोक है
तिसका समवायि जो आलोक अवयव रूप देश तिसके आश्रित आलोक
ऽभाव को घटा दिकों का आवरक पना देखा है ॥ याते बाह्यतम रूप दृष्टांत इस
पक्ष में भी साध्य से ही नहीं है ॥ समाधान ॥ हे एक देशि नृज से अपने अवयवों
के आश्रित जो घट है तिसका आश्रय पना भूतल को देखा है ॥ तैसे अपने
अवयवों के आश्रित जो बाह्यतम सौ गृह के भी आश्रित रहता है ॥ और तिसी
को विषय करता है ॥ याते बाह्यतम को द्रव्य माने हुये कोई विरोध नहीं अर्थात्
आश्रय तथा विषय के भेद का अभाव है ॥ और द्वितीय पक्ष में आलोक संसर्गा
ऽभाव को तम रूपता है ॥ संसर्गाभाव पद से अत्यन्ताभाव और प्रागभाव तथा
प्रध्वंसाभाव इन तीनों अभावों का ग्रहण है ॥ तिन में प्रागभाव को तथा प्रध्वंसा
भाव को प्रतियोगी के समवायि देश में वृत्ति हूए भी अत्यन्ताभाव को
प्रतियोगी के समवायि देश में वर्तने के नियम का अभाव है । इस प्रकार
बाह्यतम को संसर्गाभावरूपता कर प्रतियोगि संबंधि देश में ही वर्तने का नियम
नहीं ॥ याते बाह्यतम को द्रव्य रूप माने हुये अथवा अभावरूप माने हुये दृष्टांत में
साध्य की विकलता नहीं हो सकती । इस प्रकार अनुमान की निदोषता दिखला
कर अश्लोक की व्याख्या करते हैं ॥ तिस तम शब्द का वाच्य जो बाह्यतम तथा
अंतर अज्ञान रूपतम है ॥ तिसको आश्रय तथा विषय के भेद की अपेक्षा नहीं है
पूर्व कथन की हुई युक्ति से यह अर्थ सिद्ध है । परन्तु तिसी अर्थ को पुनः स्पष्ट करने
के लिये आश्रय और विषय के भेद की अपेक्षा प्रथम दृष्टांत में सिद्ध करते हैं जैसे

गृहके भीतर खरतनेवाला जो अंधकार है सो अपने आश्रयरूप गृहके अंतरवर्ती देशको क्या ? नहीं विषय करता जिससे भिन्न देशकी अपेक्षा करता है ॥ सो ऐसा तो देखनेमें नहीं आता ॥ किन्तु अंतरवर्ती देशको वह तम विषय करता है ॥ तैसे अविद्यारूप तम भी आश्रय और विषयके भेदकी अपेक्षा नहीं करता ॥ इति ॥ पूर्व यह दो विकल्प किये थे ॥ जीव और ब्रह्म शब्दसे एक आत्माको ही कहते हो अथवा दोनोंका भिन्न भिन्न अर्थ है ॥ इनमें प्रथम विकल्पको निषेध करके अब द्वितीय विकल्पको निषेध करते हैं ॥ जिस कारणसे अविद्या आश्रय और विषयके भेदकी अपेक्षा नहीं करती इसी हेतुसे जीव और ब्रह्मका भेद नहीं संभवता ॥ शंका ॥ जीव और ब्रह्म परस्पर भिन्न हैं ॥ अविद्याको आश्रय तथा विषयके भेदकी अपेक्षा होनेसे ॥ यह हेतु व्यधिकरण है ॥ क्योंकि परस्पर अभेद रूप साध्य तो जीव ब्रह्म रूप पक्षमेव तै है ॥ और आश्रय विषय भेद अनपेक्षत्वरूप हेतु अविद्यामेव तै है ॥ याते पूर्व उक्त हेतु स्वरूपा सिद्ध है ॥ समाधान ॥

❀ अथ जीव ब्रह्म के भेद का खंडन ❀

हे एकदेगि न्यहां और ही हेतु है सो तुम श्रवण करो ॥

मू० ॥ ब्रह्मात्मनो विभिन्नत्वे भेदः स्वाभाविको यदि ।

ओपाधिकोऽथवा भेदः सर्वथानुपपत्तिकः ॥ ७ ॥

नाराज छंद ॥ परेश यातमा विभेद भाष हो सुनायके । स्वभावि को कहो थवा उपाधिको बनायके । सभी प्रकार भेदकी वनौतना पछानिये ॥ अभेदको निहार खेदने कहूँ नयानिये ॥ ८ ॥

टी० ॥ और हेतुके प्रतिपादन करनेके लिये भिन्न पक्षमे विकल्प करते हैं ॥ ब्रह्म तथा आत्माका स्वाभाविक भेद कहते हो अथवा ओपा-

धिकभेदकहतेहो ॥ द्वितीयविकल्पका अर्थ तो आगे स्पष्ट होगा ॥ प्रथम विकल्पका यह अर्थ है। इतरकी अपेक्षा से रहित जो वस्तु का स्वरूप मात्र है तिस को स्वभाव कहते हैं । तिस वस्तु के स्वरूप पूर्युक्त भेद को स्वाभाविक भेद कहते हैं । तिस स्वाभाविक भेद पक्ष का अनुवाद पूर्वक खंडन करते हैं। यहां जीव तथा ब्रह्म का परस्पर भेद मानने में दो भेद सिद्ध होते हैं । तिन में आत्म प्रतियोगिक और ब्रह्म अनुयोगिक एक भेद है । और ब्रह्म प्रतियोगिक तथा आत्म अनुयोगिक द्वितीय भेद है । तिन में यदि प्रथम भेद मानो तो ब्रह्म में जडता की प्राप्ति होगी । क्योंकि आत्मा चिद्रूप है तिस से यदि ब्रह्म भिन्न होगा तो घट की न्याईं अवश्य जड होगा । यहां यह अनुमान जानना ॥

❀ ब्रह्मजडं भवितुमर्हति। आत्माभिन्नत्वात्। घटवत् ❀

॥ १ ॥ अथ ॥ ब्रह्मजड होने के योग्य है आत्मा से भिन्न होने से जो जो आत्मा से भिन्न होता है सो सो जड होता है। जैसे घट है ॥ इति ॥ और यदि तुम ब्रह्म की जडता स्वीकार करोगे तो (विज्ञान मानंद ब्रह्म) इस श्रुति का विरोध प्राप्त होगा । क्योंकि इस श्रुति में विज्ञान और ब्रह्म पद की समानाधिकरणता से अर्थ प्रतीत होता है । यदि ब्रह्म को विज्ञान से भिन्न मानोगे तो जडपणा अवश्य होगा । सो ब्रह्म का जडपणा पूर्व उक्त श्रुति के विरोध से तुम को भी इष्ट नहीं ॥ शंका ॥ हे वादि नूज्ञान और ब्रह्म पद के समानाधिकरण मात्र से ब्रह्म तथा ज्ञान का अर्थ भेद नहीं सिद्ध हो सकता क्योंकि जैसे (शुद्धः पटः) अथ शुद्ध गुणवाला पट है। यहां गुण गुणी भाव को लेकर समानाधिकरणता है तैसे ज्ञान और ब्रह्म पद की समानाधिकरणता भी गुण गुणी भाव को लेकर बन जायेगी ॥ तिस से अर्थ भेद नहीं सिद्ध हो सकता : । समाधानः ॥ हे एक देशिन् : ब्रह्म को यदि तुम जड मानोगे । तो अज्ञान की विषयता भी नहीं

वनेगी । क्योंकिजड़मेंअज्ञान कृत्यावस्थाके प्रयोजनकाअभावहै ॥
 यातेअज्ञान विषयताकी सिद्धिअर्थज्ञान औब्रह्मका अभेदहीमानना
 उचितहै।इसप्रकारआत्माप्रतियोगिकतथा ब्रह्मअनुयोगिकभेदकोनिरा
 करणकरकेअवब्रह्मप्रतियोगिकतथाआत्मअनुयोगिक द्वितीयभेदको
 दूषितकरतेहैं । औरहेएकदेशिन् यदिब्रह्मसेभिन्नआत्माको मानोगेतो
 घटादिकोंकीन्याईआत्मामें अनात्मपनाप्राप्तहोगा । अर्थयह ॥ अप
 रिच्छिन्नतथासुख्यअपरोक्षताहोनेसेब्रह्मकोप्रत्यक्षपनाहै । तिसप्रत्यक्ष
 ब्रह्मसेआत्माकोभिन्नमानेहुये अवश्यहीपराक्षपनाअर्थात् अनात्मपना
 होगा । यातेद्वितीयभेदभीनहींसंभवता । इसप्रकारजीवतथाब्रह्मका
 स्वाभाविकभेदनिराकरणकरके अवतिनदोनोंके औपाधिकभेदमेंअनु
 वादपूर्वकविकल्पकरतेहैं ॥ जीवब्रह्मकाऔपाधिकभेदहै यहद्वितीयपक्ष
 पूर्वकहाथा । तिसमेंयहविचारकरनेयोग्यहै । उपाधिजन्यका नाम
 औपाधिकहै । वाउपाधिभास्यअर्थात् उपाधिकरकेप्रकाशने योग्यका
 नामऔपाधिकहै। अथवा।उपाधितंत्रअर्थात् उपाधिकेआधीनकानाम
 औपाधिकहै ॥ शंका॥जीवब्रह्मकायदि औपाधिकभेदसंभवैतोऔपा
 धिकशब्दकेअर्थका विचारकिया चाहिये । सोऔपाधिकभेदहीनहीं
 संभवता । क्योंकिउपाधिकेनिरूपणका अभाव है ।

✽ अथभेदमें उपाधिकेअभावका निरूपण ✽

सोदिखलातेहैं। जीवब्रह्मकेभेदका उपाधिअज्ञानहैवाअंतस्करण
 है।अथवा।अतिरेकहै ॥ यहांजीवब्रह्मके भेदाऽभेदकासंपादककोईधर्म
 विशेषअतिरेकशब्दकाअर्थजानना । इनमेप्रथमपक्षतानहींसंभवता ।
 क्योंकितिसअज्ञानकोविकाररहितब्रह्मतथाईश्वरकेभेदका संपादकपना

है जीवब्रह्मके भेदका वह संपादक नहीं । यह वार्ता ॥

✽ कारणोपाधिरीश्वरः । ✽

अ० ॥ कारणरूप अज्ञान उपाधिवाला ईश्वर है ॥ इस श्रुतिमें कथन की है । और द्वितीयपक्ष भी नहीं संभवता । क्योंकि तिस अंतस्करणको वांस्तव माने हुये भेदको भी वास्तवपना प्राप्त होगा ॥ और यदि अंतस्करण को कल्पित माने तो वह अनादि है वा । सादि है यह विचार कर्तव्य है ॥ सादिपक्षकानिराकरण आगे करेंगे । प्रथम अनादिपक्षमे यह विचार किया चाहिये । वह अंतस्करण सुषुप्ति आदिक अवस्थामे स्थित रहता है । वा । नहीं । पुनः प्रथमपक्षमे यह विचार कर्तव्य है ॥ क्या वह अंतस्करण स्थूलरूपता से रहित है । वा । सूक्ष्मरूपता से रहित है ॥ प्रथमपक्ष नहीं संभवता क्योंकि

✽ मनः सर्वैर्ध्यानैः सहाप्येति ✽

अ० ॥ सर्ववृत्तियों सहित अंतस्करण सुषुप्ति अवस्थामे लीन हो जाता है ॥ इस श्रुतिके विरोध होता है । और मनरूप अंतस्करण को स्थूल रूपता से विद्यमान हुये सुषुप्तिका भी अभाव होगा ॥ और द्वितीयपक्ष भी नहीं संभवता । क्योंकि सूक्ष्मपने का शक्तिवाले कारणरूप अज्ञान से भिन्न निरूपण नहीं हो सकता । और यदि कारणरूपता से अंतस्करण की स्थिति माने तो कारण ही वहां स्थित होगा । अंतस्करण नहीं । तिस अंतःकरण के निवृत्त हुये जीवब्रह्मका भेद भी नहीं सिद्ध होगा ॥ इसी रीति से अंतस्करण सुषुप्ति अवस्थामे नहीं रहता । यह पक्ष भी निरास हुया जान लेना ॥ और अंतस्करण को उपाधिरूपता के निराकरण की जो युक्ति है । तिसी से अतिरेक पक्ष भी निरास करने योग्य है ॥ और भेदाऽभेदका परस्पर विरोध होने से भी अतिरेक को उपाधिरूपता नहीं संभवती ॥ इस प्रकार उपाधिके निरूपण होने से जीव

औब्रह्मकाभेदऔपाधिकहैयहकथनअयुक्तहै ॥ समर्थान ॥

✽ अज्ञान को उपाधि रूपता निरूपण ✽

जो अज्ञान शुद्ध ब्रह्म तथा ईश्वर के भेद का उपाधि है सोई ही अज्ञान जीव ब्रह्म के भेद का उपाधि कहने योग्य है ॥ क्योंकि अज्ञान के कार्य अंतः करणादिकों को कदाचित् कहने से जीव ब्रह्म के भेद का उपाधि पनाना ही संभवता ॥ यद्यपि ईश्वर का उपाधि जो अज्ञान है सोई जीव का उपाधि है ॥ ऐसामानने से ईश्वर तथा जीव के सर्वज्ञतादिक धर्मों का संकर होगा तथापि आवरण शक्ति प्रधान अज्ञान जीव ब्रह्म के भेद का उपाधि है और विज्ञेय शक्ति प्रधान अज्ञान ईश्वर का उपाधि है ॥ इसी कारण से वेदांत ग्रंथों में माया उपाधि वाला ईश्वर कहा है ॥ या ते दोनों के धर्मों का संकर नहीं ॥ इति ॥

✽ अथ औपाधिक भेद का खंडन ✽

इस प्रकार औपाधिक पक्ष में तीन विकल्प करके और तिस में अज्ञान को उपाधि रूपता की संभावना करके तिस औपाधिक पक्ष को दूषित करने के लिये आरंभ करते हैं ॥ पूर्व औपाधिक भेद पक्ष में तीन विकल्प किये थे तिन में अज्ञान जन्य जीव ब्रह्म का भेद है ॥ यह प्रथम पक्ष है तिस में यह विचार कर्तव्य है ॥ वह जीव ब्रह्म का भेद सादि है अथवा अनादि है ॥ यदि अनादि कहो तो तिम को अज्ञान जन्यता नहीं वनेगी ॥ क्योंकि जो अनादि होता है सो अजन्य होता है यदि अनादिकी भी उत्पत्ति मानोगे । तो ब्रह्म की भी उत्पत्ति हुई चाहिये । और जो ऐसे कहो कि भेद व्यक्तियों सादि है परन्तु तिसका प्रवाह अनादि है । सो कथन भी नहीं संभवता । क्योंकि भेद व्यक्ति में भिन्नाऽभिन्न रूपता करके प्रवाह का निरूपण नहीं हो सकता । तथा हि भेद व्यक्ति से यदि प्रवाह को भिन्न माने तो प्रवाह को

ही अनादिपनासिद्धहोगा भेदव्यक्तिको नहीं । और भेदव्यक्ति से प्रवाहको अभिन्न माने तो प्रवाहको भी अनादिपना नहीं सिद्ध होगा । या तो भेदको सादिपना ही शेष रहता है ॥ तिसमें भी यह विचार किया चाहिये ॥ क्या? अज्ञानप्रयोजन से विना ही भेदको उत्पन्न करेगा अथवा किसी प्रयोजन के अर्थ उत्पन्न करेगा ॥ प्रथम पक्ष नहीं संभवता । क्योंकि निष्फल वस्तुको कारणता का ही असंभव है ॥ सफल वस्तुको ही कारण कहते हैं ॥ और द्वितीय पक्ष में भी वह प्रयोजन कोई जीव का है वा अज्ञानका अपना कोई प्रयोजन है ॥ यह विचार करने योग्य है ॥ प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता क्योंकि भेदकी उत्पत्ति से पूर्व जीवभाव ही अस्ति है ॥ और द्वितीय पक्ष में भी यह विचार कर्तव्य है ॥ क्या? आश्रय तथा विषयकालाभ यह अज्ञानका अपना प्रयोजन है ॥ अथवा अन्य कोई प्रयोजन है ॥ अंत्य पक्ष तो असंगत है । क्योंकि जीव ब्रह्म के भेद से उत्पन्न हुआ अज्ञानगत और कोई प्रयोजन निरूपण नहीं हो सकता और प्रथम पक्ष भी नहीं संभवता । क्योंकि भेदकी उत्पत्ति से पूर्व ही जीव ईश भेद से रहित आत्मानिष्ठ अज्ञानकी सिद्धि होने से भेदकी तिस अज्ञानको किंचित भी अपेक्षा नहीं ॥ शंका ॥ हेवादिन् भेदकी उत्पत्ति से पश्चात् अज्ञान आश्रय तथा विषयको प्राप्त होगा ॥ भेदकी उत्पत्ति से पूर्व तिसको आश्रय और विषयकालाभ नहीं ॥ सामाधान ॥ हे एकदेशिन "किसको किस विषयक अज्ञान है" ॥ इस प्रकार का प्रश्न लोक में प्रसिद्ध है । तिससे आश्रय तथा विषयकी अपेक्षा सहित ही अज्ञान प्रतीत होता है । अन्य प्रकार से नहीं । क्योंकि तिसको स्वतंत्रता का अभाव है । या तो भेदका उत्पन्न करना व्यर्थ है । यह भाव है । और अज्ञान भास्य जीव ब्रह्मका भेद है यह द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता । क्योंकि अज्ञानको ज्ञान से

भिन्नहोनेकरजडपनहै जडहोनेसेप्रकाशकताका अभावहै । और
अज्ञानकेआधीनजीवब्रह्मका भेदहैयहतृतीयपक्षभीअसंगतहै ।

* त्रिविधतंत्रताका निरूपण *

क्योंकितंत्रताअर्थात् पराधीनतातीनप्रकारकी लोकमेंदेखीहै ।
एकतोघटादिकार्यको अपनेकारण मृत्तिकादिकोंकी आधीनताहै ।
औरदूसरीमनुष्यादिशरीरोंको अपने आधारभूम्यादिकोंकीआधीनता
है ॥ औरतीसरीघटादिक पदार्थोंकोअपनेप्रकाशकेलिये सूर्यादिक
प्रकाशकोंकी आधीनताहै । तैसेजीवब्रह्म केभेदकोअज्ञानरूपउपाधि
करकेजन्यतारूपआधीनताहै।वा।उपाधिकेआश्रितपनारूपआधीनता
है वा।उपाधिकरकेप्रकाश्यत्व रूपआधीनताहै। इनतीनोंकेमध्यकोई
भीअज्ञानजन्यत्वादि प्रकारप्रकरणगतजीवब्रह्मकेभेदमेंनहीं संभवता
क्योंकिजीवब्रह्मकेभेदको अज्ञानजन्यताऔरअज्ञानभास्यताकातोपूर्व
निषेधकरहीआएहैं यातेपुनःनिषेधकरनेका कुछफलनहीं॥ औरतीसरी
अज्ञानआश्रयता रूपतंत्रताभीजीवब्रह्मके भेदनिष्ठनहीं संभवती ।
क्योंकिवहभेदजीवऔर ब्रह्मइनदोनोंकेमध्यकिसीएकमेंरहताहै । यदि
जीवप्रतियोगिकऔर ब्रह्मअनुयोगिकभेदहैतो ब्रह्ममेंवर्तताहै औरयदि
ब्रह्मप्रतियोगिकऔरजीव अनुयोगिकभेदहैतो जीवमेंवर्तताहै ॥ याते
वहभेदअज्ञानको कैसेआश्रयणकरेगा किंतुनहीं करसकता॥शंका॥
हेवादिन्जैसे “महाकाशसे घटाकाशभिन्नहै” इसप्रतीतिमें महाकाश
प्रतियोगिकभेदका घटाकाशकोधर्मिपनाहुये विशेषणरूपघटकोभी
धर्मिताहै ॥ तैसे “ब्रह्मसेअज्ञानीजीवभिन्नहै” इसप्रतीतिमेंभीब्रह्म
योगिकभेदकाजीवको धर्मिपनाहुयेभीजीवके विशेषणरूपअज्ञानको

तिस भेद की अधिकरणता क्यों नहीं होती किन्तु अवश्यहूँ चाहिये ॥ समाधान ॥ हे एकदेशिन् हमारे सिद्धांतमें अज्ञानको जीव भावकी उपाधिरूपता होनेसे तटस्थ होनेकर भेदके धर्मि जीवका विशेषण पनास्वीकार नहीं है । जैसे पाकरूप क्रियापाचकका उपाधिहूयीभी पाचकका विशेषण नहीं हो सकती ॥ और यदि पाकक्रियाको पाचकका विशेषण मान लें तो पाकक्रियामें भी पाचकपना प्राप्त होगा । “क्योंकि विशिष्टवृत्तिधर्मका विशेषणमें वर्तनेका नियम है” ॥ अर्थ यह ॥ पाक क्रियाविशिष्ट पुरुषमें वर्तमान जो पाचकत्वधर्म है सो पाचककी विशेषणीभूत क्रियामें भी प्राप्त होगा । सो ऐसा देखनेमें नहीं आता ॥ याते जीवब्रह्मके भेद ही अज्ञानमें अधिकरणता नहीं संभवती ॥ पाकक्रिया को पाचककी विशेषणता निराकरण करनेसे घटभी घटाकाशका विशेषण नहीं किन्तु उपाधि है याते पूर्वउक्तदृष्टांतभी असमीचीन है ॥ शंका । जीवअनुयोगिकजो ब्रह्मका भेद है वह अज्ञानमें क्यों नहीं वर्तेंगा किन्तु अवश्य वर्तेंगा ॥ क्योंकि एकही भेदके अनेक धर्मि स्वीकार हैं । जैसे एक ही घटभेदके पटादिक सर्वही धर्मि हैं । तैसे यहां भी भेदका धर्मि पना अज्ञान को बन जायेगा ॥ समाधान ॥

✽ अथ अज्ञानको जीवब्रह्मप्रतियोगिकभेदकी अधिकरणताका निषेध । ✽

अज्ञानमें ब्रह्मका भेद स्वाभाविक है ॥ वायौपाधिक है प्रथमपक्ष तो नहीं संभवता, क्योंकि एकही ब्रह्मप्रतियोगिकभेदको जीवमें यौपाधिक मानेहुये और अज्ञानमें स्वाभाविक मानेहुये द्विरूपता होनेसे विरुद्धपना है अर्थ यह स्वाभाविकत्व तथा यौपाधिकत्व दो विरोधिधर्म एकभेदरूपधर्ममें

नहीं संभवते ॥ और भेदको वास्तव होने से द्वेतापत्ति भी होगी ॥ याते भी प्रथम पक्ष असंगत है ॥ और द्वितीय पक्ष में अविद्या से भिन्न और कोई उपाधि निरूपण नहीं कर सकते । किन्तु अविद्या को ही उपाधि कहना होगा ॥ और अविद्या निष्ठ भेद में अविद्या को ही उपाधि माने हुये आत्मा श्रय दोष कैसे नहीं प्राप्त होगा ॥ इस प्रकार भेद मे स्वाभाविक तथा औपाधिक रूपा से न निरूपण होने के ब्रह्म का भेद अविद्या में है यह कथन निरर्थक है ॥ इतने कथन से जीव प्रतियोगिक भेद की आश्रयता भी अविद्या में निषेध की गयी ॥ क्योंकि जीव प्रतियोगिक भेद को ब्रह्म में औपाधिक होने के तिसको अविद्या में भी औपाधिक माने हुये कैसे आत्मा श्रय दोष नहीं होगा जिस कारण से अविद्या से भिन्न उपाधिका अभाव है और तिस जीव प्रतियोगिक भेद को अविद्या में स्वाभाविक माने हुये द्विरूपता की प्राप्ति भेद को होगी । क्योंकि ब्रह्म में वह भेद औपाधिक है और अविद्या में स्वाभाविक है ॥ एक ही भेद में द्विरूपता की प्राप्ति विरुद्ध है । और पूर्व की न्याई द्वेतापत्ति दोष भी इस पक्ष में प्राप्त होगा किंवा जीव से भिन्न अज्ञान को जीव भेद का उपाधि पना है अथवा जीव से अभिन्न अज्ञान को उपाधि पना है ॥ अंत्य पक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि अपने विषय को ही उपाधि पना अयुक्त है ॥ और आपको उपाधिरूपता मानने में आत्मा श्रय दोष भी होगा ॥ और अन्योऽन्या श्रय दोष होने से प्रथम पक्ष भी असंगत है । क्योंकि भेद सिद्धि के आधीन उपाधिकी सिद्धि है । और उपाधिकी सिद्धि के आधीन भेद की सिद्धि है । इस प्रकार स्वाभाविक तथा औपाधिक भेद को अज्ञान आश्रित तत्वनहीं संभवता । यह भाव है ॥ और जो एक देशी ऐसे कहे कि जैसे अज्ञान और आत्मा का संबंध अज्ञान के आ-

धीन है । तैसे ब्रह्मात्माका भेदभी अज्ञानके आधीन है । सो यह कथनभी नहीं संभवता । क्योंकि संबंधकों संबंधियोंके आधीन रहने कानियम है ॥ और भेदमें संबंधरूपताका अभाव है ॥ शंका ॥ हेवादिन् पूर्वकथनकी हुयी तीन प्रकारकी तंत्रतासे भिन्न ही जैसे द्रव्यत्व और गुणवत्ताका नियम्यनियामकभाव है तैसे जीवब्रह्मके भेद और अज्ञानका नियम्यनियामकभाव क्यों न हो भाव यह ॥ जैसे द्रव्यत्वको नियम्य होनेसे अपने नियामक गुणवत्ताकी आधीनता है तैसे नियम्य जो जीवब्रह्मका भेद तिसको भी अपने नियामक अज्ञानकी आधीनता क्यों नहीं होती किंतु हुयी चाहिये ॥ यहां व्यापकानाम नियम्य है और व्यापकानाम नियामक है ॥ समाधान ॥ हे एकदेशिन् एक अधिकरणमें रहनेवाले पदार्थोंका ही नियम्यनियामकभाव देखा है ॥ जैसे द्रव्यत्व और गुणवत्ता इन दोनोंको एक द्रव्य वृत्ति होनेसे समानाधिकरणाता है ॥ याते तिनका नियम्यनियामकभाव वनै है और यहां प्रसंगमें जीवब्रह्मके भेद और अज्ञानकी एक अधिकरणाताका अभाव है ॥ क्योंकि अज्ञानजीवनिष्ठ है और जीव प्रतियोगिक भेद ब्रह्मनिष्ठ है । इस प्रकार एक अधिकरणाताका अभाव होनेसे दृष्टांत विषम है ॥ याते जीवब्रह्मके भेद और अज्ञानका नियम्यनियामक भाव नहीं संभवता ॥ शंका ॥ हेवादिन् भेद और अज्ञानकी एक अधिकरणाता बन सकती है । क्योंकि “मैं अज्ञानी हूं” इस प्रतीतिसे अज्ञानजीवनिष्ठ है और “मैं ब्रह्म नहीं हूं” इस प्रतीतिसे ब्रह्म प्रतियोगिक भेद भी जीवनिष्ठ है । इसरीतिसे ब्रह्मभेद और अज्ञानको जीवनिष्ठ होनेसे तिनकी समानाधिकरणाताका अभाव कैसे कहते हो ॥ समाधान ॥ हे एकदेशिन् यहां अहं शब्दसे अतःकरणका द्वितीय पर्याय जो अहंकार है तिसका कथन है

अथवा अंतःकरणके साथ तदात्मभावको प्राप्तचैतन्यका अहंशब्दसे कथन है । वाशुद्धब्रह्मका कथन है ॥ प्रथम और द्वितीय पक्ष तो नहीं संभवते । क्योंकि तिन दोनोंको अज्ञान हेतु अधीन होनेकर अज्ञानका आश्रय पना नहीं संभवता । और तृतीय पक्ष में हमको इष्टा रति है ॥ क्योंकि शुद्ध चिन्मात्र ही अज्ञानका आश्रय तथा विषय है ।

* अज्ञानको शुद्धचेतन आश्रयत्व और विषयत्व का स्थापन *

शंका ॥ चेतनगात्रनिष्ठा अज्ञान होय रंतु विषय तिसका ब्रह्म हो जायेगा ॥ समाधान ॥ हे एकदेशिन्यहां यह तात्पर्य है ॥ ब्रह्म अज्ञान का विषय है यह जो तुम कहते हो ॥ इसमें ब्रह्मशब्द का अर्थ कौन है ॥ क्या विवंप्रतिविंबभावसे रहित शुद्ध चिन्मात्र है अथवा विवंबभावको प्राप्तचैतन्य ब्रह्मशब्द का अर्थ है ॥ प्रथम पक्ष में तो हमको भी इष्टा पति है ॥ क्योंकि शुद्ध चिन्मात्र को ही अज्ञान की विषयता हम मानते हैं ॥ और द्वितीय पक्ष में विवंबभावको अविद्यासे उत्तरकाल में होनेकर वह अविद्या तिसको विषय नहीं करती किंवा अज्ञात ब्रह्म की सिद्धि क्या प्रमाणसे है अथवा भ्रमसे है ॥ अथवा स्व प्रकाशतासे है ॥ प्रथम पक्ष में तो ब्रह्मको जड पना होगा ॥ क्योंकि जो प्रमाण का विषय होता है ॥ सो घट की न्याई जड ही होता है ॥ और ब्रह्म का विशेषणी भूत अविद्याको प्रमाण सिद्ध होनेकर दैतापत्ति भी होगी ॥ और विरोधसे भी प्रथम पक्ष असंगत है क्योंकि प्रमाणकर निवृत्ति के योग्य जो अज्ञान वह प्रमाणके संबंध को नहीं सहन कर सकता ॥ और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता क्योंकि जब भ्रमसे अज्ञात ब्रह्म की सिद्धि माने तो अविद्या की विषयता का अभाव प्रसंग होगा ॥ विषयके बाध होनेकर ही ज्ञानको भ्रम पना होता है ॥ और

तृतीयपक्षभीयसमीचीनहै ॥ क्योंकि अज्ञातब्रह्मका स्वप्रकाश रूपता
 करस्फुरणनहीं होता ॥ यातेसोब्रह्मकिसप्रकारअज्ञानकाविषयहोसकताहै
 इसीसेसर्वथाभेदकेनवननेसेजीवब्रह्मकेभेदसेरहितशुद्धआत्माकोअज्ञान
 आश्रयणकरकेतिसआत्माकोहीविषयकरताहै ॥ इसप्रकारअज्ञानकी
 विषयताआत्मानिष्ठसिद्धहुई ॥ इति ॥ अविद्याजीवब्रह्मविभागसेरहित
 शुद्धचिदात्माको आश्रयणकरतीहै ॥ औरतिसीको विषयकरतीहै ॥
 यहअर्थपूर्व निरूपणकिया ॥ तिसमे वृद्धोंकी संमत्तिकहतेहैं ॥ यह
 वार्तासर्वज्ञात्ममुनीयोंनेभीकथनकीहै ॥ उन्होंनेक्याकथनकियाहै ॥
 ऐसीआकांक्षाकेहुये कहतेहैं ॥

आश्रयत्वविषयत्वभागिनीनिर्विभागचितिरेवकेवला
 पूर्वसिद्धतमसोहिपश्चिमोनाश्रयोभवतिनापिगोचरः॥

सं० शा० अ० १ श्लो० ३१६ ॥

चौ० ॥ आश्रयत्वविषयत्वविभागन । निर्विभागचितिकेवल
 आत्मेन ॥ पूर्वसिद्धतमोहैयतिआश्रयविषयो नकार्यताति ॥१॥

टी० ॥ अज्ञानकेआश्रय तथाविषयके भजनेवालाचेतनहै ॥
 यद्यपिअज्ञानकाआश्रयजीवकोमानेहुयेतथा विषयब्रह्मकोमानेहुयेभी
 चेतनकोअज्ञानकीआश्रयतातथाविषयताकीअनुपपत्तिनहीं । क्योंकि
 जीवऔरब्रह्मइनदोनोंमेचेतनअनुगतहै ॥ तथापिजीवऔरईश्वरकोअज्ञान
 केआधीनहोनेकर जीवईशभेदसे रहितही चेतन अज्ञानका आश्रय
 तथाविषयहै ॥ शंका ॥ जैसेचेतनमात्रकोअज्ञानका आश्रयतथाविषय
 तुमनेमाना है ॥ तैसेअनात्माभीअज्ञानका आश्रयऔरविषयक्योंनहो
 ॥ समाधान ॥ तुम्हारीइसआशंकाकोमूलमेकथनकियाजो“एवकार”

तिसके अर्थ को स्पष्ट करने वाले केवल पदने निवारण किया है ॥ शुद्ध चेतन से भिन्न अनात्मवर्ग अज्ञान का आश्रय और विषय नहीं इसमें हेतुक होते हैं ॥ जिस कारण से अज्ञान प्रथम ही सिद्ध है ॥ इसी से पश्चात् होने वाला अनात्मा तिस अज्ञान का आश्रय और विषय नहीं बन सकता ॥ इति ॥

* शंका पूर्वक अज्ञान के एकत्व की प्रतिज्ञा *

शंका ॥ हेवादिन् अज्ञान का आश्रय एक माने हुये तिस की अनेकता निरूपण करनी कठिन है ॥ जिस कारण से जीव जीव प्रतिजगत् के उपादान भूत अज्ञान की अनेकता एक देशी ने भी नहीं कानी ॥ किंतु एक जीव के आश्रित एक ही अज्ञान माना है और अज्ञान को एक माने हुये बद्ध मुक्तादिव्यवस्था की अनुपपत्ति है ॥ इस प्रकार अज्ञान के एकत्व तथा अनेकत्व पक्ष में दोष देखने से हम यह प्रवृत्त हैं ॥ आश्रय तथा विषय का एकत्व माने हुये भी सो अज्ञान एक है अथवा अनेक है ॥ यह निर्णय कैसे हुआ ॥ इस प्रकार एक तटस्थ की आशंका को सुनकर “धर्म की कल्पना से धर्म मात्र की कल्पना श्रेष्ठ है” इस न्याय को आश्रयण करके सिद्धांत मुद्रा को आश्रयण करने वाला पूर्व पक्षी उत्तर कथन करता है ॥ समाधान ॥ हेतु तटस्थ एक ही अज्ञान है यह हम कहते हैं ॥ शंका ॥ देवादि न्तिम् अज्ञान की एकता में साधक कौन है । भाव यह ॥ यदि तुम् अज्ञान के एकत्व विषयक प्रमाण कहोगे । तो अपसिद्धांत होगा ॥ क्योंकि प्रमाण सिद्ध अज्ञान को सत्य होने के रूढ़ नापत्ति रूप दोष प्राप्त होता है । और विरोध भी है । क्योंकि अज्ञान प्रमाण के संबंध को सहन ही नहीं करता और यदि तुम् कोई प्रमाण नहीं कहोगे । तो अज्ञान का एकत्व सिद्ध नहीं होगा । और यदि केवल युक्ति ही तिमका साधक कहोगे तो मूल प्रमाण से

रहिततिसयुक्तिको आभासरूपताहोगी । यातेकिसीप्रकारसेअज्ञान काएकत्वसिद्ध नहींहोसकता ।

*अथअज्ञानमे लौकिकादिप्रमाणकेखंडनपूर्वकलाघव

सहकृततर्कसेतिसके एकत्वकास्थापन ।* समाधान

मू० ॥ लौकिकीवैदिकीचापिनाज्ञानेदृश्यते प्रमा ।

कार्यदृष्ट्याथकल्प्यं चेल्लाघवादेकमेवतत् ।*८

भुजंगप्रयात० ॥ प्रमालौकिकी वैदिकीमोहिष्यारे ॥

अज्ञानं विषेनाहिकोईदिखारे ॥ यदीमृष्टिको देख,

ऊहाकैरहो । लघूतासितो एकहीजानलैहो ॥ १ ॥ *

टी० ॥ यहांकारिकाके पूर्वार्द्धसेअपसिद्धान्तकी आशंकाका परिहारजानना । औरउत्तार्द्धसे लाघवसंज्ञकतर्क अज्ञानकेएकत्वको सिद्धकरताहै।शंका।मूलकारिकामें (नाज्ञाने दृश्यतेप्रमा) अ० अज्ञान मेंकोईप्रमाणनहीं देखाजाता । यहजोकथनहैसोअयुक्तहै । क्योंकि अज्ञानके स्वरूपमें प्रमाणकाजो अदर्शनहै तिसकाप्रकरणके साथ किंचित्भीसंबंधनहींहै । जिसकारणसेअज्ञानके स्वरूपमेतोअज्ञानहैवा नहींइसप्रकारकेविवादका अभावहै । किंतुतिसके एकत्वऔरअनेकत्व मेंहीविवादहै ॥ यातेपूर्वकथननहींसंभवता ॥ समाधान । अज्ञानका जोसाधकहैवह तिसकेएकत्वकोभी सिद्धकरदेगा । इसअभिप्रायसेपूर्व कथनसंभवताहै । इसीअभिप्रायकोलेकर श्लोककीव्याख्याकरतेहैं । अज्ञान।क्या ? वेदप्रमाणकरसिद्धहैवा।मृत्युआदिप्रमाणकरसिद्धहै।यहां आदिपदसेअनुमान तथालौकिकशब्दका ग्रहणकरना ॥ अथवा ॥ दृश्यमानजगत्स्वरूपकार्यकी अन्यथाऽनुपपत्ति रूपतर्कसेवह अज्ञान

कल्पनाकरनेयोग्यहै ॥ अथ

❀ सर्ववेदायत् पदमामनन्ति ॥ ❀

इसश्रुतिकोनआश्रयण करकेअथमपक्षकोदूषित करतेहैं ।

❀ पूर्वकांडतथा उत्तरकांड रूपवेदकाधर्म,
औरब्रह्ममेंतात्पर्यनिरूपण । ❀

इनतीनोंपक्षोंमें प्रथमपक्षतोनहींसंभवता । क्योंकिसाक्षात्तथा परम्परासेपूर्वकांडरूपवेदकाकर्ममात्रविषयहै औरउत्तरकांडरूपवेदांतोंका साक्षात् तथापरंपरासे परिपूर्ण सच्चिदानंद ब्रह्ममात्र विषयहै ॥ शंका ॥ धर्मतथाब्रह्महीवेदवाक्योंकाविषयहै यहनियमआपक्योंकरते हो किन्तुजिसवाक्यसेजोअर्थश्रवणकियाहै तिसअर्थमेंसोवाक्यक्योंन प्रमाणहो॥समाधान॥धर्मतथाब्रह्मकेप्रतिपादनमेंहीफलकासंबंधहै भाव यह ॥ जिसकारणसेअध्ययनविधिफल वालेअर्थकाजोज्ञान तिसका उद्देशकरकेवेदाध्ययनकाविधानकरताहै॥औरसाक्षात्वेदसेप्रतिपादन कियाहुयाअर्थसर्वत्र फलवाला नहींहोसकता ॥ क्योंकिनामधेयऔर देवतादिरूपअर्थभीअनेकवाक्योंमेंप्रतीतहोताहै ॥ परन्तुतिनकेप्रतिपादनमें सुखतथादुःखाभावरूपफलका अदर्शनहै ॥ औरधर्मकाज्ञान अपनेविषयभूतधर्मका अनुष्ठानकराताहुया स्वर्गादिरूपफलकोउत्पन्न करताहै ॥ औरब्रह्मज्ञानतो अनुष्ठानकी अपेक्षासेबिनाहीअनेकदुःख रूपअज्ञानकीनिवृत्तिपूर्वकपरमानंदकाप्राप्तकहै ॥ इसरीतिसेधर्मतथा ब्रह्मकेप्रतिपादनमेंहीफलकासंबंधहै ॥ इनसेभिन्नअज्ञानरूपअर्थतथा श्रवणादिरूपअर्थकेप्रतिपादनमेंफलकामंबंधनहीं ॥ यातेअज्ञानमेंवेद प्रमाणकाअभावहै ॥ औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिस्पष्ट

प्रत्यक्षादिसिद्ध अज्ञानको मानेहुये वादियों का परस्पर विवाद न होना
 चाहिये ॥ यहां विवादग्रस्त ईश्वरादि प्रत्यक्ष से जो भिन्न पना है ॥ यह ही
 प्रत्यक्ष निष्ठ स्पष्ट पना है ॥ इस रीति से अज्ञान को प्रमाण का अविषय होने से
 अपसिद्धांत तथा विरोध की भी प्राप्ति नहीं होती यह भाव है ॥ यहां तक श्लोक
 के पूर्वार्द्ध का व्याख्यान किया ॥ अब अज्ञान को लौकिक तथा वैदिक प्रमाण
 कर असिद्ध मानेहुये प्रमाण के अभाव से तिसका एकत्व नहीं सिद्ध होगा ॥
 इस प्रकार की आशंका का लायक वह है सहिकारी जिसका ऐसी जो अन्यथा अनुप
 पति रूप युक्ति वह अज्ञान के एकत्व का साधक है इस प्रकार का परिहार रूपता
 कर उत्तरार्द्ध का व्याख्यान करते हैं ॥ जिस कारण से अज्ञान विषयक प्रमाण
 नहीं संभवता ॥ इसी कारण से स्वभाव से असंगत और उदासीन तथा स्वानंद
 करतृप्त आत्मा निश्चिन्ता और अनेक प्रकार के सुख दुःखादिरूप पूर्ण चरचना
 की अन्यथा अनुपपत्ति से अज्ञान कल्पना किया जाता है ॥ यह ही कथन करना
 योग्य है ॥ क्योंकि अन्य किसी रीति से पूर्ण चरचना की उपपत्ति नहीं संभवती
 भाव यह ॥ अज्ञान से विना असंग ईश्वर से जगत् रचना की अनुपपत्ति है ॥
 याते अज्ञान कल्पना किया जाता है ॥ शंका ॥ जैसे कुलाल घट को उत्पन्न
 करता हुया अज्ञान की अपेक्षा नहीं करता ॥ तैसे ईश्वर भी अज्ञान से विना ही
 जगत् रचना कर लेगा ॥ अज्ञान की कल्पना करने का किंचित भी प्रयोजन
 नहीं ॥ समाधान ॥ सोई श्वर शरीर तथा इन्द्रियों के संबंध से रहित है ॥
 यह वार्ता श्रुति में प्रसिद्ध है ॥ याते असंग को कर्तृत्व नहीं संभवता ॥ शंका ॥
 जैसे वस्त्र स्वभाव से जल के साथ संबंध वाला भी है परन्तु मोम से लिप्त हुया
 जल का असंसर्ग होता है ॥ तैसे ईश्वर स्वभाव से संगि हुया भी किसी उपाधि
 के वश से असंगि क्यों न हो ॥ समाधान ॥ वह ईश्वर स्वभाव से ही असंग

हे ॥ क्योंकि ॥

❀ असंगोह्यं पुरुषः ❀

अ० ॥ यह पुरुष असंग है ॥ इस श्रुति में ईश्वर का असंग स्वभाव कहा है ॥ और किसी उपाधिके न निरूपण होने के असंग पना औपाधिक नहीं किंतु स्वाभाविक है ॥ शंका ॥

❀ तत्तेजोऽमृजत् ॥ छं० उ० अ० ६ सं २॥३ ❀

अ० ॥ सो परमात्मा तेज को उत्पन्न करता भया ॥ इस श्रुति से ईश्वर मे कर्तृत्व प्रतीत होता है ॥ या ते असंग पना असिद्ध है ॥ समाधान ॥ हेवादि न वह ईश्वर उदासीन है अर्थात्थकर्ता है ॥ भाव यह चेतनकर्ता किसी प्रयोजन का उद्देश करके कार्य को रचना करता है ॥ और ईश्वर को जगत् रचना का प्रयोजन क्या? दुःखाभावरूप है अथवा सुखरूप है ॥ प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि दुःखाभाव तो ईश्वर मे स्वतः सिद्ध है ॥ और द्वितीय पक्ष भी असंगत है ॥ क्योंकि वह ईश्वर अपने स्वरूप भूत आनंद कर ही तृप्त है ॥ तिसी से दो नों प्रकार के प्रयोजन से सून्य होने के वह ईश्वर उदासीन है ॥ या ते तिसको तेजादि जगत् का कर्तृत्व युक्त नहीं है ॥ और

❀ यतोवा इमानि भूतानि जायंते ॥ ऐ० उ० षु० व० अ१ ❀

अ० ॥ जिस कारण से यह सर्व भूत उत्पन्न होते हैं ॥ इस श्रुति ने जगत् रचना ईश्वर से कथन की है । इसी कारण से असंगत या उदासीन आत्मानिष्ठ प्रपंच रचना अज्ञान से विना नहीं संभवती । या ते अज्ञान कल्पना किया जाता है । शंका ॥ रजत को उत्पन्न करती हुयी शुक्ति अज्ञान की अपेक्षा करती है । क्यों कि वह रजत मिथ्या है । और प्रपंच को तो सत्य होने के तिसके उत्पादन मे

ईश्वरको अज्ञानकी अपेक्षा नहीं संभवती ॥ समाधान ॥ “नेति-
नेति” इस श्रुति से ईश्वरमे प्रपंचका निषेध श्रवण होता है ॥ याते रजतकी
न्याई प्रपंच भी मिथ्यारूप है ॥ तिसकी उत्पत्ति मे ईश्वरको अवश्य अज्ञानकी
अपेक्षा संभवती है ॥ और अनेक प्रकारके सुख दुःखादिरूप जगत्की रचना
अन्य प्रधानादिकों से नहीं संभवती ॥ किन्तु जैसे रज्जु अज्ञात हुयी अनेक
प्रकारके सर्प मूत्र धारामालादिरूप प्रातिभासिक प्रपंचको रचना करती हुयी
देखने में आती है ॥ इसी प्रकार असंग स्वभाव हुया भी ईश्वर अज्ञान के वश
से नाना प्रकारके प्रपंचको रचना करता है ॥ इस रीति से अज्ञानकी सिद्धि है यहाँ
अन्य रीतिका अभाव है ॥ तात्पर्य यह ॥ प्रथम ब्रह्मको असंग स्वभाव होने
से अज्ञान से बिना तिससे प्रपंच रचना का असंभव है ॥ और अन्य किसी प्रधान
प्रमाण आदिक सत्य उपाधि उपहित ब्रह्म से भी जगत् रचना का संभवन नहीं
क्योंकि कार्य मिथ्या है ॥ मिथ्या का सत्य कारण नहीं हो सकता ॥ और अन्य किसी
मिथ्या उपाधि से भी जगत् रचना का संभवन नहीं ॥ क्योंकि तिस उपाध्यांतरको
सादिपना है वा अनादिपना है ॥ यह पृष्ठव्य है ॥ प्रथम पक्ष में तो अनादि प्रपंचके
उत्पन्न करने में तिसको उपाधिपनाना नहीं संभवता ॥ और द्वितीय पक्ष माने हुये
अज्ञान का ही नामांतर करण है ॥ तिससे अज्ञानकी सिद्धि बलात्कार से हुयी ॥
और अज्ञानको प्रपंच रचनाकी साधकता का असंभव भी नहीं ॥ क्योंकि रज्जु
निष्ठ अनेक सर्पादिरूप प्रातिभासिक प्रपंचकी रचना में अज्ञानको साधक पना
देखने से असंभव का अभाव है ॥ इस प्रकार प्रपंच रचना में अन्य किसी प्रकार
के नवनने से अज्ञानकी कल्पना करनी युक्त है ॥ इति ॥

शंका ॥ ❀ अज्ञानके एकत्वका निर्धार ॥ ❀

इस पूर्व उक्त रीति से अज्ञानकी कल्पना करो परंतु तिसका एकत्व

किसकारणसेहै । समाधान ॥ तिसपूर्वकथनसे कल्पनाका विषय भूतसोथज्ञानएकहै वाअनेकहै इसप्रकारकेविवाद हुएएकहीअज्ञानहै यहनिर्णयहुया । यद्यपिक्रमसे होनेवाले अनेककार्योंके देखनेसे अनेकअज्ञानोंकी कल्पनाप्राप्त होतीहै । तथापि वहएकही अज्ञान विचित्र शक्तियोंवालाहै ॥ यातेतिससे विचित्रकार्यकीउपपत्तिहै ॥ औरएकही विचित्रशक्तिवाले पदार्थको अनेककार्यकीजनकताकोई दृष्टिकाअगोचरभीनहीं। क्योंकिस्वप्नमें अनेकप्रकारकेकार्यकीजनकता निद्रादोषमेंदेखीहै ॥ इसीसेअज्ञानएकहै । औरयदिएकदेशीऐसेकहे। अज्ञानरूप धर्मिका ग्राहकजो प्रपंचरचनाकी अन्यथाऽनुपपत्तिरूप तर्कहैतिसकाबाधहोगा ॥ क्योंकिअज्ञाननिष्ठएकत्वमानेहुए अनेक प्रकारकेसुखदुःखादिरूपप्रपंचरचनाकीतिसमेंअधटमानताहै । सोयह कथनभीनहीं संभवता ॥ क्योंकिप्रपंचरचना अज्ञानकेएकत्वतथा अनेकत्वकल्पना करनेमेंउदासीनहै ॥ औरएककोअनेकविधकार्यका जनकपनाभीपूर्वदृष्टान्तसे सिद्धकरआएहैं ॥ यातेधर्मिकेग्राहकअन्यथा ऽनुपपत्तिरूपतर्कका बाधनहीं ॥ शंका ॥ अनेकअज्ञानकल्पनाकिये जावें ॥ वाअनेकशक्तियोंकीकल्पनाहो । इसमेंक्याविलक्षणताहै ॥ समाधान ॥ धर्मिकीअनेकताकल्पना करनेसेधर्मकीअनेकताकल्पना करनीअष्टहै ॥ इसन्यायसेधर्मिका एकत्वकल्पनाकरनेमें लाभवहै ॥ तिसलाघवसहकृत अन्यथाऽनुपपत्ति रूपतर्क विचित्रशक्तिवालेएक अज्ञानकोग्रहणकरके विश्रामकोप्राप्तहोताहै॥ यहकथनहीयुक्तहै। इति।

❀ अथअज्ञानके एकत्वसाधनका फलनिरूपणा ❀

शंका॥ प्रपंचरचनाजैसेएक अज्ञानसे बनसकतीहै । तैसेअज्ञाननाना

मानेहुएभीवनसकतीथी पुनः अज्ञानकेएकत्व साधनकाकोईफलनहीं।
समाधान ॥ यद्यपिमिथ्या प्रपंचरचनामें अज्ञानकाएकत्वसिद्धकरना
निष्फलहै तथापि वहअज्ञानकाएकत्वजीवके एकत्वकासाधकहै। याते
तिसकाएकत्वसिद्धकरनाउचितहीहै। इसीकारणसेएकजीववादी जीव
एककहतेहैं ॥ अज्ञानकाएकत्वजीवके एकत्वकासाधककैसेहै ॥ ऐसी
आकांक्षाके हुएकहतेहैं । अज्ञानकोजीव भावकाउपाधिपनाहै यह
पूर्वकथनकरआएहैं । औरउपाधिकायहलक्षणहै ॥ उपकहियेसमीप
स्थितहोकरअन्य पदार्थमेंअपने स्वरूपकोजो धारणकरेसो उपाधि
कहियेहै । जैसेघटतथादर्पणादि प्रसिद्धआकाश तथामुखादिकोंका
उपाधिहै । तैसेअज्ञानभी चिदात्मामेंअध्यस्त होनेकरसमीपहैऔर
चिदात्माकेसमीपस्थित होकरअपनेएकत्व धर्मकोउपहित चिदात्मामें
समर्पणकरताहै। यातेउपाधिरूपहै। ताअज्ञानउपहितचिदात्माभीजीव
भावकोप्राप्तहुया एकहीहोताहै ॥शंका॥ एकअज्ञानरूप उपाधिवाला
आत्माजीवभावकोप्राप्त हुयाअनेकरूपक्योंनहो ॥ क्योंकिजिसकारण
सेएकहीदर्पणादि रूपउपाधिमेंमुखस्तंभ पुरुषादिकअनेक रूपप्रतीत
होतेहैं ॥ समाधान ॥ हेएकदेशिन् उपाधिकेएकहुएभी विंकोंकेभेदसे
प्रतिविंकोंकीअनेकता दृष्टान्तमेंतोउक्तहै औरअकरखमेंतो विंवकानाना
पनाहैनहीं । तिसीकारणसेउपाधिकेएकहुए औरविंवकेएकहुएतत्तउप
हितप्रविंवभीएकहीहै । ऐसेएकजीववादी कहतेहैं इति ॥

❀अथअज्ञानतथाजीवके एकत्वतथाअनेकत्वकथन
करनेवाली श्रुतियोंकी व्यवस्थाकानिरूपण । *

शंका ॥ हेवादिन् लाघवसेएकही अज्ञानस्वीकारकरनेयोग्यहै।

१॥ यह तुमने पूर्वकथन किया सो असंगत है, क्योंकि ॥

❀ इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ॥ ❀

इस श्रुतिसे अज्ञान का नानापना प्रतीत होता है। और प्रमाणवाले

१॥ गौरव को युक्त होने से अग्रामाणिक लाघव अकिंचित्कर है। अर्थात् अर्थ

का साधक नहीं। और जो पूर्व कहा था जीव का एकत्व सिद्ध करने के अर्थ

१॥ अज्ञान का एकत्व सिद्ध करते हैं। सो यह कथन भी अयुक्त है क्योंकि ॥

❀ रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव । ❀ (क० उ० व० ५॥१६)

अ० ॥ उपाधि उपाधिके प्रति सो आत्मा तत्सदृशता को प्राप्त हुआ।

इस श्रुतिसे जीव का नानापना ही प्रतीत होता है ॥ याते अज्ञान एक है

और जीव एक है यह कथन श्रुतिसे विरुद्ध है। समाधान ॥ हे एकदेशिन्

असंगत था उदासीन विदात्मा से प्रपंच की रचना अज्ञान से विना संभवती

नहीं ॥ यह पूर्व कथन किया हुआ लाघव सहकृत अन्यथा अनुपपत्ति रूपतर्कतिस

कर सिद्ध जो अज्ञान का एकत्व और तिसका प्रयोजन जीव का एकत्व इन दोनों

अर्थों के अनुवाद करने वाली श्रुति भी विद्यमान है। और अज्ञान को एक माने हुये

(मायाभिः) इस बहुवचन रूपा श्रुति का विरोध भी नहीं हो सकता। क्योंकि वह

श्रुति मायागत शक्तियों के नानापन को प्रतिपादन करती है और शक्तियों को

माया का धर्म होने से लक्षणवृत्तिकर मायाशब्द बोध्यता तिनको संभवती है।

यदि ऐसी व्यवस्थान करें तो ।

❀ मायां तु प्रकृतिं विद्यात् ❀

इस श्रुति में कथन किये हुये (मायां) इस एकवचन का विरोध होगा ॥

तिस कारण से बहुवचन रूपा श्रुति अज्ञान के नानापन को नहीं कहती ॥ और

प्रामाणिकहोनेसेगौरवभीस्वीकारकियाजाताहै। यहकथनभीनहींसंभवता
क्योंकिपूर्वउक्तरीतिसे प्रामाणिकपनेकीहीअसिद्धिहै ॥ औरजोश्रुति
जीवकेनानापनेमेप्रमाणकहीवहभीअसंगतहै। क्योंकिवहमंत्रएकजीव
केअज्ञानकरकल्पितअनेक प्राणियोंकेभेदपरहै ॥ कोईजीवकेनानात्व
परनहीं ॥ यदिऐसेनमानोगेतो

✽ अजोह्येकअनीशयाशोचतिमुह्यमानः ✽

अ०॥ एकहीजन्मसेरहितआत्माहै ॥ अविद्याकरमोहकोप्राप्त
हुयाशोककरताहै॥इत्यादिकजीवकाएकत्वकथनकरनेवालेश्रुतिवचनों
काविरोधप्राप्तहोगा ॥ यातेजीवका नानापनानहींसंभवता ॥ इसपूर्व
उक्तअर्थकेअनुवादकरनेवालीश्रुतिअवयवांपठनकरतेहैं ॥

: अजामेकांलोहितशुक्लकृष्णांवह्वीःप्रजाःसृजमानां
सरूपाः ॥ अजोह्येकोऽपमाणोऽनुशेतेजहात्येनांभुक्त
भोगामजोऽन्यः ॥ श्वे० उ० अ० (४) मं० (५)

मत्तद्रमला० ॥ एकअविद्याजन्मोंरहितालालश्वेततमरूपीहै॥
अनिकप्रजाकोजनतीसोईजोअपनेसमरूपीहै ॥ एकअजातमचिदहै
जोई तहिसेवतअनुसोताहै ॥ ऐसअविद्याभुक्तभोगकोअन्यअजो
तजदेताहै॥१॥ इसश्रुतिरूपमंत्रकायहअर्थहै ॥यहांप्रथममंत्रकेद्वितीय
पादकोअर्थसेव्याख्यानकरतेहुये (अजां) इसपदकरके निवारणकरने
योग्यअंशकोकथनकरतेहैं ॥ मिथ्याभूतजगत्कोअविद्याहेलुककथन
करनायोग्यहै ॥ ऐसेद्वितीयपादकेअनुसारप्राप्तहुये यहसंशयहोताहै॥
वहअविद्याजन्यहैअथवाअजन्यहै ॥ समाधान॥ वहअविद्या(अजां)

कहियेजन्मरहितहै ॥ शंका ॥ इसमंत्रमेअविद्याकेवाचकपदकाअभाव होनेसेयहमंत्रअविद्याकोहीबोधननहींकरसकता तोतिसकाएकत्वकिस कारणसेहोगा ॥ औरअविद्या उपहितजीवकाएकत्व तोअतिदूरहै ॥ समाधान ॥ अविद्याकेवाचकपद काअभावनहीं ॥ क्योंकिस्त्रीलिंग रूपताकरनिर्देशकियाहुयाजो (अजां) यहपदहै तिसीको अविद्याकी वाचकताहै ॥ औरतिसअविद्यामे अनेकतानहीं किन्तु (एकां) कहिये वहएकहै ॥ यहांयहभीजानलेना ॥ अनिर्वचनीयरूपतासे जगत्और अविद्यादोनोंसामनहैं ॥ अतिसअविद्याकोविचित्रकार्यकेउत्पन्नकरने कीसामर्थ्यत्रिगुणात्मकरूपतासेकथनकरतेहैं ॥ (लोहितशुक्लकृष्णां) कहियेरजोगुणसतोगुण तमोगुणरूपवहअविद्याहै ॥ यातेविचित्रकार्य केउत्पन्नकरनेमेवहसमर्थहै ॥ तिसत्रिगुणात्मकतथा जन्मसेरहितऔर एकअविद्याउपाधिवालाजीवभीउत्पत्तिसेरहितहै ॥ यहकहतेहैं(अजः) कहियेअविद्योपहितजीवजन्मरहितहै ॥ औरवहजीवनानानहींकिन्तु “एकः” कहियेएकहै ॥ शंका ॥ जीवगतनानापनालोकमेअनुभव सिद्धहै ॥ तिसकाएकत्वतुमकैसेकहतेहो ॥ समाधान ॥

❀ एकोदेवःसर्वभूतेषुगूढः ॥ श्वे० उ० अ० ६।११ ❀

❀ नान्योतोऽस्तिद्रष्टानान्योतोऽस्तिश्रोता ॥

ह० उ० अ० ५ प्रा० ७।क० २१

❀ एकएवहिभूतात्माभूतेभूतेव्यवस्थितः ॥ स्मृ० ❀

अ० ॥ एकहीस्वप्नकाशचिदात्मासर्वभूतोंमेअविद्याकरआवृत होरहाहै ॥ औरइसआत्मासे भिन्नऔरकोईद्रष्टानहीं । औरनइससे भिन्नऔरकोईश्रोताहै ॥ औरएकही सर्वभूतोंका आत्माहरएकशरीरमे

अवस्थित है ॥ इस स्मृतिसहित उपनिषद्मे जीवका एकत्व प्रसिद्ध है ॥
 और उपाधित था विंवका जो एकत्व है सो प्रति विंवके एकत्वका नियामक है ॥
 इत्यादिक युक्ति कर भी एकत्व प्रसिद्ध है ॥ इतना अर्थ प्रसिद्धि अर्थक जो
 मंत्रमे "हि" यह पद है तिसने बोधन किया ॥ और जीवके अनेकत्वका
 अनुभव तो जीवके अज्ञान कर कल्पित अनेक प्राणियों के भेदको विषय करता
 है । कोई जीवके भेद को नहीं ॥ शंका ॥ स्वयं प्रकाश ब्रह्मसे अभिन्न जो जीव
 है तिसको विलक्षण विज्ञेय युक्त अवस्था कैसे प्राप्त हुयी ॥ समाधान ॥
 पूर्व कथन किये हुये लक्षण युक्त तिस अविद्याको आश्रयण कर के निद्रावाले
 पुरुष की न्याई शयन करता है ॥ अर्थात् अज्ञानसे आवृत्त हुआ ज्ञान नेत्रको
 निमीलन कर लेता है ॥ पश्चात् कार्याकाररूपतासे स्थित तिस अविद्याको
 ही (जुपमाणः) कहिये सेवन करता हुआ स्वप्नद्रष्टा पुरुष वत् नाना प्रकारके
 विज्ञेय युक्त जाग्रतादिरूप संसारको अनुभव करता है ॥ शंका ॥ अविद्या
 को अनादिरूपतासे अविनाशित पांहे ॥ यद्यपि यहां प्रागभावमे अतिव्याप्ति
 दोष निवारणके अर्थ अनादिके साथ भावरूपता भी कही चाहिये ॥ तथापि
 सत्कार्यवादी के मतमे प्रागभावके अनंगीकारसे भावरूपता कहने की आव-
 श्यकता नहीं ॥ इस प्रकार अविद्याको अविनाशित होनेसे मोक्षका अभाव
 प्रसंग होगा ॥ समाधान ॥ तत्त्वमस्यादि महावाक्यसे उत्पन्न हुआ जो
 आत्मतत्त्वका साक्षात्कार तिसकर (जहात्येनां) कहिये इस अविद्याको
 निवृत्त करता है ॥ अविद्यामे अनादित्व कल्पित होनेसे तत्त्वज्ञानसे निवृत्ति
 का असंभवन नहीं ॥ शंका ॥ यदि अविद्या त्यागने योग्य अर्थात् निवृत्त
 करने योग्य है तो तिस अविद्याको आत्मा किसलिये आश्रयण करता है ॥
 समाधान ॥ भोगके निमित्त अविद्याका आश्रयण आत्मा करता

है ॥ क्योंकि भोगको तिस अविद्याकर जन्यता है । अत्र स्वस्वरूप के साक्षात्कारसे प्रयोजनसे रहित तिसको मानता हुआ त्याग देता है ॥ इसी अर्थको कहते हैं ॥ (भुक्तभोगां) कहिये भोग लिया हो भोग जिसकर तिसको “भुक्तभोगा” कहते हैं ॥ तिस भुक्तभोगा अविद्याको प्रयोजन रहित जानकर त्याग देता है ॥ यहां “भुक्तभोगो यया” इस प्रकार का विग्रह करनेसे “यया” यह पद तृतीया विभक्त्यंत है ॥ और कर्ता तथा करणमेतृतीया विभक्ति होती है ॥ यहां यदि तृतीया विभक्ति कर्ता अर्थमे मानेतो अविद्या निष्ठ चेतनता होगी । और अविद्या में चेतनता है नहीं किंतु जड़ता है । याते कर्ता अर्थ मे तृतीया नहीं किन्तु साधनमे तृतीया जानने योग्य है ॥ इसी कारण से भोग का साधन होनेकर अविद्याको भोक्तृत्वका अभाव होनेसे चेतनताका असंभव है ॥ शंका ॥ अज्ञोजंतुः ॥ “ इसप्रतीतिसे अज्ञान विशिष्टमे जीवपना प्रसिद्ध है ॥ याते अविद्याको जीवके स्वरूपमे प्रविष्ट होनेकर ॥ तिस अविद्याको त्याग देता है ॥ वह कथन कैसे वनेगा ॥ क्योंकि अपने स्वरूप का त्यागना असंभव है ॥ समाधान ॥ अजोऽन्यः” कहिये वह जन्म रहित जीव अविद्यासे भिन्न है । कोई अविद्याको अंतर्भाव करके जीवपना नहीं । क्योंकि अविद्या जड़ है और जीव चेतन है । दोनों एक रूप नहीं हो सकते ॥ शंका ॥ अविद्याको जीवभावका अधिकरण माने हुये चेतनता की प्राप्ति अर्थसे तुमने कथन की सो अयुक्त है ॥ क्योंकि विशिष्टवृत्ति धर्मको विशेषण मेवर्तनेका नियम नहीं ॥ यदि ऐसा मानेतो “रक्तघटमानय” यहां पर भी रक्त रूप औघटत्व जातिका आनयन प्रसंग होगा ॥ क्योंकि वह दोनों घटक विशेषण हैं । उभय विशिष्ट घटमे वस्तुने वाली आनयन क्रिया तिन दोनों में

प्राप्तहोगी ॥ सोऐसा देखनेमें नहीं आता ॥ तैसे अज्ञानको जीवका विशेषण मानेहुये भीचेतनताकी प्राप्ति का कथन अयुक्त है ॥ समाधान ॥ यदि तुमको पूर्वकथनमें तो पनहीं तो और हेतु श्रवण करो ॥ अज्ञानजीवभावका उपाधिरूप हमको स्वीकार है । इसी कारणसे अविद्यानिष्ठचेतनताकी प्राप्ति नहीं संभवती । क्योंकि उपाधिवस्तुके स्वरूपसे वहिरभूत होता है ॥ यातेति सकात्याग भी बनसकता है ॥ इति ॥

✽ अथ एकजीववादमें बद्धमुक्तादिव्य

वस्थाका प्रकारनिरूपण ॥ ✽

पूर्वयह कथन किया प्रपंचरचनाका साधक अविद्या है और वह लाघवसे एक है । तैसी अविद्यारूप उपाधिवाला आत्माजीवभावको प्राप्तहुया एक ही होता है ॥ इति ॥ अतिस एकजीववादमें बंधमोक्षादिव्यवस्थाके उपपादनार्थ जिज्ञासाको प्रगटकरते हैं ।

मृ० ॥ बंधमोक्षव्यवस्थास्याज्जीवाऽभेदे कथं तव ।

अथादृष्टंतथैवाऽस्तुदृष्टत्वात् स्वप्नदृष्टवत् ॥ ९ ॥

सांगी० । बंधमोक्षोयेव्यावस्थाजीवाऽभेदे कैसे जी । तोने मानी जैसे है सोमोको भापो तैसे जी ॥ जैसे देखी तैसे है सोयामे का आनीती है । स्वप्नेनाई जागेमाही देखोयाकी रीति है ॥ १० ॥ टी० ।

शंका ॥ हे सिद्धांतिन् तेरे मतमें एक ही जीव मानेहुये तत्त्वज्ञानसे प्रथम “बद्ध है” इस प्रकार का ही व्यवहार होगा । और तत्त्वज्ञानसे अनंतर व्यवहारकर्ता का ही अभाव होनेसे मुक्तव्यवहार नहीं होगा ॥ और इदानीकालमें बद्ध तथा मुक्त यह दोनों व्यवहार देखे जाते हैं । इस कारणसे एकजीववादमें पूर्वोक्त दोनो व्यवहारोंकी अनुपपत्ति है । समाधान ॥

हेवादिन् जैसे नाना जीववादमें कोई बद्ध है कोई मुक्त है इस प्रकार के व्यवहार का विषय भूत जगत् देखा है तैसे एक जीववादमें भी बद्ध मुक्त व्यवस्था वाला जगत् विद्यमान है ॥ यद्यपि एक जीववादमें बंधमोक्षादिव्यवस्था की अनुपपत्ति पूर्व कथन की है ॥ तथापि वह अनुपपत्ति नहीं संभवती । क्योंकि दृष्टार्थमें अनुपपत्ति का अभाव है । अर्थात् एक जीववादमें भी चिदात्मा के अज्ञान कर कल्पित बद्ध मुक्तादिव्यवस्था का संसारमें दर्शन बन सकता है या ते अनुपपत्ति नहीं ॥ शंका ॥ अविद्या कर कल्पित पदार्थ को बाधित होने से व्यवहार की साधकता नहीं संभवती । समाधान ॥ हेवादिन् अविद्या से कल्पित पदार्थ को अविद्या कालमें व्यवहार का साधक पाना नहीं अथवा अविद्या के बाध कालमें तिसको व्यवहार का साधक पाना नहीं ॥ प्रथम पक्षमें तो कोई अनुपपत्ति नहीं । क्योंकि जैसे स्वप्नमें स्वप्नदृष्ट पुरुष की अविद्या कर कल्पित अनेक गज तुरंगादिक पदार्थों को अपने व्यवहार का साधक पना देखा है । तैसे जाग्रत कालमें भी क्यों न हो । और द्वितीय पक्षमें अविद्या को बाधित होने से व्यवहार का अभाव हमको इष्ट ही है । या ते एक जीववादमें किंचित भी दोष नहीं ॥ इति ॥ अवकारिका के पूर्वार्थ का विस्तार से व्याख्यान करते हैं । शंका ॥ यदि एक ही जीव है तो एक पुरुष बद्ध है और एक मुक्त है । यह व्यवस्था कैसे बनने लगी ॥ और यदि सिद्धांती ऐसे कहें एक जीववादमें व्यवस्था की क्रिया अनुपपत्ति है । क्योंकि द्वैत अनुभव सिद्ध है । और दृष्टार्थमें कोई अनुपपत्ति नहीं संभवती । सो यह कथन भी असमीचीन है । क्योंकि स्वरूप लाभाला अनुभव अनुपपत्ति को परिहार करता है यह तो सत्य है ॥ परंतु एक जीववादमें तो अनुभव का स्वरूप ही नहीं सिद्ध हो सकता वह अनुपपत्ति को कैसे दूर करेगा ॥ अनु.

भवकेअभावमें यहकारणहै । एकवामदेवसंज्ञक पुरुषजोश्रवणादि साधनसंपन्नहै तिसकोतत्त्वमत्यादि महावाक्यसे तत्त्वसाक्षात्कारहोकर सर्वसंसारकेउपादानकारणरूप अविद्याकीनिवृत्तिरूप मुक्तिहोतीहै । तिससेद्वैतगोचर अनुभवकाकरण अंतःकरणऔर इंद्रियादिकतथावद्ध मुक्तादिविषयरूप संसारकाअभावहोनेसे अनुभवकोस्वरूपलाभकाही अभावहैतोवह अनुपपत्तिकोकैसे परिहारकरेगा । समाधान ॥ हेवा दिन्वामदेवशब्दसे शरीराज्वच्छिन्नचैतन्यकहतेहो अथवा अनवच्छिन्न अज्ञानीचैतन्यकहतेहो । प्रथमपक्षतोनहींसंभवता । क्योंकिशरीरा ज्वच्छिन्नकोकल्पित होनेकरबंधमोक्षका अनधिकरणपनाहै । जिस कारणसेअविद्या वालाहीवद्धहोताहै । औरशरीराज्वच्छिन्नअविद्या वालाहैनहीं । क्योंकिवहअविद्याकाकार्य होनेकरअविद्यासेपश्चात् भावीहै । यातेशरीराज्वच्छिन्नचैतन्यवद्धनहीं । इसीसेवहमुक्तभी नहींकहाजाता क्योंकिवद्धकोही मुक्तहुयाकहतेहैं । औरअज्ञानो पाधिकअज्ञानीचैतन्यवामदेव शब्दकाअर्थहै । इसद्वितीयपक्षमेंसो अज्ञाननिवृत्तनहींहुया । क्योंकि “ मैअज्ञानीहूं ” इसअनुभवसेवह अज्ञानअवभीपूतीत होरहाहै । यातेअज्ञान कीनिवृत्तिकाअभावहोने सेअज्ञानकर कल्पित नानाप्रकारकेकरण समुदायका अज्ञानपर्यंत सद्भावहोनेकर द्वैतकाअनुभववनसकताहै । यहांयहअर्थजानना । अनुभयनहीं संभवता यहजोवादीने कहाथा इसमेंहम यहबूझतेहैं । क्यों?करणकेअभावसे अनुभवकाअभावहै वा विषयकेअभावसेतिसकी अनुपपत्तिहै । प्रथमपक्षतोनहींसंभवता । क्योंकिअंतःकरणऔरवाह्य इंद्रियतथाअनुमान औरशब्दादिक यहअनुभवकेकरण यथायोग्य

स्वीकारहैं ॥ शंका ॥ तिनकेस्वीकार करनेसे द्वैतकीप्राप्तिहोगी । समाधान ॥ वहसकलकरणअविषयकेकार्य होनेकरमिथ्याहैं ॥ याते द्वैतकेसाधकनहीं । औरद्वितीयपक्षमेंभीयह विचारकरनेयोग्यहै ॥ जिसविषयसेविनाअनुभवकी अनुपपत्तिकथनकी । सोविषयक्या ? अनुभवकेस्वरूपकाउपयोगीहै । अथवा।तिस अनुभवकेप्रमात्वकाउपयोगीहै । प्रथमपक्षतोनहींसंभवता ॥ क्योंकिविषयके अविद्यमानहुए भीअतीतादिज्ञानदेखनेमेंआताहैऔरयदिवादीद्वितीयपक्षकीआशंका करे विषयकेअभावसेअनुभवमेप्रामाण्यकीअनुपपत्तिहै ॥ औरयदिकोई ऐसेकहेविषयऔरअनुभवकेबीच प्रामाण्यसेक्याप्रयोजनहै,अपनेकरण सेउत्पन्नहुयाअनुभवबद्धमुक्तादिकव्यवस्थाकीअनुपपत्तिकापरिहारकर देगा । सोयहकथनभी नहींसंभवता । क्योंकिप्रामाण्यके असंभवसे अनुभवकार्यमेअसमर्थहोगा । भावयहएकजीववादमे बद्धमुक्तादिक व्यवस्थाकीअनुपपत्तिदूरकरनेमे समर्थनहींहोगा ॥ इसप्रकारप्रामाण्यकी अनुपपत्तिसेअनुभवकी अनुपपत्तिरूपद्वितीयपक्ष मेवादीने यहकहा चाहिये। किअपनेप्रामाण्यकेअर्थअनुभवकोकेसाविषयअपेक्षितहै।क्या ? अर्थक्रियामेसमर्थविषयहोवापरमार्थसत्यविषयहो। प्रथमपक्षकहोतोऐसा विषयविद्यमानहीहैतिसव्यवहारकेयोग्यविषयकेसद्भावहुयेअनुभवकेवल सेएकजीववादमेव्यवस्थाकासंभवहै ॥ शंका ॥ मिथ्याअर्थप्रामाण्यका संपादकनहीं अन्यथाप्रमज्ञानमेभी प्रमात्वहोगा इसलियेपरमार्थसत्य विषयहीप्रामाण्यकाप्रयोजक माननेयोग्यहै।औरअविचारकल्पितबद्ध मुक्तादिकपदार्थोंकोपरमार्थपनेकाअभावहोनेसे स्वगोचरअनुभवनिष्ठ प्रामाण्यकाउपपादकपना तिनकोनहींसंभवता ॥ इसप्रकारप्रपंचकी

सत्यतामानेहुयेजीवोंके अनेकपनेकी सत्यतामेतो क्याही कहनेयोग्यहै यहभावहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्यदिपरमार्थसत्यविषयहैयहद्वितीय पक्षतुममानोगे।तोयहऐसेकिसप्रकाशनेगा ॥ अर्थात्ब्रह्ममुक्तादिभेद विशिष्टपूंचसत्यकैसेहोगा ॥ क्योंकिपूंचसत्यनहींकिन्तुमिथ्याहै ॥ औरभेदविशिष्टपूंचसत्यहीक्योंनहोऐसेयदितुमकहोतोतिसमेयहकथन कियाचाहिये ॥

✽ अथवेदकेतात्पर्यकाएकअद्वैतमेनिर्धार ✽

क्या? अद्वैतकेग्राहकप्रमाणकाअभावहोनेसेभेदकोतुमसत्यकहते हो। अथवा।भेदकेमिथ्यापनेकाग्राहककोईप्रमाणनहींयातेभेदकोसत्यकहते हो॥ प्रथमपक्षतो नहीसंभवता।क्योंकिअद्वैतहीवेदकेतात्पर्यकाविषयहै। अर्थ यहतात्पर्यअर्थकेग्राहकउपक्रमदिपदलिंगोंकेसहित तत्त्वमस्यादि महावाक्यरूपवेद त्रिविधपरिच्छेदसेरहित वस्तुकोवास्तवरूपतासेबोधन करताहै।तिसकारणसेभेदपरमार्थसेसत्यनहींहोसकता॥औरमहावाक्यों कोअद्वैतमात्रबोधनमेयहहेतुभीहै।जिसकारणसेअध्ययनविधिफलवाले अर्थकेबोधवास्तेवेदवाक्योंके अध्ययनकीकर्तव्यताबोधन करताहै।और अद्वैतसाक्षात्कारहीफलवालाहै क्योंकि ॥

✽ तरतिशोकमात्मवित् ३० छ० अ० ७ ख० १॥✽

अ० ॥ आत्मसाक्षात्कारवालापुरुष शोकउपलक्षित अज्ञान तत्कार्यकोबाधकरताहै ॥ ऐसेश्रुतिनेकहाहै ॥यातेअद्वैतकेप्रतिपादन मेहीफलकासंबंधहै अन्यअर्थकेप्रतिपादनमेनहीं। इसकारणसेअद्वैत हीवेदकेतात्पर्यकाविषयहैयहअर्थसिद्धहुया ॥ इति ॥ अबद्वितीयपक्ष कोदूषितकरतेहैं ॥ औरहेवादिनसर्वभेदका मिथ्यापनाभीप्रसिद्धहै ॥

क्योंकि प्रसिद्ध जगत् का अधिष्ठान जो ब्रह्म है तिसमे “नेति नेति” इस वाक्य से भेद वशिष्ट सर्व जगत् का निषेध प्रतीत होता है अतः द्वितीय पक्ष भी असंगत है ॥ शंका ॥ हे सिद्धांति नृपेद का अद्वैत मे ही तात्पर्य है यह आपका कथन नहीं संभवता। क्योंकि वेद मे ही वामदेवादिक प्राचीन पुरुषों को ज्ञान भी सुना जाता है ॥

तद्वैत तत्पश्यन् नृपि वामदेवः प्रतिपेदे । ६० उ० अ० १ ब्रा० ४।१०

यह श्रुति वामदेव ज्ञान से मुक्त हुआ इस अर्थ को प्रतिपादन करती हुई भेद को भी विषय करती है ॥ तिससे अद्वैत ही श्रुति का विषय है यह कथन कैसे बन सकता है ॥ और यहां (वामदेवादिक) इस आदिपद से।

यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत् । ६० उ० अ० १।

ब्रा० ४।१०

अ० ॥ जो जो देवताओं के मध्य मे ब्रह्म बोध वाला हुआ वही ब्रह्म रूप हुआ ॥ इत्यादि श्रुति मे प्रसिद्ध अद्वैत साक्षात्कार वाले देवता मनुष्य तथा असुरों का ग्रहण है यह जानना ॥ इति ॥ और यदि सिद्धांतीयथा श्रुत अर्थ को अंगीकार करे तो जीवों का भेद ब्रह्मात्कार से मिद्ध हुआ ॥ समाधान ॥ हे वादि नृप तिसमे यह कथन करने योग्य है ॥ क्या? यह श्रुति वाक्य साक्षात् भेद को प्रतिपादन करता है ॥ अथवा “एतत्” कहिये आत्मा को “तत्” कहिये ब्रह्म रूप देखता हुआ अर्थात् “मैं ब्रह्म हूं” इस प्रकार साक्षात्कार करता हुआ मैं ही मनुष्य मैं ही सूर्य हुआ ऐसे सर्वात्म भाव की प्राप्ति के प्रतिपादक मंत्रों को देखता भया ॥ यह श्रवण किया जो अर्थ तिस की अनुपपत्ति से जीव भेद कल्पना किया जाता है। इन मे प्रथम पक्ष तो नहीं

संभवता। क्योंकि तिस वाक्य को जीव के भेद की प्रतिपादकता नहीं है ॥ इस
मे यह हेतु है। कि एक तो वामदेव वाक्य मे भेद को किसी पद का अर्थ न होने से
वाक्यार्थ पनान नहीं। और दूसरा तिस वाक्य को भेदाकार ज्ञान का जनक पना भी
नहीं ॥ शंका ॥ वामदेव कर्तृक ज्ञान से वामदेव सर्वात्म भाव की प्राप्ति वाला हुआ
यह जो श्रवण किया अर्थ वह तब बन सक्ता है यदि वामदेव पद का वाक्य कोई
मुक्त जीव मुभवद्दुमुत्तु से भिन्न हो। इस प्रकार जीवों के भेद से बिना वामदेव
को सर्वात्म भाव की प्राप्ति के अनुपपद्यमान होने से श्रुत अर्थ की, अनुपपत्ति
जीवों के भेद का ज्ञापक है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् यह द्वितीय पक्ष भी
नहीं संभवता ॥ जिस कारण से कल्पना पुरुष बुद्धि मूलक होती है। वह विरोधा
अधिकरण न्याय से निश्चित अर्थ वाली, श्रुतिकर बाध हो जाती है ॥ पूर्व
मीमांसा के प्रथमाध्यायगत तृतीय पाद के तृतीय सूत्र मे श्रुति तथा स्मृतिका
एक विषय मे परस्पर विरोध हुए प्रत्यक्ष श्रुति से स्मृतिका बाध निर्णय किया है
तिस को विरोधाधिकरण न्याय कहते हैं तिस मे धरीति कथन की है ॥

* औदुंवरी वेष्टनीया सर्वा *

अ० ॥ याग में उदुंबर वृक्ष की शाखा सर्व ही वेष्टन करके सामगाय
न करे यह स्मृति प्रमाण है अथवा अप्रमाण है ॥ इस प्रकार संशय के हुए पूर्व पक्ष
प्राप्त हुआ कि अष्टकादि स्मृतिकी न्याय यह स्मृति भी प्रमाण रूप है । सिद्धांत।

* औदुंवरी स्पृशन् गायेत् *

अ० । उदुंबर की शाखा को हस्त से स्पर्श करता हुआ गायन करे ॥
इस प्रत्यक्ष श्रुतिका विरोध होने से तिस स्मृतिके मूल वेद का अनुमान न हो
ने कर मूल के अभाव से तिस को अप्रमाणता है ॥ अथवा ॥ प्रत्यक्ष और

अनुमितदोनों श्रुतियोंका परस्परविरोध देखनेसे दोनोंको अप्रमाणताकी शंका प्राप्त हुई ॥ तिसी कारणसे यहां पर अनुमानका बाधनिरूपण किया है । और यदि वेद न स्मृतिका मूल पर प्रत्यक्ष वेद है ऐसे कहो तो निःसंदेह वह मूल हो । परंतु ऐसे माने हुए भी अपनेको प्रत्यक्ष वेद के अनुसार ही अनुष्ठान करने योग्य है । या तो प्रत्यक्ष श्रुति से अनुमित श्रुति मूलक स्मृतिका तथा पर प्रत्यक्ष वेद मूलक स्मृतिका बाध अवश्य होता है । तिसी रीति से ।

❀ अजो ह्येक एको देवः सर्वभूतांतरात्मा ❀

इत्यादि निश्चित अर्थ ज्ञान तथा जीवके एकत्व प्रतिपादक श्रुति वचनों का विरोध होनेकर पुरुषबुद्धि मूलक कल्पनाकी अनुपपत्ति है । शंका ॥ जीवके एकत्व प्रतिपादक वाक्योंको निश्चितार्थपना युक्त नहीं । क्योंकि एकजीववादमें एकजीवकी मुक्तिसे सर्वमुक्त हुए चाहिये इस तर्क का विरोध है । समाधान । हेवादिन् यह तर्क अभासरूप है । क्योंकि एकत्ववादीके प्रतिसर्वत्वका निरूपण ही अशक्य है । और यदि ऐसे कहो कि तर्कके साथ विरोध का अभाव हुआ भी अनुभव का विरोध तो अवश्य होगा क्योंकि जीवोंकानानात्व सर्वके अनुभव सिद्ध है । सो यह कहन भी अयुक्त है । क्योंकि तिस अनुभव को चेतन के अज्ञानकर कल्पित देहोंके भेद विषयक होनेकर भ्रमरूपता होनेसे तिसकर श्रुतिका बाध युक्त नहीं है । या तो स्वप्न की न्याई सर्वव्यवस्था का संभव है । इति ॥

❀ अथ पूर्वपक्षीकी रीतिसे अधिकारिके अभाव से मोक्ष का अभाव निरूपण ❀

अवसिद्धांतीके अभिप्रायको न जानता हुआ वादी कारिकामें

कथनकियेहुएदृष्टांतदार्ष्टांतभागको व्याख्यान करताहुआ सिद्धांती केअनिष्टकी आशंकाकरताहै ॥ शंका ॥ हेसिद्धांतिन् जैसेस्वप्नमेंएक हीस्वप्नद्रष्टापरमार्थसत्यहै। अन्यसर्वपदार्थ तिसकेभ्रमकरकल्पितहैं । इसीरीतिसेजाग्रतमेंभी एकहीद्रष्टापरमार्थसत्यहै। औरसर्वद्रष्टातिसकेभ्रम करकल्पितहैं । तैसेअंगीकारकियेहुए बहुतद्रष्टावोंकेमध्यकौनवहपर मार्थद्रष्टाहै ॥ इसप्रकारके निश्चयकाअभावहुए श्रवणादिकसाधनों केअनुष्ठानमें कौनप्रवृत्तहोगा ॥ औरसाधनोंके अनुष्ठानकाअभाव होनेसेमोक्षकाअभाव प्रसंगतथामोक्षप्रतिपादक शास्त्रभीनिष्फल होगा। औरयदिसिद्धांतिऐसीआशंकाकरे। किस्वप्नद्रष्टापरमार्थ सत्यहैयह प्रतीतिस्वप्नकालमेंहोतीहै। वा। स्वप्ननिवृत्तिकेउत्तरकालमेंहोतीहै । प्रथम पक्षतोर्हीसंभवता । क्योंकिस्वप्नकीन्याईजाग्रतमेंभी परमार्थद्रष्टा कानिश्चयहोजाएगा तबअनिश्चयके अभावसेश्रवणादिकोंमेंप्रवृत्ति क्योंनहोगी । औरसाधनोंकेअनुष्ठानसे मुक्तिथातिसकेप्रतिपादक शास्त्रकीसफलताभी अवश्यहोगी । औरद्वितीयपक्षभीअसंगतहै ॥ क्योंकिस्वप्ननिवृत्तिके उत्तरकालमेंजैसेयह प्रतीतिलुमनेमानीहै। तैसे जाग्रत् निवृत्तिकेउत्तर कालमेंहीइसप्रतीतिनेहोनायोग्यहै । औरवह संभवतीनहीं । तैसेहीदिसलातेहैं॥ जाग्रत्निवृत्तिकाउत्तरकालक्या ? स्वप्नकालहै ॥ अथवा। सुषुप्तिकालहै ॥ वासुप्तिकालहै। प्रथमपक्षतो नहींसंभवता। क्योंकिस्वप्ननिवृत्तिके उत्तरकालमेंही लुमनेऐसीप्रतीति कीउत्पत्तिमानीहै । औरद्वितीयपक्षभी असमीचीनहै । क्योंकि सुषुप्तिमेंविशेषज्ञानका अभावहै अन्यथासुषुप्तिकाही अभावहोगा । औरइसीकारणसेतृतीयपक्षभी नहींसंभवता। औरमोक्षकालमेंप्रमाता

के अभावसे भी तृतीयपक्ष असंगत है । याते पूर्वकथनकी हुईवादीकी शंका नहीं संभवती । सोयह सिद्धांतीका कथन भी अयुक्त है ॥ क्योंकि हमारे कर कथन किये हुए अर्थ का ही तुमको ज्ञान नहीं हुआ । मैं परमार्थ सत्य हूँ तथा अन्य सर्व मेरे भ्रम करके कल्पित हैं इस प्रकार वम द्रष्टा जानता है । यदि ऐसे हम कहते तो पूर्व उक्त तुम्हारे विकल्पों का अवकाश होता सो ऐसे तो हम नहीं कहते किन्तु स्वप्न के पदार्थों को स्वप्न द्रष्टा पुरुष की अविद्या का परिणाम होने से तिस स्वप्न प्रपञ्च के उत्पन्न करने वाली अविद्या की अधिष्ठाता स्वप्न द्रष्टा को है ॥ इसीसे वह परमार्थ सत्य है ॥ यह वार्ता युक्ति से निश्चय होती है ॥ तिस दृष्टांत से इस जाग्रत अवस्थामें भी द्रष्टा के परमार्थ सत्यता की संभावना के हुए नाना दृष्टावों के मध्यमें किस दृष्टा की अविद्या का परिणाम यह जगत् है ॥ इस प्रकार का संशय अवश्य होता है ॥ क्योंकि निश्चय का कारण कोई प्रतीत नहीं होता याते पूर्व उक्त शंका युक्त है ॥ इति ॥ समाधान ॥

❀ अथ स्वप्न दृष्टांतमें द्रष्टा के एकत्व का प्रतिपादन ❀

हेवादि जाग्रत अवस्थामें यनेक द्रष्टावों के निरूपण का अभाव होने से संशय के असंभव हुए श्रवणादिक साधनों के अनुष्ठानमें प्रवृत्ति हो जायेगी तिस कारण से अनिमोक्ष प्रसंग नहीं हो सक्ता ॥ याते निश्चय कर दे हात्मवाद को श्रवण करके तू भ्रांतिको प्राप्त हुआ है कि सप्ताश्रम में भ्रांतिको प्राप्त हुआ है यदि ऐसे कहें तो श्रवण कर स्वप्न कालमें स्वप्न द्रष्टा से भिन्न और जीव कल्पित है इसका क्या अर्थ है क्या ? देव गंधर्वादि संज्ञक शरीर कल्पित हैं अथवा । हमको अभिमत जो अज्ञान उपाधिक जीव है वह अज्ञान उपाधिक ही बहुत अनुभूत होते हैं तिन

अज्ञानोपाधिक अनुभूतोंके मध्यमें एक सत्य है और अन्य सर्व कल्पित हैं यह तुम कहते हो। यद्यपि तिन अनुभूतोंके मध्य एक सत्य है और अन्य सर्व कल्पित हैं यह कहना नहीं संभवता। क्योंकि अनुभवके विषयको अनुभूत कहते हैं तिसको नियमसे दृश्यरूपता होनेकर शुक्तिरजतकी न्याई मिथ्यापना है ॥ अनुभविताको ही सत्य पनायुक्त है ॥ याते द्वितीय विकल्प असंगत है ॥ तथापि तिन सर्व अज्ञान उपहितोंनिष्ठ अनुभवितापना भी विद्यमान है। इस कारणसे लाघवता कर क्या? एक ही परमार्थसे अनुभविता है अन्य अज्ञानी अनुभविता भी हैं ॥ परन्तु कल्पित हैं यह विकल्प बन सकता है ॥ इति ॥ इसरीतिसे विकल्प की संभावना करके अब इन दोनों विकल्पोंमें प्रथम विकल्प को दूषित करते हैं ॥ प्रथम पक्ष नहीं संभवता ॥ क्योंकि देवादि शरीरोंको कल्पित हुए भी द्रष्टा पने का अभाव होनेकर अनेक द्रष्टाओंकी कल्पनासे संशय के प्राप्त हुए अनिमोक्ष की प्राप्तिलक्षण विरोध का अभाव है ॥ शंका ॥ देह को अथवा देहाऽन्वित्र चेतन को द्रष्टा पना कल्पित होनेसे अनेक द्रष्टाओंकी कल्पना कैसे नहीं संभवती। और संशय के प्राप्त हुए अनिमोक्ष प्रसंगलक्षण विरोध कैसे नहीं प्राप्त होगा किन्तु अवश्य होगा ॥ समाधान ॥ हेवादिन् देह को अथवा देहाऽन्वित्र को हम श्रवणादिकोंमें अधिकारी नहीं कहते जिसकर विनगमना विरहरूप दोष हो। अर्थ यह जो द्रष्टा होता है वही श्रवणादिकोंमें अधिकारी होता है और अज्ञान का आश्रय ही द्रष्टा होता है ॥ देह अथवा देहाऽन्वित्र अज्ञान का आश्रय नहीं ॥ क्योंकि तिन दोनोंको अज्ञान का कार्य होनेसे अज्ञानके आश्रय पनकी अनुपपत्ति है ॥ तिसी कारणसे देहादिकोंको कल्पित हुए भी कौन परमार्थ सत्य श्रवणादिकोंमें अधिकारी है। इस प्रकार एक अर्थके निश्चायक युक्ति का अभाव होनेसे श्रव-

णादिकोंमें प्रवृत्तिके अभावहुए अर्थात् प्रसंगलक्षणविरोध नहीं है ॥ और स्वप्नमें अज्ञान उपहित जीवों का भेद अनुभव होता है यह द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि अज्ञान उपहित जीवों का भेद स्वप्नमें अनुभवन ही होता यद्यपि “मैं अज्ञानी हूँ” इस प्रकार अज्ञान उपहित स्वप्नद्रष्टा अपने स्वरूप को तो अनुभव करता ही है ॥ तथापि जीवों का भेद अनुभवन ही होता ॥ क्योंकि अज्ञान उपहित जीव का भेद प्रत्यक्ष प्रमाण ग्रहण करता है अथवा अनुमान ग्रहण करता है ॥ अथ मपक्ष में भी यह विचार किया चाहिये जिस अज्ञान को उपहित जीव के भेद को प्रत्यक्ष ग्रहण करता है ॥ वह अज्ञान क्या? एक ही अनेक जीव का उपाधि है अथवा जीव जीव प्रति अज्ञान भिन्न है प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता क्योंकि उपाधिके एकहुए तथा विंवके एकहुए प्रति विंव का भेद देखने में नहीं आता ॥ यह पूर्व निरूपण कर आए हैं ॥ और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि जैसे अपने से भिन्न दूसरे पुरुष का ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं होता तेसे दूसरे पुरुष को अज्ञान को भी अतीन्द्रिय होने से तिस अज्ञान उपहित को अन्य पुरुष प्रत्यक्ष करने को मर्म नहीं हो सकता ॥ शंका ॥ यद्यपि प्रत्यक्ष प्रमाण स्वप्न काल में जीव के भेद को नहीं ग्रहण कर सकता ॥ तथापि तिस तिम देह की चेष्टा कर वह जीव का भेद अनुमान किया जाता है ॥ तिस की यह रीति है ॥ शरीर अतीति के हस्त पादादिक अथवा वामें समवाय संबंध से रहने वाली और धर्माधर्म हैं निमित्त जिसमें ऐमी कोई विशेष क्रिया चेष्टा नाम से कह जाती है ॥ वह चेष्टा देह के भेद से भिन्न ही प्रतीत होती है ॥ तिस चेष्टा के उपादान भूत देह अतीति के अथवा वामें समवाय संबंध से रहता हुआ जो प्रयत्न नाले आत्मा का संयोग वह उस चेष्टा का अममवायिकारण है और वह चेष्टा प्रयत्न वत् आत्म संयोग रूप अममवायिकारण का अनुमान

करातीहुईस्वयसमवायिकारणकाविशेषणरूपताकरात्माकाभीअनु-
मानकरावतीहै ॥ तिसअनुमानकाआकारयहहै ॥

❀ देवदत्तदेहनिष्ठचेष्टाप्रयत्नवदात्मसंयोगाऽ
समवायिकारणकाचेष्टात्वात्मचेष्टावत्❀

अ० ॥ देवदत्तकेशरीरमेजोचेष्टाहै ॥ वहप्रयत्नवालेआत्मा
केसंयोगरूपअसमवायिकारणवालीहै ॥ चेष्टारूपहोनेसेजोजोचेष्टा
होतीहैसोसोप्रयत्नवदात्मसंयोगरूपअसमवायिकारणवालीहोतीहैजैसे
मेरेशरीरनिष्ठचेष्टाहै ॥ इति ॥ इसप्रकारवहआत्माप्रतिदेहभिन्नभिन्नहै ॥
यदिऐसेनमानेतोएकदेहमेचेष्टाकेहुएसर्वहीदेहचेष्टावालेहोंगे ॥ क्यों-
किचेष्टाकाहेतु आत्मातथा शरीरकासंयोग सर्वत्रविद्यमानहै ॥ तिसी
कारणसेतिसतिसशरीरकाअधिष्ठाताआत्मा तिसतिस शरीरकीचेष्टासे
भिन्नभिन्नअनुमानकियाजाताहै ॥ तिसअनुमानकाआकारयहहै ॥

❀ देवदत्तशरीराऽधिष्ठातात्मायज्ञदत्तात्मनः भिद्यते
यज्ञदत्तशरीरानधिकरणचेष्टासमवायिकारणसंयोगा
श्रयत्वात् ॥ यन्नैवंतन्नैवंयथायज्ञदत्तात्मा ❀

अ० ॥ देवदत्तकेशरीरकाअधिष्ठाताआत्मायज्ञदत्तकेआत्मासे
भिन्नहै ॥ यज्ञदत्तकाशरीरनहींहैअधिकरणजिसकाऐसीचेष्टाकेअसम-
वायिकारणरूपसंयोगकाआश्रयहोनेसे ॥ जोजोयज्ञदत्तकेआत्मासेभिन्न
नहींहै ॥ सोसोयज्ञदत्तशरीराऽनधिकरणचेष्टाकेअसमवायिकारणरूप
संयोगकाआश्रयभीनहींहै ॥ जैसेयज्ञदत्तकाआत्माहै ॥ इति ॥ इस
प्रकारस्वप्नकालमेजीवकाभेदअनुभवसिद्धहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्
यहद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ॥ क्योंकियहांयहअर्थजाननेयोग्यहै ॥

तिसतिसशरीरकीचेष्टासेपृथक्आत्माकाअनुमानजोतुमकरतेहो इसमे कौनकारणहै॥ क्या? एकदेहमेचेष्टाकेहुएसर्वहीदेहचेष्टाकरेंगेयहअति प्रसंगप्राप्तहोताहै अथवा एकआत्मासेअनेकदेहगतचेष्टानहींवनसकती अथवा अनेकशरीरोंमेएकहीआत्माकोअधिष्ठाता मानेहुएदूसरेशरीरोंमे कियेहुएकार्यकाअनुसंधानप्राप्तहोगा ॥इनमेप्रथमपक्षतोनहींसंभवता क्योंकि आत्मा का संयोग मात्र तो चेष्टा का कारण है नहीं किन्तु प्रयत्नवाले आत्माकासंयोगचेष्टाका कारणहै औरप्रयत्नजिसशरीरा ज्वच्छेद कर उत्पन्न हुआहै तिसी शरीरकी चेष्टा का हेतु है ॥ याते अतिप्रसंगकैसे प्राप्तहोगा किन्तुनहीं होगा । और तिसतिस शरीरके आरंभकथर्मादिनिमित्तकोभी नियामकहोनेसेअतिप्रसंगनहींहोसक्ता। अबद्वितीयपक्षको दूषितकरतेहैं॥जिसकारणसे तिसतिस शरीरमेंवर्तने वालीचेष्टास्व असमवायिकारण आत्मशरीरके संयोगकी अपेक्षा करतीहै ॥ तिससंयोगकाविशेषण आत्माएकहो अथवाअनेकहो ॥ इसमेंबहुउदासीनहै ॥ तिसीकारणसेइसचेष्टाकर आत्माकेभेदकाअनु माननहींकियाजाता ॥ किंवा । यहांयहअनुमानजानना ॥

❀अनेकशरीरवर्तिन्यश्चेष्टा एकात्मसंयोगा

ऽसमवायिन्यः ॥चेष्टात्वात् ॥

एकशरीरमात्र समवेतचेष्टावत् ॥ ❀

अ० ॥ अनेकशरीरोंमें वर्तनेवालीजोचेष्टाहै ॥ एकआत्माके संयोगरूपअसमवायिकारणवालीहै ॥ चेष्टारूपहोनेसे ॥ जोजो चेष्टाहोतीहैसोसोएकआत्माकेसंयोगरूपअसमवायिकारणवालीहोती है ॥ जैसेएकशरीरमात्रमें समवायसंबंधसे रहनेवालीचेष्टाहै ॥ इति ।

और यदि वादी ऐसे कहें ॥ कि ॥ शरीरमात्र निष्ट चेष्टात्वरूप उपाधि सं
 अनुमान में विद्यमान है ॥ क्योंकि जहां जहां एक आत्मसंयोग रूप व्रंस
 मंत्राधिकारण कत्व है। तहां तहां एक शरीरमात्र निष्ट चेष्टात्व है जैसे एक शरीर
 मंत्र समवेत चेष्टा में है ॥ इस प्रकार उपाधिसाध्य के साथ व्यापक है ॥ और
 जहां चेष्टात्व है तहां एक शरीरमात्र निष्ट चेष्टात्व का अभाव है ॥ जैसे अने-
 क शरीर समवेत चेष्टाओं में है। या तो साधन के साथ उपाधिको व्यापकता है
 इस रीति से पूर्व उक्त हेतु उपाधिक होने से दुष्ट है। सो यह वादी का कथन भी
 नहीं संभवता ॥ क्योंकि योगी के अनेक शरीरों की चेष्टा में साध्य के साथ
 यह उपाधि व्यापक है ॥ तहां “एकात्मसंयोग रूप असमवायिकारण
 कत्वरूप साध्य के विद्यमान हुए एक शरीरमात्र निष्ट चेष्टात्व का अभाव है।
 यति पूर्व उक्त हेतु दुष्ट नहीं ॥ इस प्रकार एक ही आत्मा से अनेक देह गंत
 चेष्टा के संभव में दृष्टांत कहते हैं। जैसे नैयायिकों के मत में योगी पुरुष को
 योग सिद्धि के बल से समूह शरीरों की रचना दशमे एक आत्मसंयोग से ही
 अनेक देहों में चेष्टा स्वीकार की है। तैसे यहां प्रकरण में भी एक आत्मसंयोग
 से ही अनेक देह गत चेष्टा बन सकती है ॥ शंका ॥ जैसे योगी पुरुष को
 अनेक शरीरों में किये हुए कार्य का अनुसंधान होता है तैसे यहां भी अनु
 संधान हुआ चाहिये क्योंकि सर्व देहों में एक ही आत्मा आपनमाना है।
 समाधान ॥ हेवादि नृह सत्तृतीय पक्ष में भी यह विचार कर्तव्य है ॥ शरीर
 अनुपहित अविद्या ज्वच्छिन्न जो साक्षि है। तिसको अनुसंधान तुम आपादन
 करते हो। अथवा शरीर ज्वच्छिन्न के प्रति आपादन करते हो। प्रथम
 पक्ष कहो तो वह हमको भी स्वीकार है। क्योंकि अविद्या ज्वच्छिन्न साक्षिको
 अनुसंधान होता ही है ॥ और द्वितीय पक्ष नहीं संभवता क्योंकि तिन

योगीकेदेहोंमेंभी उपाधिकेभेदसे तिसतिस देहाज्वच्छिन्नको अनुसंधाननहींहोता। योगीकेदेहोंमेंकौनअनुसंधानकरनेवालाहै। ऐसी आकांक्षाकेहुएकहतेहैं। तहांभीअज्ञानमात्रउपहितकोअनुसंधातापनाहै। तैसेही दार्ष्टांतमे जानना ॥ इसकथनकियेहुएअर्थको अनुभवसेदृढ करतेहैं। इसीकारणसेएकहीशरीरमेपादाज्वच्छिन्नचेतनमस्तकाज्वच्छिन्नचेतनकेदुःखकोनहींअनुसंधानकरता॥ अन्यथा “मैंपादाज्वच्छिन्न” शिरोवच्छिन्नकेदुःखवालाहूं ॥ ऐसाअनुभवहुआ चाहिये सोऐसा तोअनुभवनहींहोताकिन्तु “मेरेपादमेसुखहै” औरमेरेशिरमेदुःखहै”ऐसाअनुभवसर्वकोहोताहै। यातेअज्ञानउपहितकोहीअनुसंधातापनाहै शरीराज्वच्छिन्नकोनहीं। इसप्रकारपूर्वउक्तयुक्तिसेअज्ञानाज्वच्छिन्नजीवकाभेदस्वप्नकालमेप्रत्यक्षप्रमाणसेवाअनुमानप्रमाणसेनअनुभवहोनेकर जीवोंकेभेदकाअनुभवशरीरोंकेभेदकोहीविषयकरताहै। यहअर्थसिद्धहुआ यातेविनगमनाविरहदोषकाअभावहोनेसे बद्धमुक्तव्यवस्थाकीअनुपपत्तिनहीं ॥ इति ॥

* अथदार्ष्टांतमेद्रष्टाकेएकत्वकाप्रतिपादन *

इसप्रकारस्वप्नदृष्टांतमेद्रष्टाकाएकत्वप्रतिपादनकरकेअबदार्ष्टांतमेंभी द्रष्टाकाएकत्वऔरजीवोंकेभेदकाअनुभवशरीरोंकेभेदकोविषयकरताहै॥ औरअर्थसेबद्धमुक्तादिव्यवस्थाइनसर्वअर्थोंके प्रतिपादनकरनेकेलिये जिज्ञासाकोपूकटकरतेहैं ॥ यद्यपिस्वप्नमे पूर्वउक्त रीतिसे व्यवस्थाका संभवहै। तथापिइसजाग्रतव्यवस्थामेजीवोंकेभेदकाअनुभवकिसरीतिसे होताहै ॥ ऐसीजिज्ञासाकेहुएजीवोंकेभेदकाअनुभवसिद्धांतीउपपादन करताहै॥ हेवादिन्तुमसावधानहोकरश्रवणकरो॥ सोईजाग्रतव्यवस्था

मेभ्रांतिसहितहोताहै ॥ वहकौनहै। ऐसीआकांक्षाकेहुएकहतेहैं ॥ वह सजातीयविजातीयस्वगत भेदसेरहिततथा भेदाऽभेदसेरहितआत्माहै औरस्वहनित्यहै। इसीसेदेहादिकोंसेभिन्नहै। औरअविद्यातत्कार्यसेरहित शुद्धहै ॥ इसीसेअविद्यातत्कार्यको अनित्यहोनेकरऔरआत्माकोतिन सेभिन्नहोनेकरआत्माको पूर्वनित्यपनाकथनकियाहै। औरस्वहआत्माशुद्ध कहियेचेतनस्वरूपहै ॥ इसीहेतुसेअविद्यातत्कार्यआत्मानहीं। और जडस्वरूपअविद्यातत्कार्यसेभिन्नपना चेतनरूपआत्माकोयुक्तहीहै ॥ शंका ॥ आत्मासंसारिहैयांतेअविद्याकावहकार्यहै तिसकोआपनित्य कैसेकहतेहो ॥ समाधान ॥ हेवादिन्वह आत्मासुक्त स्वभाव है ॥ यद्यपितिसमेसंसारीभावअविद्याकाकार्यहै ॥ तथापिविशेषस्वरूपचेतन मात्रकल्पितनहींइसीअर्थकोश्रुतिभीकहतीहै ॥

❀ विमुक्तश्चविमुच्यते ❀

अ० ॥ वहमुक्तस्वभावआत्माआविद्यकबंधको स्वरूपबोधसे निवृत्तकरकेपुनःमुक्तव्यवहारकेभजनेवाला होताहै। इति ॥ इसीसेवह आत्माउपनिषद्प्रमाणमात्रकरहीवास्तवसेजाननेयोग्यहै ॥ यहांमात्र पदकहनेकायहभावहै ॥ यदिप्रत्यक्षादि प्रमाणोंकेसाथ उपनिषद्की संमतिहोगी। तोअधिगतअर्थगोचरहोनेसेउपनिषदोंकोअप्रमाणताहोगी यदिइतप्रमाणोंसे विरोधहोगा। तोभीअप्रमाणताहोगी। औरमात्रपदके कहनेसेकिसीप्रकारभीअप्रमाणतानहींहोती ॥ शंका ॥ शुद्धचेतनको जाग्रतादिअवस्थाकीप्राप्तिनहींसंभवती। क्योंकि तिनकोजीवकाधर्मपना है। समाधान॥ हेवादिन्वहशुद्ध चेतनहीजीवभावकोप्राप्तहोताहैयद्यपि शुद्धआत्माकोहीजीवभावकीप्राप्तिमानेहुएमुक्तत्वऔरसंसारित्वदोविरुद्ध

रूप एकमे प्राप्त होंगे। तथापि जेमें शुक्तिके अज्ञानकर कल्पित रूपसे प्रतीत हुई शुक्तिको विरुद्धद्विरूपवत्ताकी प्राप्ति नहीं होती। तैसे पूर्वउक्त आत्माके अज्ञानकर जीवभावको कल्पित होनेमें चेतनमें विरुद्धद्विरूपवत्ताकी प्राप्ति नहीं हो सकती॥ इमप्रकार आत्मा अज्ञान को या श्रवण करके जीवभावको प्राप्त होकर देवतिर्यकमनुयादि शरीरोंको रूपनामना है ॥ और पुनः तिन देवादि शरीरोंका महिकारिरूपनाकर ब्रह्मांडपर्यंत चतुर्दश लोकोंको रचना करता है ॥ और तिन देहोंमें कोई देव है कोई मनुष्य है कोई असुर है कोई सर्वशरीरोंके उत्पन्न करनेवाला ब्रह्मा है ॥ और कोई जगत्का पालन करनेवाला विष्णु है ॥ और कोई अन्यप्रलयकालमें सर्वके संहार करनेवाला रुद्र है ॥ इन तीनोंकी उपाधिमत्त्वादि गुण हैं ॥ तिन सत्त्वादि गुणोंके वशसे तिनमें उत्पादकत्वपालकत्वसंहारकर्तृत्वादिसर्वसामर्थ्य है ॥ इसप्रकार जीवोंके भेदका अन्तुभव और जगत्का अन्तुभव उपपादन करके अत्र अधिकारित्वके अन्तुभवको उपपादन करते हैं ॥ और में ब्राह्मणकुमार अथवा अक्षयुक्त हैं ॥ यहां शमादिसंपन्न अधिकारी ही ब्राह्मण शब्दसे गृहीत है ॥ तिसका ही वेदांत श्रवणमें अधिकार है। यह सूचन करनेको ब्राह्मणका ग्रहण है कोई जातिमात्र ब्राह्मणके वास्ते ब्राह्मणपदका ग्रहण नहीं ॥ और खानप्रस्थ आश्रमसे अन्तरही संन्यास करे ॥ इसक्रमसंन्यासके नियमाभाव सूचन करनेके लिये “कुमार” पदग्रहण किया है ॥ भाव यह संन्यास ग्रहणमें वैराग्य कारण है ॥ वह जिसकी सी आश्रम तथा अवस्थामें होत वी यह जीवसंन्यास ग्रहण करे ॥ इति ॥ श्रवणादिक साधनोंमें जो प्रवृत्ति है तिसमें प्रतिबंधका भाव सूचन करनेके अर्थ कहते हैं ॥ तिन विष्णु आदिकोंकी पूजानमस्कार पादसेवन श्रवणकीर्तन स्मरणदास्यसख्य आत्मनैवेदनरूप भक्तिका अनुष्ठान

करके श्रणादिक साधनों को संपादन करने में मोक्ष को सिद्ध करूंगा ॥ इस लिये आत्मज्ञान के अर्थी जिज्ञासु जनो ने ईश्वर भक्तिसकल विघ्नों के निवारण अर्थ आवश्यक करनी चाहिये यह भाव है ॥ इति ॥ इस प्रकार सर्व का अधिपति हुआ भी यह आत्मदेव्यज्ञान के प्रभाव से जाग्रत् अवस्थामे भ्रांतियुक्त होता है ॥ पुनः जैसे पूर्व कथन किया हुआ जो जाग्रत् प्रपंच तिस को उपसंहार करके स्वप्न काल में निद्रारूप दोष कर सहकृत हुआ आत्मदेव तै से प्रपंच को कल्पना कर तिस तिस शरीर तथा इन्द्रियों कर सिद्ध होने योग्य भोगों को भोग कर पुनः यह भ्रम होता है ॥ वसिष्ठादिक मुनि मुक्त हुए हैं उन से भिन्न और जीव बद्ध हैं ॥ और मैं भी कोई बद्ध हूं । दुःखी हूं । तथा संसारी हूं । किसी प्रकार मुक्त हो जाऊं ॥ ऐसे कल्पना करके पुनः तिस स्वप्न अवस्था को उपसंहार करके सर्व भ्रम की निवृत्ति रूप जाग्रत् अवस्था अथवा सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है ॥ इति ॥ इस प्रकार आत्मानिष्ठ यज्ञान के वश से जीव भाव तथा ईश्वर भाव और जगत् रूपता और अवस्थावत्ता की कल्पना के हुए जो अर्थ सिद्ध हुआ सो कहते हैं । एक ही आत्मा व्यापक और स्व प्रकाश तथा आनंद एक स्वरूप अपने यज्ञान के वश से जीव है । संसारी है इत्यादि शब्दों का विषय होता है । जीव कल्पित ही है ऐसे जो कोई मानता है तिस कामत निषेध करते हैं । तिस शुद्ध आत्मा से भिन्न कोई संसारी है ऐसी संभावना भी नहीं कर सक्ते । अन्यथा मुक्ति और संसार का एक अधिकरण नहीं बनेगा । याते आत्मा से भिन्न कल्पित जीव कोई नहीं यह अर्थ सिद्ध हुआ । इस प्रकार ब्रह्मात्मा को अपने यज्ञान में संसारी पना प्रतिपादन करके अथ मुक्त पना भी तिसी में प्रतिपादन करते हैं । तिस पूर्णानंद स्वरूप आत्मदेव की ही जिस काल में अनादि संसार में संचित किये हुए पुराय कर्म न के समुदाय से पाप कर्म निवृत्त हो जाते हैं और विवेकादि चतुष्टय साधन संपन्न

होताहै । औरशास्त्रतथागुरुकी कृपासेप्राप्त तथाआदरनैरंतर्यदीर्घ
कालकरसेवनकियेहुए श्रवणादिसाधनोंकी पुष्कलतावालाहोताहै ।
तिसकोजिसकालमें तत्त्वमस्यादि महावाक्यसे उत्पन्नहुआस्वरूप
साक्षात्कारउदय होताहै । तिसकालमें अज्ञानतत्कार्यसर्वकोउप
संहारकरके स्वरूपानंदकर तृप्तहुआऔरअपने स्वरूपभूत महिमामें
स्थितहुआसोईआत्मा "मुक्तहै" इसव्यवहारका विषयहोताहै ॥ इस
प्रकारअनेकशरीरादिजगत् भ्रमकाउपादानरूप अज्ञानकीतत्त्वसाक्षा
त्कारसेनिवृत्तिकालमें तिससेभिन्न औरकोईसंसारीजीव तथातिसकर
अनुभूतद्वैतकिंचित्मात्रभीशेषनहींरहता यहपस्मरहस्यहै ॥ ६ ॥
इसपूर्वउक्तसिद्धांतके संग्रहका श्लोक ॥

ब्रह्माज्ञानादीशजीवादिभावात् भ्रांतं जाग्रत्स्वप्न
सुषुप्तीर्विभविमर्त्ति । स्वात्मज्ञानादज्ञताया निवृत्तौ
नान्योजीवोनास्तिचाऽज्ञातमन्यत् ॥ १ ॥

कवित्त ॥ व्यापकआनंदएक रसशुद्धब्रह्मजोई तमोजन्यभ्रांत
युतविविधलसतहै ॥ जीवईशभावहोय जगतविधारकर जाग्रत्सुपन
सुखपतकोधरतहै ॥ सोईजवईशध्याय गुरुकी शरणजायसुनमहावाक्य
निजबोधकोभरतहै ॥ तबहीअज्ञानसहकारज विनाशहोतकोऊअन्य
जीवनाहि द्वैतकोलखतहै ॥ १ ॥ इति ॥

✽ अथपूर्वअर्थके अनुवादपूर्वक एकदेशिपूर्वपक्षी-
कीरीतिसे अज्ञातसत्ताकानिरूपणा ॥ ✽

आत्माकाअज्ञान देवादिशरीररूपतासे औरतिनशरीरोंका
सहिकारिब्रह्मांडरूपतासे परिणामकों प्राप्तहोताहै । वहीअज्ञानतिस

तिसपदार्थगोचर वृत्तिरूपतासेविषयोंका चैतन्यकेसाथ संबंधहोनेके अर्थपरिणामकोप्राप्तहोताहै ॥ औरसोविषयाकारअविद्याकीवृत्तिचेतन रूपबोधकरप्रकाशितहुई ज्ञानाभासऔरभ्रमइसनामसेकहीजातीहै । विषयकास्फूर्णभी तिसीसेहोताहै । तिसीकारणसे देवादिशरीरऔर जगत् रूपविषयऔर तिनकाज्ञानरूपअविद्याकीवृत्तिइनसर्वकाअविद्या हीउपादानकारणहै । इसीकारणसे अद्वैतबोधकरअविद्याकीनिवृत्ति हुएकार्यरूपविषयऔर भ्रमज्ञानतिनसर्वकीनिवृत्तिहोतीहै । यहकथन वनसत्ताहै ॥ इति ॥ जगत् अज्ञातसत्तावालानहींरहता इसपूर्वकथन कोवादीनसहनकरताहुआशंकाकरताहै ।

मू०। अज्ञातसत्त्वेनेष्टं चेद्व्यवहारः कथंभवेत् ।

नह्यदर्शनमात्रेण विपरणोनाशनिश्चयात् । १०।

सो० ॥ अज्ञातसत्त्वनहि इष्टकहुविहारकत संभवे ।

अदर्शनते नहिक्लिष्ट ताअभावके ज्ञानते ॥ ११ ॥

टी० ॥ अनुभूयमानद्वैतनहीं है ऐसेकहनेवालासिद्धांतीपूछने योग्यहै ॥ किअनुभवकेविषयको अनुभूयमानकहतेहैं॥ तिसअनुभव शब्दसेक्या? प्रमाणजन्यज्ञानकाग्रहणहैअथवाअविद्याकीवृत्तिकाग्रहण है । प्रथमपक्षतो नहींसंभवता । क्योंकिविषयनिष्ठ अज्ञातसत्ताका अभावहोनेसेप्रमाणजन्यज्ञानकी विषयताअंगीकारहीनहीं। यदिद्वितीय पक्षकहोतोसर्वजगत्कोअपरोक्षआत्माकेअज्ञानकापरिणामहोनेसेतिस जगत्कोऔर तत्गोचरअविद्याकीवृत्तिको अपरोक्षएकरूपताप्राप्तहुई। जिसकारणसे अपरोक्षशुक्तिके अज्ञानकापरिणाम जोरजतऔरतिस का ज्ञानयहदोनोंपरोक्षनहींदेखे जाते । किंतुअपरोक्षही देखेहैं । तिस

कारणसे अपरोक्ष अविद्यावृत्तिकी विषयताको अप्राप्त जो दैत तिसकी सत्ता यदि स्वीकार नहीं है । तो अपरोक्ष पुत्रादिरूपविषयको ग्रहण त्याग रूप जो व्यवहार है वह अपरोक्ष अर्थके अभाव होने से नहीं होगा । यदि इसी अर्थमें दृष्टा पत्तिकरो तो नहीं संभवती । क्योंकि न देखने मात्रसे नाशकानिश्चय होने से कोई पुरुष विपादयुक्त नहीं होता ॥ याते अविद्या उपादान कजगत है यह कह्य नहीं असंगत है ॥ अवंसंक्षेप से कथन किये हुए श्लोकके अर्थको विस्तार से निरूपण करते हैं ॥ हे सिद्धांति नूतन मन्त्रों इस प्रकार कहते हैं ॥ जो तिस जीवकर अनुभूयमान दैत नहीं है ॥ क्योंकि जिस कारणसे अज्ञात दैतकी सत्ता भी ज्ञात दैतकी सत्तावत् नैयायिकादिक । अथवा हमारे एक देशी वेदांती अंगीकार करते हैं ॥ अज्ञात दैतकी सत्ता में विवरणा चौर्यों के अंगीकार भी प्रमाण रूप है ॥ सो दिखलाते हैं ॥ इसी कारणसे पारमार्थिक तथा व्यवहारिक औप्राति भासिक यह तीन प्रकार की सत्ता विवरणाचार्य मानते हैं ॥ सत्ता की त्रिप्रकारताका अंगीकार अज्ञात सत्ता के दैतको केसे उपपादक है । ऐसी अकांक्षा के हुए कहते हैं ॥ हे सिद्धांति नूतन सत्ता की त्रिप्रकारताका अंगीकार अज्ञात सत्ता के नमाने हुए नहीं बन संकता ॥ इसमें यह कारण है ॥ पूर्व उक्त युक्तिसे प्रपंच की प्राति भासिक संकता है । और सर्व प्रकार बाध से रहित होने से ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता है । इसरीति से दोनों प्रकार की संकता स्वीकार करने से दृष्टा तथा दृश्य पदार्थ के स्वरूप के निरूपण संभव हुआ सत्ता की त्रिप्रकारताका अंगीकार तिनका व्यर्थ होगा ॥ याते अविद्य कजतादि ज्ञात सत्ता वाले हैं ॥ और प्रपंचको अविद्योपादान क न होने से तिसकी अज्ञात सत्ता है । इस प्रकार त्रिविध सत्ता के अंगीकार की अनुपपत्ति अज्ञात सत्ता के दैत में प्रमाण है ॥ यह निरूपण करके अब अज्ञात

सत्ताके अनंगीकार रूप विपक्षमे दंडकहते हैं ॥ यदि अज्ञात दैत की सत्ता नहीं मानोगे तो गृह से बाहर दूर देश में गये हुए पुत्र तथा पशु आदिक सकल साधन सामग्री को न देखते हुए पुरुष को पुत्रादिकों का अभाव निश्चय होकर शोक अग्निसे दग्ध हुए और रुदन करते हुए को मरण ही प्राप्त होगा ॥ याते अज्ञात दैत अवश्य अंगीकार करने योग्य है यह अर्थ युक्ति और प्रमाण से सिद्ध हुआ ॥ इति ॥ शंका ॥ हेवादिन् पश्चादिक साधन सामग्री के दर्शन का अभाव तिनके अभाव का निश्चय कनहीं । क्योंकि सुप्रसिद्ध पुत्रादिकों के दर्शन का अभाव हुए भी तिनके अभाव का निश्चय नहीं होता । यदि वह भी अभाव का निश्चय माने तो सुप्रसिद्धा ही उच्छेद प्राप्त होगा । और जो सत्ता की त्रैलोक्यता का अंगीकार अज्ञात सत्त्व का साधक रूप प्रमाण पूर्ववादी ने कथन किया वह भी नहीं संभवता । क्योंकि प्रातिभासिक सत्ता का ही अन्तर्भेद मानने से सत्ता की त्रिविधता बन सकती है । भाव यह कि जिन प्रातीतिक पदार्थों का अदर्शन काल में असत्त्व निश्चय न हो वह व्यवहारिक सत्ता वाले हैं । और जिन का असत्त्व निश्चय हो वह प्रातीतिक सत्ता वाले हैं ॥ फिर जुदी अज्ञात सत्ता दैत की माननी निष्फल है ॥ और जो ऐसे कहो कि ज्ञात सत्ता वाले रजतादिकों को जैसे व्यवहार का साधक पनान ही दिखा । तैसे ही ज्ञात सत्ता वाले दैत प्रपंच को भी व्यवहार का साधक पनान ही होगा ॥ सो यह कथन भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि जैसे स्वप्न में देखे हुए ज्ञात सत्ता कगज अश्वादिकों को आरोहणादि व्यवहार का साधक पना है ॥ तैसे जाग्रत प्रपंच भी ज्ञात सत्ता वाला ही व्यवहार का साधक कैसे नहीं बन सत्ता किं वन सत्ता है ॥ और प्रातिभासिक रजतादिकों को भी प्रवृत्त्यादि व्यवहार का साधक पना विद्यमान ही है ॥ यहाँ यह अनुमान जानना ॥

कारणसे अतः परोक्ष यविद्यावृत्तिकी विषयता को अप्राप्त जो द्वैत तिसकी सत्ता यदि स्वीकार नहीं है । तो परोक्षपुत्रादिरूपविषयका ग्रहणत्यागरूपजो व्यवहार है वह परोक्षार्थके अभाव होने से नहीं होगा । यदि इसी अर्थमें इष्टापत्तिकरो तो नहीं संभवती । क्योंकि न देखने मात्रसे नाशका निश्चय होने से कोई पुरुषविषय युक्त नहीं होता ॥ याते अविद्या उपादानक जगत् है यह कथन ही असंगत है ॥ अथ संक्षेपसे कथन किये हुए श्लोकके अर्थको विस्तारसे निरूपण करते हैं ॥ हे सिद्धांति न तु मय्योऽस्य प्रकार कहते हो ॥ जो तिस जीवकर अनुभूयमान द्वैत नहीं है ॥ क्योंकि जिस कारणसे अज्ञात द्वैतकी सत्ता भी ज्ञात द्वैतकी सत्तावत् नैयायिकादिक । अथवा हमारे एक देशी वेदांती अंगीकार करते हैं ॥ अज्ञात द्वैतकी सत्ता में विवरणा चीर्याका अंगीकार भी प्रमाणरूप है ॥ सो दिखलाते हैं ॥ इसी कारणसे पारमार्थिक तथा व्यवहारिक और प्रातिभासिक यह तीन प्रकारकी सत्ता विवरणाचार्य मानते हैं ॥ सत्ताकी त्रिप्रकारताका अंगीकार अज्ञात सत्ताक द्वैतको कैसे उपपादक है । ऐसी अकांक्षा के हुए कहते हैं ॥ हे सिद्धांति न वह सत्ताकी त्रिप्रकारताका अंगीकार अज्ञात सत्ताके न माने हुए नहीं बनसकता ॥ इसमें यह कारण है ॥ पूर्व उक्त युक्तिसे प्रपञ्चकी प्रातिभासिक सत्ता है । और सर्वप्रकारवाधसे रहित होनेसे ब्रह्मकी पारमार्थिक सत्ता है । इसरी तिसे दोनो प्रकारकी सत्ता स्वीकार करनेसे द्रष्टा तथा दृश्यपदार्थके स्वरूपका निरूपण संभव हुए सत्ताकी त्रिप्रकारताका अंगीकार तिनका व्यर्थ होगा ॥ याते अविद्यकरजतादि ज्ञात सत्तावाले हैं ॥ और प्रपञ्चको अविद्योपादानक न होनेसे तिसकी अज्ञात सत्ता है । इस प्रकार त्रिविध सत्ताके अंगीकारकी अनुरूप पत्ति अज्ञात सत्ताक द्वैतमे प्रमाण है ॥ यह निरूपण करके अब अज्ञात

सत्ताके ग्रंथगीकाररूपविपक्षमे दंडकहते हैं ॥ यदि अज्ञातद्वैत की सत्ता नहीं मानोगे तो गृहसे वाहर दरदेशमे गये हुए पुत्र तथा पशु, आदिक सकल साधनसामग्री को न देखते हुए पुरुष को पुत्रादिकों का अभाव निश्चय होकर शोक ग्रन्थिसे दग्ध हुए और रुदन करते हुए को मरण ही प्राप्त होगा ॥ याते अज्ञातद्वैत अवश्य ग्रंथगीकार करने योग्य है यह अर्थ युक्ति और प्रमाणसे सिद्ध हुआ ॥ इति ॥ शंका ॥ हेवादिन् पश्चादिक साधनसामग्रीके दर्शनका अभाव तिनके अभावकानिश्चयक नहीं । क्योंकि सुपुत्रिमे पुत्रादिकोंके दर्शनका अभाव हुए भी तिनके अभावकानिश्चय नहीं होता । यदि वहां भी अभावकानिश्चय माने तो सुपुत्रिका ही उच्छेद प्राप्त होगा । और जो सत्ता की त्रैप्रकारताका ग्रंथगीकार अज्ञातसत्त्व का साधक रूपप्रमाण पूर्ववादीने कथन किया वह भी नहीं संभवता । क्योंकि प्रातिभासिक सत्ताका ही अत्रांतरभेद माननेसे सत्ता की त्रिविधता बन सकती है । भाव यह कि जिन प्रातीतिक पदार्थोंका अदर्शनकालमे असत्त्व निश्चय न हो वह व्यवहारिक सत्ता वाले हैं । और जिनका असत्त्व निश्चय हो वह प्रातीतिक सत्ता वाले हैं ॥ फिर बुद्धी अज्ञातसत्ताद्वैतकी माननी निष्फल है ॥ और जो ऐसे कहें कि ज्ञात सत्ता वाले रजतादिकों को जैसे व्यवहारका साधक पनान नहीं देखा । तैसे ही ज्ञातसत्ता वाले द्वैतप्रपंचको भी व्यवहारका साधक पनान नहीं होगा ॥ सो यह कथन भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि जैसे स्वप्नमे देखे हुए ज्ञातसत्ताक गज अश्व आदिकोंको आरोहणादिव्यवहारका साधक पना है ॥ तैसे जाग्रत प्रपंच भी ज्ञातसत्तावाला ही व्यवहारका साधक कैसे नहीं बन सत्ता किंतु बन सत्ता है ॥ और प्रातिभासिक रजतादिकों को भी प्रवृत्त्यादि व्यवहारका साधक पना विद्यमान ही है ॥ यहां यह अनुमान जानना ॥

* जागरावस्थं द्वैतं ज्ञातमेव सद्भवितुमर्हति व्यव हियमाणात्वात् ॥ स्वप्नप्रपञ्चवत् *

अ० ॥ जाग्रत् अवस्थामेजो द्वैत प्रपञ्च है ॥ सो ज्ञात सत्तावाला होने के योग्य है ॥ व्यवहार का विषय होने से ॥ जो जो व्यवहार का विषय है सो सो ज्ञात सत्तावाला होने के योग्य है ॥ जैसे स्वप्न प्रपञ्च है ॥ इति ॥ वादी का समाधान ॥ हे सिद्धांतिन् यह तुम्हारा अनुमान “बाधितत्व” रूप उपाधिकर दूषित है ॥ सो इस प्रकार है ॥ जहां जहां ज्ञात सत्तावाला द्वैत है ॥ तहां तहां “बाधितत्व” कहिये बाध ज्ञान विषयत्व है ॥ जैसे स्वप्न प्रपञ्च में है ॥ याते उपाधिसाध्य के साथ व्यापक है ॥ और जहां जहां व्यवहार की विषयता है ॥ तहां तहां बाध ज्ञान की विषयता रूप “बाधितत्व” का अभाव है ॥ जैसे जाग्रत् प्रपञ्च में है ॥ इस प्रकार प्रपञ्च में उपाधिसाधन के साथ व्यापक है ॥ इसी से जाग्रत् तथा स्वप्न प्रपञ्च की विलक्षणता है ॥ क्योंकि जाग्रत् बोध से तिस स्वप्न प्रपञ्च का बाध हो जाता है ॥ और इस जाग्रत् प्रपञ्च में आत्मसाक्षात्कार से पूर्व बाध नहीं होता ॥ यह कथन सिद्धांती के अभिप्राय से अथवा एक एक देशी के अभिप्राय से जानना याते अज्ञात सत्ता के द्वैत स्वीकार करने योग्य है ॥ १० ॥ इति ॥ ।

* अथ त्रिविध सत्ता के खंडन पूर्वक ख्यातियों का स्वरूप निरूपण *

जाग्रत् द्वैत प्रपञ्च अबाधित होने से अज्ञात सत्तावाला है यह पूर्व वादी ने कथन किया अतिस को सिद्धांती दूषित करता है ॥ यहां एक देशी का मत निरास करने से नैयायिकादिकों का मत भी निरास हो जावेगा

इसअभिप्रायसे एकदेशीका मतखंडन करनेकेलिये सिद्धांती तिस से पूछताहै ॥

मू० । सत्त्वत्रयंवदन्वादीप्रष्टव्योऽत्राधुनामया ।

सत्यंद्वैतमसत्यंवानाऽसत्येत्रिविधंकुतः ॥ ११ ॥

भुजंगपूयात ॥ त्रिधासत्त्ववादीभलेजोवखाने ॥ इहांपूछने योग्यमैनेवजाने ॥ कहोद्वैतसत्यं असत्यंवहोई ॥ उभेनावनेतोत्रिधा कैसेसोई ॥ १२ ॥

टी०—हेएकदेशिन् क्या? वास्तवद्वैतको आश्रयणकरकेअज्ञात सत्ताकोतुमसिद्धकरतेहो । अथवाअनिर्वचनीयद्वैतको आश्रयणकरके तिसकोसिद्धकरतेहो ॥ प्रथमपक्षतो नहींसंभवता ॥ क्योंकिजहां प्रत्यक्षादिप्रमाणोंनिष्ठप्रामाण्यकानिपेध कियाहै तहांवास्तवद्वैतका भी निपेधकरआएहैं ॥ औरद्वितीयपक्षमेंयहविचारकियाचाहिये । सत्यरूपतासेतथा असत्यरूपतासेऔरउभयरूपतासे जोकथनकेयोग्य नहोवहअनिर्वचनीय पदार्थप्रथमकहींशुक्ति रजतादिस्थलमेंप्रसिद्ध हैवानहीं ॥ अंतिमपक्षकहोतो वहनहींसंभवता । क्योंकिदृष्टांतका अभावहै । अर्थयहआकाशादि पंचनिष्ठ अनिर्वचनीयताकोअंगी कारकरकेतिसकी अज्ञातसत्ता सिद्धकरनेकी हेवादिन्तइच्छाकरताहैं यातेतिसप्रपंचकी अनिर्वचनीयतामें यहविचारकरनेयोग्यहै । प्रपंच निष्ठअनिर्वचनीयता प्रत्यक्षप्रमाणसेसिद्धहै ॥ अथवाअनुमानप्रमाण सेसिद्धहै ॥ प्रथमपक्षतो नहींसंभवता ॥ क्योंकिअनिर्वचनीयता को स्पष्टप्रत्यक्षकर सिद्धमानेहुयेवादियोंका परस्परविवाद नहीं होगा ॥ औरद्वितीयपक्षभी असंगतहै ॥ क्योंकिदृष्टांतकेअभाव

* जागरावस्थं द्वैतं ज्ञातमेव सद्भवितुमर्हति व्यव हियमाणात्वात् ॥ स्वप्नप्रपञ्चवत् *

अ० ॥ जाग्रत्थवस्थामेजो द्वैत प्रपञ्च है ॥ सो ज्ञात सत्तावाला होने के योग्य है ॥ व्यवहार का विषय होने से ॥ जो जो व्यवहार का विषय है सो सो ज्ञात सत्तावाला होने के योग्य है ॥ जैसे स्वप्न प्रपञ्च है ॥ इति ॥ वादी का समाधान ॥ हे सिद्धांतिन् यह तु ह्यारा अनुमान “बाधितत्व” रूप उपाधिकर दूषित है ॥ सो इस प्रकार है ॥ जहां जहां ज्ञात सत्तावाला द्वैत है ॥ तहां तहां “बाधितत्व” कहिये बाध ज्ञान विषयत्व है ॥ जैसे स्वप्न प्रपञ्च में है ॥ याते उपाधिसाध्य के साथ व्यापक है ॥ और जहां जहां व्यवहार की विषयता है ॥ तहां तहां बाध ज्ञान की विषयता रूप “बाधितत्व” का अभाव है ॥ जैसे जाग्रत् प्रपञ्च में है ॥ इस प्रकार प्रपञ्च में उपाधिसाधन के साथ व्यापक है ॥ इसी से जाग्रत् तथा स्वप्न प्रपञ्च की विलक्षणता है ॥ क्योंकि जाग्रत् बोध से तिस स्वप्न प्रपञ्च का बाध हो जाता है ॥ और इस जाग्रत् प्रपञ्च में आत्मसाक्षात्कार से पूर्व बाध नहीं होता ॥ यह कथन सिद्धांती के अभिप्राय से अथवा एक एक देशी के अभिप्राय से जानना याते अज्ञात सत्ता के द्वैत स्वीकार करने योग्य है ॥ १० ॥ इति ॥ ।

* अथ त्रिविध सत्ता के खंडन पूर्वक ख्यातियों का स्वरूप निरूपण *

जाग्रत् द्वैत प्रपञ्च अबाधित होने से अज्ञात सत्तावाला है यह पूर्व वादी ने कथन किया अतिस को सिद्धांती दूषित करता है ॥ यहां एक देशी का मत निरास करने से नैयायिकादिकों का मत भी निराम हो जावेगा

इसअभिप्रायसे एकदेशीका मतखंडन करनेकेलिये सिद्धांती तिस से पूछताहै ॥

मू० । सत्त्वत्रयंवदन्वादीप्रष्टव्योऽत्राधुनामया ।

सत्यंद्वैतमसत्यंवानाऽसत्येत्रिविधंकृतः ॥ ११ ॥

भुजंगपूयात ॥ त्रिधासत्त्ववादीभलेजोवखाने ॥ इहांपूछने योग्यमैनेवजाने ॥ कहोद्वैतसत्यं असत्यंवहोई ॥ उभेनावनेतोत्रिधा कैससोई ॥ १२ ॥

टी०—हेएकदेशिन् क्या? वास्तवद्वैतको आश्रयणकरकेअज्ञात सत्ताकोतुमसिद्धकरतेहो । अथवाअनिर्वचनीयद्वैतको आश्रयणकरके तिसकोसिद्धकरतेहो ॥ प्रथमपक्षतो नहींसंभवता ॥ क्योंकिजहां प्रत्यक्षादिप्रमाणोंनिष्ठप्रामाण्यकानिषेध कियाहै तहांवास्तवद्वैतका भी निषेधकरआएहैं ॥ औरद्वितीयपक्षमेंयहविचारकियाचाहिये । सत्यरूपतासेतथा असत्यरूपतासेऔरउभयरूपतासे जोकथनकेयोग्य नहोवहअनिर्वचनीय पदार्थप्रथमकहींशुक्ति रजतादिस्थलमेंप्रसिद्ध हैवानहीं ॥ अंतिमपक्षकहोतो वहनहींसंभवता । क्योंकिदृष्टांतका अभावहै । अर्थयहआकाशादि पंचनिष्ठ अनिर्वचनीयताकोअंगी कारकरकेतिसकी अज्ञातसत्ता सिद्धकरनेकी हेवादिनृत्तइच्छाकरताहैं यातेतिसप्रपंचकी अनिर्वचनीयतामें यहविचारकरनेयोग्यहै । प्रपंच निष्ठअनिर्वचनीयता प्रत्यक्षप्रमाणसेसिद्धहै ॥ अथवाअनुमानप्रमाण सेसिद्धहै ॥ प्रथमपक्षतो नहींसंभवता ॥ क्योंकिअनिर्वचनीयता को स्पष्टप्रत्यक्षकर सिद्धमानेहुयेवादियोंका परस्परविवाद नहीं होगा ॥ औरद्वितीयपक्षभी असंगतहै ॥ क्योंकिदृष्टांतकेअभाव

से अनुमानकरके आकाशादिपंचनिष्ठ अनिर्वचनीयता किसप्रकार
 तुमसिद्धकरोगे किंतु नहीं करसक्ते ॥ याते प्रथमपक्षही स्वीकार करने
 योग्य है ॥ क्योंकि अनिर्वचनीयताको आश्रयण करके ही अज्ञातसत्ता
 एकदेशीने सिद्ध करनी है ॥ यही अनिर्वचनीयताके सिद्ध करनेका
 प्रकरण में उपयोग है इसलिये वह अनिर्वचनीयपना शुक्तिरजतादिकों
 में प्रथम सिद्ध है ॥ इस प्रथमपक्षको - एकदेशी स्वीकार करता
 है ॥ यहां पर यह अर्थ जानने योग्य है ॥ “ इंदरजतम् ” यह प्रतीति
 रजतके संबंधाकार तथा इंदुत्वविशिष्ट पुरोवर्तिको विषय करनेवाली है
 अथवा नहीं ॥ यदि अंत्यपक्ष कहो तो रजतार्थी पुरुषकी स्मृत्तुल्य
 शक्ति पदार्थ में प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये ॥ क्योंकि प्रवृत्तिके कारण
 रूपविशिष्टज्ञानका अभाव है ॥ और यदि कोई अख्यातिवादी ऐसे कहें कि
 यहां दो ज्ञान हैं इंदुता गोचर तो सामान्यज्ञान प्रत्यक्षरूप है और रजतगोचर
 स्मृतिरूप ज्ञान है ॥ तिन दोनों के विवेकज्ञानाभाव से पुरोवर्ति विषयक
 प्रवृत्ति होती है ॥ सो यह कहथन अख्यातिवादी कानहीं संभवता ॥ क्योंकि जैसे
 दो ज्ञानों का तथा दो विषयों का विवेकज्ञानाभाव प्रवृत्तिकी सामग्री तुमने
 मानी है तैसे उसी समय में दोनों ज्ञानों के तथा दोनों विषयों के स्वरूप भिन्न होने
 से अविवेकज्ञानाभाव निवृत्तिकी सामग्री भी विद्यमान है ॥ तिससे निवृत्ति भी
 अवश्य हुई चाहिये ॥ और एककाल में परस्पर विरुद्ध प्रवृत्ति तथा निवृत्ति नहीं
 देखी जाती ॥ और सर्वत्र अर्थात् सत्यरजतादिस्थल में भी विवेकज्ञानाभाव
 से ही प्रवृत्ति हो जावेगी तो प्रयोजन से रहित विशिष्टज्ञानका संसार में लोप हो
 जाएगा ॥ याते विवेकज्ञानाभाव से पुरोवर्ति में प्रवृत्ति नहीं हो सकती किन्तु
 विशिष्टज्ञान से ही होती है इसलिये अंत्यपक्ष असंगत है ॥ और वह प्रतीति है

यह प्रथमपक्ष यदि कहो तो तिसमे भी यह विचारणीय है। क्या? वह प्रतीति निर्विषय होती है। अथवा। सविषय होती है। प्रथमपक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि निर्विषय को इज्ञान नहीं होता। और यदि विषय से बिना भीज्ञान मानोगे तो विज्ञानवादी बोधकामत प्राप्त होगा। और विषय सहित वह प्रतीति है यह द्वितीयपक्ष यदि कहो तो तिसमे यह विचार कर्तव्य है। क्या? तिसप्रतीतिक विषय सत् है अथवा असत् है। अंत्यपक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि वह प्रतीति अपरोक्ष है। और असत् की अपरोक्ष प्रतीति नहीं हो सकती। और यदि प्रथमपक्ष कहो तो तिसमे यह विचार कर्तव्य है। क्या? वह विषय पुरोवर्ति में सत् है अथवा अन्यस्थल में सत् है पुरोवर्ति में यदि सत् कहो तो उत्तरकाल में तिसको अमरूपता तथा बाध यह दोनों नहुए चाहिये ॥ क्योंकि सत्पदार्थ के यह दोनों नहीं होते ॥ और द्वितीयपक्ष में यह विचार करने योग्य है ॥ वह अन्यस्थल क्या? बुद्धि है ॥ अथवा कांता करादि है ॥ प्रथमपक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि बुद्धि मे रजत है इसमें प्रमाण का अभाव है और "इंदरजतम्" ॥ इस प्रकार का रजत विषय के अत्यय अथवा "नंदरजतम्" इस प्रकार का बाध प्रत्यय भी रजत की विज्ञानरूपता को बोधन नहीं करता। क्योंकि प्रथम प्रत्यय को इंदंता विशिष्ट पुरोवर्ति विषय कर जत का बोधक पना है ॥ और बाध प्रत्यय भी इंदंता विशिष्ट पुरोवर्ति को रजत से विवेचन करता है ॥ और वहरजत नित्य है अथवा कार्य है ॥ प्रथमपक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि नित्य रजत को स्थाई रूप होने कर क्षण के विज्ञानरूपता कैसे होगी ॥ और कार्यरूप रजत को बुद्धि से अत्यंत अभिन्न माने हुए तिन का कार्य कारण भाव नहीं सिद्ध होगा ॥ और यदि माया के बल से तिन का कार्य कारण भाव मानोगे तो स्वसिद्धांत की हानि होगी ॥ याते नित्यत्व और

से, अतुमानकरके आकाशादिपूषं च निष्ठग्रनिर्वचनीयता किसप्रकार तुम सिद्ध करोगे कि तु नहीं कर सकते ॥ याते प्रथम पक्ष ही स्वीकार करने योग्य है ॥ क्योंकि अग्रनिर्वचनीयता को आश्रयण करके ही यज्ञात सत्ता एकदेशीने सिद्ध करनी है ॥ यही अग्रनिर्वचनीयता के सिद्ध करने का प्रकरण में उपयोग है इसलिये वह अग्रनिर्वचनीयपना शुक्तिरजतादिकों में प्रथम प्रसिद्ध है ॥ इस प्रथम पक्ष को - एकदेशी स्वीकार करता है ॥ यहां पर यह अर्थ जानने योग्य है ॥ “ इदं रजतम् ” यह प्रतीति रजत के संबंधाकार तथा इदं त्वविशिष्ट पुरोवर्तिको विषय करने वाली है अथवा नहीं ॥ यदि अंत्यपक्ष कहो तो रजतार्थी पुरुष की - सन्मुख दे शवर्त्ति पदार्थ में प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये ॥ क्योंकि प्रवृत्तिके कारण रूपविशिष्टज्ञान का अभाव है ॥ और यदि कोई अख्यातिवादी ऐसे कहे कि यहां दो ज्ञान हैं इदं त गोचर तो सामान्य ज्ञान प्रत्यक्ष रूप है और रजत गोचर स्मृति रूप ज्ञान है ॥ तिन दोनों के विवेक ज्ञानाभाव से पुरोवर्त्ति विषयक प्रवृत्ति होती है ॥ सो यह कह्यन अख्यातिवादी का नहीं संभवता ॥ क्योंकि जैसे दो ज्ञानों का तथा दो विषयों का विवेक ज्ञानाभाव प्रवृत्तिकी सामग्री तुमने मानी है तैसे उसी समय मे दोनों ज्ञानों के तथा दोनों विषयों के स्वरूप भिन्न होने से अविवेक ज्ञानाभाव निवृत्तिकी सामग्री भी विद्यमान है ॥ तिससे निवृत्ति भी अवश्य हुई चाहिये ॥ और एक काल मे परस्पर विरुद्ध प्रवृत्ति तथा निवृत्ति नहीं देखी जाती ॥ और सर्वत्र यथा तस्य रजतादि स्थल मे भी विवेक ज्ञानाभाव से ही प्रवृत्ति हो जावेगी तो प्रयोजन से रहित विशिष्टज्ञान का संसार मे लोप हो जाएगा ॥ याते विवेक ज्ञानाभाव से पुरोवर्त्ति मे प्रवृत्ति नहीं हो सकती किन्तु विशिष्टज्ञान से ही होता है इसलिये अंत्यपक्ष असंगत है ॥ और वह प्रतीति है

यह प्रथमपक्ष यदि कहो तो तिसमे भी यह विचारणीय है। क्या? वह प्रतीति निर्विषय होती है। अथवा। सविषय होती है। प्रथमपक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि निर्विषय को ईज्ञान नहीं होता। और यदि विषय से विना भी ज्ञान मानोगे तो विज्ञानवादी बोधकामत प्राप्त होगा। और विषय सहित वह प्रतीति है यह द्वितीयपक्ष यदि कहो। तो तिसमे यह विचार कर्तव्य है। क्या? तिस प्रतीतिका विषय सत् है अथवा असत् है। अंत्यपक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि वह प्रतीति अपरोक्ष है। और असत् की अपरोक्ष प्रतीति नहीं हो सकती। और यदि प्रथमपक्ष कहो तो तिसमे यह विचार कर्तव्य है। क्या? वह विषय पुरोवर्ति में सत् है अथवा अन्यस्थल में सत् है पुरोवर्ति में यदि सत् कहो तो उत्तरकाल में तिसको भ्रमरूपता तथा बाध यह दोनों नहुए चाहिये ॥ क्योंकि सत्पदार्थ के यह दोनों नहीं होते ॥ और द्वितीयपक्ष में यह विचार करने योग्य है ॥ वह अन्यस्थल क्या? बुद्धि है ॥ अथवा कालाकरादि है ॥ प्रथमपक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि बुद्धि भेरजत है इसमें प्रमाण का अभाव है और "इदं रजतम्" ॥ इस प्रकार का रजत विषय कप्रत्यय अथवा "निरं रजतम्" इस प्रकार का बाध प्रत्यय भी रजत की विज्ञानरूपता को बोधन नहीं करता। क्योंकि प्रथमप्रत्यय को इदंता विशिष्ट पुरोवर्ति विषय रजत का बोधकंपना है ॥ और बाध प्रत्यय भी इदंता विशिष्ट पुरोवर्ति को रजत से विवेचन करता है ॥ और स्वरजत नित्य है अथवा कार्य है ॥ प्रथमपक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि नित्य रजत को स्थाई रूप होने के कारण के विज्ञानरूपता कैसे होगी ॥ और कार्यरूप रजत को बुद्धि से अत्यंत अभिन्न माने हुए तिन का कार्य कारण भाव नहीं सिद्ध होगा ॥ और यदि माया केवल से तिन का कार्य कारण भाव मानोगे तो स्वसिद्धांत की हानि होगी ॥ याते नित्यत्व और

कार्यत्वरूपताकरबुद्धिरूपरजतकानिरूपणनहींहोसकता ॥ औरकांता
करादिदेशमेवहरजतसत्तै ॥ यहद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ॥ क्योंकि
कांताकरादिगततिसरजतकासन्मुखशुक्तिदेशमेग्रहणनहींहोसकता ॥
व्यवधानहोनेसेनेत्रभीतिसकाग्राहकनहीं ॥ औरयदिदोपकेवलसेतिस
काग्रहणमानेतोक्या?दोपमात्रसेउसकाग्रहणहोताहै ॥ अथवादोपसह-
कृतनेत्रसेग्रहणहोताहै ॥ प्रथमपक्षतोनहींसंभवताक्योंकिग्रंधपुरुषको
भीकांताकरादिगतरजतकाग्रहणप्राप्तहोगा ॥ औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभ-
वता ॥ क्योंकिमध्यदेशवर्तिऔरपदार्थोंकाभीनेत्रइन्द्रियसेग्रहणहुआ
चाहिये ॥ इसप्रकारअख्यातिवादादिकोंकाभ्रमस्थल मेअसंभवहोनेसे
पुरोवर्त्तिशुक्तिदेशमेवहरजतनसत्तैनअसत्तै औरपरस्परविरोधहोनेसे
सत्असत्जमेरूपभीवहरजतनहींकिन्तुसत्असत्सेविलक्षण अनिर्वच-
नीयवहरजतहै ॥ यहअर्थसिद्धहुआ ॥ पातेभ्रमकाविषयअनिर्वचनीयहै।
इसरीतिसेतिसदृष्टांतकोआश्रयणकरकेआकाशादिप्रपंचनिष्ठभीअनिर्व-
चनीयपनाग्रंगीकारकरकेअज्ञातसत्ता सिद्धकरनेयोग्यहै ॥ यहस्थित
हुआ ॥ इसकोअवसिद्धांतीदूषितकरताहै ॥ हेवादिन्यदितुमपूर्वउक्त
अर्थकोस्वीकारकरतेहोतोदृष्टांतऔदार्ष्टांतकी विषमतादूर करनेकेअर्थ
तिसशुक्तिरजतमेअनिर्वचनीयताकेउपपादनसेजैसीज्ञातसत्तामानीहै ॥
तैसीहीसत्ताआकाशादिप्रपंचनिष्ठभीमाननेयोग्यहै ॥ ऐसेमानेहुएयह
विचारकरनेयोग्यहै ॥ क्या?आकाशादिकोंकीअज्ञातसत्ताहोवातिनकी
ज्ञातहीसत्ताहै ॥ अन्त्यपक्षमेतोविरोधकाअभावहै ॥ औरयदिद्वितीय
पक्षकहोगेअर्थात्आकाशादिकोंमेतुमअज्ञातसत्ताकीकल्पनाकरोगे ॥
तोदृष्टांतदार्ष्टांतमेसमीचीनरूपताकरकेसेउपसंहारकोप्राप्तहोगाक्योंकि

दोनोंका विरोधहै । अब अज्ञातसत्त्वके साधकतर्कको अनुवाद करके सिद्धांतीदूषित करताहै । औरपुत्रादिक साधन सामग्रीकेगृहसे बाहर निकसेहुएअदर्शनमात्रसेनाशनिश्चयहोनेकर रुदनादिकोंकीप्राप्तिरूप दोषजोवादीनेपूर्वकहाथावहभीनहींसंभवता । क्योंकिबाधकप्रमाणकी प्रवृत्तिकेअभावसेतहांअभावनिश्चयकाअनंगीकारहै । अर्थयह । जैसे “इदंरजतम्” यहमथमभ्रमज्ञानहोताहै॥पश्चात्॥नेदंरजतम्।इसबाधकप्रत्ययसेरजतकाअभावनिश्चयहोताहै।तैसेयहांबाधकप्रत्ययकेनप्रवृत्तहोनेकर तिनपुत्रादिकोंकाअभावनिश्चयनहींहोता । इसीसेरुदनादिकोंकीप्राप्ति भीनहींहोती । यातेस्वप्नकीन्याईसर्वव्यवहारकासंभवहै । और

❀ जाग्रज्जस्थद्वैतं ज्ञातमेवसद्भवितुमर्हति व्यवहिय
माणात्वात् स्वप्नप्रपंचवत् ❀

इसअनुमानसेभीआकाशादिकपूर्वचकीज्ञातसत्ताहीसिद्धहोती है । यद्यपिपूर्वइसअनुमानमे “बाधितत्व” उपाधिका निरूपणकिया था । तथापिवहउपाधिसाध्यकेसाथव्यापकनहोनेकरदूषितहै । अर्थात् रजतादिभ्रमकालमेअथवास्वप्नकालमे जाग्रत्अवस्थाकीन्याईबाधका अभावहोनेसे पूर्वउक्तउपाधि साध्यकेसाथ अव्यापकहै । औरबाधक प्रमाणकीप्रवृत्तिहुएबाधकालमेतोस्वप्नरूपधर्मीकाहीअभावहै ॥ इसीसे उपाधिऔसाध्यकीव्याप्तिकाग्रहरूपव्यवहारका अभावहोनेसेउपाधि कोसाध्यकेसाथव्यापकपनेमेप्रमाणकाहीअभावहै॥ औरबुद्धोंकेत्रिविध सत्त्वकेअंगीकरणकीअनुपपत्ति अज्ञातसत्ताकाकल्पिकहै यहकथनभी नहींसंभवता ॥ क्योंकितिनकाअंगीकारअन्यप्रकासेवनमकताहैसोई दिखलातेहैं ॥ सर्वदेतनिष्ठभातिभासिकसत्ताका तिन्होंने न त्यागकरके

भ्रांतपुरुषोंकोसंतोषमात्र करायाहै ॥ इसीसे तिनके अंगीकारकेसाथ
विरोधनहीं ॥ भावयह ॥ प्रतिभासिकसत्ता प्रपंचनिष्ठमानेहुएभी
भ्रांतपुरुषोंकी बुद्धिकरसिद्धजोजाग्रत् स्वप्नकीअवांतरविषमतातिसको
याश्रयणकरकेव्यवहाकिसत्ताकेकथनसेविरोधकाअभावहै॥१॥ पूर्व
अर्थकेसंग्रहकाश्लोक ॥

स्वप्नवदृष्टिसृष्टः सन्सर्वव्यवहृतिक्षमः ।

प्रपंचोनाञ्चदोषो ऽस्तितस्यपरिहृतत्वतः ॥ १ ॥

दो० ज्ञातसत्त्वप्रपंचजो सुपनेसमहै जोइ ॥

सबबिबहार समर्थसोयामें दोषनकोइ ॥ १ ॥ इति ॥

❀ अथदृष्टिसमकालीनदृष्टिसृष्टिवादमेंप्रतिज्ञानसृष्टि
काभेदऔतिसमेंप्रत्यभिज्ञाके विरोधकीशंकाका
समाधाननिरूपण ❀

आत्माकाअज्ञानदेवादिदेहाकारसेतथातिनकासहकारीब्रह्मांडाकारसेऔ
तिसतिसपदार्थगोचर वृत्त्याकाररूपताकरपरिणामकोप्राप्तहोताहै॥ इस
पक्षमेंवृत्तिसमकालीनहींसोसोपदार्थहै॥ वृत्तिसेपूर्वऔवृत्तिसेपश्चात्
वहपदार्थनहींवर्तते ॥ वृत्तिसमकालीनज्ञातहीषटादिक पदार्थहैं ॥
यहअर्थपूर्वनिरूपणकिया ॥ तिसमेंयहविचारकियाजाताहै ॥ तिस
तिसपदार्थगोचरजो वृत्तिहैवहवाधसेरहित अनुवृत्तिहोतीहै ॥ अथवा
शीघ्रविनाशहोजातीहै॥ इनमेंअथमपक्षनहींसंभवता ॥ क्योंकिएकतो
सुषुप्तिकाअभावप्राप्तहोगा ॥ औरदूसरीवृत्तिभी नहींउत्पन्नहोगी ॥
तात्पर्ययहहै । किसीविशेषज्ञानके विद्यमानहुए सकलविशेषज्ञानोंकी
उपरमअवस्थारूप सुषुप्तिकाअसंभवहै । औरवृत्तिज्ञानोंकी “अयोग

पद्य” अर्थात् एककालमें न होना स्वीकार है । यदि एकवृत्तिके विद्यमान कालमें दूसरी वृत्तिमानोगेतो ज्ञानोंको “यौगपद्य” होनेसे वृद्धोंके यंगीकारके साथ विरोध होगा । और द्वितीयपक्षभी असंगत है । क्योंकि वृत्तिके समान ही योगक्षेमवाले षण्चकाभी शीघ्र विनाशित होना होगा । और ज्ञानकी उत्पत्ति से द्वैत षण्चकी उत्पत्ति होनेके ज्ञानके भेद हुए षण्चकाभी भेद असंगत होगा । और यदि इसमें अर्थात् प्रतिज्ञान षण्चके भेदमें सिद्धांती दोषाभाव कथन के तो वह नही संभवता । क्योंकि प्रत्यभिज्ञाका विरोध प्राप्त होता है सोई दिखलाते हैं ।

मू० । द्वैतभेदे प्रतिज्ञानं प्रत्याभिज्ञाकथं वद ।

दशानां युगपत् सर्पभ्रमे यद्वत्तथैव सा ॥ १२ ॥

अडिल प्र० प्रतिज्ञानमें द्वैतभेद जो राखीए ।

प्रतिभिज्ञाहुइ तामें किहविध भापीए ॥

उ० ॥ एककालमें दशको जहविध सर्पभ्रम ।

तामें जस प्रतिभिज्ञातस विधइहांक्रम ॥ १३ ॥

टी० । सोई यह घट है सोई यह गृह है ॥ इत्यादिक प्रत्यभिज्ञा ज्ञानज्ञानप्रति घटादिक विषयोंका भेद माने हुए नही हुई चाहिये । जिस कारणसे प्रत्यभिज्ञाका विषय जो घटादिकोंका अर्थभेद तिसका अर्थभाव है । और वह प्रत्यभिज्ञा सर्वके अनुभवसिद्ध है तिसकालोपनही संभवता ॥ समाधान ॥ हेवादि न एकत्व रूपविषयके अभावसे क्या ? प्रत्यभिज्ञाका स्वरूप ही नही सिद्ध होता यह लुप्त कहते हो । अथवा । तिसमें प्रामाण्यका असंभव है यह कहते हो । प्रथमपक्ष तो नही संभवता ॥ क्योंकि जैसे दश पुरुषोंको “युगपत्” कहिये एककालमें रज्जु विषयक सर्पभ्रम होता है तहां एक सर्प रूपविषयके अभाव हुए भी जैसे प्रत्य

भिज्ञाहोतीहै । तैसेयहांप्रकरणमेंभीजानो । कालांतरमेंहोनेवालेभिन्न
 भिन्नसर्पभ्रममें प्रत्यभिज्ञाकी प्राप्तिहीनहींहोसकी । इसलियेयहांमूल
 कारिकामें“युगपत्”यहपदकथनकियाहै ॥ तैर“यहघटहै”इत्यादिक
 प्रमास्थलमेंवेदांतमतमेंप्रतिज्ञानद्वैतकाभेदहोनेसे विषयकाभीभेदमाना
 हैऔरअन्यवादियोंके मतमेंविषयकाभेदनहींमाना॥इसप्रकारकाविवाद
 होनेसे “मूलकारिकामें “भ्रमे” यहपदकथनकियाहै ॥ क्योंकिआगे
 कथनकरनीजोरीतिहै ॥ तिससे भ्रमस्थलमें विषयके भेदका विवाद
 नहीं है ॥ यहां पर यहकथन होताहै ॥ देवदत्त पुरुषके नेत्र
 इन्द्रियकारज्जुरूपअधिष्ठानमेंसंबंधहुएदोषकेवशसेरज्जुकेविशेषरूपको
 नग्रहणकरनेवाली इदमाकारग्रंथतस्करणाकीवृत्ति उत्पन्नहोतीहै ॥
 तिसवृत्तिके उत्पन्नहुए पूर्वदृष्टजातीयवस्तुके संस्कारकेवशसेरज्जु
 अवच्छिन्नइदमाकार देवदत्तकेग्रंथतस्करणाकी जोवृत्तिहै ॥ तिसमें
 प्रतिबिंबतचैतन्यानिष्ठ यविद्याक्षोभकोप्राप्तहुई सर्पऔरतिसकाज्ञान
 रूपताकरपरिणामको प्राप्तहोतीहै ॥ औरवहउत्पन्नहुयासर्प जिसके
 ग्रंथतस्करणाकीवृत्तिमेंप्रतिबिंबतचैतन्यानिष्ठयविद्याकापरिणामहै। तिसी
 केसन्मुखउत्पन्नहोताहै। औरतिसीकरजानाजाताहै॥क्योंकिसर्पाकार
 वृत्तिकोभीतिसीपुरुषकेग्रंथतस्करणाकी वृत्त्युपहितचैतन्यानिष्ठयविद्याका
 कार्य्यपनाहै ॥ इसदेवदत्तकेदृष्टांतसे मैत्रादिनवपुरुषोंको भिन्नभिन्न
 सर्पभ्रमइसीरीतिसे जानलेना ॥ इसप्रकारभ्रमको प्रतिपुरुषयविद्याका
 परिणामहोनेसेदशपुरुषोंको रज्जुरूपअधिष्ठानमेंएककालमेंहीसर्पभ्रमके
 उदयहुएदशसर्पऔरदशही तिनकेज्ञानउत्पन्नहोतेहैं ॥ तिसप्रकारएक
 सर्पकेअभावहुएभी जैसेतिनको “एकहीसर्पहमसबने अनुभवकियाहै

यहप्रत्यभिज्ञाजैसेस्वरूपसे उत्पन्नहोतीहै तैसेदार्ष्टान्तमेंभीघटादिविषय की एकतासेविनाभी “सोईयहघटादिकहै” इसप्रत्यभिज्ञाकास्वरूपबन सक्ताहै ॥ औरविषयकेअभावहुए प्रमापनाप्रत्यभिज्ञा निष्ठनहींहोगा यहद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिजैसेविषयके अभावहुएभी दृष्टान्तमें भ्रमरूपप्रत्यभिज्ञा होतीहै ॥ तैसेदार्ष्टान्तमेंभी भ्रमरूप प्रतिभिज्ञाहोतीहै ॥ इति ॥ अवविस्तारपूर्वक श्लोककीव्याख्याकरते हैं ॥ शंका ॥ पूर्वउत्तरीतिसे अज्ञातसत्ताकप्रपंचकेनयंगीकारकरेहुए सुषुप्तिसेजागेहुएपुरुषको “सोईयह प्रपंचहै” ऐसीप्रत्यभिज्ञा होतीहैसो नहींहुईचाहिये ॥ क्योंकिआपकेमतमेंसुषुप्तिसेमध्यमप्रपंचकातथासुषुप्ति सेउत्तरप्रपंचकाभेदहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन् यहतुहारीशंकानहीं संभवती । क्योंकिविशेषदर्शनकेअभावकाकारणजोमदंअंधकारतिसमे वर्तमानजोएकहीरज्जुरूपअधिष्ठानहै । तिसमेदशपुरुषोंको एककाल मेसर्पभ्रमहोताहै । तिससेभयभीतहोकरभागतेहुएतिनपुरुषोंकापरस्पर यहसंवादहोताहै “जोसर्पतुमनेअनुभवकियावहीहमनेभीदेखाहै” यहप्रत्य भिज्ञाजैसेभ्रमरूप तिनकोहोतीहै । तैसेयहांदार्ष्टान्तमेंभी जानकर संतोष करनेयोग्यहै ॥ शंका ॥ तिनदशपुरुषोंकोभीवह “त्यभिज्ञाएकहीसर्पविषय कक्योंनहो ॥ समाधान ॥ हेवादिन्तिन पुरुषोंनेभिन्नभिन्नहीसर्पकाअनुभवकियाहैएककानहीं ॥ अर्थयह । देवदत्तपुरुषकीरज्जुविषयकअंतस्कर णकीइदमाकारवृत्तिमेप्रतिबिंबतचैतन्यनिष्ठअविद्याकापरिणामरूपभ्रमकर सिद्धभिन्नहीसर्पदेवदत्तने अनुभवकियाहै । सर्वपुरुषोंनेएकही सर्पनहीं अनुभवकिया । यातेवहप्रत्यभिज्ञाभ्रमरूपहै ॥ शंका ॥ जैसेएकहीघटको सर्वजनअनुभवकरतेहैं । तैसेभ्रमसिद्धविषयकोभीसर्वहीजन अनुभव

भिज्ञाहोतीहै । तैसेयहांप्रकरणमेंभीजानो । कालांतरमेंहोनेवालेभिन्न
 भिन्नसर्पभ्रममें प्रत्यभिज्ञाकी प्राप्तिहीनहींहोसक्ती । इसलिपेयहांमूल
 कारिकामें “युगपत्” यहपदकथनकियाहै ॥ और “यहघटहै” इत्यादिक
 ममास्थलमेंवेदांतमतमेंप्रतिज्ञान हेतुकाभेदहोनेसे विषयकाभीभेदमाना
 है और अन्यवादियोंके मतमेंविषयकाभेदनहींमाना ॥ इसप्रकारकाविवाद
 होनेसे “मूलकारिकामें “भ्रमे” यहपदकथनकियाहै ॥ क्योंकिआगे
 कथनकरनीजोरीतिहै ॥ तिससे भ्रमस्थलमें विषयके भेदका विवाद
 नहीं है ॥ यहां पर यहकथन होताहै ॥ देवदत्त पुरुषके नेत्र
 इन्द्रियकास्वरूपअधिष्ठानसेसंबंधहुएदोषकेवशसेस्वरूपकेविशेषरूपको
 नग्रहणकरनेवाली इदमाकारअंतस्करणकीवृत्ति उत्पन्नहोतीहै ॥
 तिसवृत्तिके उत्पन्नहुए पूर्वदृष्टजातीयवस्तुके संस्कारकेवशसेस्वरूप
 अविच्छिन्नइदमाकार देवदत्तकेअंतस्करणकी जोवृत्तिहै ॥ तिसमें
 प्रतिबिंबतचेतन्यनिष्ठ अविद्याक्षोभकोप्राप्तहुई सर्पऔतिसकाज्ञान
 रूपताकरपरिणामको प्राप्तहोतीहै ॥ औरवहउत्पन्नहुआसर्प जिसके
 अंतस्करणकीवृत्तिमेंप्रतिबिंबतचेतन्यनिष्ठअविद्याकापरिणामहै । तिसी
 केसन्मुखउत्पन्नहोताहै ॥ औरतिसीकरजानाजाताहै ॥ क्योंकिसर्पाकार
 वृत्तिकोभीतिसीपुरुषकेअंतस्करण की वृत्त्युपहितचेतन्यनिष्ठअविद्याका
 कार्यपनाहै ॥ इसदेवदत्तकेदृष्टांतसे मैत्रादिनवपुरुषोंको भिन्नभिन्न
 सर्पभ्रमइसीरीतिसे जानलेना ॥ इसप्रकारभ्रमको प्रतिपुरुषअविद्याका
 परिणामहोनेसेदशपुरुषोंको स्वरूपअधिष्ठानमेंएककालमेंहीसर्पभ्रमके
 उदयहुएदशसर्पऔरदशही तिनकेज्ञानउत्पन्नहोतेहैं ॥ तिसप्रकारएक
 सर्पकेथमावहुएभी जैसेतिनको “एकहीसर्पहमसबने अनुभवकियाहै

यहप्रत्यभिज्ञाजैसेस्वरूपसे उत्पन्नहोतीहै तैसेदार्ष्टांतमेंभीघटादिविषय की एकतासेविनाभी “सोईयहघटादिकहै” इसप्रत्यभिज्ञाकास्वरूपबन सक्ताहै ॥ औरविषयकेअभावहुए प्रमापनाप्रत्यभिज्ञा निष्ठनहींहोगा यहद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिजैसेविषयके अभावहुएभी दृष्टांतमें भ्रमरूपप्रत्यभिज्ञा होतीहै ॥ तैसेदार्ष्टांतमेंभी भ्रमरूप प्रतिभिज्ञाहोतीहै ॥ इति ॥ अवविस्तारपूर्वक श्लोककीव्याख्याकरते हैं ॥ शंका ॥ पूर्वउक्तरीतिसे अज्ञातसत्ताकप्रपंचकेनअंगीकारकरेहुए सुषुप्तिसेजागेहुएपुरुषको “सोईयह प्रपंचहै” ऐसीप्रत्यभिज्ञा होतीहैसो नहींहुईचाहिये ॥ क्योंकिआपकेमतमेंसुषुप्तिसेमथमप्रपंचकातथासुषुप्ति सेउत्तरप्रपंचकाभेदहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन् यहलुहारीशंकानहीं संभवती । क्योंकिविशेषदर्शनकेअभावकाकारणजोमंदअंधकारतिसमे वर्तमानजोएकहीरज्जुरूपअधिष्ठानहै । तिसमेदशपुरुषोंको एककाल मेसर्पभ्रमहोताहै । तिससेभयभीतहोकरभागतेहुएतिनपुरुषोंकापरस्पर यहसंवादहोताहै “जोसर्पतुमनेअनुभवकियावहीहमनेभीदेखाहै” यहप्रत्य भिज्ञाजैसेभ्रमरूप तिनकोहोतीहै । तैसेयहांदार्ष्टांतमेंभी जानकर संतोष करनेयोग्यहै ॥ शंका ॥ तिनदशपुरुषोंकोभीवह “त्यभिज्ञाएकहीसर्पविषय कक्योंनहो ॥ समाधान ॥ हेवादिन्तिन पुरुषोंनेभिन्नभिन्नहीसर्पकाअनु- भवकियाहैएककानहीं । अर्थयह । देवदत्तपुरुषकीरज्जुविषयकअंतस्कर णकीइदमाकारवृत्तिमेप्रतिबिंबतचैतन्यनिष्ठअविद्याकापरिणामरूपभ्रमकर सिद्धभिन्नहीसर्पदेवदत्तने अनुभवकियाहै । सर्वपुरुषोंनेएकही सर्पनहीं अनुभवकिया । यातेवहप्रत्यभिज्ञाभ्रमरूपहै ॥ शंका ॥ जैसेएकहीघटको सर्वजनअनुभवकरतेहैं । तैसेभ्रमसिद्धविषयकोभीसर्वही जन अनुभव

करलेंगे। इसमें कौन बाध कहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन् अन्यपुरुषके भ्रमकर सिद्धविषयका अन्यपुरुषको ज्ञान नहीं हो सकता । क्योंकि देवदत्तके अंत-
स्करणकी वृत्तिमें प्रतिबिंबतत्त्वैतन्यनिष्ठविद्याका परिणामरूप जो भ्रम है। वह देवदत्तसे भिन्न यज्ञदत्तके अंतःकरणकी वृत्तिसे जानना कठिन है याते
अन्यके भ्रमका विषय अन्यको प्रत्यक्ष नहीं हो सकता ॥ शंका ॥ पूर्वोक्त
युक्तिसे सर्पादिक भ्रममें यदि विषयका भेद है ॥ तो सर्पादिकोंके भ्रमके
अनुभव कैसे होता है ॥ समाधान ॥ हेवादि दशपुरुषोंके भ्रमकर सिद्ध
दशसर्पोंको अत्यंत सादृश्य होनेकर परस्पर तिनका भेद ग्रहण नहीं होता
इसीसे तहां भ्रमके विषयक प्रत्यभिज्ञा होती है ॥ एक ही सर्प हम सबने अनु-
भव किया है ॥ ऐसे ही जाग्रत अवस्थामें नाना प्रकारके प्रपंच को यह पुरुष अनुभ-
वकरके सुषुप्ति अवस्थाको प्राप्त होता है। और पुनः तिससे उठकर जो यह प्रपंचका
अनुभव होता है वह अनुभव दूसरे प्रपंचको ही विषय करता है। और "सोई यह प्र-
पंच है" ऐसी प्रत्यभिज्ञा तो दोनों प्रपंचोंको अत्यंत सादृश्य होनेकर तिनका भेद
न ग्रहण होनेसे भ्रमरूप होती है ॥ यद्यपि जाग्रत अवस्थामें ही वृत्तिकोशीघ्र
विनाशी होनेकर तिसके समान योग्य ज्ञेयवाले प्रपंचका भी नाश सिद्ध
करना उचित था अवस्थाओंमें प्रपंचका भेद सिद्ध करने से क्या प्रयोजन है ॥
तथापि भिज्जुपादप्रसारणन्यायको आश्रयण करके अवस्थाओंमें प्रपंचका
भेद सिद्ध किया है ॥ पूर्वोक्त न्यायका यह अर्थ है ॥ जैसे किसी भिज्जुको
जब किसी धनिकके गृहमें प्रवेशका अवसर मिल जावे तो पादप्रसारण अर्थात्
अनेक पदार्थ उससे मांग लेता है तैसे ही अवस्थाओंमें प्रथम जब प्रपंचका भेद
सिद्ध हो जाएगा तो जाग्रत अवस्थामें प्रपंचका भेद ज्ञान प्रतिभी सिद्ध
कर सकते हैं ॥ याते पूर्वकथन उचित ही है ॥ इति ॥

✽ शंकापूर्वकसुषुप्तिमेप्रपंचाभावकीबोधकता
श्रुतिकोदेवताधिकरणन्यायकीरीतिसेनिरूपण ✽

शंका ॥ हेसिद्धांतिन् प्रत्यभिज्ञातो हमदोनोंकोस्वीकारहै ॥
परन्तुतिसकोभ्रमरूपतायुक्तनहीं ॥ क्योंकिबाधकप्रमाणकाअभावहै।
विषयकेबाधविनाज्ञानको भ्रमरूपतानहींसंभवती॥ औरदशसपोंकीप्रत्य
भिज्ञामेकथनकीहुईयुक्तिभीतिसकाबाधकनहीं ॥ क्योंकि मूलप्रमाण
केअभावसेयुक्तिको आभासरूपताहै ॥ यातेप्रत्यभिज्ञाको प्रमाणरूप
होनेसेअवस्थाओंमेप्रपंचकाभेदनहीं सिद्धहोसکتा। किन्तु तिनमेभी
प्रपंचकाअभेदअनुभवहोनेसे प्रपंचकाएकत्वही सिद्धहोताहै ॥ इसी
अभिप्राय से सुषुप्ति मे प्रपंचलीन होजाताहै इसमेकोईप्रमाणनहीं ॥
समाधान ॥ हेवादिन्साक्षात्श्रुतिवचनहीसुषुप्तिमेप्रपंचकेविलयहोने
मेप्रमाणहै ॥ सोदिखलातेहैं ॥

✽ पश्यन्वैतत ✽

(बृ० उ० अ० ६ ब्रा० ३।२३)

अ० ॥ सुषुप्तिवस्थामेभी आत्माद्रष्टाहीहै॥ इसकथनसेयह
आशंकाहोतीहै ॥ व्यापारवालेचक्षुयादिकरणोंकासुषुप्तिमेअभावहोने
सेहमयहनिश्चयकरतेहैं ॥ जोसुषुप्तिमेआत्माद्रष्टानहीं किन्तुजडहै ॥
इसशंकाकाआपहीश्रुतिसमाधानकरतीहै ॥

✽ नहिद्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वात् ✽

बृ० उ० अ० ६ ब्रा० ३।२३ ॥

अ० ॥ “द्रष्टुः” कहियेआत्माको“अविनाशित्वात्” कहिये

मू० ॥ सर्पभ्रमाद्विशेषोऽस्ति जाग्रद्वोधेऽन्यथा कथम् ।

इन्द्रियादेरुपादानं तदभावे यतो न धीः १३ ॥

हरगीतका० ॥ सर्पभ्रमते है विलक्षण बोध जाग्रत जानीए ॥
होइ इन्द्रियन को ग्रहण कै से ऐस जो न हि मानिए ॥ इन्दीन के अभाव ते नहीं
बोध जाग्रत हो कही ॥ या हेतु ते लखइ इन्द्रियन को बोध प्रतिकारण सही ॥ १४ ॥

टी० ॥ हे सिद्धांतिन् सर्पादिकों को अपने अपने भ्रम कर सिद्ध
होने कर प्रातिभासिक पनाहो ॥ ॥ परन्तु जाग्रतादि प्रपंच को तो भ्रांति
कर सिद्ध पना नहीं क्योंकि वह इन्द्रिय जन्य प्रमाका विषय है ॥ यदि
इन्द्रिय जन्य प्रमा की अविषयता प्रपंच निष्ठ मानोगे तो घटादि प्रपंच
के ज्ञान अर्थ इन्द्रियादिकों का ग्रहण कोई कैसे करेगा ॥

शंका ॥ हेवादिन् भ्रम सिद्ध प्रपंच है ऐस कहने वाले वादी के प्रति
इन्द्रियादिकों को प्रपंच ज्ञान के प्रतिकारण पनाही अ सिद्ध है ॥ समाधान ॥
हे सिद्धांतिन् इन्द्रियों के अभाव हुए जिस कारण से प्रपंच ज्ञान नहीं हो
सक्ता इसी से इन्द्रिय कारण हैं ॥ यहाँ यह अनुमान जानना ।

❀ जाग्रतादि प्रपंच ज्ञानं भ्रम ज्ञानादिलक्षणं ऐन्द्रिय कत्वात्
यत्रैवं तत्रैवं यथा भ्रम ज्ञानं ❀

अ० ॥ जाग्रतादि प्रपंच का जो ज्ञान है सो भ्रम ज्ञान में विलक्षण है ।
इन्द्रिय जन्य ज्ञान होने से ॥ जो जो ज्ञान भ्रम ज्ञान से विलक्षण नहीं है ॥
सो सो ज्ञान इन्द्रिय जन्य भी नहीं है जैसे रज्जु मर्पादि भ्रम ज्ञान है ॥ इति ॥
अब पूर्व कथन किये हुए अर्थ को विस्तार से निरूपण करते हैं ॥ पूर्व उक्त
युक्ति से प्रपंच को भ्रम मात्र गीर होने का प्रातीतिक सत्ता के सिद्ध हुए भी
रज्जु सर्प के ज्ञान से आकाशादि प्रपंच के ज्ञान में कोई विलक्षणता है ॥

शंका ॥ हेवादिन् षपंचज्ञानमें अविद्याजन्यत्व औऽर्थगोचरस्वरज्जु
सर्पज्ञानके तुल्यहोनेसेकैसे तिसमेंरज्जुसर्पज्ञानसे विलक्षणताहै ॥
समाधान ॥ हेसिद्धांतिन् कारणकृत तथा विषयकृत पूपंचज्ञान
में रज्जुसर्पज्ञानसे विलक्षणता है ॥ तैसे ही दिखलाते हैं ॥
पूपंच ज्ञान में प्रत्यक्षादि श्रमाणको कारणताहै और अविद्याको
कारणताकाअभावहै ॥ यही सर्पज्ञानसे षपंचज्ञानमे विलक्षणता है
औरसर्पज्ञानमेंअविद्याकोकारणताहै।औरप्रत्यक्षादिश्रमाणकोकारणता
नहीं॥यहीषपंचज्ञानसे सर्पज्ञानमेंविलक्षणताहै ॥ इसप्रकारतिनदोनों
ज्ञानोंमेंकारणकृतविशेषताहै॥अवतिनदोनोंज्ञानोंमेंविषयकृतविलक्षणता
कहतेहैं ॥ जैसेअज्ञातसत्ताकअर्थको इन्द्रियादिजन्यज्ञानविषयकरताहै
तैसेहीअर्थको अविद्या जन्यभ्रमभी विषय करताहै यहनहीं संभवता
असंभवमें हेतुकहतेहैं ॥ ज्ञानमात्रशरीरहोनेकर भ्रमसेपूर्वविषयकी
सत्यताकाअभावहै ॥ औरभ्रमकेविषयसे इन्द्रियादिजन्यज्ञानकेविषय
मेंविशेषताहै॥ क्योंकिइन्द्रियादिकोंसे उत्पन्नहुएज्ञानकोसन्निकर्षादि
जन्यहोनेकरज्ञानसे पूर्वविषयकीसत्ता अवश्यकहनेयोग्यहै । अर्थयह
प्रत्यक्षज्ञानकोइन्द्रियऔऽर्थ केसन्निकर्षजन्यहोनेसे तिसज्ञानसेप्रथम
तिसकाकारणरूपताकरसन्निकर्षकीसिद्धिअवश्यकहनेयोग्यहै।औरतिस
सन्निकर्षकाआधाररूपताकरज्ञानसे पूर्वचक्षुकी न्याईविषयकीसत्ताभी
अवश्यकहनेयोग्यहै ॥ औरअनुमितिरूपज्ञानको लिंगज्ञानजन्यत्व
कानियमहै॥औरलिंगको पक्षतथाव्याप्तिकरघटितपनाहै औरपक्षतथा
व्याप्तिकोसाध्यकर घटितपनाहै तिसीसे अनुमितिज्ञानसेप्रथम साध्य
कीसत्ताअवश्य अन्वेषणकरनेयोग्यहै ॥ औरयदिसिद्धांतीऐसेकहे !

✽ अयमाश्रवक्षः फलवान्भविष्यति । आश्रुत्वेसति
वर्द्धमानत्वात् ॥ संप्रतिपन्नाश्रवत् ॥ ✽

अ० ॥ यहआश्रवक्ष फलवाला होगा आश्रु हुआवर्द्धमान् होनेसे ॥ प्रसिद्धआश्रकीन्याई ॥ इसभविष्यत् अर्थकोविषयकरने वालीअनुमितिमें व्यभिचारहै ॥ क्योंकिअर्थसे विनाभीज्ञान होगया सोयहकथनभीनहींसंभवा ॥ क्योंकितिसअनुमानमेंभीभविष्यत्अर्थको अनुमितिसेप्रथमही विद्यमानताहै अर्थात् विद्यमान प्रागभावकाप्रति योगिरूपताकर अनुमितिसे पूर्वभविष्यत्अर्थकी विद्यमानताहै ॥ याते अनुमितिसेपूर्व भविष्यत् अर्थ नहींहै यह कथन असंगत है ॥ और भविष्यत्अर्थकाअभाव मानेहुएवर्तमान अर्थवाली अनुमितिकीही प्राप्तिहोगी तिसकर भविष्यत्अर्थकअनुमितिका लोप होजाएगा ॥ इसप्रकारअनुमितिसेपूर्व अर्थको विद्यमान होनेकर भविष्यत् अर्थक अनुमितिमेंकैसे व्यभिचार होसकताहै ॥ इति ॥ औरशाब्द ज्ञानको शब्दऔरअर्थकवाच्यवाचकरूपसंबंधज्ञानकर जन्यहोनेसे शब्दकर्णक ज्ञानसेप्रथमहीअर्थकीसत्ताभीऊहाकरनेयोग्यहै ॥ यातेइन्द्रियादिजन्य ज्ञानसेप्रथमविषयकीसत्ताअवश्यकहनेयोग्यहै ॥ यहीभ्रमज्ञानसेप्रपंच ज्ञानमेंविलक्षणताहै ॥ औरअन्वयव्यतिरेकरूपप्रमाणकरकेइन्द्रियादि कोंकोप्रपंचज्ञानकेप्रतिकारणतासिद्धहोनेसे प्रपंचमिथ्यात्ववादीनेभी तिनकाकार्यकारणभावअवश्य अंगीकार कियाचाहिये ॥ शंका ॥ हेवादिन् प्रपंचज्ञानमें भ्रमज्ञानसे विलक्षणता यद्यपिहो तथापिइससे तुम्हाराकौनइष्टसिद्धहुआ ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन् पूर्वोक्तयुक्ति सेज्ञानसेपूर्वअर्थकी सत्ता अवश्यस्वीकार करनेयोग्यहोनेसे प्रपंचकी

अज्ञातसत्ताअवश्यस्वीकारकरनेयोग्यहै ॥ अन्यथाभ्रमसेविलक्षणता नहींसंभवैगी ॥ अर्थयह प्रपंचज्ञानकी उत्पत्तिसेअथम प्रपंचरूपविषय कीसत्तानमानेहुएप्रपंचरूपविषयतथा इन्द्रियकेसन्निकर्षकोज्ञानके प्रति कारणातानहींहोगी किन्तुअविद्याकारणाकत्वमात्रता प्रपंचमेप्राप्तहोने करभ्रमरूपताहीहोगी। भ्रमसेविलक्षतानहींसिद्धहोगी ॥ याते प्रपंच कीअज्ञातसत्ताअवश्यमाननीचाहियो।यहीहमाराइष्टसिद्धहुआ१३॥इति

❀ पूर्वअर्थकेअनुवादपूर्वकइन्द्रियादिकोंकोप्रपंचज्ञान केप्रतिकारणाताकारखंडन ❀

समाधान॥ हेवादिन्त्याकाशादि रूपप्रपंचज्ञानकेप्रति इन्द्रियादिकोंको कारणाताहोनेकर भ्रमज्ञानसे तिसकीविलक्षणताहै तिसविलक्षणताके उपपादनअर्थप्रपंचकीअज्ञातसत्ता माननेयोग्यहै ॥ यहअर्थलुमनेपूर्व निरूपणकिया।सोनहींसंभवता ॥ क्योंकि

मू० ॥ इन्द्रियाणांकारणात्वेभवेच्चोद्यतदातव ।

स्वप्नभ्रमेयथातेषामन्वयव्यतिरेकधीः ॥१४॥

वसंततिलकका० ॥ इन्द्रीनकारणयदाभवतोसुजाना।तौहोत कालपनकातुमरीप्रमाना॥ स्वप्नेभ्रमेजसतिनांकरणोदिखाना ॥ तैसे सुज्ञानव्यतिरेक अन्वेवखाना ॥ १५ ॥

टी० ॥ इन्द्रियोंको यदि प्रपंचज्ञानकीकारणाताहो।तोतुम्हारा विकल्पवने औरआगे कथनकीहुईरीतिसेइन्द्रियोंको प्रपंचज्ञानकेप्रति कारणाताअसिद्धहै ॥ औरजोपूर्वप्रपंचज्ञानकेप्रतिइन्द्रियोंकी कारणाता काग्राहक अन्वयव्यतिरेकरूपप्रमाणकहाथा वहभीभ्रमरूपहै क्योंकि

जैसे स्वप्नभ्रममे इन्द्रियों का अन्वयव्यतिरेक भ्रमसे प्रतीत होता है। तैसे जाग्रत मे भी जानना ॥ इति ॥ अब इसी अर्थको विस्तारसे निरूपण करते हैं ॥

हेवादिन् इन्द्रियादिकोंको वास्तवसे प्रपञ्चज्ञानकी कारणतानहीं संभवती । किस हेतुसे इन्द्रियादिकोंको प्रपञ्चज्ञानकी कारणतानहीं ? ऐसी जिज्ञासाके हुए कहते हैं । हेवादिन् तिन इन्द्रियोंको ज्ञानके प्रति जो कारणता है तिसमें यह विचार करने योग्य है ।

❀ विनाकार्यन कारणं ॥ ❀

अ० ॥ कार्यसे विना कारण नहीं कहा जाता ॥ इस न्यायसे इन्द्रियनिष्ठ कारणता ज्ञाननिष्ठ कार्यताके आधीन कहने योग्य है । और सो कार्यतानिरूपण करनी कठिन है । याते कार्यताकर निरूपण करने योग्य इन्द्रियनिष्ठ कारणताभी अलीक है ।

❀ अथ प्रमानिष्ठ कार्यताकी दुर्निरूप्यतानिरूपण ❀

अब इन्द्रियनिष्ठ कारणताके निषेध अर्थ प्रमानिष्ठ कार्यताकी दुर्निरूप्यता उपादन करनेके लिये विकल्प करते हैं । हेवादिन् क्या ? इन्द्रियादिकोंको प्रमामात्रकी कारणता है । अथवा भ्रम तथा प्रमारूपसाधारण ज्ञानमात्रमें तिनको कारणता है । अथवा भ्रममात्रमें तिनको कारणता है ॥ यहां प्रथम विकल्पमें यद्यपि प्रमामात्रमें इन्द्रियोंको कारणता नहीं संभवती ॥ क्योंकि ईश्वर प्रमामें व्यभिचार है ॥ तहां इन्द्रियोंको कारणता नहीं ॥ याते प्रथम विकल्प असंगत है ॥ तथापि यहां “मात्रच्” प्रत्ययका अवधारणार्थ है ॥ कात्सर्यन्य अर्थ नहीं ॥ अर्थ यह प्रमाकी कारणता है कोई संपूर्ण प्रमाकी कारणतानहीं । याते प्रथम विकल्प संभवता है ॥ और दूसरे विकल्पमें भी “मात्रच्” प्रत्ययका अवधारणार्थ ही जानना ।

इति ॥ प्रमामात्रमें इंद्रियादिकोंको कारणाताहै । यहप्रथमपक्षनहीं
संभवता । क्योंकिइंद्रियादिजन्य ज्ञानमेंजोप्रमात्वहै ॥ वहभ्रमके
विषयसेभिन्नअर्थ विषयत्वरूपताकर सिद्धकरनेयोग्यहै ॥ अर्थात्
भ्रमकेविषयसेभिन्न अर्थकोविषयकरनेवालाज्ञान प्रमाकहाचाहिये ॥
औरभ्रमकेविषयसे भिन्नअर्थत्व प्रमाज्ञानकी विषयताकर सिद्धकरने
योग्यहै । अर्थयहप्रमाज्ञानका जोविषयहैवहभ्रमके विषयसेभिन्न
अर्थकहनेयोग्यहै । ऐसेमानेहुएअन्योऽन्याश्रयदोषस्पष्टहीप्राप्तहोता
है। सोदिखलातेहैं। भ्रमकेविषयसेभिन्नअर्थकाज्ञानप्रमाज्ञानकेआधीनहै।
औरप्रमात्वकाज्ञान भ्रमकेविषयसे भिन्नअर्थकेज्ञानके आधीनहै ॥
इसीसेप्रमाकाज्ञान दुर्घटहोनेकरतिसके प्रतिइंद्रियादिकोंकोकारणातातो
अतिदुर्निरूप्यहै यहभावहै । इसीमेंऔरदूषणकहतेहैं । औरहेवादिन्
अर्थको भ्रमविषयसे भिन्नपनेमें प्रमाविषयत्व साधकनहीं क्योंकि
“मिथ्याहीयहरजत भानहुआ” इसप्रमानेमिथ्याभूत रजतकोभीविषय
कियाहै । अर्थात्इसप्रमाके विषयरजतको भ्रमका असंबंधिपनानहीं
देखा याते प्रमाज्ञानकी विषयताअर्थके सत्यत्वकाअर्थात्भ्रमज्ञानकी
अविषयताकाप्रयोजकनहीं ॥ शंका ॥ हेसिद्धांतिन्अर्थकोभ्रमसेव्या
वृत्तत्वप्रमाज्ञानकी विषयताकरहमनहींसिद्धकरते जिससे अन्योऽन्या-
श्रयदोषतथा व्यभिचारदोषहो किन्तु अबाधितत्वरूपतासे हमभ्रमसे
भिन्नत्वअर्थमेसिद्धकरतेहैं ॥ समाधान ॥ हेवादिन् ॥

❀ अतोऽन्यदार्त्तं नेहनानास्ति किंचित ❀

इत्यादिकश्रुतियोंकरद्वैतको मिथ्यापनावोधन होनेसेविषयमे
अबाधितत्वकी असिद्धिहै यातेपूर्वउक्तदोषदूर नहींहोसकते इसप्रकार

नेत्रादिकोंको प्रमाज्ञानकी करणता रूपप्रमाणता स्वीकार करके प्रमाका ज्ञान कठिन होने करतिस करनिरूपित इन्द्रियादि निष्ठकारणता का ज्ञान तो अत्यंत कठिन है ॥ यह अर्थ पूर्व निरूपण किया ॥

❀ अथ प्रमाणके विषयविवेचन पूर्वक चक्षु
आदिकोंमें प्रमाणता का खंडन ❀

अब इंद्रियादिकोंमें प्रमाणता का ही अभाव है इस अर्थको निरूपण करते हैं ॥ किंवा ॥ हेवादिन् ।

❀ अनधिगतार्थ गंतृप्रमाण ❀

अ० । अज्ञात अर्थ का ज्ञापक प्रमाण होता है । यह प्रमाणके जानने वालोंकी मर्यादा है । और अज्ञात अर्थ विषयक अनुभवकी उत्पत्ति द्वारा इंद्रियोंको अज्ञात अर्थकी विषयता कहने योग्य है ॥ शंका ॥ हे सिद्धांतित्प्रमाणोंको अज्ञात अर्थ विषयक माननेमें कोई दोष नहीं ॥ समाधान ॥ हेवादिन् अज्ञात गोचरतातिनको जवमानो गेतो अधिष्ठान मात्र विषयत्व ही तिनको प्राप्त होगा क्योंकि अधिष्ठानमें ही अज्ञातता है । अधिष्ठानमें ही प्रमाणोंकी विषयता किस हेतु से है ऐसी आकांक्षाके हुए कहते हैं ॥ निश्चय कर प्रमाणोंका विषय अज्ञात ही होता है । वह अज्ञातत्व अधिष्ठानमें ही है प्रपंचमें नहीं क्योंकि तिस प्रपंचको जड़ होनेकर स्वभावसे ही आवृत्त पना है ॥ पुनः तिसमें अज्ञानकी विषयता रूप अज्ञातता कल्पनमें कोई प्रयोजन नहीं ॥ भाव यह कि अज्ञानकी विषयता का प्रयोजन आवरण करना था सो आवरण जड़ प्रपंचमें प्रथम ही स्वभाव सिद्ध है । यहां यह अनुमान जानना ।

● विमतः प्रपंचो नाज्ञातः जडत्वात् ।

व्यतिरेकेण आत्मवत् ॥ ❀

अ० ॥ विवादकाविषयजो प्रपंच है ॥ वह अज्ञात नहीं ॥ जड होने से जो जो अज्ञात है सो सो जड भी नहीं ॥ जैसे आत्मा है ॥ इति ॥ यद्यपि 'अज्ञातो घटः' इस प्रत्यक्ष अनुभवका विरोध होगा ॥ तथापि अज्ञान के सहित घटादिकों का साक्षिचेतन में अध्यास होने के तिसृतीति का अन्यथा संभव है ॥ भाव यह साक्षिचेतन में अज्ञान और घट दोनों अध्यस्त होने के तिनका सामानाधिकराय है ॥ तिस संबंध से घट निष्ठ भी अज्ञातता प्रतीति होती है ॥ वास्तव से घट अज्ञानका विषय नहीं ॥ याते प्रत्यक्ष को भ्रमरूपता होने के तिसका विरोध नहीं ॥ शंका ॥ अधिष्ठान नहीं अज्ञानका विषय हो ॥ और तिम में प्रमाणों की भी विषयता हो ॥ तो भी प्रपंच का एक देश जो शुक्ति रज्जु मरु भूम्यादिक हैं ॥ तिन को रजतादिकों का अधिष्ठान होने के अज्ञातता होने से इन्द्रियों की विषयता तिन में प्राप्त हुई ॥ समाधान ॥ हेवादि नूतै से माने हुए अधिष्ठानता एकचिदात्मा में ही विश्रान्तिको प्राप्त होती है ॥ और मिथ्या रजतादिकों को भी शुक्ति आदि अवच्छिन्न चेतन निष्ठ अविद्याका परिणाम होने से चेतन ही सर्वत्र भ्रमों का अधिष्ठान है ॥ शुक्ति आदिक नहीं । याते सर्वाधिष्ठान प्रत्यक् आत्मा विषयक इन्द्रियों को प्रमाणता है यह कहने योग्य है । और प्रत्यक् आत्मविषयत्वरूपता से तिनको प्रमाणता नहीं संभवती । क्योंकि प्रत्यगात्मा इन्द्रियों का अधिष्ठान है । अनिर्वचनीय प्रकाशने योग्य विषयों से विपरीतरूपता से अर्थात् सत्त्वित्वादि रूपता से प्रकाश करते हुए की न्याई जो प्रतीत हो । तिस को प्रत्यक् कहते हैं । वह प्रत्यक् ही आत्मा है तै से माने हुए अपने प्रकाश के

अर्थ आत्मा इन्द्रियोंकी अपेक्षा नहीं करता ॥ शंका ॥ स्व आश्रित
 अज्ञानकी निवृत्ति करनेवाली स्वविषयक जो वृत्ति है । तिसकी उत्पत्ति
 केलिये इन्द्रियोंकी अपेक्षा आत्मा करेगा ॥ समाधान ॥ हेवादिन्
 अज्ञानकी निवृत्तिके अर्थ आत्मा इन्द्रियोंकी अपेक्षा करता है । यह
 तुम्हारा कथन यद्यपि सत्य है । तथापि इन्द्रियोंकी आत्मामें प्रवृत्ति नहीं
 होसक्ती ॥ क्योंकि रूपादि गुणोंको सन्मुखकरके प्रसिद्ध इन्द्रियोंकी
 प्रवृत्ति होती है ॥ अर्थ यह रूपादि धर्मविशिष्टमें इन्द्रिय प्रवृत्त होते हैं । और
 आत्मारूपादि धर्मसे रहित निर्धर्म कहें ॥ ऐसा श्रुतिमें सुना है तिस
 कारणसे इन्द्रियोंकी विषयता आत्मामें युक्त नहीं ॥ रूपादि धर्म रहित
 आत्मामें इन्द्रिय प्रवृत्त नहीं होते इस अर्थमें श्रुतिभी प्रमाण है ॥
 सो श्रुति यह है ॥

* परांचि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः तस्मात्

परां पश्यति नांतरात्मन् * (क० उ० ष० ४।१)

अ० ॥ (“स्वयंभूः”) परमात्मा (परांचि) बाह्य वस्तुओंको
 विषय करनेवाले (खानि) इन्द्रियोंको (व्यतृणत्) हिंसा करता
 भया ॥ भाव यह बाह्य वस्तुके विषय करनेका स्वभाव तिनका ईश्वरने
 रचना किया है ॥ याते अनात्म दर्शनकी साधनताही तिनका हिंसन
 अर्थात् मारना है । (तस्मात्) जिस कारणसे इन्द्रिय बाह्य वस्तुको
 ही विषय करते हैं तिसी कारणसे सकल जन इन्द्रियोंसे (परां) अनात्म
 पदार्थोंको ही (पश्यति) देखता है ॥ और (नांतरात्मन्) सर्वसे
 अंतर आत्माको निर्धर्म कहनेसे कोई तिसको नहीं देखसक्ता ॥ इति ॥

इसप्रकारपूर्वउक्तयुक्तिसे जैसे प्रपञ्चज्ञानमें इंद्रियों को साधनताका
 अभावहै ॥ तैसेउक्तश्रुतिसे आत्मज्ञानमेंभीतिनको साधनताका
 अभावहोनेसेकहींभी इंद्रियोंकोप्रमाणतानहीं यहभावहै ॥ शंका ॥
 हेसिद्धांतिन् "तस्मात्पराङ्मशयति" यह श्रुतिइंद्रियोंकोप्रपञ्चज्ञानकी
 कारणताप्रतिपादनकरतीहुई तिनकोप्रपञ्चविषयत्वदिखलातीहै। याते
 किसरीतिसेतिनमें प्रमाणताकाअभाव तुमकहतेहो ॥ समाधान ॥
 हेवादिन् यहश्रुतिइंद्रियोंकोप्रपञ्चविषयत्वके दिखलानेमें तात्पर्यवाली
 है यहतुमकहतेहो ॥ अथवाइंद्रियोंकोप्रपञ्चविषयत्वकाअनुवादकरके
 आत्मामेंइंद्रियोंकी अविषयताप्रतिपादनमें तात्पर्यवालीहै ॥ मथम
 पक्षतोनहीं संभवता क्योंकिनिष्फलतथा ज्ञातार्थके प्रतिपादनमें
 श्रुतिकेतात्पर्यकीअयोग्यतहै। औरद्वितीयपक्षमेंभीयहविचारकरनेयोग्य
 है। अनुवादक्या? प्रमाणसिद्धकाश्रुतिकस्तीहै। अथवाभ्रमसिद्धकाकरती
 प्रथमपक्षतोनहींसंभवता ॥ क्योंकिप्रपञ्चप्रमाकेप्रतिइंद्रियोंमेंकारणता
 केग्राहकप्रमाणरूपतासे अंगीकारकिये जोअन्वयव्यतिरेकादिहैं तिन
 कीआगेकथनकी हुईरीतिसे अन्यथाहीउपपत्तिहै ॥ औरभ्रमसिद्धके
 अनुवादपक्षमें इंद्रियोंकोप्रपञ्चविषयकप्रमाकीकारणतारूपसेप्रमाणाता
 नहींसंभवती ॥ जैसेस्वाप्नज्ञानके प्रति इंद्रियोंका अन्वयव्यतिरेकभ्रम
 रूपहै ॥ तैसेजाग्रतमेंभ्रमरूपअन्वयव्यतिरेककर सिद्धजोप्रपञ्चज्ञानकी
 इंद्रियोंकोकारणताहै तिसकाअनुवादकरकेआत्मामेंइंद्रियोंकीविषयता
 काअभावदिखलानेमेंश्रुतिकातात्पर्यहै ॥ यातेप्रपञ्चप्रमाकेप्रतिइंद्रियों
 कोकारणताकेनहोनेसे प्रमाणाताकाअभावहै ॥ इसप्रकार प्रमामात्रमें

इंद्रियोंको कारणता है ॥ यह प्रथम पक्ष था । सो प्रमात्वके निरूपण की कठि-
नता होनेकर तिस प्रमांनिष्ठ कार्यता निरूपित कारणता तिन इंद्रियोंमें न
ग्रहण होनेसे और प्रमा की कारणता का तिनमें अभाव होनेसे नहीं संभवता
यह पूर्व कथन किया ॥ और इंद्रियोंको प्रमा ज्ञान की कारणता का अभावरूप
जो हेतु है तिसकर भ्रम प्रमा साधारण ज्ञान मात्र में इंद्रियोंको कारणता है ॥
यह द्वितीय पक्ष भी निरास हुआ । क्योंकि पूर्व उत्तरीति से प्रमा की कारणता
इंद्रियोंमें निरूपण नहीं हो सकती ॥ शंका ॥ हे सिद्धांति पूर्व उत्तरीति
से भ्रम प्रमा साधारण ज्ञान मात्र में इंद्रियोंको कारणता के अभाव हुए भ्रम मात्र
में तिनको कारणता है ॥ समाधान ॥ हेवादि ब्रह्म तृतीय पक्ष भी असंगत है
क्योंकि यह एक देशी का विकल्प है अथवा नैयायिकादिकों का है । यह विचार
करने योग्य है ॥ तिनमें प्रथम पक्ष नहीं संभवता ॥ क्योंकि भ्रम ज्ञान को अविद्या
मात्र कारण कत्व तुमने आप ही पूर्व कथन किया है ॥ यदि इंद्रियोंको भ्रम ज्ञान
के प्रतिकारण मानोगे तो अपने कथन का विरोध प्राप्त होगा ॥ और द्वितीय
पक्ष में तिन नैयायिकादिकों से हम यह पूछते हैं ॥ इंद्रियोंको भ्रम ज्ञान की
कारणता का ग्राहक प्रमाण अन्यव्यतिरेक ही है । अथवा कोई अन्य प्रमाण है
प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि जेसे स्वप्न में इंद्रियों की प्रवृत्तिके अभाव
हुए भी इंद्रियों का अन्यव्यतिरेक ज्ञान के प्रति देखने में आता है । वह अन्यव्य
व्यतिरेक प्रमाण रूप होनेकर कारणता का ग्राहक नहीं हो सकता ॥ तैसे
जाग्रत में भी इंद्रियों का अन्यव्यतिरेक ज्ञान के प्रति तिनको कारणता का
ग्राहक नहीं ॥ और कारणता का ग्राहक कोई अन्य प्रमाण है यह द्वितीय
पक्ष भी नहीं संभवता क्योंकि तिसकी अग्रतीति है ॥ शंका ॥

रूपोपलब्धिः करणसाध्या क्रियात्वात् ॥

छिदिक्रियावत् ॥

अ० ॥ रूपकाजोज्ञानहै वह करण साध्य है । क्रियारूप होने से । जो जो क्रिया होती है वह करण साध्य होती है जैसे छेदन रूप क्रिया है ॥ इति ॥ इत्यादिक अनुमान नेत्रादिकोंको प्रपंचस्वरूप रूपादिकोंकी उपलब्धि के प्रति-
कारणता के ग्राहक हैं । याते प्रमाणका अभाव कथन नहीं संभवता ॥
समाधान ॥ हेवादि उपलब्धि शब्द से स्फुरण रूप शुद्ध चेतन मात्र कहते हो
अथवा वृत्ति रूप ज्ञान कहते हो अथवा वृत्त्युपहित चेतन को कहते हो ॥ प्रथम
पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि

✽ नित्यं विज्ञानं ✽

अ० ॥ नित्य विज्ञान स्वरूप है ॥ इस श्रुति से चेतन स्वरूप ज्ञान
को नित्यत्व सिद्ध हुए करण की अपेक्षा नहीं है ॥ और यदि द्वितीय पक्ष कहो
तो वह वृत्ति रूप उपलब्धि करण से रहित हुई ही अनुमान में पक्ष है अथवा नेत्र
से भिन्न करण वाली हुई पक्ष है ॥ अथवा नेत्र रूप करण वाली हुई पक्ष है ॥
प्रथम और द्वितीय पक्ष तो नहीं संभवते ॥ क्योंकि उपलब्धि को अकरणिक
माने हुए अथवा चक्षु भिन्न करणिक माने हुए करण साध्यत्व रूप साध्यका
अभाव होने से अनुमान में बाध प्राप्त होगा ॥ और तृतीय पक्ष में अन्योऽन्या
श्रय दोष की भाँति है ॥ सो ऐसे है ॥ चक्षु है करण जिसका ऐसी वृत्तिके सिद्ध
हुए चक्षु करणिक उपलब्धि रूप पक्ष वाले अनुमान की श्रुति होगी ॥
और अनुमान के प्रवृत्त हुए चक्षु करणिक वृत्ति की सिद्धि होगी
॥ इस प्रकार वृत्तिके पक्षत्व के अभाव से ही वृत्ति उपहित चेतन को
भी पक्ष पान नहीं संभवता क्योंकि तिसमें भी अन्योऽन्या श्रय दोष ही प्राप्त
होता है ॥ और पूर्व उक्त विकल्पों को त्याग कर उपलब्धि मात्र को पक्ष कहो

तोवहभीनहींसंभवता ॥ क्योंकि

❀ तस्मादापि पृष्ठत उपस्पृष्टो मनसा विजानाति ❀

बृ० उ० अ० ३ ब्रा० ५॥३

अ० ॥ तिससेभीपृष्ठसेसमीपस्पर्शहुएपदार्थकोमनसेयहपुरुष जानलेताहै ॥ इसश्रुतिसेमनकी स्वतंत्ररूपतासे बाह्यभृतिसिद्धहै ॥ यातेरूपादिउपलब्धिनेत्रादिकरणसाध्यनहीं किन्तुमनोजन्यहै अथवा अविद्याजन्यहै ॥ औरयहांयहअनुमानभीजानना ॥

विमतंचक्षुर्नरूपस्य तदाश्रयद्रव्यस्य वाग्राहकं असाधारणं इन्द्रियत्वात् ॥ घ्राणादिवत् ॥

अ० ॥ विवादकाविषयजोनेत्रइन्द्रियहै । वहरूपऔरतिसके आश्रयभूतद्रव्यकाग्राहकनहीं॥असाधारणइन्द्रियहोनेसे । जोजोअसाधारणइन्द्रियहै।सोसोरूपऔरतिसके आश्रयभूतद्रव्यकाग्राहकनहींहै॥ जैसेघ्राणादिकइंद्रियहैं ॥ इसअनुमानकरनेत्रइंद्रियकोरूपकीग्राहकताकानिपेधहोनेसेघ्राणादिकइंद्रियोंको गंधादि विषयोंकी ग्राहकताकानिपेधभीजानलेना ॥ इसअनुमानमे “असाधारणं इन्द्रियत्वात्” यहहेतुहै । तिसकायदिबाह्यइंद्रियहोनेसे । ऐसार्थकरें ॥ तोजिनकेमतमे मनकोइंद्रियरूपताहै।उनकेमतकोलेकस्तोअसाधारणपदसफलहोसकताहैं । परन्तुजिनके मतमेमनइंद्रियनहीं तिनकेमतमे असाधारण पदकी निष्फलताहोगी ॥ औरयदिऐसा निर्वचनकरें “यत् किंचत् कार्यता निरूपित कारणता आश्रयत्व” कानामअसाधारणत्वहैतोअनुमानमे बाधप्राप्तहोगा ॥ क्योंकियत्किंचत्कार्य रूपकीउपलब्धिहै तत्निरूपितकारणताकाआश्रयपनानेत्रइंद्रियमेमानेहुएरूपऔरतिसकेआश्रय

भूतद्रव्यका अग्राहकत्वरूपसाध्यका अभावहोनेसे बाधकी प्राप्ति स्पष्ट ही है। याते यह निर्वचन भी समीचीन नहीं। किंतु “यत्किंचित् कारणात् निरूपितकार्यता आश्रयत्वरूप” ही असाधारणत्व जानना ॥ अर्थ यह तेजादिभूतोंके सतोगुणमें यत्किंचित् कारणात् है तिसकर निरूपित कार्यतानेत्रादि इन्द्रियोंमें विद्यमान है याते उक्त निर्वचन ही समीचीन है ॥ इति ॥ और मन भी प्रपंच उपलब्धि ॥

✽ मन की करणताके निषेधपूर्वक अविद्यामूलक प्रपंच उपलब्धिका स्थापन । ✽

का करण नहीं है। अब इसीको निरूपण करते हैं ॥ वह मन क्या? आत्मा की उपलब्धि अर्थात् ज्ञान का करण है अथवा सुखादि उपलब्धि के प्रतिकरण है ॥ प्रथम पक्ष तो कर्तृकर्म रूपविरोध होनेसे नहीं संभवता। क्योंकि शुद्ध आत्मा को तो स्वप्नकाशस्वरूप होनेसे मनोजन्य ज्ञान की विषयता का अभाव है और अंतःकरण विशिष्ट आत्माके ज्ञान कामन को करण माने ॥ तो विशिष्ट वृत्ति धर्म को विशेषणमें वर्तने का नियम होनेसे एक ही मन को उपलब्धिका आश्रय रूपसे कर्ता पना होगा। और उसीको विषय रूप होनेसे कर्म पना होगा ॥ सो दोनों एक कालमें एक अधिकरण विषयक विरुद्ध हैं ॥ यही कर्तृकर्म रूपविरोध है। याते आत्माके ज्ञान की करणता मनमें नहीं संभवती ॥ और द्वितीय पक्ष भी असंगत है। क्योंकि सुखादि कर्साक्षि मास्य हैं ॥ इस प्रकार इन्द्रिय तथा मन को प्रपंच ज्ञान की करणता का अभाव होनेसे अविद्यामूलक ही जगत् का ज्ञान है किसी भी हेतु से इन्द्रियादिकोंको प्रमाण तानहीं ॥

✽ शंकापूर्वक प्रपंचको अविद्योपादान

तोवहभीनहींसंभवता ॥ क्योंकि

❀ तस्मादापि पृष्ठत उपस्पृष्टो मनसा विजानाति ❀

बृ० उ० अ० ३ ब्रा० ५॥३

अ० ॥ तिससेभीपृष्ठसेसमीपस्पर्शहुएपदार्थकोमनसेयहपुरुष जानलेताहै ॥ इसश्रुतिसेमनकी स्वतंत्ररूपतासे ब्राह्मणवृत्तिसिद्धहै ॥ यातेरूपादिउपलब्धिनेत्रादिकरणसाध्यनहीं किन्तुमनोजन्यहै अथवा अविद्याजन्यहै ॥ औरयहांयहअनुमानभीजानना ॥

विमतंचक्षुर्न रूपस्य तदाश्रयद्रव्यस्य वाग्राहकं असाधारणोऽद्रियत्वात् ॥ घ्राणादिवत् ॥

अ० ॥ विवादकाविषयजोनेत्रइन्द्रियहै । वहरूपऔरतिसके आश्रयभूतद्रव्यकाग्राहकनहीं॥असाधारणइन्द्रियहोनेसे । जोजोअसाधारणइन्द्रियहै।सोसोरूपऔरतिसके आश्रयभूतद्रव्यकाग्राहकनहींहै॥ जैसेघ्राणादिकइन्द्रियहैं ॥ इसअनुमानकरनेत्रइन्द्रियकोरूपकीग्राहकता कानिपेधहोनेसेघ्राणादिकइन्द्रियोंको गंधादि विषयोंकी ग्राहकताका निपेधभीजानलेना ॥ इसअनुमान मे “असाधारणोऽद्रियत्वात्” यह हेतुहै । तिसकायदिबाह्यइन्द्रियहोनेसे । ऐमाश्रयकरें ॥ तोजिनकेमतमे मनकोइन्द्रियरूपताहै।उनकेमतकोलेकरतोअसाधारणपदसफलहोसकता है । परन्तुजिनके मतमेमनइन्द्रियनहीं तिनकेमतमे असाधारण पदकी निष्फलताहोगी ॥ औरयदिऐसा निर्वचनकरें “यत् किंचित् कार्यता निरूपित कारणता आश्रयत्व” कानामअसाधारणत्वहेतोअनुमानमे बाधप्राप्तहोगा ॥ क्योंकियत्किंचित्कार्य रूपकीउपलब्धिहै तदनिरूपितकारणताकायाश्रयपनानेत्रइन्द्रियमेमानेदृष्टारूपऔरतिसकेआश्रय

भूतद्रव्यका अग्राहकत्वरूपसाध्यका अभावहोनेसे बाधकी प्राप्ति स्पष्ट ही है।
याते यह निर्वचन भी समीचीन नहीं। किंतु “यत्किंचित् कारणात्ता
निरूपितकार्यता आश्रयत्वरूप” ही असाधारणत्व जानना ॥ अर्थ यह
तेजादिभूतोंके सतोगुणमें यत्किंचित् कारणात्ता है तिसकर निरूपित
कार्यतानेत्रादि इन्द्रियोंमें विद्यमान है याते उक्त निर्वचन ही समीचीन
है ॥ इति ॥ और मन भी प्रपंच उपलब्धि ॥

✽ मन की करणात्ताके निषेधपूर्वक अविद्यामूलक
प्रपंच उपलब्धिका स्थापन । ✽

का करण नहीं है। अब इसीको निरूपण करते हैं ॥ वह मन क्या?
आत्मा की उपलब्धि अर्थात् ज्ञान का करण है अथवा सुखादि उपलब्धि
केशतिकरण है ॥ प्रथम पक्ष तो कर्तृकर्म रूपविरोध होनेसे नहीं संभवता।
क्योंकि शुद्ध आत्मा को तो स्वप्नकाशस्वरूप होनेसे मनोजन्य ज्ञान की विषय
ता का अभाव है और अन्तःकरण विशिष्ट आत्माके ज्ञान का मन को करण
माने ॥ तो विशिष्ट वृत्ति धर्म को विशेषणमें वर्तने का नियम होनेसे एक ही
मन को उपलब्धिका आश्रय रूपसे कर्ता पना होगा। और उसीको विषय
रूप होनेसे कर्म पना होगा ॥ सो दोनों एक कालमें एक अधिकरण विषयक
विरुद्ध हैं ॥ यही कर्तृकर्म रूपविरोध है। याते आत्माके ज्ञान की करणात्ता
मनमें नहीं संभवती ॥ और द्वितीय पक्ष भी असंगत है। क्योंकि सुखा
दिक साक्षि भास्य हैं ॥ इस प्रकार इन्द्रिय तथा मन को प्रपंच ज्ञान की करणात्ता
का अभाव होनेसे अविद्यामूलक ही जगत् का ज्ञान है किसी भी हेतु से इन्द्रि-
यादिकोंको प्रमाण तानहीं ॥

✽ शंकापूर्वक प्रपंचको अविद्योपादान

कत्वस्थापन ॥ ❀

॥ शंका ॥ हेसिद्धांतिन् अविद्याहैउपादानजिनका ऐसेजो । मिथ्यारजतादिकहैं तिनको अविद्याकी वृत्तिकर ग्राह्यपनातो संभवताहै । परंतुघटादिजगत्कातोअविद्याउपादानकारणनहीं । क्यों किघटादिकोंकेअर्थीकुलालादिकोंकोमृत्तिकादिकारणविशेषकाग्रहण देखनेमेंआताहै । तिसकारणसेअन्वयव्यतिरेककरसिद्ध मृत्तिकादिक घटादिकोंके उपादानकारणहैं । यातेघटादि प्रपंचकोअविद्योपादान कत्वकाअभावहोनेसे अविद्यावृत्तिकी विषयता किसप्रकारसंभवैगी किंतुनहींसंभवती ॥ समाधान ॥ हेवादिन्मध्यमघटादिपदार्थ कार्य रूपहैं । यहांकार्यताके साधकअनुमानका यहआकारहै ।

❀ घटादिकार्यं मध्यमपरिमाणत्वात्

व्यतिरेकेण आत्मवत् ॥ ❀

अ० ॥ घटादिजगत्कार्यरूपहै ॥ मध्यमपरिमाणवालाहोनेसे। जोजोकार्यनहीं है । सोसोमध्यम परिमाणवालाभीनहींहै । जैसेआत्मा है ॥ इति ॥ औरवहघटादिजगत्भावरूपहै । क्योंकिनिष्प्रतियोगिक है । इसप्रकारसर्वघटादि भावकार्यमेंउपादानकारणकी अकांक्षाकेहुए आत्माकोतोअसंगहोनेसे किसीकावहकारणनहीं संभवता । परिशेषसे अविद्याहीउपादानकारणरूपतासेकल्पनाकरनेयोग्यहै । यद्यपिघटादिकों कोअविद्याउपादानक मानेहुएघटादिकोंकेअर्थीकुलालादिकोंकोमृत्तिकादिकोंकाग्रहणदेखाजाताहै तिससेमृत्तिकादिकोंकोउपादानकल्पना काविरोधहोगा ॥ तथापिघटादिकोंके अर्थियोंको तिसतिस कारण विशेषकाग्रहणआविद्यकपनेकाविरोधिनहीं ॥ क्योंकिमृत्तिकादिआकार

से अविद्याही परिणामको प्राप्त हुई है ॥ अविद्याको उपादान होने से अविद्या स्वरूप मृत्तिकादिकों को घटादिकों के प्रतिकारणता की कल्पना आविद्यक पने के साथ विरोधवाली नहीं ॥ जैसे स्वप्ने वास्तव से न कोई घट है और न कोई मृत्तिका है किंतु अविद्याही मृदरूपता को प्राप्त होकर आविद्यक कुलाल कर गृहीत हुई आविद्यक घटादिकों को रचना करती है ॥ क्योंकि

*** नतत्ररथाः ***

अ० ॥ स्वप्न अवस्थामे व्यवहार करत नहीं है ॥ इत्यादि कश्रुति से तहां वास्तव सृष्टिकानि पेध किया है ॥ तथा जाग्रत काल मे भी

*** नेह नाना जस्ति ***

इत्यादि श्रुति से घटादि प्रपंच कानि पेध सुना जाता है ॥ और

*** मायांतु प्रकृतिं विद्यात् ***

इस श्रुति से मायारूप अविद्या को जगत् की उपादानता श्रवण होने से मृदादि आकार परिणाम को प्राप्त हुई अविद्याही घटादिकों का उपादान कारण है इस प्रकार मानने मे किंचित मात्र भी विरोध नहीं ॥ इति ॥

*** अथ अत्रांतर विषय की समाप्ति पूर्वक प्रपंच निष्ठ ज्ञात**

सत्ता के निरूपण का उपसंहार •

यहां प्रथम जगत् की ज्ञात सत्ता प्रधान रूपता कर कथन करने लगे थे तिसकी सिद्धि के अर्थ प्रपंच निष्ठ आविद्यक पना कथन किया ॥ अब तिस अत्रांतर विषय को समाप्त करते हैं ॥ पूर्व उक्त युक्ति से ग्रह से भिन्न सर्व कार्य मात्र ज्ञान औ ज्ञेय स्वरूप वह सर्व ही आविद्यक है अर्थात् अविद्या का कार्य है ॥ इस प्रकार प्रपंच औ तिस के ज्ञान को आविद्यक होने से सर्व प्रपंच की ज्ञात सत्ता है ॥ यह अर्थ सिद्ध हुआ ॥ इस रीति से ज्ञान तथा ज्ञेय को आविद्यक होने के ज्ञान

कालमेहीज्ञेयकीसत्ताहै। ज्ञानसेपूर्वतथाउत्तरकालमेज्ञेयकीसत्तानहीं। और ज्ञानकीस्थितिसेप्रपंचस्थितहोताहै। औरज्ञानकीनिवृत्तिसेनिवृत्तहोजाता है।। यार्तेज्ञातसत्ताकहीप्रपंचहै ॥ यहअर्थपूर्वनिरूपणाकिया। अथइसी अर्थमेवसिष्टमुनिके वचनकी संमतिदिखलातेहैं ॥ यहीअर्थथ्रीवसिष्ट भगवान्जीनेभीकहाहै ॥

मू० ॥ अविद्यायोनयोभावासर्वमीबुद्बुदाइव ।

क्षणामुद्भूयगच्छंतिज्ञानैकजलधौलयं ॥१॥

अ० ॥ (सर्वेअमी) यहसर्व (भावाः) ज्ञानज्ञेय रूपपदार्थ (अविद्यायोनयः) अविद्याउपादानकहैं ॥ और (बुद्बुदाइव) जैसेसमुद्र मेबुद्बुदेक्षणमात्रमे उत्पन्न होकरलय होजातेहैं ॥ तैसेयहज्ञानज्ञेयरूप पदार्थभी (क्षणं) एकक्षणमात्रमे (ज्ञानैकजलधौ) एकरस चेतनरूप समुद्रमे (उद्भूय) उत्पन्नहोकर (लयंगच्छंति) लयहोजातेहैं। इति ॥१४

❀ अथपूर्वपक्षीकीरीतिसेअविद्याकोप्रपंचकीकारणाता काअसंभवानिरूपण ❀

अथपूर्वपक्ष ॥ घटपटादिकोंके अर्थियोंकोमृत्तिकातंतुआदिक कारणाविशेषकाग्रहणस्वप्नकीन्याई उपपादनकरनेयोग्यहै । ऐसेकहने वालेसिद्धांतीसे हमयहपूछतेहैं । मृद्घटादिकोंकाकार्य कारणभाव तुमअंगीकारहीनहींकरते अथवातिनकाकार्यकारणभावतुमअंगीकार करतेहो । इनमेंप्रथमपक्षमें दूषणकहतेहैं ।

मू० ॥ मृदादीनां कारणात्वंनचेदिष्टं घटंप्रति ।

अविद्यायाः कारणात्वंकथंसिद्ध्येत् प्रमांविना । १५

चित्रपदा० ॥ जेकरइष्टनहोगा । कारणमाटिघटोंका ॥

कारणसोतमएसे । मानविना कहुकैसे ॥ १६ ॥

टी० ॥ हेसिद्धांतिन् यदिमृदादिकोंको घटादिकोंकी कारणता तुमअंगीकारनहींकरोगे। तोकहींभीकार्यकारणभावनअंगीकारहोनेकर अविद्याकोप्रपंचकीकारणता कैसे सिद्धहोगी ॥ क्योंकिदृष्टार्थके अनुसारहीअदृष्टकी कल्पनाहोतीहैऔरयदि तुमकार्यकारणभावमानो तोवहकार्यकारणभाव मृदघटादिकोंका प्रमाणसिद्धहै अथवाभ्रम सिद्धहै ॥ अंत्यपक्षतो नहींसंभवता ॥ क्योंकिविषयके बाधहोनेसेही ज्ञानमेंभ्रमपनाहोनाहै ॥ जबकार्यकारणभाव रूपविषयकाबाधहुआतो अविद्याकोकारणता कैसेसिद्धहोगी ॥ यहपूर्वउक्तदोपहीपुनः प्राप्त होताहै । औरयदिप्रथमपक्षकहोतोघटादिकोंकीकारणता अविद्याको नहींसंभवैगी ॥ क्योंकिकारणताके ग्राहकअन्वयव्यतिरेकादिरूप प्रमाणकोमृत्तिकादि कारणविषयकहोनेकर अविद्याविषयकत्वतिनको नहींहै ॥ यातेप्रमाणसेविना अविद्यामेंकारणताका अभावहै । अब इसीअर्थको विस्तार पूर्वकनिरूपणकरतेहैं ॥ हेसिद्धांतिन् अविद्या सर्वभावकार्योंका उपादानकारणहै ऐसेकअनकरनेवाले तुमकोकहीं कार्यकारणभाव स्वीकारहैवानहीं ॥ यदिअंत्यपक्षकहोतो प्रपंचको अविद्याउपादानकत्व कैसेसिद्धहोगा ॥ क्योंकिकार्यकारणभावतो कहींभीस्वीकारनहीं । औरजोप्रथमपक्षकहो । तो यथायोग्यअन्वय व्यतिरेकादि प्रमाणसेही कार्यकारणभावका ग्रहणकरतावचितहै ॥ यहां “अन्वयव्यतिरेकादि” इसथादिपदसेधर्मीके ग्राहकप्रमाणका ग्रहणहै । तिसीकारणसेप्रत्यक्ष मृदघटादिकोंकाकार्य कारणभावतो

अन्वयव्यतिरेककरके और शब्द तथा आकाशादिकों का कार्य कारण भव धर्मि ग्राहक अनुमान प्रमाण से यथा योग्य ग्रहण होता है ॥ तिस कार्य कारण भाव में और कोई प्रकार नहीं संभवता यहां धर्मि ग्राहक अनुमान का यह आकार है ॥

❀ शब्दः पृथिव्यादि अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितः।

अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सतिद्रव्याश्रितत्वात् ॥

यन्नैवं तन्नैवं यथारूपादि ❀

अ० ॥ शब्द जो है सो पृथिव्यादिक अष्टद्रव्यों से भिन्न द्रव्य के आश्रित है ॥ अष्टद्रव्य के अनाश्रित हुआ द्रव्य के आश्रित होने से जो जो अष्टद्रव्यों से अतिरिक्त द्रव्य के आश्रित नहीं । सो सो अष्टद्रव्यों के अनाश्रित हुआ द्रव्य के आश्रित भी नहीं । जैसे रूपादिक गुण हैं ॥ इस अनुमान में हेतुगत विशेषण भाग की असिद्धि दूर करने के लिये तीन अनुमान और हैं । तिन में प्रथम का यह आकार है ॥

❀ शब्दो न स्पर्शवद् विशेषगुणः । अग्नि संयोगा

ऽसमवायिकारणकत्वा भावे सति अकारणगुण

पूर्वकप्रत्यक्षत्वात् ॥ सुखवत् ❀

अ० ॥ शब्द जो है सो स्पर्शवाले द्रव्यों का विशेष गुण नहीं है ॥ अग्निसंयोगरूप असमवायिकारणकत्व के अभाववाला हुआ अकारण गुण पूर्वक प्रत्यक्ष होने से ॥ जो जो अग्नि संयोगरूप असमवायिकारण कत्व के अभाव वाला हुआ अकारण गुण पूर्वक प्रत्यक्ष होता है । सो सो स्पर्शवाले द्रव्यों का विशेष गुण नहीं होता । जैसे सुखरूप गुण है ॥ इस अनुमान से पृथिवीजल अग्नि वायु इन चार द्रव्यों के आश्रित शब्द नहीं है

यहसिद्धहुआ । इसअनुमानगतहेतुमें यदिविशेष भागहीकहतेतो पाकजरूपादिकोंमें व्यभिचारहोता । क्योंकिकारणगुणपूर्वकतासेविना हीतिनका प्रत्यक्षहोताहै ॥ तिसव्यभिचारके दूरकरनेके लियेहेतुमें विशेषणभाग कथनकियाहै ॥ तिनमेंअग्नि संयोगरूपअसमवायि कारणकत्वका अभावनहीं ॥ किंतुसद्भावहै । औरयदिहेतुमेंविशेष भागनकहते ॥ तोपटगतरूपादिकोंमेंव्यभिचारहोता । क्योंकिअग्नि संयोगरूप असमवायिकारणकत्वकाअभावतिनमेंभीहै ॥ तिनमें व्यभिचार दूरकरनेकेलिये अकारणगुणपूर्वकत्वयहविशेषभागकथन कियाहै ॥ तिनमेंअकारणगुणपूर्वकत्वनहीं॥किंतु कारणगुणपूर्वकत्वहै औरजलपरमाणुगतरूपमें व्यभिचार दूरकरनेकेलिये “प्रत्यक्षत्व” यहपदहेतुमेंकहाहै ॥ क्योंकि “अग्निसंयोगाऽसमवायिकारणकत्वके अभाववालाहुआ अकारणगुणपूर्वकत्व” इतनाहेतुभाग तोजलपरमाणुकेरूपमेंविद्यमानहै परन्तुतिसका प्रत्यक्षनहीं होतायातेव्यभिचार नहीं । औरद्वितीयअनुमानयहहै ॥

❀ शब्दोनदिक् कालमनसांगुणः

विशेषगुणत्वात् रूपवत् ❀

अ० ॥ शब्दजोहैसोदिशातथाकालऔमन इनतीनोंकागुण नहींहै।विशेषगुणहोनेसेजोवो विशेषगुणहोताहै।सोसोइनतीनद्रव्योंका गुणनहींहोता । जैसेरूपादिकहैं । इसअनुमानसेदिगादितीनद्रव्योंके आश्रितभीशब्द नहींहै यहअर्थ सिद्धहुआ ॥ इति ॥ औरतृतीयअनुमानयहहै ॥

❀ शब्दोनात्मविशेषगुणः बहिरिन्द्रिय

योग्यत्वात् रूपवत् ❀

अ० ॥ शब्दजोहै सो आत्मा का भी विशेष गुण नहीं। बाह्य इन्द्रिय कर ग्रहण के योग्य होने से ॥ जो जो गुण बाह्य इन्द्रिय कर ग्रहण के योग्य होता है। सो सो आत्मा का विशेष गुण नहीं होता ॥ जैसे रूप है ॥ इस अनुमान से शब्द आत्मा के भी आश्रित नहीं। यह सिद्ध हुआ ॥ और हेतु गत विशेष भाग की असिद्धि दूर करने के लिये यह अनुमान है ॥

❀ शब्दोऽद्रव्यसमवेतः। गुणत्वात् संयोगवत् । ❀

अ० शब्द जो है। सो द्रव्य में समवेत है ॥ गुण होने से ॥ जो जो गुण होता है सो सो द्रव्य में ही समवेत होता है। जैसे संयोग है ॥ इस अनुमान से शब्द को द्रव्य समवेतत्व सिद्ध होता है। और इस अनुमान में स्वरूपा सिद्धि के दूर करने वाला यह अनुमान है ॥

❀ शब्दो विशेष गुणः। चक्षुर्ग्रहणा योग्यवहिरिन्द्रियग्राह्य

जातिमत्त्वात् स्पर्शवत् ❀

अ० ॥ शब्द जो है सो विशेष गुण है ॥ चक्षु इन्द्रिय कर ग्रहण के अयोग्य हुआ बाह्य इन्द्रिय कर ग्राह्य जाति वाला होने से ॥ जो जो चक्षु इन्द्रिय कर ग्रहण के अयोग्य हुआ बाह्य इन्द्रिय कर ग्राह्य जाति वाला है सो सो विशेष गुण है ॥ जैसे स्पर्श गुण है ॥ इति ॥ इस प्रकार निर्दोष पूर्व उक्त परिशेषानुमान से गगन नाम वाला नवम द्रव्य ही शब्द का आधार है। याते यह अनुमान शब्द तथा आकाश के कार्य कारण भाव का ग्राहक होने से धर्मि ग्राहक प्रमाण जानना ॥ इति ॥ शंका ॥ हेवादि नृमृदधरादिकों में अन्वय व्यतिरेकादि प्रमाण सिद्ध कार्य कारण भाव हो तिस से क्या सिद्ध हुआ ॥ समाधान ॥ हे सिद्धांति नृते से माने हुए अन्वय व्यतिरेकादि सिद्ध जो मृत्तिकादिकों में

कारणता है ॥ तिसको त्याग कर अथ विद्या को कारण कहें ना उचित नहीं ॥
 यह सिद्ध हुआ ॥ किंवा ॥ “कारणत्वेनाऽविद्यैव उपसंहरतव्या” अ० ॥
 कारणत्वरूपता से अविद्या ही ग्रहण करने योग्य है ॥ इसी वचन में “अवि-
 द्यैव” यह जो (एव) शब्द है सो अविद्या से भिन्न मृदादिकों में कारणता की
 योग्यता को दूर करता है । अथवा अविद्या में कारणता की अयोग्यता को
 निवारण करता है ॥ दोनों रीति से “एव” शब्द का प्रयोग नहीं संभवता ॥
 इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं ॥ अविद्या ही सर्व भावों का उपादान कारण है ऐसे
 कहने वाले वादी से यह प्रश्न चाहिये क्या ? इतर कारण जो मृत्तिका दंड छल्लाल
 अदृष्ट ईश्वरादि हैं तिनकी अपेक्षा से बिना केवल अविद्या ही कारण है अथवा
 अदृष्ट ईश्वर तथा मृदादिकारणों की अपेक्षा सहित अविद्या कारण है ॥
 एव शब्द का जो प्रथम अर्थ अन्य योगव्यवच्छेद तिसको प्रथम निषेध करते हैं ॥
 प्रथम पक्ष नहीं संभवता ॥ क्योंकि यदि केवल अविद्या को ही कारण मानोगे
 तो प्रपंच रूप कार्य में नाना पना नहीं होगा ॥ कारण निष्ठ विचित्रता के
 अभाव होने से कार्य निष्ठ विचित्रता की अनुपपत्ति है एक पदार्थ को अवि-
 चित्र होने से कार्य में अनेक रूपता नहीं हो सकती ॥ क्योंकि सामग्री का भेद
 कार्य के भेद का साधक है ॥ जैसे श्वेत पीतादिवर्ण युक्त तंतुओं से विचित्र
 पटकी उत्पत्ति होती है केवल श्वेत तंतुओं से नहीं ॥ तैसे दाष्टांत में भी जान
 लेना ॥ किंवा ॥ कारण रूपता से स्वीकार की हुई जो अविद्या है वह चेतन
 तो है नहीं ॥ क्योंकि तिसको चेतन मानने कर अविद्यात्व की हानि होती है ॥
 या तो वह जड़ है । और यदि तिसको जड़ मानो तो इसमें यह प्रश्न्य है क्या ? वह
 आप ही कार्य करने में प्रवृत्त होती है ॥ अथवा चेतन कर प्रेति हुई प्रवृत्त होती
 है ॥ अंत्य पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि चेतन को भी तिसकी अधिष्ठानता

रूपसेकारणताकीप्राप्तिहुए अविद्यामात्रकारणहै इसलुम्हारे कथनकी हानीहोगी ॥ यातेचेतनकीअधिष्ठानतासेविनाआपहीकार्यकरनेको अविद्याप्रवृत्तहोतीहैयहप्रथमपक्षहीकहनाहोगा।वहभीनहींसंभवता।क्यों किजडशक्तिकोचेतनरूपअधिष्ठानसेविनाकार्यकरनेकीसामर्थ्यकहींदेख नेमेनहींआती ॥ अत्रएवशब्दकाअर्थजोअयोग्यव्यञ्जेदहैतिसकेनिरास करनेलियेकारणांतरसापेक्षअविद्याकार्यकोरचतीहै इसद्वितीयपक्षकोनि पेधकरतेहैं॥ औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता।क्योंकि अविद्याकोकारणता कहनेवालेसिद्धांतीनेभीअदृष्टईश्वरादिकोंकोकारणतातोअवश्यकहनी होगी ॥ यातेघटादिकार्यकानिमित्तकारणरूपताकरअदृष्ट ईश्वरादिकों काकारणसामग्रीमेप्रवेशहोनेसेऔरउपादानताकीअपेक्षाकोमृदादिकों करपूर्णहोनेसेलाघवकेवलकर तिनसेही विचित्रकार्यसिद्ध होजाएगा कारणरूपतासेअभिमत जोमिथ्याअज्ञानरूपअविद्यातिसके माननेका किंचित्मात्रभीफलनहीं ॥ शंका ॥ हेवादिन् अदृष्टादिकोंकी न्याई अविद्याकोभीप्रमाण सिद्धहोनेकरतिसको कारणताकैसेनहीं सिद्धहो सकती ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन् “मैअज्ञानीहूं” यहप्रतीतिही अज्ञानमेप्रमाणरूपकहनीहोगी। सोतोज्ञानकेप्रागभावकोविषयकरतीहै तिसकरअविद्याकी सिद्धिनहीं होसकती ॥ यातेअप्रमाणिक अविद्या जगतकाकारणनहीं ॥ शंका ॥ हेवादिन्वेदांतशास्त्रकी प्रमाणताके अर्थज्ञानज्ञेयरूपपदार्थअविद्याउपादानकअवश्यमानेचाहिये॥समाधान॥ हेसिद्धांतिन्पूँपंचको अविद्याउपादानकताके अभावहुएपूत्यक्षादि लौकिकप्रमाणको औरपुत्रपशुस्वर्गादिकोंकेपूति यागादिकोंकोसाध नताकेबोधक पूर्वकांडरूपवेदकोप्रमाणता संपादित होसकतीहै ॥

और यदि घटादि पंचको आविद्यक माने तो मिथ्या अर्थको विषय करने वाले प्रत्यक्षादि लौकिक प्रमाण निष्ठ शुक्तिरजतज्ञान की न्याई प्रमाणता नहीं होगी ॥ और स्वर्गादितथायागादिकोंको आविद्यक माने हुए तिनका परस्परसाध्य साधनरूप संबंध भी आविद्यक ही होगा ॥ तिसको विषय करने वाले पूर्वकांडरूप वेदको भी प्रमाणता नहीं होगी ॥ और लौकिक तथा वैदिक प्रमाणकी अप्रमाणता माने हुए लोकवेदसे विरुद्ध किस पक्षको यहवादी आश्रयण करेगा ॥ अर्थ यह कि यह आविद्यक जगत्वादी वैदिक भी नहीं ॥ क्योंकि पूर्वकांडकी प्रमाणता नहीं मानता ॥ और यह बौध भी नहीं ॥ क्योंकि प्रत्यक्षादिकोंको भी अप्रमाण कहता है ॥ इन दोनों पक्षोंसे भ्रष्ट हुआ यह आविद्यक जगत्वादी किस पक्षको आश्रयण करेगा ॥ और यह जो पूर्वकहा था कि जगत्को आविद्यक माने हुए वेदांतों में अप्रमाणता प्राप्त होगी ॥ सो कथन भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि वेदांतोंको जपादि अर्थ होनेकर भी प्रमाणता बन सकती है ॥ जिस कारणसे यविद्याको कारण माने हुए विचित्रताकी अनुपपत्ति है ॥ और जिस कारणसे यविद्या जड शक्ति है ॥ और जिस कारणसे प्रत्यक्षादिकोंमें प्रमाणता है ॥ तिसी कारणसे ज्ञानज्ञेयरूप पदार्थोंको यविद्यामात्र उपादानकताका यभाव है ॥ याते यविद्या मात्रको जगत्की कारणता कथनकेवल सिद्धांतिका साहस मात्र अर्थात् विचारविना कथन है ॥ इति पूर्वपक्ष ॥ १५ ॥

❀ अथ सिद्धांत ॥ सत् तथा असत्की उत्पत्तिके निरास पूर्वक यविद्याको जगत्कारणताकी सिद्धिका प्रकार ❀

समाधान ॥ जोवादीने पूर्व यह कथन किया कि मृदादिकारणको त्यागकर यविद्याको कारणताका कथन अनुचित है ॥ इस पूर्वपक्षमें यविद्या

को कारणता का कथन उचित है । इस सिद्धांत को हम निरूपण करते हैं ।
अविद्या को कारणता कैसे सिद्ध होती है । ऐसी आकांक्षा के द्वारा कथन करने
योग्य अर्थ को कहते हैं ॥

मू० ॥ यथा सतो जनिर्नैव मसतो पि जनिर्न च ।

जन्यत्वमेव जन्यस्य मायिकत्वसमर्पकम् ॥ १६ ॥

विद्युन्माला ॥ सा चाजैसे नाहीं जामे । नाहीं झुठो तैसे जामे ।

जन्या या संसार मोहीं । माया की ताबो धेता हीं ॥ १७ ॥

टी० ॥ हेवादि न कार्य क्या ? निर्वचन के योग्य है अथवा निर्वचन
के योग्य नहीं है ॥ प्रथम पक्ष मे भी यह विचार कर्तव्य है ॥ वह कार्य क्या ?
आत्मा की न्याई सत् रूप है । अर्थात् पारमार्थिक स्वरूप है । अथवा शशभृंग की
न्याई असत् रूप अर्थात् तुच्छ रूप है । प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि

❀ स्वसत्ता संबंधो हि जनिः ❀

अ० ॥ “स्व” कहिये कार्य के साथ सत्ता का जो संबंध है तिसको
“जनि” कहिये उत्पत्ति कहते हैं ॥ वह यहाँ नहीं संभवती क्योंकि अपनी
सत्ता के साथ संबंध वाले सत्पदार्थ मे अन्य सत्ता के संबंध की अपेक्षा व्यर्थ है ॥
और उत्पात्ति वाला ही कार्य होता है ॥ और सत्त्वस्तु सर्व काल मे उत्पत्ति रहित
है ॥ तिसी से सत् रूपता कर पूंचका निर्वचन किये हुए तिसमे कार्यत्व की
हानि होगी ॥ और ❀ एकमेवाद्वितीयम् ❀

यह शास्त्र सजातीयादि मे द्रष्टव्य एक अद्वैत आत्मा मे उपक्रम आदि
पद लिंगों से तात्पर्य वाला है ॥ कार्य को पारमार्थिक माने हुए तिसके साथ
विरोध भी प्राप्त होगा ॥ शंका ॥ ❀ सृष्टिकेत्येव सत्यं ❀

अ० ॥ मृत्तिकाहीसत्वरूपहै । यहशास्त्रप्रपंचकीसत्वरूपताभी बोधनकरताहै । आपप्रपंचकोअसत्वरूपकैसेकहतेहो ॥ समाधान ॥ हे वादिन्जो आगमतुमनेकहा सोयद्यपिसत्यहै । परन्तु तिसकास्वार्थमे तात्पर्यनहीं ॥ क्योंकि “एकमेवाद्वितीयम्” यहपूर्वकथनकिया जो शास्त्रसोआगेकथनकियेहुएअनुपपत्तिरूपतर्कसहकृतहुआ बलवान्है तिसकेसाथविरोधहोनेसेवहआगमअन्यार्थपरहै । अर्थयह । वहआगम कोईमृदादिप्रपंचकोसत्वरूपनहींकहता । किंतुतिनकेअधिष्ठानसत्त्वह कोहीसत्यरूपप्रतिपादनकरताहै । इसीअभिप्रायसेप्रपंचकेसत्यत्वमेअनुपपत्तिकोनिरूपणकरतेहैं । कार्यप्रपंचमेसत्यपनेकीअनुपपत्तिहैजिसप्रकार सोअनुपपत्तिहैसोदिखलातेहैंहेवादिन्क्या ? उत्पत्तिसेपूर्व यहकार्यसत्है वाअसत्है । यहांप्रथमअसत्प्रपंचकोअनुवादपूर्वक निराकरणकरतेहुए “मसतोपिजनिर्नच” यहजोकारिकाकादूसरापादहै तिसकाव्याख्यान करतेहैं ॥ हेवादिन् यदिकार्यको असत्कहोतो तिसमें यहविचार कर्तव्यहै ॥ ❀ स्वसत्तासमवायोजनिः ❀

अ० ॥ कार्यमेंजोसत्ताकासमवाय संबंधहैतिसकानाम उत्पत्ति है ॥ अथवा ॥ ❀ स्वकारणसंसर्गोजनिः ❀

अ०॥ कार्यकाकारणकेसाथजोसंबंधहै तिसकानामउत्पत्तिहै । सोयहदोनोंप्रकारकी उत्पत्तिअसत्निष्ठनहींसंभवती । क्योंकिअसत्में संबंधकीआधारता वासंबंधकी निरूपकतानहींहै ॥ औरकहींदेखनेमें भीनहींआती । तिसीसेप्रपंचकोयदि असत्वरूपताकरनिरूपणकरोतो उत्पत्तिमत्ताकेअसंभवसेतिसमेंकार्यत्वकीहानिहै ॥ यातेकार्यअसत्वरूपता

नहीं होजाती ॥ यातेसत्प्रसत्पक्षभीनिर्युक्तिहै ॥

*** परिशेषसेप्रपंचकीअनिर्वचनीयताकेस्थापनपूर्वक
अविद्योपादानकत्वकानिर्धार ***

इसप्रकारसत्प्रपंचतासेतथाप्रसत्प्रपंचतासेऔरउभेप्रपंचतासेकार्यका
निर्वचनन होनेकर सत्प्रसत्प्रसेविलक्षण अनिर्वचनीयहीकार्यहै, यह
माननाहोगा । ऐसेमाननेसेपूर्वउक्तदोषोंकी प्राप्तिनहींहोती॥ औरजब
कार्यरूपप्रपंचकोअनिर्वचनीयमाना।तोसत्प्रस्तुकोतोतिसकीउपादान
तानहींसंभवती।क्योंकिलोकमेकार्यकारणकीविलक्षणतादेखनेमे नहीं
आती किंतुकार्यकेसदृश्यहीउपादानकारणकल्पनाकरनेयोग्यहै॥और

*** योग्यःयोग्येनसंवध्यते ***

अ० ॥ योग्यहीयोग्यकेसाथसंवेधवालाहोताहै । जैसेमनुष्यों
कीउत्पत्तिमनुष्योंसे औरपशुओंकीउत्पत्तिपशुओंसेहोतीहै।इसन्यायसे
भीअनिर्वचनीयप्रपंचकाअनिर्वचनीयहीकारणकल्पनाकरनेयोग्यहै ॥
सोऐसाअनादिअनिर्वचनीयमायारूपअज्ञानहै । तिसअज्ञानकोउपा-
दानत्वकीकल्पनाकार्यप्रपंचनिष्ठकार्यत्वही अन्यथाअनुपपन्नहुआकरा
ताहै।यातेतिसअज्ञानकोउपादानकारणताकाकथनअनुचितनहींकिंतु
उचितहीहै।इति॥शंका॥विलक्षणताकेहुएभीकार्यकारणभावक्योंनहीं
होताकिंतुहोसکتाहै ॥ जैसेसत्यशुक्तिमिथ्या रजतका कारण लोकमे
प्रसिद्धदेखनेमेआतीहै॥ तैसेसत्हीप्रसत्प्रपंचकाकारणवनजायेगा ॥
समाधान ॥ हेवादिवत्तर्हामीशुक्तिका अज्ञानहीरजतकाकारणहैशुक्ति
नहीं ॥ अन्यथा“नेदंरजतम्”इसबाधकालमेभीरजतरूपकार्यकीप्राप्ति

हूई चाहिये ॥ क्योंकि तिस रजत का कारण शक्ति विद्यमान है ॥ या ते विलक्षणों का कार्य कारण भाव लोक में नहीं देखा जाता ॥

✽ अविद्या मात्र कारणवाद मेवादी उक्त दोषों का परिहार निरूपण ✽

और जोवादी ने यह पूर्व कथन किया था । कि कारण की विचित्रता के अभाव से कार्य में विचित्रता की अनुपपत्ति है ॥ सो कथन भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि विचित्र शक्ति वाला अज्ञान ही उपादान रूपता कर कल्पना किया है ॥ यह पूर्व कथन कर आए हैं ॥ “विचित्र शक्ति वाले एक अज्ञान को ग्रहण कर के अन्यथा अनुपपत्ति रूपतर्क विश्राम को प्राप्त होता है “ऐसे पूर्व कथन किया है” यद्यपि अविद्या ही कारण है । इस पक्ष में चेतन रूप अधिष्ठान से विना जड शक्तिको कार्य जनन की सामर्थ्य नहीं । तथापि अविद्या की अधिष्ठानता चेतन में माने हुए भी ज्ञान ज्ञेय रूप पदार्थों को अविद्या मात्र उपादान कता का विरोध नहीं ॥ क्योंकि तिस चेतन को निमित्त मात्रता है ॥ और चेतनगत जो अविद्या की अधिष्ठानता है ॥ तिस को अविद्यारूप अधिष्ठेय की अपेक्षा सहित होने से आविद्य कपना है या ते अविद्या मात्र कारणता की हानी नहीं ॥ और अदृष्टादिसापेक्ष अविषा कार्य को करती है ॥ इस पक्ष में जोवादी ने कहा था ॥ किलाघ व से अदृष्टादिक ही कारण बन सके हैं अविद्या से क्या प्रयोजन है ॥ सो यह पक्ष भी निरास हुआ ॥ क्योंकि अदृष्टादिकों को भी आविष्क होने कर तिन की कारणता से अविद्या को ही कारणता सिद्ध होती है ॥ और इसी कारण से मृदादिकों को घटादिकों के प्रति उपादान कारणता होने से अविद्या से क्या प्रयोजन है ॥ इस वादी के कथन का भी निरास हुआ ॥ क्योंकि तिन घटादिकों में भी मृदादि आकार परि

णामको प्राप्त हुई अविद्याको ही उपादान कारणता है ॥ तिस कारणसे प्रपञ्च आविद्यक ही है यह अथनिर्दोष सिद्ध हुआ ॥ इति ॥ और जो वादीने पूर्व यह कथन किया था। कि मिथ्या प्रपञ्च गोचर जो लौकिक प्रत्याक्षादि प्रमाण तिनमें प्रमाणता की अनुपपत्ति है और मिथ्या स्वर्ग तथा याग के साध्य साधन रूप संबंध का ग्राहक पूर्वकांड रूप वेद को माने हुए तिसमें भी प्रमाणता की अनुपपत्ति है। सो कथन भी असंगत है। क्योंकि लौकिक प्रमाणों को तो पूर्व उक्त युक्तिसे अप्रमाणता होने से ही तिनमें प्रमाणता की अनुपपत्ति दोष के अर्थ नहीं है। इसलिये तिनकी तो उपेक्षा ही है।

❀ प्रपञ्च के आविद्यक पक्ष में पूर्वकांड

निष्ठ प्रमाणता का निरूपण ❀

और पूर्वकांड रूप वेद में प्रमाणता की अनुपपत्ति नहीं सो ईदिल्लाते हैं हे वादिन् पूर्वकांड रूप वेद स्वर्ग और याग के साध्य साधन रूप संबंध मात्र में तात्पर्य वाला है। अथवा तिनके साध्य साधन भाव के प्रतिपादन द्वारा ब्रह्म में ही तात्पर्य वाला है ॥ प्रथम पक्ष तो नहीं संभवना ॥ क्योंकि—

❀ स्वाध्यायोऽध्येतव्यः ❀

इस अध्ययन विधिका विरोध है ॥ तिस विरोध को ही स्पष्ट करते हैं ॥ अध्ययन विधि प्रयोजन वाले अर्थ के ज्ञान का उद्देश्य करके वेदाध्ययन का विधान करता है ॥ और याग को प्रयोजन वत्ता संभवती नहीं ॥ क्योंकि स्वर्गादिकों को विनाशी होने से प्रयोजनाभास पना है। तिस स्वर्ग के साधन याग को पारमार्थिक प्रयोजन की साधनता अनुपपन्न है ॥ याते स्वर्ग और याग के साध्य साधन मात्र अर्थ में यदि पूर्वकांडात्मक वेद का तात्पर्य कथन करें तो अध्ययन विधिका विरोध के से नहीं प्राप्त होगा ॥ और अध्ययन विधि वैशेषिक पुरुषों को कोई बहकाव देने के निमित्त नहीं है ॥ याते साध्य साधन मात्र

मेपूर्वकांडकातात्पर्यहैयहकथनव्यर्थ है ॥ और द्वितीयपक्षमे प्रमाणता कीअनुपपत्ति नहीं ॥ क्योंकितिस पूर्वकांडका ब्रह्ममेहीतात्पर्यहै ॥ शंका ॥ पूर्वकांडमेब्रह्मकीअप्रतीतिहोनेसेतिसमेतात्पर्यका संभवकैसे होसकताहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्पूर्वकांडप्रथमयागऔरस्वर्गादिकों केसाध्यसाधनभावकोबोधनकरताहै तिसकेज्ञानसेप्रथमपुरुष कर्मोंका अनुष्ठानकरताहै ॥ अनुष्ठानकियेहुएकर्मब्रह्मज्ञानको सिद्धकरतेहैं ॥ यातेतैसेकर्मोंकाबोधकजोपूर्वकांडहै ॥ तिसकाब्रह्ममेतात्पर्य परंपरासे बनसकताहै ॥ शंका ॥ उपनिषदरूपवेदांतोंकोही ब्रह्मज्ञानकासाधन होनेसेतिसज्ञानकेप्रतिकर्मोंकोसाधनतानहींसंभवती ॥ समाधान ॥ हे वादिन्अंतःकरणकीशुद्धिप्रथमज्ञानकाअंगहै ॥ क्योंकिस्मृतिमेअंतःकरणकीशुद्धिकोज्ञानकाअंगत्वकथनकियाहै ॥

❀ ज्ञानमुत्पद्यतेपुसांक्षयात्पापस्यकर्मणः ❀

अ० ॥ “पुंसां” पुरुषोंको (पापस्यकर्मणः) पापकर्मके (क्षयात्) नाशहोनेसे (ज्ञानं) ज्ञान (उत्पद्यते) उत्पन्नहोताहै ॥ औरअंतःकरण कीशुद्धिकर्मोंसेहोतीहै ॥ यहवार्ताभीस्मृतिमेकथनकीहै ॥

कषायेकर्माभिःपक्वे

अ० ॥ कर्मोंसेपापोंकीनिवृत्तिहुएशुद्धअंतःकरणमेज्ञानहोता है ॥ यातेअंतःकरणकीशुद्धिद्वाराकर्मोंकाज्ञानमेउपयोगहै ॥ इसरीति सेकर्मोंकाज्ञानमे उपयोगबोधनकरनेवाले पूर्वकांडात्मकवेदकाब्रह्ममे तात्पर्यहै ॥ शंका ॥ नित्यकर्मोंकोफलसे शुन्यहोनेकर तिनकोअंतःकरणकीशुद्धिकीकारणताहो। परन्तुकाम्यकर्मोंकातोअन्यस्वर्गादिफल होनेसेतिनकोशुद्धिकीकारणताकैसेहोसकतीहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्

नित्यकर्मोंको निष्फलता की श्रमसिद्धि है ॥ क्योंकि—

❀ कर्मणा पितृलोकः ❀

इस श्रुति ने साधारण कर्म मात्र से पितृलोक की प्राप्ति की है ॥ और

संयोग पृथक्त्व न्याय से यागादिकर्मों की शुद्धि अर्थता मानने में कोई विरोध नहीं ॥ संयोग पृथक्त्व न्याय का यह अर्थ है ॥ पूर्वमीमांसामे

एकस्य तु भयत्वे संयोग पृथक्त्वं ॥ अ० (४) पा० (३) दृ० (५)

यह सूत्र है ॥ तिस का यह अर्थ है । (एकस्य) एक कर्म को (उभयत्वे)

उभय अर्थत्व में संयोग पृथक्त्व नियामक है अर्थात् विधिवाक्य का जो भिन्न पठन है सो नियामक है जैसे “खादिरोयूपो भवति” और “खादिरं

वीर्य्य कामस्य” यहां एक ही खादिर को यज्ञार्थत्व और पुरुषार्थत्वरूप

उभय अर्थत्व में इस पूर्व उक्त विधिवाक्य का भिन्न पठन नियामक है । तैस स्व

र्गादि फल के अर्थ जो यागादिकर्म हैं तिनको विविदिषा वाक्य ने अंतस्करण

की शुद्धि के अर्थ बोधन किया है । याते इस न्याय से सर्व कर्मों को संस्कार

अर्थत्व मानने में विरोध नहीं है ॥ अथवा विविदिषा में कर्मों का विनियोग है

इस पक्ष को आश्रयण करके पूर्व कांड की अप्रमाणता का परिहार करते हैं ॥

श्रवणादिकों में प्रत्युत्ति द्वारा पूर्व कांड का ब्रह्म में तात्पर्य है । यहां यह अर्थ ज्ञात

व्य है ॥ कर्म के स्वरूप मात्र का बोधक विधिवाक्य उत्पत्ति विधिक हाजाता

है । जैसे “सोमेन यजेत” यह वाक्य है । तिस उत्पत्ति विधिवाक्य कर प्रथम

विधान किये जो कर्म हैं तिनको फल की आकांक्षा अवस्थामें जैसे अधि

कार विधि दूसरा प्रवृत्त होता है ॥ फल विशेष के संबंध का बोधक विधि

अधिकार विधिक हिये है । जैसे “ज्योतिष्ठोमेन स्वर्ग कामो यजेत” यह

वाक्य है । तैसे ही “यज्ञेन विविदिषति” इत्यादि फल विधायक वाक्य की

पृच्छतिहोतीहै तिसवाक्यकायहसार अर्थसिद्धहुआ॥ “ब्रह्मज्ञानकीका
मनावालापुरुषयागादिकर्मोंकाअनुष्ठानकरे” इसवाक्यसेकर्मोंकोसा
मान्यरूपतासेब्रह्मज्ञानकीसाधनताप्रतीतहोतीहै॥औरसाक्षात्कर्मसाध्य
त्वज्ञानमेंबाधितहै। याते अंगवतरणन्यायसेज्ञानके साधनश्रवणादिकों
मेंपृच्छिद्वारातिनकर्मोंको ब्रह्मज्ञानकीसाधनताप्रतीतहोतीहै ॥ तिस
हेतुसेतैसेकर्मोंकाबोधकजोपूर्वकांडात्मकवेदहै तिसकोब्रह्मपरताका
संभवहै। कैसेतिसकी अप्रमाणतातुमकहतेहो ॥ अंगवतरणन्यायका
यहअर्थहै। जोसाधनअंगीमेंबाधितहोकरअंगमें “अवतरण” अर्थात्
प्राप्तहोतिसकोअंगवतरणन्यायकहतेहैं ॥ जैसे ‘पंचदशारत्निः
वाजपेयस्य ।’ अ० ॥ वाजपेयसंज्ञकयागकाधूपपंद्रह अरत्निः
होताहै।इसवाक्यसेवाजपेयरूपअंगीयागमें धूपआकांक्षाप्रतिहोनेकर
(सप्तदशारत्निः वाजपेयस्य ।) अ० ॥ वाजपेयसंज्ञक
वागकाधूपसतरह अरत्निः होताहै। इसवाक्यउक्तधूपकावाजपेयमें
बाधहोताहै इसीसेतिसकेअंगरूपमित्रविन्दादियागोंमें तिसधूपकी
प्राप्तिहै।यहांमुष्टिकोबांधकरकनिष्ठकाअंगुलीकेविस्तारयुक्तहस्तपरिमा
णकानामअरत्निःहै। तैसेप्रकरणमेंकर्मोंकाज्ञानमें बाधहोनेसेति
सके अंगरूपश्रवणादिकोंमेंतिनकीप्राप्तिहै ॥ इति ॥ शंका ॥
पूर्वउक्तप्रकारसेब्रह्मविषयकपूर्वकांडरूपवेदका तात्पर्यहो। तथा
पितिसमेंप्रमाणताकासंभव कैसेहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन् ॥
यत्परःशब्दःसशब्दार्थः॥ अ०। जिसअर्थमेंशब्दकातात्पर्य
होवहीशब्दकाअर्थहोताहै।इमन्याय सेतात्पर्यकेविषयभूत अर्थमेंही
शब्दकी प्रमाणताहोतीहै। यातेपूर्व कांडमेंप्रमाणता संभवतीहै ॥

जिसकारणसेजगत्को अज्ञानउपादानकमानेहुएएकदोपभीनहींप्राप्त होसकता तिसीकारणसेज्ञानज्ञेयरूप पदार्थोंको अविद्योपादानकत्व शोभनकथनकियाहै ।

***जगत् को आविद्यकत्वसाधनकाफल तथा दृष्टिसम कालीन दृष्टि सृष्टि पक्षकाउपसंहारनिरूपण ***

आविद्यकजगत्केसिद्धकरनेकाक्याफलहै । ऐसीजिज्ञासाके हुएकहतेहैं । हेवादिसंप्राप्तीतिवस्तुताकीसिद्धिहीतिसकाफलहै । अर्थात् अविद्याहीप्राणिर्योकेकर्मोंकीवशतासेक्षोभकोशसहुईजगत्ताकाररूपता सेतथातिसकीप्रतीति आकाररूपतासे एककालमेही परिणामकोशप्त होती है । क्योंकिक्रमसेपरिणामहोनेमेकोईनियामकनहीं ॥ औरतिस काकोईप्रयोजनभीनहीं । औरवृत्तिनिष्ठविषयजन्यता अंगीकारनहींहै औरतिसमेआकारकीसमर्पकताविषयकोअजनकमाननेसेभीवनसकती है ॥ जैसेमुखदर्पणकाअजनकहुआभीतिसमे प्रतिबिम्बकोसमर्पणकर देताहै ॥ तैसेप्रकरणमेभीजानना ॥ इसरीतिसेविषयऔरज्ञानकाएक कालमेपरिणामहोनेसेप्रतीतिसमकालीनही विषयकीसत्ताउचितहै ॥ क्योंकिरज्जुसर्पऔरशुक्तिरजततथा गंधर्वनगर औरस्वप्नप्रपंच इनसर्वमे प्रतीतिसमकालीनताहै ॥ तैसेजाग्रत्प्रपंचमेभीप्रतीतिसमकालीनताहै यहाँपरयहअनुमानजानना ॥

*** विमतः प्रपंचः प्रतीतिसमकालीनः अविद्योपा-
दानत्वात् रज्जु सर्पादिवत् ***

अ० ॥ विवादकाविषयजोप्रपंचहै ॥ सोप्रतीतिसमकालीनहै अविद्योपादानकहोनेसे ॥ जोजो अविद्योपादानकहै ॥ सोसोप्रतीति

समकालीन है जैसे रज्जु सर्पादिक हैं ॥ इति ॥ १६ ॥ पूर्वोक्तार्थके संग्रह का श्लोक ॥

❖ प्रतीतिमात्र कालीनं घटाद्यविद्यकं यतः ॥

रज्जु सर्पादिकं यद्वत्तथा चेदंततस्तथा ॥ १७ ॥

चौ० ॥ घटादि आविद्यक हैं याते । प्रतीति सम सत्ता है ताते ।

रज्जु सर्पादिक हैं जैसे । ताते यह जग जानो तैसे ॥ १७ ॥

❖ इति दृष्टि ससकालीन सृष्टिरूप दृष्टि सृष्टिवाद ❖

❖ अथ दृष्टिमात्र सृष्टिरूप दृष्टि सृष्टिवाद निरूपण

तथा ज्ञानज्ञेयके भेद का निराकरण निरूपण ❖

दो० ॥ वेदवती पतिवाकपति श्रीगुरुनानक आदि । तिन पद

पद्मन पद्मवरन मोदंडवत आदि ॥ १ ॥ ममचित मेधिर हो सदा हनि ये विघ्न

प्रमाद ॥ दुर्गम भीसुगमो भवत लुमरेतन कप्रसाद ॥ २ ॥

प्रतीतिमात्र कालीन जगद्युक्त्या निरूपितं ॥

प्रतीतिव्यतिरेकेण सत्त्वं चास्या निवार्यते ॥ १८ ॥

सो० ॥ जगदृष्टी कालीन युक्ती कर निर्णय कियो ॥

दृष्टिमात्र अचचीन सत्ता जग की गावते ॥ १८ ॥

शंका ॥ हे सिद्धांति न प्रतीति सम कालीन जगत् की सत्ता कहनी

उचित है यह आपने पूर्व कहा तिसमे एक जगत् की सत्ता और दूसरी ज्ञान की

सत्ता है इस प्रकार दो सत्ता मान होती हैं ॥ जैसे घटमात्र कालीन जो पट है

वह घट से भिन्न सत्ता वाला नहीं है यह कथन तो संभवता नहीं । क्योंकि एक

काल मे उत्पत्ति तथा विनाश को प्राप्त हुए जो घट पट हैं तिनका भेद होने कर एक

सत्ता की अयोग्यता है ॥ तैसे ज्ञान तथा ज्ञेय को परस्पर भिन्न होने से तिनकी

सत्ताकाएकत्वभीयुक्तनहीं है ॥ ऐसीशंकाकेप्राप्तहुएयहवक्ष्यमाणप्रकार
जोबुद्धिमेस्थितहै वहनिरूपणकरनेयोग्यहै ॥ कौनवहप्रकारनिरूप-
णीयहै ऐसीजिज्ञासाकेहुएकहतेहैं ॥

मू० ॥ प्रतीतिमात्रसत्त्वंचेत् सत्त्वं प्रातीतिकंमतम् ॥

अविरोधान्ममापीष्टतद्देवदकाप्रमा॥१७॥

वासंतीछंद ॥ ज्ञातासत्ताजानजगतकीहीमेठानो । ज्ञानाते
नोभिन्नतनकताकोजोमानो । मोकोभीहैइष्टविरुधतानाकोराई । ताके
भेदेमाहिप्रमितिकोभापोभाई ॥१८॥

टी० ॥ हेवादिन् प्रातीतिकसत्ताजोहै वहयदि प्रतीतिमात्रही
सत्ताहै । अर्थात्प्रतीतिकीसत्तासेभिन्नवहसत्तानहीं तोइसमेविरोधका
अभावहोनेसेहमकोभी स्वीकारहै । औरपूर्वउक्तयुक्तिसेज्ञान तथाज्ञेय
काभेदहोनेसेज्ञानकीसत्तासेज्ञेयकी सत्ताभिन्नहै । यदिऐसेकहो तो हे
वादिन्तिनदोनोंकेभेदमेकौनप्रमाणहै।यहतुमकथनकरो।औरवक्ष्यमाण
रीतिसैतुमकोईप्रमाणनहीं निरूपणाकस्सकते । तिसकारणसेज्ञानऔर
ज्ञेयकेभेदमेकोईभीप्रमाणनहीं ॥ इति ॥ अबविस्तारसेश्लोककीव्या-
ख्याकरनेकेलियेभूमिकारचनाकरतेहैं ॥ हेवादिन्प्रतीतिसमकालीन
जगत्कीसत्ताहैइसकाक्याअर्थहै। क्या? प्रतीतिमात्रहीसत्ताहै।अर्थात्
ज्ञेयपदार्थप्रतीतिरूपहीहै।यातेतिनकाअभेदहोनेसे ज्ञेयकीसत्ताज्ञानकी
सत्तासेभिन्ननहीं । अथवाप्रतीतिसेभिन्नकरकेजगत्की पृथक्सत्ताहै ।
अर्थात्ज्ञानतथाज्ञेयकाभेदहोनेसे तिनदोनोंकीसत्ताकाभीभेदहै।प्रथम
पक्षतोसिद्धांतरूपताकर स्वीकारहोनेसे तिसकोत्यागकर अंत्यपक्षको
दूषितकरतेहैं हेवादिन्तिसज्ञानतथाज्ञेयकेभेदमेकोईप्रमाणहैवानहीं ।

ज्ञानसेभिन्नकरकेप्रपञ्चकीपृथक्सत्तामेयदिकोईप्रमाणनहीं॥तोप्रमाण केअभावसेज्ञानऔज्ञेयकाभेदसिद्धनहींहोगा॥औरज्ञानतथाज्ञेयकेभेदका कियाहुआ तिनकीसत्ताकाभीभेदनहींसिद्धहोगा । इसरीतिसेअंतिम पक्षकोनिषेधकरकेअवग्राह्यपक्षकोविस्तारपूर्वकनिषेधकरनेकेअर्थअनुवादकरतेहैं । हेवादिन्यदिप्रमाणहैयहप्रथमपक्षकहोतोवहकौनप्रमाण है।अर्थात्क्या?वहप्रत्यक्षप्रमाणहै। अथवाअनुमानहै। वाआगमहै। वा अर्थापत्तिहै॥यहांउपमानप्रमाणकोकेवलसादृश्यमात्रगोचरहोनेसेतिस काकथननहींकिया ॥ और अनुपलब्धिको अभावमात्रगोचरहोनेसे तिसकाभीकथननहींकिया ॥

❀ अथ ज्ञानज्ञेय के भेदमेप्रत्यक्षप्रमाणका खंडन ❀

ज्ञानऔज्ञेयकेभेदमे प्रत्यक्षप्रमाणहै ॥ इसप्रथमपक्षकोदूषित करनेकेलिये अनुवादपूर्वकतिसमेंविचारकरतेहैं । प्रथमपक्षमें “अयं-घटः” यहजोप्रत्यक्षज्ञानहै॥वहअपनेसेघटकेभेदकोअर्थात् “अयंघटः” इसप्रकार केआकारवाले स्वस्वरूपभूतज्ञानसे घटअनुयोगिक भेदको प्रकाशकरताहैअथवा “यहघटइसका” विषयकरनेवालेज्ञानसेभिन्नहै॥ इसप्रकारकाजोअन्यप्रत्यक्षहैवहतिनदोनोंकेभेदकोविषयकरताहै। स्वप्र-
तियोगिकऔर्विषयअनुयोगिक भेदकोआपही “अयंघटः” यहप्रत्यक्ष ज्ञानग्रहणकरताहै॥यदियहप्रथमपक्षकहोतोतिसमेंभीयहविचारकर्तव्य है।क्या? “अयंघटः” यहप्रत्यक्षस्वप्रकाशहैअर्थात्अन्यकिसीज्ञानकाविषय नहुआअपरोक्षव्यवहारकेयोग्यहै। अथवाप्रप्रकाशहै। अर्थात्अन्यज्ञान काविषयहुआ अपरोक्षव्यवहार केयोग्यहै । “अयंघटः” यहप्रत्यक्षस्वप्र-
काशहुआस्वप्रतियोगिक औस्वविषयअनुयोगिक भेदकोआपहीग्रहण

करता है। इस प्रथम पक्ष को अनुवादकरके दूषित करते हैं।

✽ स्वप्रकाशप्रत्यक्षको भेदकी ग्राहकता

कानिपेधनिरूपण ✽

स्वप्रकाशपरस्वप्रकाश इन दोनों में प्रथम पक्ष में तो अपने से आप ही उत्पन्न हुआ यह भास होता है। क्योंकि स्वविषयका विशेषण रूपकर भेदका भास हुआ और विशिष्टज्ञानको विशेषणज्ञानजन्यमाने हुआ अपने कर ही भेदरूप विशेषणका ग्रहण हुआ अपने से अपनी उत्पत्ति भास हुई। इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं। “अयं घटः” यह मत्प्रत्यक्ष स्वप्रतियोगिक भेदको घट अनुयोगिक रूपतासे ग्रहण करता हुआ “मत्तो भिन्नो घटः” अ० मेरे से घट भेदवाला है इस प्रतीतिके अनुसार विशेष्य घटका विशेषण रूपताकर भेदको ग्रहण करता है। अथवा “मदघटयोर्भेदः” ॥ अ० ॥ मेरा और घटका भेद है। इस प्रतीतिके अनुसार स्वभेदको विशेष्य रूपताकर ग्रहण करता है। यदि स्वविषयका विशेषण रूपताकर स्वप्रतियोगिक भेदको मत्प्रत्यक्ष ग्रहण करता है यह आदि पक्ष कहो तो इसमें भी यह विचार कर्तव्य है। क्या? विशिष्टज्ञान विशेषणज्ञान और विशेष्यके साथ इन्द्रियसन्निकर्षसे जन्य होता है अथवा विशेषण तथा विशेष्यके साथ इन्द्रियसन्निकर्षसे जन्य होता है। विशेषणज्ञानजन्य विशिष्टज्ञान है। इस पक्ष में भी यह विचार करणीय है। विशेषण रूपभेदका ग्राहकज्ञान यही प्रत्यक्ष है जो भेदका ग्राहकरूपताकर स्वीकार किया है। अथवा इससे भिन्न है। यदि प्रथम पक्ष कहो तो विशिष्टज्ञान जो स्वप्रतियोगिक और स्वविषय अनुयोगिक भेदका ग्राहकरूपताकर स्वीकार है सोई ही विशिष्ट भेदज्ञानका जनकरूपतासे अभिमत विशेषणभेदका ज्ञान होनेकर अपने से आप उत्पन्न होता है। यह पूर्व उक्त दोषों के से नहीं भास होगा। अपने से अपनी

उत्पत्तिमाननेमें कौन दोष होता है ऐसी जिज्ञासा के हुए कहते हैं, इतर के व्य-
वधान से बिना अपनी उत्पत्ति में कारण रूपता कर अपनी अपेक्षा
होने से आत्मा श्रय दोष प्राप्त होता है ॥ इति । अब आत्मा श्रय दोष के दूर
करने के लिये प्रत्यक्ष स्वप्रति योगिक भेद को विशेष्य रूपता से ग्रहण करता है ।
इस द्वितीय पक्ष को वादी उठाता है ॥ शंका ॥ हे सिद्धांतिन् “अयं
घटः” यह प्रत्यक्ष भेद को विशेष्य रूपता से ग्रहण करता है ॥ इस पक्ष में
घटरूप धर्मा तथा प्रत्यक्ष रूपश्रितियोगी को भेद का विशेषण पना है ॥
तिने भेदश्रितियोगी रूप प्रत्यक्ष तो स्वस्वकाश रूपता कर मान होता है ॥ और
घटरूप अनुयोगी स्वगोचर “अयं घटः” यह जो प्रत्यक्ष ज्ञान तिस कर मान
होता है । इस प्रकार विशिष्ट भेद प्रत्यक्ष को विशेषण विशेष्य दोनों के साथ
इन्द्रिय संबंध से जन्य माने हुए भी अपने से अजन्य होने कर आत्मा श्रय दोष
की प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ समाधान ॥ हे वादिन् इसरीति से भेद को
विशेष्य रूपता कर मान पक्ष में विशेष्य के साथ इन्द्रिय सन्निकर्ष जन्यत्व
को लेकर विशेषण विशेष्य दोनों के साथ इन्द्रिय सन्निकर्ष जन्य विशिष्ट ज्ञान
है ॥ इस पक्ष में ही आत्मा श्रय दोष देने को भूमिका रचना करते हैं ॥ हे
वादिन् ज्ञान की उत्पत्ति से पूर्व भेद की सत्ता कहने योग्य है ॥ अर्थात् भेद के
ग्राहक रूप प्रत्यक्ष ज्ञान को विशेषण विशेष्य दोनों के साथ इन्द्रिय के संबंध
जन्य माने हुए और भेद को विशेषण रूप वा विशेष्य रूप कर मान हुए भेद के
साथ इन्द्रिय का संबंध ज्ञान की उत्पत्ति से पूर्व अवश्य कहना चाहिये । क्योंकि
भेद के साथ जो इन्द्रिय का संबंध वह भेद के ग्राहक विशिष्ट प्रत्यक्ष का जनक है ॥
तथा इन्द्रिय सन्निकर्ष का भेद को आश्रय पना होने से भी तिसके अर्थ भेद की
सत्ता अवश्य कहने योग्य है ॥ शंका ॥ हे सिद्धांतिन् इसरीति से भेद की

सत्ताहोपरन्तुतैसामानेहुएक्या?सिद्धहोताहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन
 तैसेमाननेमेयहविचारकर्तव्यहै ॥ इंद्रियकेसंबंधकाआश्रयजोभेदहै ॥
 वहअपनेग्राहकप्रत्यक्षको ज्ञातहुआउत्पन्नकरताहै अथवाअपनीसत्ता
 मात्रसेउत्पन्नकरताहै ॥ यदिज्ञातहुआउत्पन्नकरताहै यहप्रथमपक्षको
 तोजिसकरभेदज्ञातहुआहै वहज्ञानयहीहै जोभेदकाग्राहकरूपताकर
 स्वीकारहै।अथवा वहज्ञानइससेअन्यहै॥प्रथमपक्षतोनेहीसंभवता क्यों
 कितिसीज्ञानकावहभेदकैसेविषयहोसकताहै अर्थात्स्वप्रतियोगिकऔर
 स्वविषयअनुयोगिकभेदकाग्राहकरूपताकर अंगीकारकियाजोविशिष्ट
 प्रत्यक्षतिसकाकारणरूपभेदविषयनहींबनसकता॥कारणयहकिअपनी
 उत्पत्तिसेपूर्वअपनाअभावहै।औरयदिज्ञानकासद्भावप्रथममानलें तो
 आत्माश्रयदोषपुनः प्राप्तहोगा ॥इति॥ इसप्रकारप्रथमपक्षकोनिषेध
 करकेअवभेदकाग्राहकरूपताकरस्वीकारजो विशिष्टज्ञानतिसकीउत्पत्ति
 सेपूर्वजोभेदकाज्ञानहै वहऔरहीज्ञानहै।यातेआत्माश्रयदोषकी प्राप्ति
 नहीं।इसद्वितीयपक्षकोउठाकरदूषितकरतेहैं ॥ यहांपरयहतात्पर्यजानने
 योग्यहै ॥ वहज्ञानान्तर क्या?निर्विकल्पकहै।अथवा सविकल्पकहै ॥
 प्रथमपक्षतोनेहीसंभवता ॥ क्योंकिभेदकोएकसविकल्पकज्ञानहीविषय
 करसकताहै ॥ औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिज्ञानान्तरका
 " अयंघटः " यहज्ञानस्वयंप्रकाशहोनेसे विषयनहींहै ॥ इसीकारणसे
 तत्प्रतियोगिकभेदकोवहअन्यज्ञानविषयनहींकरसकता ॥ शंका ॥
 आगेहोनेवालाजोप्रतियोगिरूपज्ञान तिसकोवर्तमानकालमेनहोनेसे
 स्वप्रकाशरूपताकाअभावहै तिसीसेउसकोविषयकरनेवालेभेदज्ञानकी
 अनुपपत्तिनहीं ॥ समाधान ॥ अवर्तमानताकोज्ञानकीपरप्रकाशता

मेहेतुकहनेवालेवादीने वर्तमानकालीनज्ञानको अर्थसे स्वप्रकाशता प्रतिपादनकी । तिसज्ञानकी स्वप्रकाशतामेव वर्तमानत्वहेतु है । अथवा ज्ञानत्वतिसका मयोजक अर्थात् साधक है ॥ मयमपक्षमेतो वर्तमानकाल उपाधिक स्वप्रकाशपना सिद्ध होगा ॥ तैसे मानेहुए ज्ञानका स्वाभाविक स्वप्रकाशपना अंगीकार है इस पक्षकी हानी होगी ॥ और वर्तमानकाल मे ज्ञानका स्वरूप ही स्वप्रकाश है यदि यह द्वितीय पक्ष मानो तो यह भी नहीं संभवता क्योंकि ज्ञानत्वहेतुको तुल्य होनेसे अतीत और भविष्यतज्ञानों मे भी स्वप्रकाशता की प्राप्ति होगी ॥ जैसे कालभेदसे कदाचित् भी घट अथवा घट रूप नहीं होता ॥ तैसे कालभेदसे ज्ञानकभी भी प्रकाशन नहीं हो सकता ॥ और अतीत तथा भविष्यतज्ञान मे ज्ञानत्वहेतु ही नहीं । यदि वादी ऐसे कहो तो प्रत्येक वस्तु के स्वभावका त्याग भोग होगा ॥ और विशिष्टज्ञान विशेषणन से जन्य है । इस मयमपक्षके अन्तरभेदका विशेषण रूपता से मान होता है । इस पक्ष मे विशेषण ज्ञान विशिष्टज्ञान से भिन्न है ॥ यह पक्ष पूर्व कहा था सो पक्ष भी इस भेदज्ञान के निराकरण से निरास हुआ जान लेना । क्योंकि वह भेदका ज्ञान सविकल्पक है । वानिर्विकल्पक है इत्यादि विकल्पकी शक्ति इस पक्ष मे भी समान ही है ॥ इसलिये इसको जुदानिषेध करने का मयत्न नहीं किया ॥ और इंद्रियसन्निकर्षका आश्रयरूप भेद स्वसत्ता मात्र से स्वविषयक ज्ञानका जनक है यह द्वितीय पक्ष भी केवल कथन मात्र है ॥ शंका ॥ मयत्तज्ञान मे संबंध भी भासता है । और वह संबंध भेद तथा इंद्रियका यथायोग्य विशेषण विशेष्यभाव है । ज्ञानमत्यासतिरूप संबंध नहीं । तिस कारण से स्वरूप से विद्यमान भेदको स्वज्ञानके प्रति जनकपना प्रक्रिया मात्र है । यह आपक से कथन करते हो ॥ समाधान ॥ हेवादिभेद मे प्रमाणके अभाव से तिसकी

सत्तानहीं सिद्ध हो सकती। वह असत् भेद स्वगोचर ज्ञान को कैसे उत्पन्न करेगा और जो विशेषण विशेष्य भाव प्रत्यासत्ति पूर्वक थन की है। वह अवश्य हो परन्तु वह सत्पदार्थ की होती है असत् की नहीं। और भेद की सत्ता प्रमाण के आधीन है। या तो भेद विषयक प्रत्यक्ष से प्रथम भेद की सत्ता का ग्रहण करने वाला प्रमाण अवश्य चन्वेष्टण करने योग्य है। और तिसका अभाव होने से भेद की सत्ता नहीं। और असत् भेद ज्ञान को उत्पन्न कैसे करेगा। और भेद की सत्ता का अभाव होने से विशेषण विशेष्य रूप प्रत्यासत्तिका भी अभाव भली प्रकार सिद्ध हुआ ॥ शंका ॥ यद्यपि “अयं घटः” यह प्रत्यक्ष ही स्वप्रकाश हुआ अपने विषय के भेद को ग्रहण करता है ॥ यह पक्ष नहीं संभवता। यह पूर्वक थन किया ॥ तथापि वही प्रत्यक्ष पर प्रकाश हुआ स्वसे स्वविषय के भेद को ग्रहण करता है इस पक्ष में पूर्वक थन किये हुए आत्मा श्रयादि दोष की प्राप्ति भी नहीं ॥ क्योंकि पर प्रकाश प्रत्यक्ष पक्ष में “अयं घटः” इस ज्ञान प्रतियोगि क और विषय अनुयोगिक भेद का ग्राहक और ज्ञान है। या तो ऐसा मानने में कोई अनुपपत्ति नहीं ॥ समाधान ॥ हेवादि नू ऐसे मानने में यह ही प्रत्यक्ष भेद को विषय करता है यह तुम्हारी प्रतिज्ञा भंग होगी ॥ या तो यह पक्ष भी असंगत है ॥ और स्वप्रकाश ज्ञान पक्ष में प्रतियोगि रूप प्रत्यक्ष को अवेद्य होने से स्वप्रकाश अनप्रतियोगिक भेद को और कोई ज्ञान विषय करने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ इस पक्ष को त्याग कर पर प्रकाश ज्ञान पक्ष में प्रत्यक्षांतर कर ज्ञान से ज्ञेय का भेद ग्रहण होता है। इस पक्ष को वादी उठाता है ॥ शंका ॥ हे सिद्धांतिन “अयं घटः” इस प्रत्यक्ष को स्वप्रकाश रूपता कर भेद का अग्राहक हुआ भी पर प्रकाश ज्ञान पक्ष में प्रत्यक्षांतर कर ज्ञान से ज्ञेय का भेद ग्रहण हो जायेगा इसमें कोई दोष नहीं ॥ यहाँ प्रतियोगि रूप प्रत्यक्ष से भिन्न प्रत्यक्ष का

नामप्रत्यक्षांतरहै । अबइसपक्षकोदूषित करनेकेलियेविकल्पकरतेहैं ॥

*** ज्ञानपरप्रकाश पक्षमेंप्रत्यक्षांतरकोज्ञानज्ञेयके
भेदकीग्राहकताकानिषेध ***

समाधान ॥ हेवादिब्रह्मद्वारा प्रत्यक्षभीव्यावृत्तार्थातभिन्न
प्रतियोगीआदिकोंके ज्ञानपूर्वकभेदकोग्रहणकरताहै । वानहीं । यह
विचारकर्तव्यहै ॥ प्रतियोगीआदिकोंके ग्रहणपूर्वकभेदकाग्रहणप्रत्य
क्षनहींकरता । यदियहअंत्यपक्षमानों । तोवहभेदकोकैसेविषयकरेगा ॥
शंका ॥ प्रतियोगीआदिकोंकोविषयनकरकेवहप्रत्यक्षभेदकोक्योंनहीं
विषयकरसकता ॥ समाधान ॥ हेवादिब्रह्मसेविनातथाप्रतियोगी
सेविनाकेवलभेदमात्रको कोईज्ञानविषयनहींकरसकता ॥ यहांपरयह
तात्पर्यजाननेयोग्यहै ॥ भेदकाग्रहणकरनेवाला जोअन्यप्रत्यक्षहै ।
वहनिर्विकल्पकहै । वासविकल्पकहै ॥ प्रथमपक्षतोनोंसंभवता ॥
क्योंकिभेदको समवायादिकोंकीन्याई एकसविकल्पकज्ञानकरहीवेद्य
पनाहै । औरद्वितीयपक्षमेंभी यहविचारकर्तव्यहै । वहसविकल्पकज्ञान
प्रमेयरूपतासेभेदकोविषयकरताहै अथवाभेदरूपतासेभेदकोविषयकरता
है ॥ प्रथमपक्षतोनिष्फलहोनेसेनहींसंभवता ॥ क्योंकिप्रमेयरूपतासेजल
काज्ञानहुएभीपिपासावान् पुरुषकीपिपासाकीशांतिके निमित्तजला
नयनमेंप्रवृत्तिनहींहोती तैसेप्रमेयरूपतासेभेदज्ञानभीनिष्फलहै ॥ और
द्वितीयपक्षभी नहींसंभवता ॥ क्योंकिधर्मीऔंप्रतियोगीकेज्ञानसेविना
भेदरूपतासेभेदकाज्ञानदुर्निरूप्यहै ॥ जिसकारणसेभेदकोधर्मिप्रतियोगि
सापेक्षएकरूपताहै । अर्थात्धर्मीऔंप्रतियोगीकेग्रहणपूर्वकहीतिसके

ग्रहणकानियमहै । इसी अभिप्रायसे यह अनुभवलोकमें प्रसिद्ध है ॥

“अयं अस्माद्भिन्नः” अ०—यह पदार्थ इस पदार्थसे भिन्न है ॥ इति ॥

अब व्यावृत्तिविशिष्ट प्रतियोगी आदिकोंके ज्ञानपूर्वकभेदका ज्ञान होता है इस आद्यपक्षको अनुवादपूर्वकदूषित करते हैं । हेवादिभिन्नप्रतियोगी आदिकोंके ग्रहणपूर्वकभेदका ज्ञान माने हुए प्रतियोगि ज्ञानभेदज्ञानमें हेतु प्रतीत होता है यहां प्रतियोगि ज्ञान किस प्रकारका विवक्षित है । यदि तिस ज्ञानको निर्विकल्पक कहोगे । तो किंचित् आकार प्रतियोगीभेदज्ञानमें भासेगा ॥ क्योंकि ज्ञानको स्वसमानाकारविषय का प्रकाशक पना है ॥ यदि ज्ञानको स्वसमानाकारविषय का प्रकाशनहीं मानें । तो घटज्ञानमें पटाकार ताका स्फुरणरूप अतिप्रसंग प्राप्त होगा ॥ और यदि तिस ज्ञानको सविकल्पक कहो । तो वह ज्ञान क्या ? प्रतियोग्यादिकोंको भिन्नरूपतासे ग्रहण करता है अथवा तिनको अभिन्नरूपतासे ग्रहण करता है । द्वितीयपक्ष तो नहीं संभवता क्योंकि धर्मी तथा प्रतियोगीके अभेदग्रहण करनेवालेको प्रमाणरूप होनेकर तिससे उत्तरभेदका ग्राहक रूपताकर अंगीकार किया जो प्रत्यक्ष तिसको अप्रमाणाता की प्राप्ति होगी । कारण यह कि तिन प्रतियोगी आदिकोंके ज्ञानको आश्रयण करके उत्तरभेदज्ञान की प्रवृत्ति होती है ॥ जब प्रतियोगी आदिकोंका ज्ञान तिनके अभेदको ग्रहण करता है तो तिसको आश्रयण करके प्रवृत्त हुआ जो उत्तरज्ञान वह तिनके भेदको ग्रहण करता हुआ कैसे अप्रमाणरूप नहीं होगा ॥ याते भिन्नरूपतासे धर्मी आदिकोंका ग्रहण ही शेष रहता है । अब इस प्रथमपक्षको दूषित करते हैं ॥ और व्यावृत्ति विशिष्ट प्रतियोगी आदिकोंके ग्रहणपूर्वकभेदका ज्ञान होता है । यदि

यहपूथमपञ्चमानो तोभिन्नरूपतासेप्रतियोगी आदिकोंकोग्रहणकरने वालाजोदूसराप्रत्यक्षवहभीभेदज्ञानहै ॥ तिसकोभीभेदरूपविशेषण करविशिष्टजोप्रतियोगीआदिक तिनकेज्ञानकरहीजन्यपनाहै । यदि तिनकाग्राहकऔरप्रत्यक्षस्वीकारकरो तो अनवस्थादोपकीप्राप्तिहोगी औरभेदकाग्राहकरूपताकर स्वीकार किया जोप्रत्यक्षतिसकोही व्यावृत्तिविशिष्टप्रतियोगीआदिकोंकाज्ञानमानेहुए अपनेसेअपनीउत्पत्ति होनेकर आत्माश्रयदोपप्राप्तहोगा ॥

॥ शंका ॥ प्रत्यक्षकोभेदका अग्राहकमानेहुएनिर्विषयपनाहोगा ॥ औरनिर्विषयज्ञानही अलीकहै ॥ समाधान ॥ हेवादिभूतिसपूर्वउक्त युक्तिसमुदायसेवस्तुमात्रको ग्रहणकरनेवालाजोप्रत्यक्षप्रमाणहैसोभेद कीवार्त्तामात्रकोभीनहींग्रहणकरसकता । यह अर्थसिद्धहुआ । इति ।

❀ अथअनुमानप्रमाणको ज्ञानज्ञेयकेभेदकी ग्राहकताका निराकरण ❀

इसप्रकारप्रत्यक्षकोभेदकी ग्राहकताकानिषेध करकेअथअनुमानभेदकाग्राहकहै इसद्वितीयपक्षको शंकाद्वारा प्रकटकरतेहैं ॥ शंका हेसिद्धातिन्यदि प्रत्यक्षभेदका ग्राहकनहींहै ॥ तोअनुमानप्रमाणसे ज्ञानतथाज्ञेयकाभेद ग्रहणहोगा । तैसेहीदिखलातेहैं ॥

विमतोविषयः । स्वविषयज्ञानात् मिथ्यते ॥ तत्विरोद्धधर्माश्रयत्वात् । योयद्विरोद्धधर्माश्रयः सतु तस्मात् मिथ्यतेयथाघटात्पटःतथाचायंतस्मात्तथा ।

अ० ॥ विवादकाविषयजोज्ञेयहै ॥ वहस्वविषयकज्ञानसेभिन्न हैज्ञानसेविरोद्धजो जडताअर्थात्अप्रकाशतारूपधर्मतिसकाआश्रयहोने

से ॥ जोजो जिससे विरुद्ध धर्म का आश्रय होता है। सो सो तिससे भिन्न होता है। जैसे घट से भिन्न पट है। और तै से ही यह विषय विरुद्ध धर्म का आश्रय है तिसीसे स्वविषयक ज्ञान से भिन्न है ॥ इति ॥ विषय रजत घट ज्ञान से भिन्न है या ते सिद्ध साधनता दोष अनुमान में होगा ॥ इसलिये “स्वविषय” यह विशेषण साध्य मेकथन किया है ॥ समाधान ॥ हेवादि न ज्ञान ज्ञेय के भेद में यह अनुमान भी स्वरूपा सिद्ध दोष से नहीं संभवता। क्योंकि धर्म निष्ठ विरुद्ध पना विरोध की आधारता से है यह वार्ता विवाद रहित है। और ज्ञान तथा ज्ञेय का जो विरोध है सो तिन दोनों का भेद जाने हुए ही ज्ञात हो सकता है ज्ञान तथा ज्ञेय का भेद जाने बिना उसको कोई नहीं जान सकता। और तिन का भेद त्रयी सिद्ध करने योग्य है तिसकी अत्र सिद्धि हुए तिसके आधीन जो विरोध रूप धर्म का विशेषण तिसकी अत्र सिद्धि होने के र्धर्म को तिस विरोध का आश्रय पना भी अत्र सिद्ध है। या ते पक्ष में यह हेतु स्वरूप से ही अत्र सिद्ध होने के स्वसाध्य का साधक नहीं किंवा ज्ञान प्रतियोगिक भेद सिद्ध करते हो। अथवा भेद मात्र सिद्ध करते हो। अंत्य पक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि तिस में हमारा विवाद नहीं। और यदि प्रथम पक्ष कहो तो साध्य की अत्र सिद्धि है। और पक्ष का विशेषण रूप साध्य की अत्र सिद्धि होने के र्धर्म की भी अत्र सिद्धि है। या ते आश्रय सिद्धि भी अनुमान में प्राप्त है। और यदि तुम ऐसा अनुमान करो ॥

ज्ञानता द्विषयौ परस्पर भिन्नौ विरुद्ध धर्माश्रय

त्वात् ॥ घट पटवत् ॥

अ० ॥ ज्ञान और तिस का विषय परस्पर भिन्न हैं। विरुद्ध धर्मों का आश्रय होने से। जो जो विरुद्ध धर्म का आश्रय होते हैं सो सो परस्पर भिन्न होते हैं ॥ जैसे घट पट हैं ॥ इति ॥ इसमें साध्य की अत्र सिद्धि नहीं ॥

क्योंकि परस्परभेदघटादिकोंमें प्रसिद्ध है याते अग्रसिद्ध विशेषणरूपतासे आश्रयकी असिद्धि नहीं है। सोयह कथन भी नहीं संभवता। क्योंकि व्याप्तिकी असिद्धि है। सो दिखलाते हैं। साध्य और साधनका व्यभिचारसे रहित जो संबंध तिसका नाम व्याप्ति है। और संबंधको दोनों संबंधियोंके आधीन होने से तिन दोनों संबंधियोंकी सत्ता अवश्य होने योग्य है। तिनमें साध्य तो दृष्टांत में भी विद्यमान नहीं है। क्योंकि प्रमाणका अभाव है। तिसी कारणसे साध्यकी अग्रसिद्धि होनेकर तिस अनिरूपित व्याप्ति भी असिद्ध है। इस प्रकार व्याप्यत्वासिद्ध हेतु है इस कथनसे आश्रयसिद्धि भी अर्थसे कथनकी क्यों कि अग्रसिद्ध विशेषणवाला पक्ष है। और घट तथा पटका भेद किसी प्रमाणकर सिद्ध नहीं जिसकर साध्यकी प्रसिद्धि हो अत्यंत तो घट और पट के भेद में प्रमाण नहीं है क्योंकि तिसको आगे निराकरण करना है ॥ और प्रकृत अनुमानसे भिन्न किसी और अनुमानसे घट पट का भेद ग्रहण हो जायेगा यदि ऐसे कहो तो तिसमें भी व्याप्तिका ग्रहण तिसी अनुमानसे मानोगे तो आत्माश्रय दोष प्राप्त होगा और यदि तिससे भिन्न अन्य अनुमान व्याप्तिका ग्राहक मानो तो अनवस्था दोष प्राप्त होगा इस प्रकार पूर्व उक्त दोष पूर्वकी न्याई ही प्राप्त हुआ ते अनुमान प्रमाणसे भी ज्ञान तथा ज्ञेयका भेद नहीं ग्रहण हो सकता ॥ अज्ञान ज्ञेयके—

*** अथ ज्ञान ज्ञेयके भेद में आगमको प्रमाणाता का निराकरण ***

भेद में आगम प्रमाण है इस तृतीय पक्षको दूषित करते हैं। हेवादि न पूर्वकांड तथा उत्तरकांड रूप वेद ही आगम प्रमाण है तिनमें पूर्वकांड का तो साध्य साधनका संबंध कथनकरके संस्कारद्वारा अथवा श्रवणादिकों में

प्रवृत्तिद्वारा अद्वितीयब्रह्ममेतात्पर्यपूर्वनिरूपण किया है ॥ और स्पष्ट प्रकार के लिंगयुक्त उत्तरकांडका तो साक्षात् ही अद्वैतमेतात्पर्य है या ते आगम प्रमाणको भेदके बोधकपने की शंका भी नहीं कर सकते ॥ शंका ॥ हे सिद्धांतिन् ॥ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ॥

अ० ॥ जिससे यह सर्वभूत उत्पन्न होते हैं ॥ यह शास्त्रब्रह्मसे सृष्टिको प्रतिपादन करता हुआ “देवताऽधिकरणन्याय” से सर्वकार्य मात्रका तिसब्रह्मसे भेद भी प्रतिपादन करता है ॥ देवताऽधिकरणन्यायका स्वरूप पूर्वकथन कर दिया है ॥ और यदि तुम ऐसे कहो कि पूर्वउक्तवाक्य अभिन्ननिमित्तउपादानरूपब्रह्मसे सृष्टिमात्र को कथन करता है । तिससे कोई भेद नहीं प्रतीत होता । या ते देवताऽधिकरणन्यायसे तिसवाक्यको कार्यकारणके भेदमे प्रमाणयता कैसे हो सकती है । सो यह कथन भी नहीं संभवता । क्योंकि ब्रह्म तथा जगत्का अभेद माने हुए तिसब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति नहीं संभवेगी । जैसे घटसे घट नहीं उत्पन्न हो सकता । क्योंकि एक ही पदार्थमे पूर्वउत्तरवृत्तित्व नहीं है । और यदि तुम ऐसे कहो कि इस रीतिसे ब्रह्म और जगत्का भेद हुए भी ज्ञान और ज्ञेयके भेदमे क्या प्राप्त हुआ भाव यह ज्ञानकार्यरूप नहीं है । क्योंकि कार्य जड़ है । और ज्ञानब्रह्मस्वरूप भी नहीं । क्योंकि तिसब्रह्मको असंग्रहभाव होनेकर घटादिकोंका प्रकाशकपना है । इस प्रकार ब्रह्म और जगत्को ज्ञानरूपताका अभाव होनेसे ब्रह्म और जगत्का भेद हुए भी ज्ञान तथा ज्ञेय का भेद कैसे हो सकता है ॥ सो यह तुम्हारा कथन भी असंगत है ॥ जिस कारणसे प्रकाशकस्वभावज्ञान है ॥ और वृत्तिमे प्रतिबिंबित हुआ चिद्रूपब्रह्म ही जगत्का प्रकाशक है वृत्ति नहीं ॥ क्योंकि तिसको जड़ होनेकर प्रकाशकपना है ॥ और —

❀ सविशेषणोहि ❀

अ० ॥ विशेषणसहितपदार्थमेजोबुद्धिहोतीहै ॥ वहविशेषण
 अंशमेवाधितहुईविशेषकोप्राप्तहोतीहै ॥ इसन्यायसे वृत्तिअवच्छिन्न
 ब्रह्ममेप्रकाशकपनेकी प्रतीतिद्वुएतहांश्रुतिरूप विशेषणमेप्रकाशकपना
 बाधितहै ॥ यातेविशेषचेतनमात्रब्रह्ममेही काशकपनेकीप्राप्तिहोनेकर
 ज्ञानरूपताकासंभवहै ॥ इसीसेब्रह्मसेजोकार्यकाभेदहैवहज्ञानसेहीभेदहै
 यातेआगमप्रमाणसेज्ञानअज्ञेयकेभेदकीसिद्धिहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्
 यहांतुमकोयहकथनकरनेयोग्यहैपूर्वकथनकियाजोआगमहै क्या? वह
 कार्यकारणभावकाप्रतिपादकमात्रहोनेकरज्ञानज्ञेयकेभेदकासाधकहै ॥
 अथवाकार्यकारण भावविषयक २माज्ञानकाउत्पादक होनेकरभेदका
 साधकहै ॥ प्रथमपक्षतोनहींसंभयता ॥ क्योंकि “विषमुंक्ष्व” अ०
 विषकोतूंभक्षणकर ॥ इत्यादिवाक्यमे अतिप्रसंगहोगा ॥ भावयह
 केवलप्रतिपादकतामात्रकरयदिवाक्यकिसी अर्थमेप्रमाणहोतोयहवाक्य
 भीविषभक्षणमेप्रमाणहुआचाहिये ॥ औरद्वितीयपक्षभीनहीं संभवता
 क्योंकिवहश्रुतिवाक्यवादियोंकर कल्पितप्रधानादिककारणांतरोंकेनिरा
 करणमेतात्पर्यवालाहै ॥ इसलियेकार्यकारणभावकावहप्रमापकनहीं ।
 औरतात्पर्यकेविषयभूत अर्थमेहीशब्दकीप्रमाणताहोतीहै ॥ यहपूर्व
 कथनकरआएहैं ॥ अबइसीअर्थकोस्पष्टकरतेहैं । “यतोवाइमानिभूता
 निजायंते” इसश्रुतिमे “इमानि” यहप्रथमभूतोंकाविशेषणहै ॥ तिस
 विशेषणकरनामतथारूपसेस्पष्टऔरमनकरकेभी जिनकीरचनाचिंतन
 नहींकीजाती ऐसेभूतोंकेधर्मसमर्पणकियेजातेहैं ॥ तिनधर्मोंकरयुक्त
 प्रपंचकीरचनाअचेतनप्रधानादिकोंसेतथाअल्पशक्तिवालेहिरण्यगर्भा-

दिकोंसेनहींसंभवती । यातेपूर्वउक्त समग्रश्रुतिवाक्य सांख्यादिकोंने कल्पनाकीयेहुएजोप्रधानादिककारणांतरतिनकेनिषेधपरहैं ॥ शंका ॥ समग्रसृष्टिप्रतिपादकवाक्योंकोवादियोंनेकल्पनाकियेजो जगत्केकारण प्रधानादिकेनिषेधपरत्वनहींसंभवता ॥ क्योंकिसमन्वयअधिकरणका विरोधहै ॥ अर्थयह—

❀ तत्समन्वयात् ॥ शा० आ० १ पा० १॥सू०४॥❀

अ० ॥ तुशब्दपूर्वपक्षकोनिवारणकरताहै “तत्” वहजगत् कारणअद्वितीयब्रह्मवेदांतोंसेहीनिश्चयहोताहै ॥ क्योंकि(समन्वयात्) तिसमेहीसर्ववेदांतोंकेतात्पर्यकीविषयताहै ॥ इसअधिकरणमेसमग्र वेदांतवाक्योंकाएकअद्वितीयब्रह्ममेतात्पर्यनिरूपणकियाहै॥ औरयदि आपयहांपरसृष्टिवाक्योंकाप्रधानादिकारणांतरके निराकरणमेतात्पर्य कहोगे तोइसअधिकरणसेस्पष्टहीविरोधहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन् तात्पर्यदोप्रकारकाहोताहै एकअवांतरतात्पर्य हैऔरदूसरापरमतात्पर्यहै यहांअवांतरतात्पर्यसृष्टिवाक्यनकाप्रधानादिकारणांतरकेनिराकरण मेहै ॥ औरपरमतात्पर्यतोअद्वितीयब्रह्मकीसंभावनामात्रमेहै॥ अर्थात् सजातीयादिकभेदसेरहितजो ब्रह्मकास्वरूपपूर्वकथन कियावहऐसाही होनेयोग्यहै॥ इसप्रकारकेआकारवालीअद्वितीयब्रह्मकीसंभावनामात्र मेतिनकातात्पर्यहै ॥ जिसकारणसेब्रह्मसेसकलकार्यप्रपंचकाभेदनिरूपणनहींहोसकता जैसेमृदादिकारणसेघटादिकार्य भिन्नकरकेनिरूपण नहींकियेजाते ॥ यदितिनकाभेदमानेतो हिमगिरिस्थित्याविध्यगिरिकी न्याईकार्यकारणभावकाहीअदर्शनहोगा ॥ और “मृदघटः” इससा- मानाधिकरणसेतिनकाअभेदमाननेमेहीकार्यकारणभावयुक्तहै अन्य

प्रकारसे नहीं ॥ यातेसमन्वय अधिकरणका विरोध नहीं आता ॥ शंका ॥ मृत्तिका थौघटका अभेद माने हुए पूर्व उत्तर भाव का असंभव होने से पूर्व उत्तर भाव कर व्याप्त जो कार्य कारण भाव है वह भेद से विना अनुपपन्न है या ते मृष्टि वाक्य भेद में ही तात्पर्य वाला क्यों न हो। समाधान हेवादि न्यदि भेद को मृष्टि वाक्य के तात्पर्य का विषय माने ॥ तो “नेह नानास्ति किंचन” इत्यादि श्रुति से तिस भेद का जो निषेध है वह व्यर्थ होगा ॥ जिस कारण से अखंड वस्तु की सिद्धि के अर्थ भेद का निषेध है। और श्रुति तात्पर्य का विषय भेद को माने हुए तिस भेद का निषेध व्यर्थ है। और भेद से विना एक ही वस्तु में पूर्व उत्तर भाव का असंभव होने का कार्य कारण भाव नहीं संभवेगा ॥ यह तुम्हारा कथन भी समीचीन नहीं। क्योंकि कल्पित भेद को आश्रय कर के कार्य कारण भाव को माने हुए विरोध का अभाव है ॥ किंवा ॥ मृष्टि वाक्य भेद पर है इस का क्या अर्थ है। क्या ? यह वाक्य पदार्थ रूपता से भेद को साक्षात् बोधन करता है अथवा वाक्य का अर्थ रूपता कर भेद को बोधन करता है ॥ वा। भेद से विना कार्य कारण भाव जो वाक्य का अर्थ वह अनुपपन्न है इसलिये तिस वाक्यार्थ का उपपादक रूपता कर भेद को अर्थ से मृष्टि वाक्य कल्पना करता है। तिन में प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि मृष्टि वाक्य में कोई भी पद साक्षात् भेद को नहीं प्रतिपादन करता ॥ तिस में भेद के वाचक पद का अभाव है ॥ और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि भेद को किसी पद का अर्थ न होने से वाक्यार्थत्व का भी अभाव है ॥ शंका ॥ जैसे शत्रु के गृह संभोजन की निवृत्ति किसी पद का अर्थ नहीं तो भी “विषं भुंक्ष्व” इस वाक्य का तिस को अर्थ पना है ॥ तैसे ब्रह्म और जगत् का भेद किसी पद का अर्थ यद्यपि

नहीं है तथापि सृष्टिवाक्यका अर्थपना तिसमें संभव हो जायेगा ॥ समाधान ॥ हेवादि नृपदार्थों को ही संसर्ग रूपता कर साक्षात् वाक्यका अर्थपना है ॥ और यदि अखंड वाक्यार्थत्वपक्ष को आश्रयण करें तो पदार्थ को ही धर्मी मात्र परता होनेकर साक्षात् वाक्यप्रतिपाद्यता है ॥ इस कारण से परगृहमें भोजन की निवृत्तिको अपदार्थ होने से साक्षात् वाक्यार्थता नहीं है ॥ याते कोई दोष नहीं। और तृतीयपक्ष भी नहीं संभवता। क्योंकि प्रथम सृष्टिवाक्य तो कार्यकारणभाव को कल्पना नहीं कर सकता जिससे वह अचेतन है ॥ और वाक्यार्थ को देखकर पुरुषभेद की कल्पना करता है। यह भी अस्मीचीन है। क्योंकि पुरुषकल्पनाका भेद निषेधक श्रुतिके साथ विरोध होने से तिसको अभासरूपता है। इसरीति से ज्ञानस्वरूपब्रह्म औजगत् रूपज्ञेयके भेदमें कार्यकारणभाव की अनुपपत्ति प्रमाण है ॥ यह अर्थापत्ति प्रमाण प्रसंग से निराकरण किया ॥

अथ ज्ञानज्ञेयके भेदमें अर्थापत्ति प्रमाणका निराकरण

अज्ञान की अन्यथा अनुपपत्ति ज्ञान औज्ञेयके भेदमें प्रमाण है इस चतुर्थपक्ष को निषेध करने के लिये पूर्वपक्षी द्वारा इस पक्ष को प्रकट करते हैं।

*** अथ पूर्वपक्ष ***

शंका ॥ ज्ञान ही स्वभिन्नज्ञेय से विना अनुपपन्न हुआ अथपने से भिन्नज्ञेय को विषय करता है ॥ जैसे दाहके योग्य काष्ठादिकों से विना अग्निस्वरूप को नहीं प्राप्त होता ॥ तैसे ज्ञेय से विना ज्ञान भी स्वरूप को नहीं प्राप्त होता है ॥ तिस कारण से ज्ञेय की सत्ता ज्ञान से भिन्न अवश्य होने योग्य है ॥ और वह ज्ञान आप ही ज्ञेयस्वरूप नहीं हो सकता। क्योंकि एक वस्तु को उभयरूपमानने में कर्तृकर्मभाव विरोध प्राप्त होता है ॥ तिसी से

ज्ञानस्वभिन्नज्ञेयसेविना अनुपपन्नहूया ज्ञेयकी कल्पना करता है ॥ इसरीतिसे ज्ञान तथा ज्ञेयका भेद सिद्ध है ॥ शंका ॥ हेवादिन्दाहके योग्य काष्ठादिकों से उत्पन्न हूया अग्निकाष्ठादिसे विना अनुपपन्न है यह कथन तो युक्त है परंतु ज्ञान तो किसी विषयसे जन्य नहीं है ॥ तिससे विषय विना ज्ञान नहीं संभवता ॥ यह कथन कैसे बन सकता है ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन् अर्थके प्रकाशकानाम ज्ञान है ॥ अर्थके अत्यंत असत् हूए किसका प्रकाश ज्ञान को कहेंगे । तिस कारणसे ज्ञान को अर्थके आधीन होनेकर विषयके अभाव हूए तिसका स्वरूप ही नहीं सिद्ध होगा ॥ शंका ॥ हेवादि नवनवता हूया भी अर्थ यदि प्रमाण सिद्ध हो तो स्वीकार की आजाता है ॥ जैसे सूर्यमें असंभावित भी छिद्र है परंतु उत्पातकालीन प्रमाण सिद्ध माना जाता है तैते अर्थसे विना भी ज्ञान बन जायेगा । समाधान ॥ हेसिद्धांतिन् निर्विषय ज्ञान संभवता नहीं और कहीं देखनेमें भी नहीं आता । क्योंकि विषयके सहित ही ज्ञान भासमान होता है ॥ शंका ॥ जैसे कोई भूतलघटवाला हूया भी उससे भिन्न भूतलघटसे रहित भी देखा है । तैसे किसी ज्ञान को सविषय हूए भी उससे भिन्न ज्ञान निर्विषय ही क्यों न हो । किन्तु हूया चाहिये । समाधान ॥ ज्ञान को निर्विषय माने हूए प्रकार शून्य ही ज्ञान भासेगा ॥ यद्यपि “अयं घटः” इस ज्ञानमें घट विषय है और घटत्वधर्म इसमें प्रकार है । यह वार्त्ता हम दोनों को संमत है । तिससे विषय और प्रकारका परस्पर भेद होनेसे विषयके अभाव हूए प्रकार शून्य ज्ञान भासेगा । यह तुम कैसे कथन करते हो । तथापि ज्ञानमें विषयसे भिन्न और कोई प्रकार नहीं है । क्योंकि ज्ञानमें भासमान जो संसर्ग तिसके निरूपकका नाम प्रकार है “जैसे अयं घटः”

इसज्ञानमेघटतथाघटत्वकासमवायभासताहै ॥ तिससंसर्गकीआधास्ता
 घटमेहैथौरतिसकीनिरूपकताघटत्वमेहै ॥ यातेघटत्वज्ञानमेप्रकार है ॥
 तैसेप्रकरणमेभीविशेष्यघटकीन्याईभासमानजोघटत्वरूपप्रकार वह भी
 तिसज्ञान का विषयहै ॥ तिसकेअभावहूएप्रकारशून्यहीज्ञानभासेगा ॥
 तिसकारणसेज्ञेयविनाज्ञानअनुपपन्नहूया अभेदमेकर्तृकर्मविरोधहोने
 करअपनेसेभिन्नज्ञेयकीकल्पनाकरताहै ॥ इतिपूर्वपक्ष अथसिद्धांत
 समाधान ॥ हेवादिन् ज्ञेयसेविनाज्ञानकी अनुपपत्तिकाअभाव है ॥
 तैसेहीदिखलातेहैं ॥ क्या? ज्ञेयसेविनाज्ञानकीउत्पत्तिकीअनुपपत्तितिन
 केभेदमेप्रमाणहै। अथवाज्ञानकीस्थितिकीअनुपपत्तितिनकेभेदमेप्रमाण
 है ॥ वाज्ञानज्ञप्तिकीअनुपपत्तितिनकेभेदमेप्रमाणहै ॥ यहांज्ञानके
 ज्ञानकानामज्ञसिद्ध है ॥ प्रथमपक्षमेयहविचारकियाचाहिये ॥ क्या? यह
 हमारेएकदेशिकामतहै अथवानैयायिककामतहै ॥ प्रथमपक्षकहोतो
 ज्ञानकीस्वरूपतासेउत्पत्तिकाअभावहै। यद्यपिवृत्तिउपहितत्वाकाररूपता
 सेज्ञानकीउत्पत्तिकासंभवहै ॥ तथापिस्वरूपसेतिसकोनित्यभावहोनेकर
 उत्पत्तिकाअभावहै। यातेप्रथमपक्षनहींसंभवता ॥ औरद्वितीयपक्षमेतोप्र
 माणाऔरप्रमाणाभाससेहीतिसज्ञानकीउत्पत्तिकासंभवहुएविषयकीतिस
 कोआपेक्षाहीनहींहै ॥ यातेज्ञानकीउत्पत्तिअन्यथाउपपन्नहोनेसेयहअर्था
 पत्तिज्ञानज्ञेयकेभेदमेप्रमाणनहींहोसकती ॥ शंका ॥ जैसेप्रमातथाअप्रमा
 ज्ञानयहदोनोंप्रमाणाऔरप्रमाणाभासकोकारणरूपताकरअपेक्षाकरतेहैं ॥
 तैसेकारणत्वधर्मकीतुल्यतासेविषयकीभीवहदोनोंअपेक्षाकरेंगे । याते
 विषयसेविनातितनकीउत्पत्तिकैसेसंभवगी ॥ किंतुनहींसंभवती ॥ समाधान
 हेवादिन्ज्ञानकोसर्वत्रविषयजन्यताकानियमनहींहै ॥ क्योंकिअनुमिति

आदिकज्ञानोंमेंविषयजन्यताकाव्यभिचारहै । यातेआद्यप्रथमपञ्चमसं
गतहै । औरज्ञानकीस्थितिकीअनुपपत्तिज्ञानज्ञेयकेभेदमेप्रमाणहै ।
यहद्वितीयपञ्चमीनहींसंभवता॥ क्योंकिविषयनिष्ठज्ञानकीअधिकरणता
काअभावहै ॥ यदिविषयकोभीज्ञानकाआश्रयमानलें तोतिसमेप्रमा
तृत्वकीप्राप्तिहोगी ॥ औरविषयपनेकाव्याघातहोगा । यद्यपि “ज्ञातो
घटः” इसप्रतीतिसेज्ञानकीअधिकरणताघटमेप्रतीतहोतीहै । यातेविषय
भीज्ञानकाआश्रयनसकताहै । तथापि “नष्टोघटः” अ० ॥ नाशका
आश्रयघटहै । जैसे इसप्रतीतिमेंनाशकी अधिकरणताघटमेभासतीहै
परन्तुवास्तवअधिकरणतानहीं तैसेउसप्रत्ययमेभी जानकरसंतोषकरने
योग्यहै । अबतृतीयपञ्चकोदूषित करनेकेलिये वादीद्वारातिसकोपूकट
करतेहैं । (अथपूर्वपक्ष) हेसिद्धांतितुज्ञेयसेविनाज्ञानज्ञासिकीअनुपपत्ति
ज्ञानज्ञेयकेभेदमेप्रमाणहै ॥ संका ॥ हेवादिज्ञानज्ञासिअर्थात्ज्ञानकाजो
ज्ञानहै । तिसकाविषयभूतजोप्रथमज्ञानहै । क्या? विषयसेविनातिसका
स्वरूपनहींसिद्धहोसकता ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतितुज्ञानविषयकज्ञान
कोविषयकेज्ञानकीआधीनताहै । अर्थात्विषयसेव्यावृत्तज्ञानकरजन्य
पनाहै । तिसीकारणसेज्ञानकीन्याईज्ञानकेविषयकोज्ञानज्ञासिमेकारणता
होनेसेतिसविषयकेअभावहुएज्ञानज्ञासिकीअनुपपत्तिहै ॥ इति ॥ (अथ
सिद्धांत) हेवादिज्ञानकीज्ञासिकाहीअभावहोनेसेज्ञानज्ञासिकाकारणरूप
करज्ञेयकीसिद्धिनहींहोसकती। अबइसीअर्थकोस्पष्टकरतेहैं । ज्ञानक्या?
अपनेव्यवहारकेअर्थअपनेसेभिन्नज्ञानकीअपेक्षाकरताहै। अथवाविषयके
व्यवहारअर्थस्वभिन्नज्ञानकीअपेक्षाकरताहै। अंत्यपक्षतोनोंसंभवता ।
क्योंकिविषयतोअवपर्यंतभीसिद्धनहींहुआ। जिसकेव्यवहारअर्थज्ञानांतर

की अपेक्षा हो । और प्रथम पक्ष भी नहीं संभवता । क्योंकि ज्ञान को स्वयं प्रकाशमान होने के कारण तब वेद्य हुआ अपरोक्ष व्यवहार के योग्य होने के तिसको अपने व्यवहार के अर्थ स्वभिन्न ज्ञान की किंचित् भी अपेक्षा नहीं है ॥ शंका ॥ ज्ञान स्वप्रकाश नहीं है । क्योंकि तिसको घटादिकों की न्याई वस्तु रूपता होने से वेद्य पना है ॥ समाधान ॥ ज्ञान क्या ? ज्ञात हुआ विषय का साधक है । वा अज्ञात हुआ भी विषय का साधक है । प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि प्रथम ज्ञान की न्याई ज्ञान के प्रकाशक द्वितीय ज्ञान को भी ज्ञात हुआ ही स्वविषय का साधक मानना होगा । और द्वितीय ज्ञान के प्रकाश अर्थ तृतीय ज्ञान को अन्वेषण किये हुए तिस तृतीय ज्ञान को भी ज्ञात ही कहना होगा । तिसमे चतुर्थ ज्ञान की अपेक्षा होने से अन्वस्था दोष की प्राप्ति होगी ॥ शंका ॥ यह अन्वस्था दोष के लिये नहीं है क्योंकि मूलभूत प्रथम ज्ञान विनाश से रहित है और मूल के लय करने वाली अन्वस्था ही दोष रूप होती है । या ते ज्ञानांतर की अपेक्षा हुआ कोई दोष नहीं ॥ समाधान ॥ हेवादि ज्ञानों की धारामे जो ज्ञान ज्ञात नहीं होगा तिसको असत् होने के तिसका विषय भूत जो ज्ञान है वह भी प्रमाण के अभाव से असत् हो जायेगा ॥ इस प्रकार सकल ज्ञान धारा को असत् होने से मूलभूत प्रथम ज्ञान की भी अस्ति सिद्धि होगी । तिस प्रथम ज्ञान को असत् हुआ जड प्रपंच की स्वतः सिद्धि का अभाव होने से तिसकी प्रतीति नहीं होगी ॥ इसरीति से ज्ञान का पर प्रकाशक पना युक्त नहीं ॥ और अज्ञात हुआ ज्ञान स्वविषय का साधक है ॥ यह द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि प्रमाण के अभाव होने के कारण श्रृंग की न्याई अपनी स्वरूप सत्ता ही अस्ति है । तो और विषय की साधकता तिसको कैसे हो सकती है ॥ शंका ॥ जिस किसी कालमें प्रमाण की

प्रवृत्तिहोनेकर ज्ञानकास्वरूप सिद्ध होजायेगा ॥ समाधान ॥
हेवादिन् "तुष्यतोदुर्जन" न्यायसेज्ञानकोज्ञानांतरकीअपेक्षाहो ॥
तथापिविषयभूतज्ञानकाविषयजोघटादिकहैं ॥ तिनकीअपेक्षाज्ञान
विषयकज्ञानकोकैसेहोसकतीहै ॥ किंतुकिसीप्रकारनहीं ॥ यहांयह
भेदजानलेना ॥ ' पूर्वप्रकरणमेज्ञानकाज्ञानसंभवहीनहींहोसकता ॥
यहअसंभवदोषअर्थोपत्तिमेकथनकिया ॥ औरअवतिसअर्थोपत्तिकी
अन्यप्रकारसेहीउपपत्तिनिरूपणकरतेहैं ॥ ज्ञानकीज्ञप्तिस्वविषयभूत
ज्ञानकीहीअपेक्षाकरती है ॥ स्वविषयरूपज्ञानकेविषयकीअपेक्षानहीं
करती ॥ क्योंकिस्वविषयरूपज्ञानमात्रमेवहचरितार्थहै ॥ शंका ॥
हे सिद्धांतिन् ज्ञानज्ञप्तिमे क्या ? ज्ञान सामान्यविषय है ॥ अथवा
ज्ञान विशेष विषयहै । प्रथमपक्ष नहीं संभवता ॥ क्योंकि घटका
ज्ञानहै । ऐसातिसज्ञप्तिका आकारहै । ज्ञानसामान्यकोविषयमानेहुए
विशेषज्ञानकेस्फुरणकी अयोग्यताहै ॥ यातेज्ञानमात्रविषयताकी
अयोग्यताहोनेसे सामान्यज्ञानकी तिसज्ञप्तिकोअपेक्षानहीं ॥ और
यदिद्वितीयपक्षमानों तोज्ञानमेंविशेषताविषयके आधीनहै ॥ याते
विषयकीअपेक्षाअवश्यहोनेसे विषयकेअभावहुए ज्ञानकीज्ञप्तिकैसे
बनेगी ॥ समाधान ॥ हेवादिन्यहलुम्हारा कथनसत्यहै । किज्ञान
विशेषहीज्ञप्तिमेंभासताहै । परंतुवहज्ञानमेंजोविशेषहै सोव्यावृत्तिरूप
अर्थात् भेदरूपहै ॥ वहविषयकृत्तनहीं ॥ यातेतिसको विषयकी
अपेक्षानहींहै ॥ शंका ॥ ज्ञानमेंविशेषकोविषयके आधीननमाने
हुए पटादिज्ञानोंसेघटज्ञानमें व्यावृत्तिरूपविशेषकी सिद्धिकैसेहोगी ॥
समाधान ॥ हेवादिन्लुम्हारायह कथनभीतुच्छहै ॥ क्योंकिज्ञान

मेंस्वतःहीव्यावृत्तपनाहै ॥ जैसेनैयायिकादिकोंके मतमेंजातिआदिक पदार्थस्वभावसेहीव्यावृत्तहैं॥इसीअर्थकोस्पष्टकरतेहैं । क्या?एकज्ञानमें ज्ञानान्तरसेव्यावृत्तिकहेतुविषयहै । अथवाज्ञानमें व्यावृत्तिकीप्रतीति काहेतुविषयहै॥प्रथमपक्षतोनहींसंभवता । क्योंकिव्यावृत्तिकोअन्यो अन्याभावरूपहोनेकर अजन्यताहै । औरव्यावृत्तिकोजन्यमानेहुए तिसकीउत्पत्तिसेप्रथम सर्व सेअभिन्नस्वभावहीजनउत्पन्न हुआ माननाहोगा । इससेवहज्ञानविषयसे व्यावृत्तिकेउत्पन्नहुएकैसेअपने स्वभावकोनहींत्यागेगा । किंतुअवश्यत्यागदेगा ॥ औरअतीततथा भविष्यत्पदार्थविषयकज्ञानकोव्यावृत्तिसेरहितअव्यावृत्तपनाप्राप्तहोगा। क्योंकिविषयकातिसकालमेंअभावहै॥औरविषयकोहीव्यावृत्तिकीहेतुता है ॥ औरयदिविषयस्वज्ञानमेंव्यावृत्तिकीप्रतीतिकाहेतुहैयहद्वितीयपक्ष कहो । तोअसत्व्यावृत्तिकोवह विषयनिश्चयकराताहै ॥ अथवासत् व्यावृत्तिकोनिश्चय कराताहै ॥ प्रथमपक्षतोनहींसंभवता ॥ क्योंकि असत्कीप्रतीतिनहींहोसकती ॥ औरद्वितीयपक्षमेंज्ञाननिष्ठव्यावृत्ति कीजोसत्ताहै । वहविषयकेआधीननहींहै॥क्योंकिअन्यज्ञानोंसेस्वतः हीज्ञानव्यावृत्तस्वभावहै जैसेवैशेषिकादिवादियोंकेमतमें पटत्वादिक जातियोंसेघटत्वादिजाति स्वतःहीव्यावृत्तस्वभावहै ॥ कोईव्यक्ति तिसकाव्यावर्तकनहींहै ॥ अन्यथाअन्योऽन्याश्रयदोषकीप्राप्ति होगी । क्योंकिजातिसेव्यक्तिका भेदऔरव्यक्तिसेजातिनिष्ठभेदकी सिद्धिहोनेसे परस्परअपेचारूपअन्योऽन्याश्रय दोषस्पष्टहीहै । और अन्त्यविशेषभीस्वतः हीव्यावृत्तहैं। व्यावर्तकोंकेजोअन्तमेंवर्ततेअर्थात् जिनकाअन्यकोई व्यावर्तक नहोइसीसे अन्त्यविशेषकहेहैं ॥

तैसे ज्ञानभी स्वतः ही व्यावृत्त है। इस प्रकार ज्ञान पर प्रकाश पक्ष में भी तिसकी प्रतीति विषय के आधीन नहीं। याते ज्ञानज्ञासिकी अनुपपत्ति ज्ञानज्ञेय के भेद में प्रमाण नहीं यह अर्थ सिद्ध हुआ ॥ इति ॥ शंका ॥ यद्यपि विषय ज्ञान की उत्पत्ति का हेतु नहीं ॥ और तिसकी स्थिति का हेतु भी नहीं ॥ तथा ज्ञान की ज्ञासिका भी हेतु नहीं ॥ तथा पिजै से दाह के योग्य काष्ठादिकों का व्याप्त हुआ जो अग्नि है वह दाह पदार्थों को दग्ध करता है ॥ तैसे ज्ञेय का व्याप्त हुआ ज्ञान ज्ञेय का प्रकाश करता है ॥ याते यपने से भिन्न ज्ञेय को वह ज्ञान बोधन करता है ॥ समाधान ॥ हेवादि न्यहा ईदंष्टा और दार्ष्टांत की विषमता है। क्योंकि दृष्टांत में तो जिस देश में तथा जिस काल में अग्नि है तिसी देश में और तिसी काल में दाह के योग्य काष्ठादि हैं। तहां तो अग्नि दाह को दग्ध करता है यह कथन युक्त है ॥ और दार्ष्टांत में तो ज्ञेय की व्याप्ति वाला ज्ञान है नहीं। क्योंकि तिन दोनों को भिन्न देश तथा भिन्न काल में होने का समानाधिकरणता का अभाव है। अर्थ यह। ज्ञान तो भीतर अंतस्करणादि देश में है और ज्ञेय घटादि बाह्य भूतलादि देश में है याते देश एक नहीं। और अतीत तथा भविष्यत् अर्थ का भी ज्ञान देखने से एक कालत्व की भी अति सिद्धि है। याते देश तथा काल से समानाधिकरणता का अभाव होने से व्याप्तिकी अति सिद्धि है। इस प्रकार “तद्देवदका प्रमा” इसकारिका के चतुर्थ पाद में जो संग्रह किया हुआ अर्थ था। वह इतने ग्रंथ कर विस्तार पूर्वक व्याख्यान किया ॥ १७ ॥ अत्र पूर्व उक्त अर्थ को उपसंहार करते हुए एक श्लोक से संग्रह करते हैं ॥

मू० ॥ प्रत्येतव्यप्रतीत्योश्च भेदः प्रमाणिकः कुतः ।

प्रतीतिमात्रमेवैतद्भाति विश्वं चराचरम् ॥ १८ ॥

चौ०—ज्ञान ज्ञेय को भेद जुगानो। नहि प्रामाणिक सो हिय जानो ॥

जगत चराचर भासत जेतो । न मात्र याते लखत तो ॥ १८ ॥

टी० ॥ तिसीकारणसे ज्ञानचौमेयका जो भेद तुम कहते हो वह किसी हेतु से प्रामाणिक नहीं हो सकता ॥ शंका ॥ ज्ञान तथा मेय का भेद माने हुए क्या ज्ञान ही शेष स्थित रहता है ॥ अथवा मेय ही शेष रहता है इस प्रकार का संदेह हुए एक अर्थ का निश्चायक युक्तिके अभाव से विषय के अंतर्भाव मान ही क्यों न हो ॥ समाधान ॥ हेवादि नृजड प्रपञ्च को अपनी सिद्धि के अर्थ ज्ञान की अपेक्षा अवश्य कहने योग्य है और ज्ञान को विषय की अपेक्षा नहीं । यह वार्त्ता पूर्व उपपादन कर आए हैं । और “ सापेक्षतया निपेक्ष दोष दार्यो मे निपेक्ष बलवान होता है ” । इस न्याय से ज्ञान मे ही विषय का अंतर्भाव युक्त है । याते जो यह संसार स्थावर औजंगम रूप मान होता है । सो प्रतीति मात्र ही है । अथवा जो प्रतीति मात्र स्वप्न का शमहिमा से भासमान है यह ही विश्व रूप है तिस विज्ञान धातु से किंचित मात्र वस्तु भिन्न नहीं ॥ शंका ॥ यदि प्रतीति मात्र ही यह जगत् है प्रतीति से अतिरिक्त किंचित मात्र भी नहीं । तो चराचर रूपता से तथानाना भेदों से यह ज्ञान कैसे भासता है ॥ समाधान ॥

मू०—ज्ञानज्ञेयप्रभेदेन यथास्वाप्नप्रतीयते ।

विज्ञानमात्रमेव तत्तथा जाग्रच्चराचरम् ॥ १६ ॥

चौ०—ज्ञानज्ञेयप्रभेद अनेका । स्वप्न जगत् भासत जिम एका ॥

ते से जगत् चराचर जोई । ज्ञान मात्र जाग्रत् मे सोई ॥ २० ॥

टी०—जैसे स्वप्न काल का जगत् वास्तव से विज्ञान मात्र स्वरूप ही है ।

तो भी ज्ञान ज्ञेयादि नाना भेद युक्त मान होता है । याते स्वप्न मे विज्ञान ही ज्ञेयरूपता से तथानाना रूपता से भासता है ॥ ते से जाग्रत् कालीन जो जगत् है ॥ वह भी विज्ञान मात्र स्वरूप ही है ॥ याते सो विज्ञान ही चराचर

रूपतासे और नाना रूपतासे भान होता है । इस प्रकार जगत्का भान और तिसका अनेक भेद युक्त भान संभवता है ॥ १९ ॥ शंका ॥ विज्ञान ही जगत् रूपतासे भान होता है । ऐसे आप क्यों कल्पना करते हो ॥ विज्ञानसे भिन्न स्वतन्त्र रूपतासे ही जगत्का भान हो जायेगा ॥ समाधान ॥
मू०-तंतो भेदे पटो यद्वच्छून्य एव स्वरूपतः ।

आत्मनोऽपि तथैवेदं भानमात्रं चराचरम् ॥ २० ॥

चौ०-तंतु भिन्न यथा पट केरो । शून्य रूप हो वतलुमहेरो ॥

आत्म भिन्न तथा यद्दमानो । भानमात्रं चरं चरपछानो ॥ २१ ॥

टी०-जैसे पट तंतुओंसे भिन्न किया हुआ वास्तवसे असत् हो जाता है । क्योंकि कारण की सत्तासे ही कार्य सत् भासता है । स्वतन्त्रतासे कार्य सत् रूप नहीं । यदि स्वतन्त्र भी पट की सत्ता मान लें तो तंतुओं के अभाव हुआ भी पट हुआ चाहिये ॥ शंका ॥ पट के प्रति तंतु को समवायिकारणता होनेसे आश्रय पना है । इसीसे तिसके अभाव हुआ पट स्थित नहीं होता । कोई तंतु की सत्ता ही पट की सत्ता नहीं । किंतु पट की सत्ता स्वतन्त्र है । समाधान ॥ हेवादि नहिमाचल तथा विंध्याचल की न्याई भेद मे कार्य कारण भाव का अदर्शन है । याते कार्य कारण का अभावे माने हुए तंतु और पट इन दोनों में एक ही शेष रहा चाहिये । और पट को तंतु सापेक्ष होनेसे तथा तंतु को पट निर्भर होनेसे तंतु ही शेष रह सकता है पट नहीं । इस प्रकार तंतुसे भिन्न किया हुआ पट स्वरूपसे शून्य ही हो जाता है । तैसे यह प्रतीति सिद्ध जो चराचर जगत् है । सो यदि वास्तवसे आत्मासे भिन्न हो तो शून्य अर्थात् असत् ही हो जायेगा । कारण यह कि चेतन मात्र है और वह चेतन रूपता वास्तवसे आत्मा मे ही पर्यवसान को प्राप्त होती है । याते आत्मासे भिन्न जगत् तुच्छ

हयहकथनयुक्त है ॥२०॥ शंका ॥ चेतनस्वरूप आत्मा को जगत् रूपता कर
भानमानेहुए विकारीपना प्राप्त हो गा । क्योंकि अनेक विकार सहित जगत्
भासता है । समाधान । हेवादिन् विवर्चवादके आश्रयण करनेसे यह
दोष नहीं प्राप्त हो सकता । इसीको दृष्टांत सहित निरूपण करते हैं ।

मू०—रज्जु र्यथा भ्रांत दृष्ट्या सर्प रूपा प्रकाशते ।

आत्मा तथा मूढबुद्ध्या जगद्रूपः प्रकाशते ॥२१॥

चौ०—भ्रांत दृष्टि करण है जोई । सर्प रूप जिम भासत सोई ॥ १ ॥

तिम यह आतम मूढबुद्धि कर । जगद्रूप भासत निजरिदधर ॥२१॥

टी०—जैसे रज्जु भ्रांत पुरुष की दृष्टिसे सर्प रूपता कर भान होती है ।

तैसे अः पुरुष को भ्रांत कर आत्मा भी जगत् रूपतासे भान होता है । और
मिथ्या सर्प कर जैसे रज्जु विष सहित नहीं होती ॥ तैसे मिथ्या जगत् कर
आत्मा भी विकारवान् नहीं होता ॥ २१ ॥

शंका ॥ अगतरज्जु को सर्प की अधिष्ठानता होनेसे तिसकी तो सर्पादि
रूपता कर प्रतीति संभवती है ॥ परन्तु आत्मा अज्ञान के वशसे जगत् रूप
ता कर भान होता है ॥ यह कल्पना युक्त नहीं ॥ क्योंकि तिसको निमित्त
कारणता मात्र होनेसे जगत् की अधिष्ठानता नहीं संभवती ॥ समाधान ॥

मू० आत्मन्येव जगत् सर्वदृष्टि मात्रमत्त्वकम् ।

उद्भूयस्थिति मादाय विनश्यति मुहुर्मुहुः ॥ २२॥

चौ० ॥ आत्मसे ही सब जगत् पैए ॥ दृष्टि मात्र वास्तनहि दिये ॥

क्षण उत्पत्ती क्षण स्थिती धार ॥ पुनः पुन नाश होत संसार ॥२२॥

टी०—यह सर्व जगत् प्रतीति मात्र तथा मिथ्या स्वरूप वास्त्वरूप उत्पत्ति

तथास्थितिकोप्राप्तहोकर वास्वाविनाशकोप्राप्तहोताहै । यातेपूर्णचकी
उत्पत्ति तथास्थितिऔविनाशका कारणहोनेसे आत्माकोनिमित्तमात्र
तानहीं । किन्तुविवर्त्ताधिष्ठानतारूपउपादानकारणताहै । इसप्रकार
अज्ञातआत्माकोजगत्की अधिष्ठानतायुक्तहै (२२) ॥ शंका ॥
आत्माकोपरिच्छिन्नजगत् रूपताहोनेसेअनात्मताकी प्राप्तिहोगी ।
तथादुःखरूपजगत् रूपताहोनेसेआत्मामेनानात्वरूपअनिष्टप्राप्तहोगा।
औरअशुद्धिरूपताभीआत्मामेंप्राप्तहोगी।क्योंकिअशुद्धजगत् रूपताभी
तिसीकीहै । औरतैसेही पुरायआपापकीअधिकरणताभी तिसीमें
प्राप्तहोगी । क्योंकिधर्मादिनिषेत्तआत्मा जगत् रचनाको नहींकर
सकता । अन्यथाविषमतादिदोषकीप्राप्तिहोगी । औरयदितुमपेसे
कहो॥किजीवकेअदृष्टकोहीपरमात्माआश्रयणकरकेजगत् रचनाकरताहै।
स्वअदृष्टकोनहींआश्रयणकरता।यातेतिसकोपुरायपापकीअधिकरणता
नहींहै।सोयहकथनभीअसंगतहै॥क्योंकिजीवऔब्रह्मकाअभेदतुमको
स्वीकारहै॥किंवाजैसेदुग्धदध्याकारपरिणामकोप्राप्तहुआदधिहीशेपरहता
है॥दुग्धशेपनहींरहता॥तैसेआत्माभीजगत् रूपताकोप्राप्तहुआजगत् ही
शेपरहेगा।आत्मानहीं।यातेपूर्वउक्तदोषअवश्यप्राप्तहोवेंगे॥समाधान॥

मू०॥ पूर्यानिंदाद्वयेशुद्धपापदोपादिवर्जिते ।

प्रतिविंवमिवाभातिदृष्टिमात्रंजगत्त्रयम् ॥२३॥

चौ०॥ पूरनथानंदअद्वयशुद्ध । पापदोपादिकवर्जितशुद्ध ।

अभाससमंतिसमेष्टुयिभान । दृष्टिमात्रजगत्त्रयंवखान ॥२४॥

टी० ॥ जैसेदर्पणमुखादिकविंवकीसमीपताकेप्राप्तहुएप्रतिविंव
रूपताकर भासमानहुआभीतिसप्रतिविंवाकास्ताकोमिथ्याहोनेसेस्वरूप

कोनहीं त्यागता। तैसे पूर्णतया आनंदस्वरूप और दैतसे रहित तथा अविद्यादिमलसे रहित शुद्ध और आपदोषादिरहित आत्मा मे प्रतीति मात्र जायत स्वप्न सुषुप्तिरूप जगत् त्रय अथवा त्रय लोकात्मक जगताका स्ताको मिथ्या होनेसे जगत् रूपसे भासमान हुआ भी आत्मा स्वरूप को नहीं त्यागता। इस प्रकार अज्ञान के वश से ही परिच्छिन्नादिरूप जगत् रूपता आत्मानिष्ठ मान होती है वास्तवसे नहीं। याते पूर्व उक्त एक दोष भी नहीं प्राप्त होता। यही अर्थ भगवान् वसिष्ठ मुनि जीने भी कहा है। तहां श्लोक—

❀ तस्मिंश्चिद्दर्पणोस्फारे समस्ता वस्तु दृष्टयः ॥

इमास्ताः प्रतिविंवतिसरसीव तटद्रुमाः ॥१॥

यस्य चित्तमयी लीला जगदे तच्चराचरम् ॥

तस्य विश्वात्मकत्वेऽपि खंडते नैक पिंडिता ॥२॥❀

टी० ॥ तिस विस्तृत चैतन्य रूप दर्पण मे सोयह समग्र पदार्थों की प्रतीतियां प्रतिविंबभाव को प्राप्त होती हैं। जैसे स्वच्छ तालाब मे किनारे के वृक्ष प्रतिविंबत होते हैं ॥ १ ॥ और जिस आत्मा की यह चराचर जगत् चित्तरूपी लीला है। तिस आत्मा को अज्ञान के वश से नाना जगत् रूपता से भासमान हुए भी एक अद्वितीय रूपता की हानी नहीं होती। २। इति ॥ २३ ॥ अब पूर्व उक्त समग्र ग्रंथ से एक देशी के निषेध के निषेध कर निरूपण किया जो विषय तिसको उपसंहार करते हैं। जिस कारण से ज्ञान और ज्ञेय का भेद प्रमाण सिद्ध नहीं तिसी कारण से दृष्टि मात्र स्वरूप जगत् है। अर्थात् दृष्टि और दृश्य इन दोनों के मध्य एक की शेषता के प्राप्त हुए दृश्य को दृष्टि सापेक्ष होनेसे तथा दृष्टिको दृश्य निषेध होनेसे दृष्टि ही शेष रहती है। दृश्य नहीं। याते दृष्टि मात्र रूपता जगत् को संभवती है। सो दृष्टि मात्र स्वरूप

जगत् आत्मा के आश्रित तथा तिसीको विषय करने वाले अज्ञान से कल्पित है ॥ शंका ॥ एक देशी के मत के निषेध द्वारा चिदात्मा को स्वाश्रय स्वविषय अज्ञान करके जगत् रूपता तथा जगत् रूपता से पूतीति निरूपण करने वाले वादी ने अज्ञान विषयत्व आत्मामे अंगीकार किया ॥ और तैसे अज्ञान का निवर्तक जो अपरोक्ष आत्मज्ञान है तिसका जनक रूपता कर उपनिषदों को आत्मामे प्रमाणता तुमने आप ही उपपादन की ॥ याते अर्थ से सिद्धांती कामत ही सिद्ध हुआ ऐसे एक तटस्थ की आशंका हुए पूर्वपक्षी का समाधान ॥ तिस पूर्व उक्त युक्ति से आत्मानिष्ठ अज्ञान की विषयता जो कल्पना की है सो साधु है। यहां पर यह का कूट उक्ति जाननी ॥ अर्थ यह क्या ? वह अज्ञान विषयत्व की कल्पना साधु है किंतु साधु नहीं । जिस कारण से केवल कल्पना मात्र है। कोई प्रमाण सिद्ध नहीं है ॥ क्योंकि स्वयं प्रकाश आत्मामे अज्ञान की विषयता का असंभव पूर्व कथन कर आए हैं । याते सिद्धांती के मत की सिद्धि नहीं हो सकती । इसीको स्पष्ट करते हैं। आत्मामे लौकिक तथा वैदिक प्रमाण के असंभव हुए शशशृंग की न्याई असत्पना है ॥ तिस असत्पने के प्राप्त हुए तिसके साक्षात्कार के अर्थ शास्त्र की अपेक्षा किस हेतु से हो सकती है ॥ किंतु नहीं हो सकती ॥ और तैसे ही युक्ति की अपेक्षा तो अत्यंत दूर है ॥ क्योंकि वैदिक अर्थ मे युक्ति की अपेक्षा नहीं ॥ और यदि तिस मे भी युक्ति की अपेक्षा मानोगे ॥ तो वेद को निषेध प्रमाणता की हानि होगी ॥ अथ पूर्वपक्ष के संग्रह का श्लोक ॥

आत्माऽऽसन्नप्रमाणात्वात् तत्साक्षात्कृतये पुमान् ।
उपासीत श्रुतिकस्माद्युक्तिं चापेक्षते कथम् ॥ १ ॥

अद्विल० ॥ आत्मसत्तानाहिप्रमाणाभावते ।

तांदर्शनहितनरनहि श्रुतिउपासते ॥

युक्तिअपेक्षातामहिकिसविधवनतहै ॥

द्वोवृथापरिश्रम विज्ञनयातेधस्तहै ॥ १ ॥

❀ इतिमहापूर्वपक्ष ❀ अथसिद्धांतनिरूपण ❀

इसप्रकारपूर्वपक्षके प्राप्तहुएसिद्धांतकथनकरतेहैं ।

मू०—यत्तत्त्ववेदगुप्तंपरमसुखतमंनित्यमुक्तस्वभावमास
त्यंसूक्ष्मात्सुसूक्ष्ममहदिदममृतमुक्तमात्रैकगम्यम् ॥ य
स्यांशेलेशमात्रंजगदिदमखिलंभ्रांतिमात्रैकदेहम् । प्रत्य-
गज्योतिस्वरूपं शिवमिदमधुनाकथ्यतेयुक्तितोऽत्र ॥ २४ ॥

क० । वेदगम्यतत्त्वजोऊपरमथानन्दरूप मुक्तस्वभावनित्य
सदाजोऊगायिए । सूक्ष्मतेसूक्ष्ममहतयहसत्यामृत मुक्तमात्रगम्य
पुन जाहिकोवतायिए ॥ जाहियंशविपेलेशमात्रयहजगसबभ्रांति
मात्ररूपकरिसदाठहरायिए । प्रत्यगस्वरूपशिवज्योतिरहित्यातमा
जो ताकेमाहियुक्तिअत्र किंचितदिखायिए ॥ २५ ॥

टी० ॥ पूर्ववादीनेदोविकल्पकियेथोकिआत्मामेकोईप्रमाणहैवा
नहीं । तहांहमवादीसेयहप्रकृतहैं । यहांआत्मशब्दसेअविद्यादिवशिष्ट
जोअव्याकृततथाजीवादिशब्दनकावाच्यवहग्रहणकियाजाताहैअथवा
शुद्धचिदानंदस्वरूपआत्मशब्दसेगृहीतहै । प्रथमपक्षमेतिसकोअस्व
प्रकाशताहोनेकरदृश्यत्वकाविरोधनहीं । तिसमेप्रमाणकीप्रवृत्तिमानने
मेकोईदोषनहींप्राप्तहोता । क्योंकिवहअविद्यादिवशिष्टयहांप्रतिपादन

करनेयोग्य नहीं । तिसमेप्रमाणकीप्रवृत्ति तथानिवृत्तिकाजोविचारहै सोनिष्फलहै।तिसवशिष्टआत्माकोयहांप्रतिपादनकीअयोग्यताहुएयहां कौनप्रतिपादनकरनेयोग्यहै । ऐसीआकांक्षाकेहुएकहतेहैं । इसग्रंथके आरंभमेप्रथमकारिकामेजोचतुष्टयविशेषणवालाआत्माकथनकियाहै । वहहीयहांपरभीनिरूपणकरनेयोग्यहै।तिसीकोइसश्लोकसेनिरूपणकरते हैं । (यत्तत्त्वम्)जोअनारोपितस्वरूपअर्थात्पारमार्थिकस्वरूपआत्माहै। सोनिरूपणीयहै ॥ शंका ॥ यहआत्मानिरूपणकरनेयोग्यनहीं । क्यों कितिसमेप्रमाणकीप्रवृत्तिकाअभावहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्वह आत्मा (वेदगुप्तम्) केवलवेदप्रमाणगम्यहै । यातेप्रमाणकीप्रवृत्तिका अभावनहीं ॥ शंका ॥ यहपूर्वउक्तआत्मावेदगम्यनहींहै । क्योंकिवह अपुरुषार्थस्वरूपहै ॥ समाधान ॥ (परमसुखतमम्) वहतत्त्वपरमानंद स्वरूपहै । यातेअपुरुषार्थरूपनहीं । औरअविद्यातत्कार्यसेरहितहोने करभीवहतत्त्वपुरुषार्थरूपहै। इसीकोकहतेहैं।(नित्यमुक्तस्वभावम्)सदा हीअविद्यातत्कार्यसेरहितस्वरूपहै ॥ शंका॥ प्रयोजनरूपताहोनेसेवेद गम्यताकेसंभवहुएभीतिसतत्त्वकोदृश्यताहोनेसेमिथ्यात्वकीप्राप्ति है । समाधान ॥ वहतत्त्व (सत्यम्) तीनोंकालमेबाधशून्यहै यातेतिसमे मिथ्यात्वकीप्राप्तिनहीं ॥ शंका ॥ सत्यरूपमानेहुएतिसतत्त्वकोसिद्ध होनेकरतिसमेप्रमाणांतरकीसंमतितथाविरोधहोनेसेवेदको अप्रमाणाता होगी ॥ समाधान ॥ (सूक्ष्मात् सुसूक्ष्मम्) प्रधानादिसूक्ष्मपदार्थों सेभीअत्यंतसूक्ष्महै । इसीसेवहतत्त्वप्रमाणांतरकीविषयताकेअयोग्य है । यातेतिसमेवेदकोअप्रमाणाताकीप्राप्तिनहीं ॥ शंका ॥ तिसतत्त्व कोसूक्ष्ममानेहुएपरिच्छिन्नपनाप्राप्तहोगा । तिसीकारणसेघटकीन्याई

अनात्मताकी प्राप्तिभीहोगी ॥ समाधान ॥ (महत्) वहतत्त्वनिर्णय व्यापकहै यातेतिसमेधत्वअनात्मतानहीं प्राप्तहोसकती ॥ शंका तिसतत्त्वकोमुक्तस्वभावमानेहुएमुक्तिऔमुक्तिवालेका भेदपूर्तीतहों सेवहसर्वसेअधिकव्यापकरूपनहींसंभवता ॥ समाधान॥ (इदममृतम् यहपूर्वकथनकियाजोतत्त्वहै सोमुक्तिस्वरूपहै । तिससेभिन्नऔरकोई मुक्तिनहींहै । यातेपरिच्छेदनहीं संभवता । इसीअर्थमे विद्वान्का प्रत्यक्षअनुभव प्रमाणरूपतासे दिखलातेहैं । (मुक्तमात्रैक गम्यम्) एक मुक्त पुरुष करही वह जानने योग्यहै । अर्थात् विद्वान्पुरुषही तिस तत्त्वको अपना आत्मारूप कर अनुभव करता है । अन्य नहीं । इस प्रकार तत्पदका लक्ष्यार्थ निरूपण करकेअवतत्पदके वाच्यार्थकोनिरूपण करतेहैं । (शिवम्) वहीतत्त्वमायारूपउपाधि सेईश्वरहै ॥ तिसकेईश्वरत्वकोही कथनकरतेहैं ॥ (यस्यांशोलेशमात्रं जगदिदमखिलम्) अ० जिसकेमायिकप्रदेशरूपकिसीएकअंशमेंयह लेशमात्रसमग्रजगत् कार्यरूपतासेस्थितहै । शंका।तिसतत्त्वकोजगत् काउपादानमानेहुए विकारीपनाहोगा ॥ समाधान ॥ आंतिमात्रैक देहम्) अज्ञानमात्रही तिसईश्वरत्वकास्वरूपहै । इसीहेतुसेसाभास अव्याकृतरूपअज्ञानही जगत्काउपादानकारणहै स्वरूपसेअक्षरब्रह्म कारणनहीं । यातेअज्ञानकी प्रधान्यताकरजगत्की उपादानताहोने सेविकारित्वकी प्राप्तिनहीं ॥ अथवा “ आंतिमात्र ” यहजगत्का हीविशेषणहै ॥ तिससेयहअर्थसिद्धहुआ।आंतिस्वरूपजगत्कावास्तव सेआत्माउपादानकारणनहीं ॥ यदिआत्माकोहीउपादानमानोगेतो जगत्मेंसत्यताकीप्राप्तिहोगी।क्योंकिसत्यउपादानकवस्तुसत्यहीहोता

है ॥ यद्यपि आत्माको उपादानताके अभावहुए श्रुतिमें तिसको कार-
णताकथन कैसे संभवेगा। तथापि उपादानभूत अज्ञानका अधिष्ठान होने
से तिसको कारणत्वकथन है। याते आत्मामे विकारित्व प्रसक्ति नहीं होती।
तिस आत्माका तटस्थपनानिवारण करते हैं ॥ (अत्यम्) जडता तथा
अनात्मतादि धर्मोंकर वाह्यरूपताको प्राप्त हुआ जो जगत् है । तिसकी
अपेक्षाकर विपरीतचेतनतादिरूपतासे और अंतरादिभावकर प्रकाश
करते हुए की न्याई जो प्रतीत होता है वह प्रत्यक्ष कहा जाता है ॥ अत्यक्षमे
हेतुकहते हैं ॥ (ज्योतिः स्वरूपं) जिस कारणसे स्वयं प्रकाशचेतन रूप है
तिस तत्त्वके कथनका प्रकरण नहीं है । ऐसी आशंकाको निषेध करते
हैं । (अधुना) अब शिष्यकी जिज्ञासाके उत्तरकालमे तिस तत्त्वका
निरूपण प्राप्त है । याते अस्तु तथार्थात् प्रकरणसंबद्ध अर्थका कथन
नहीं ॥ शंका ॥ तुम्हारे कथनसे क्या? सिद्ध होगा । क्योंकि वेद
कर ही तिसका कथन बन जायेगा ॥ समाधान ॥ (युक्तिः)
अज्ञान तथा संशयके निराकरण द्वारा वेदार्थकी भगवत्ताके लिये और
तिसमें योग्यताकी भाँति युक्तिसे अर्थात् श्रुति अनुसारी तर्कसे तिस
आत्मतत्त्वको निरूपण करते हैं ॥ इति ॥ पूर्वपक्षके आरंभमें आत्मशब्द
से जीव तथा ईश्वरविवक्षित नहीं किंतु शुद्धचेतन आनंदधन अत्यक्षब्रह्मका
अभेदरूप अर्थही आत्मशब्दसे विवक्षित है । और तिसमें पूर्ववादीकर
कथन किये दूषणोंका अवकाश नहीं है । इस अर्थके कथन करनेके लिये
सिद्धांती अथ विकल्प करता है ॥

* अथ प्रमाणाभावसे आत्मामें असत्

पने की शंकाका समाधान *

हेवादिन्क्या ? निरूपणीय आत्मा में प्रमाण के अभाव से आत्मा के स्वरूप की अनुपपत्ति है ॥ अर्थ यह आत्मा को प्रमाण की अपेक्षा क्या ? स्वरूप लाभ के अर्थ है । अथवा प्रमाण के अभाव से प्रतीतिकी अनुपपत्ति है ॥ अर्थात् अपनी प्रतीतिके अर्थ प्रमाण की अपेक्षा है ॥ प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि तिसमे यह विचार करने योग्य है । क्या ? यह पक्ष आत्मनित्यत्ववादी का है । अथवा आत्मा को कार्य कहनेवाले का पक्ष है ॥ इनमें प्रथम पक्ष असंगत है ॥ क्योंकि आत्मा को अकार्य होने से कइतर की अपेक्षा का अभाव है ॥ भावपदार्थ में नित्यत्व अकार्य होने से ही संभव हो सकता है ॥ या तो स्वरूप लाभ के अर्थ आत्मा प्रमाण की अपेक्षा नहीं करता ॥ और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि प्रमाण प्रमेय का उत्पादक नहीं किंतु ज्ञापक है ॥ शंका ॥ प्रमाण को प्रमेय की अनुत्पादकता असिद्ध है ॥ क्योंकि प्रवृत्ति आदिक भी प्रमेय हैं । वह प्रमाण से उत्पन्न होते हैं ॥ समाधान ॥ हेवादिन् प्रवृत्ति विषयक ज्ञान प्रवृत्ति को नहीं उत्पन्न करता किंतु जिस अर्थ विषयक पुरुष की प्रवृत्ति होती है ॥ तिस अर्थ विषयक इष्टसाधनता का ज्ञान प्रवृत्ति को उत्पन्न करता है ॥ या तो स्वविषय का उत्पादक प्रमाण नहीं ॥ इसी से प्रवृत्ति ज्ञान मेव्यभिचार नहीं । और आत्मा स्वप्रतीतिके अर्थ प्रमाण की अपेक्षा करता है ॥ इस आद्य द्वितीय पक्ष मे भी यह विचार कर्तव्य है । क्या ? प्रतीति मात्र प्रमाण के आधीन है । अथवा जड पदार्थ की प्रतीति प्रमाण के आधीन है ॥ तहां प्रथम पक्ष मे तो अति प्रसंग है ॥ क्योंकि प्रमाण विषयक भी अन्य प्रमाण कहने योग्य है । शंका ॥ विषय की सिद्धि अर्थ प्रमाण की अपेक्षा है ॥ कोई प्रमाण को अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं । क्योंकि तिसमे अन्य प्रमाण का कुछ उपयोग

नहीं है ॥ समाधान ॥ प्रमाणमें प्रमाणांतरके अभावहुए नशृंगकी न्याई असत् होनेकर स्वप्नमेयके साधकपनेका असंभव है ॥ अर्थात् लब्धसत्ता वाला ही प्रमाण स्वविषयका साधक है ॥ और स्वस्तुमात्रकी सत्ता प्रमाणके आधीन है यह तुम्हारा नियम है । याते प्रमाणांतरसे विना प्रथम प्रमाण की सत्ता नहीं सिद्ध हो सकती ॥ और स्वरूपसत्ताके अभावहुए प्रमाण स्वविषयका साधक कैसे होगा ॥ और यदि प्रमाणमें भी अन्य प्रमाणकी अपेक्षामानोगे तो अनवस्थादोषकी शक्ति होगी ॥ शंका ॥ अनवस्थाके भयसे यदि और प्रमाण नहीं मानेगे तो प्रमाण कर ही वस्तुकी सिद्धि होती है। यह वृद्धोंका उच्चस्वरसे कथन कैसे संभवेगा ॥ समाधान ॥ हेवादिव अनवस्थादोषकी शक्ति होनेसे प्रमाण कर ही वस्तु सिद्ध होती है । यह तिनका “उद्धोष” अर्थात् उच्चस्वरसे कथन केवल अभिमानमात्र है अर्थात् भ्रान्तिमूलक है ॥ शंका ॥ जब वस्तु अपनी प्रतीतिके अर्थ प्रमाणकी अपेक्षा करो। परन्तु प्रमाण तो स्वयं प्रकाशमान होनेसे प्रमाणांतरकी अपेक्षा नहीं करता । जैसे प्रदीप स्वप्रकाशके निमित्त और प्रदीपकी अपेक्षा नहीं करता या ते सर्व अर्थका साधक जो प्रमाण है । वह अपनी सिद्धिके अर्थ अन्य प्रमाणकी अपेक्षा करता है यह कथन ही अयुक्त है । और जो सिद्धांती ऐसे कहें कि प्रमाणको स्वविषयक प्रतीतिका जो जनक पना है । यह ही स्वसाधक पना है । सो यह कथन समीचीन नहीं । क्योंकि इसमें वृत्तिविरोध है । अर्थात् एकपदार्थ में एककालमें कर्तृत्व तथा कर्मत्वका विरोध है । याते प्रमाणमे स्वप्रकाशतानहीं संभवती । सो यह सिद्धांतीका कथन भी असंगत है । क्योंकि स्वव्यवहारमें दूसरेकी अपेक्षासे जोरहित पना है । यह ही स्वसाधकशब्दका अर्थ है । इसीको प्रमाणनिष्ठ सिद्ध करते हैं प्रमाण स्वसिद्धिके अर्थ जिसकी

अपेक्षाकरता है । वह प्रथम प्रमेयरूप तो नहीं संभवता । क्योंकि विषय को प्रकाशक पना है । और यदि तिसको प्रमाणरूप कहो तो यह भी नहीं संभवता । क्योंकि अनवस्था दोष प्राप्त होता है । या ते सर्वका साधक जो प्रमाण है वह अपनी सिद्धि के अर्थ अन्य की अपेक्षा करता है यह कथन अयुक्त है ॥ इस प्रकार प्रमाण स्वप्रकाश स्वभाव हुआ स्वपर की सिद्धि के अर्थ किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं करता । या ते पूर्व उक्त अनवस्था दोष की प्राप्ति नहीं इस प्रकार पूर्व पक्ष के भास हुए सिद्धांती उत्तर निरूपण करता है ॥ समाधान ॥ हेवादि नूबड़ा हर्ष है स्वप्रकाश प्रमाण को अन्य की अपेक्षा से रहित माने हुए आत्मा प्रमाण से कैसे सिद्ध होगा ॥ शंका ॥ प्रमाण से आत्मा की सिद्धि मानने में क्या अनुपपत्ति है ॥ समाधान ॥ हेवादि नू प्रमाण का स्वरूप और तिसका भान आत्मा के आधीन है और आत्मा की सिद्धि प्रमाण के आधीन है इस प्रकार अन्यो ज्ञ्या श्रय दोष होने से आत्मा प्रमाण सिद्ध नहीं । प्रमाण की सिद्धि आत्मा के आधीन है । इस अर्थ को कैसे सुत्य कन्याय से सिद्ध करते हैं ॥ प्रमाण प्रमेयादि नाना भेद विशिष्ट सकल जगत् का साधक आत्मा है ॥ क्यों कि अपने अज्ञान से सर्व जगत् को उत्पन्न करके प्रकाश करता है ॥ या ते जो आत्मा सर्व जगत् का साधक है ॥ तिसको जगत् के एक अंश रूप प्रमाण की साधकता में तो क्या ही कहना है ॥ इति ॥

❀ अन्य प्रकार से उसी शंका का समाधान ❀

किंवा । हेवादि नू प्रमाण से आत्मा सिद्ध होता है । इसका क्या अर्थ है । क्या ? आत्मा प्रमाण से उत्पन्न होता है । अथवा प्रमाण से जाना जाता है । प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि प्रमाण के भूति आत्मा को कारणता होने से प्रमाण से प्रथम ही तिसकी सिद्धि है ॥ शंका ॥ हे सिद्धांति नू

प्रमाणके प्रति जो आत्मा को कारणता कहते हो तिसमे यह आपको कहना चाहिये कि वह आत्मा क्या? प्रमातारूपसे कारण है । अथवा कारण रूपतासे कारण है वा विषयरूपतासे कारण है । प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता क्योंकि—

❀ हीर्धो रित्येतत्सर्वमनएव ॥ बृ० ड० अ० ३ ब्रा० ५ कं ३ ❀

अ० ॥ लज्जा तथा ज्ञानादियह सर्व ही अंतस्करणके धर्म हैं । इस श्रुतिसे अंतस्करणमे ही प्रमातापना है आत्मा मे नहीं । और द्वितीय तथा तृतीय यह दोनों पक्ष भी नहीं संभवते । क्योंकि आत्मा को कारण रूपता तथा विषयरूपता अंगीकार नहीं है ॥ समाधान ॥ प्रमाणसे पूर्व आत्मा की अस्तिमाने हुए आश्रयरूप प्रमाता के अस्तिद्ध हुए प्रमाण को स्वरूप लाभ ही नहीं होगा । भाव यह चैतन्य के साथतादात्म्य भाव की शक्तिसे विना अंतस्करण को प्रमातापना नहीं संभवता । क्योंकि वह जड़ है । विशेष चैतन्य के तादात्म्य विना भी यदि अंतःकरणमे प्रमातृत्व मानोगे तो घटादिकों मे भी प्रमातृत्व प्राप्त होगा । और आत्मा के प्रमातापने में घृतिवाले अंतस्करण को उपाधि पना है । इसलिये अंतस्करण प्रमाता है । ऐसा लोक मे व्यवहार होता है । इस प्रकार प्रमाता आत्मा प्रमाणों का कारण है । तिसके अभाव हुए प्रमाण को स्वरूप लाभ ही नहीं होगा । क्योंकि कारण के अभाव हुए कार्य का भी अभाव होता है ॥ शंका ॥ हे सिद्धांतिन् । प्रमाणसे आत्मा उत्पन्न होता है यह हम नहीं कहते किन्तु प्रमाणसे आत्मा ज्ञात होता है ॥ समाधान ॥ हे वादिन् इस द्वितीय पक्ष मे भी यह विचार करने योग्य है । आत्मा को प्रमाण से ज्ञात माने हुए ज्ञाता क्या? वही आत्मा है । अथवा कोई अन्य है । प्रथम पक्ष नहीं संभवता । क्योंकि प्रमेय मात्र के प्रति एक आत्मा को ही ज्ञाता होने से तिस

ज्ञेयपनाअयुक्तहै । भावयहहैकिप्रमाणकेप्रतिआत्माकोज्ञाताहोनेसे ज्ञेयपनातिसकोयुक्तनहीं । यातेसर्वकेज्ञाताआत्माकोप्रमाणकैसेविषय करसकेगा किंतुनहींकरसकता ॥ शंका ॥ प्रमाणादिकसर्वपदार्थों काजोज्ञाताहै वहप्रमाणकाविषयक्योंनहींहोता ॥ समाधान ॥ हे वादिन् आत्माकोभीयदिज्ञानरूपप्रमाणकाविषयमाने।तोकर्तृकर्मविरोध कीप्राप्तिहोगी । क्योंकिज्ञानभीएकक्रियाविशेषहै । सोकर्ताऔरकर्मकी अपेक्षाकरकेहीउत्पन्नहोतीहै । तिनमेकर्ताकोतोक्रियाकासाधनहोनेसे क्रियाकेप्रतिगौणताहै । औरकर्मतोस्वरूपसेअथवाधर्मसे क्रियाकर साध्यहोनेसेक्रियाकेप्रतिप्रधानहै । तिसीकारणसेआत्माकोस्वज्ञानरूप क्रियाकेप्रतिएककालमेहीउभयरूपताकीप्राप्तिहै । ज्ञानकाआश्रयरूपता करसाधनहोनेसेगौणताहै । औरज्ञानकाविषयहोनेसेप्रधानताहै । इस प्रकारविरुद्धद्विरूपताकीप्राप्तिसेआत्माकोप्रमाणविषयनहींकरसकता । औरद्वितीयपक्षमेभीयहविचारकरनेयोग्यहै । ज्ञेयरूपआत्मासेभिन्नजो प्रमाताहै । वहजडहै । अथवाचेतनहै । प्रथमपक्षतोनोंसंभवता । क्योंकितिसकोअनात्माहोनेसेप्रमातृत्वकाअसंभवहै । औरद्वितीयपक्ष भीअसंगतहै । क्योंकिप्रथमआत्माकोज्ञेयहोनेकरघटवत्अनात्मताकी प्राप्तिहोनेसेतिसदूसरेचेतनरूपप्रमाताकोहीआत्मपनाहोगा । अथसर्व काविज्ञाताजोआत्माहै सोकिसीप्रमाणकाविषयनहींइसअर्थमेमैत्रेयी ब्राह्मणकाशेषवाक्यउदाहरणकरतेहैं ॥

❀ विज्ञातारमरेकेनविजानीयात् ॥ (बृ०) उ० पै० ब्रा० क० १५ ❀

अ० ॥ अरेमैत्रेयीसर्वकेविज्ञाताआत्माकोकिसकरणकरकेकौन अन्यज्ञाताजानसकताहै । क्योंकितिसमोक्षदशामे आत्मासे व्यति

रिक्तसर्वकायभाव है ॥ इसप्रकारप्रमाणसे विनायात्माकीस्वतः सिद्धिहोनेसेप्रमाणके अभावसे आत्माकायसत्पनानहीं होसकता । यहअर्थसिद्धहुआ ॥ इति ॥

❀ प्रमाणाभावसेआत्मामेअसत्त्वापत्तिका

अन्यप्रकारसेपरिहार❀

किंवा ॥ आत्मामेयदिप्रमाणनहींतो असत्त्वापत्तिहोगी । ऐसे कथनकरनेवालेवादीनेआत्मामेप्रमाणकेअभावसे असत्पनाआपादन किया है । यहहमकोप्रतीतहोता है । सोयहकथनअयुक्त है । इस अर्थकेनिरूपण करनेकेलिये विकल्पकरते हैं । हेवादिन्प्रमाणकेअभावसे आत्मामेआपाद्यमानअर्थात्प्राप्तहोनेयोग्यजोअसत्त्व है । वहज्ञात है वाअज्ञातहै । अर्थयहकिअसिद्धस्वभाव है । प्रथमपक्षमेभीयहविचारकियाचाहिये ॥ क्या ? वहआत्माकाअसत्त्वप्रमाणसेज्ञातहै ॥ अथवाअमकरकेज्ञातहै । वा स्वतःसिद्धहै । प्रथमपक्षमेपुनःयहविचारणीयहै । क्या ? वहअसत्त्वकाग्राहकप्रमाणअसत्अर्थात्अभाव मात्रकोग्रहणकरता है । अथवाआत्मप्रतियोगिकअसत्कोग्रहणकरता है । प्रथमपक्षनहींसंभवता । क्योंकिअसत्काअभावरूपजोअसत् है तिसकोप्रतियोगीकेआधीनहोनेकरप्रतियोगीकोनविषयकरकेवहप्रमाण केवलअसत्मात्रकोनहींग्रहणकरसकता । औरयदिप्रतियोगीकोविषय करकेअसत्कोप्रमाणविषयकरता है । यहद्वितीयपक्षकहोतो आत्माभी प्रमाणसिद्धहुआ । क्योंकिअसत्कोग्रहणकरनेवालाप्रमाणप्रतियोगी कोनियमसे ग्रहणकरता है । यातेआत्माकोभी प्रमाणसिद्धहोनेकर प्रमाणाभावरूपआपादककेअभावसे आत्मामेआपाद्यमानअसत्त्वभी

नहीं संभवता ॥ जैसे अग्निवाले देश में अग्निके अभाव रूप आपादक से धूमाभावनहीं आपादन कर सकते ॥ शंका ॥ हे सिद्धांतिन्यसत्त्वका प्रतियोगी सत्त्व है ॥ आत्मानहीं ॥ याते आत्माको प्रमाणकी विषयता आपकैसे कहते हो ॥ समाधान ॥ हेवादि न्वहसत्त्व प्रतियोगी हुआ क्या ? किसी पदार्थका स्वरूप है अथवा धर्म है ॥ प्रथम पक्ष में भी यह कहा चाहिये कि आत्माका स्वरूप वह सत्त्व है अथवा अन्य पदार्थका स्वरूप है । प्रथम पक्ष में तो उत्तर पूर्वक कथन कर आये हैं ॥ कि आत्माको प्रमाण सिद्ध होने से असत्पनानहीं है । और द्वितीय पक्ष में तुम्हारे इष्ट की असिद्धि है । क्योंकि अन्य किसी पदार्थका ही असत्त्व होगा । आत्मा कानहीं ॥ अर्थ यह प्रतियोगीको अपने अभावकी साधकता का नियम होने पर पदार्थांतरका स्वरूप भूत जो प्रतियोगी रूप सत्त्व है वह पदार्थांतर के असत्त्वका ही साधक है ॥ अप्रतियोगी रूप आत्माके असत्त्वका साधक नहीं ॥ और यदि वह सत्त्व धर्म है यह आद्य द्वितीय पक्ष कहो तो तिसमें यह विचार किया चाहिये ॥ क्या ? वह सत्त्व आत्माका धर्म है अथवा किसी अन्य पदार्थका धर्म है ॥ प्रथम पक्ष में आत्माका सत्त्व प्रतियोगी है तिस आत्मसत्त्वको प्रमाण सिद्ध हुए आत्मामें असत्त्वका आपादन तुम कैसे कर सकते हो ॥ और वह सत्त्व अन्य किसी पदार्थका धर्म है यदि यह द्वितीय पक्ष कहो तो भी पदार्थांतरका असत्त्व होगा ॥ आत्मा कानहीं ॥ याते आत्माका असत्त्व कैसे आपादन करने योग्य है ॥ किंतु किसी प्रकार भी नहीं । और आत्माका असत्त्व भ्रम से सिद्ध है यह आद्य जो द्वितीय पक्ष था सो भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि असत्त्वको भ्रम सिद्ध माने हुए भ्रमके विषयको बाधित होने कर वास्तवसे आत्मामें सत्त्व ही प्राप्त होगा । और तृतीय पक्ष में यह विचार किया

चाहिये । असत्त्वमात्रस्वतः सिद्ध है ॥ अथवा आत्मविशिष्ट असत्त्वस्वतः सिद्ध है ॥ प्रथमपक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि प्रतियोगी से विना केवल अभावमात्र का निरूपण नहीं हो सकता ॥ और द्वितीयपक्ष में तो आत्मा को स्वतः सिद्धता प्राप्त होगी क्योंकि आत्मविशिष्ट जो आत्मा का असत्त्व तिसकी स्वतः सिद्धता हुआ विशेषणरूप आत्मामें स्वतः सिद्धता बलात्कार से सिद्ध होती है ॥ तिसकारण से दोनों में स्वतः सिद्धता प्राप्त हुआ आत्मा ही स्वतः सिद्ध है ॥ असत्त्वमें स्वतः सिद्धिका असंभव है । क्योंकि आत्मारूप प्रतियोगी निरपेक्ष है ॥ और असत्त्वरूप अभाव प्रतियोगी सापेक्ष है ॥ और सापेक्ष निरपेक्ष इन दोनों के मध्यमें निरपेक्ष को ही स्वतः सिद्धत्व का संभव है । और प्रतियोगी के आधीन असत्त्व का स्वतः सिद्धपन नहीं संभवता ॥ अन्यथा असत्त्वमें सापेक्षता की हानि होगी । यहां पर यह अर्थ ज्ञातव्य है । वह असत्त्व जड़ है ॥ वाचेतन है ॥ प्रथमपक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि जड़ता होने से ही घटकी न्याई स्वतः सिद्धिकी अयोग्यता है । और यदि द्वितीयपक्ष हो तो आत्मा का ही दूसरा नाम असत्त्व है । क्योंकि स्वतः सिद्धचेतन को ही आत्मरूपता है । तैसे माने हुए प्रमाण भाव से आत्मामें असत्त्व का आपादन हमको अनिष्ट नहीं किंतु इष्ट है ॥ इति ॥ यहां पर्यंत आत्मा का असत्त्व ज्ञात है । इस प्रथमपक्ष का निरास किया । अब अज्ञातरूप असिद्ध स्वभाव वह असत्त्व है । इस द्वितीयपक्ष को निराकरण करते हैं हेवादि न्यह द्वितीयपक्ष भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि असिद्ध का आपादन ही अनुपपन्न है ॥ शंका ॥ असिद्ध का आपादन किस कारण से नहीं बनता ॥ समाधान ॥ हेवादि न्य प्रतिवादी के प्रतिशब्द से जो अनिष्ट की प्राप्ति तिसका नाम आपादन है और अर्थ के जाने विना शब्द रचना की अनु

पपत्तिहै। यातेबुद्धिमें अनाखूदअसत्त्वका आपादनकरनाअयोग्यहै। इसप्रकारप्रमाणके अभावसे आत्माकाअसत्त्व कोईनिरूपणनहीं करसकता ॥

*** प्रमाणकेअभावसे आत्मामेंअसत्त्वापत्तिका
अन्यप्रकारसे परिहार ॥ ***

प्रमाणकरआत्माकेअसत्त्वकीसिद्धिहोतीहैइसपक्षमेंअवसिंहावलोकनन्यायसे औररूपणकहतेहैं ॥ जैसेसिंह एकमृगकोहनन करकेआगेगमनकरताहुआ पुनःउसीस्थानकोदेखताहै यदिकोईऔर मृगवहांआयाहोतोतिसकोभीमेंहननकरूं यहसिंहावलोकनन्यायका अर्थहै ॥ तैसेहीप्रमाणसेआत्माका असत्त्वसिद्धहै इसपक्षकोनिरा करणकरकेपुनः वादीनेयदिकोईऔरस्युक्तिइसपक्षमें शप्तकरीहो। तो तिसकोभीहमनिराकरणकरें । इति ॥ किंवा । हेवादिअत्माका असत्त्वक्या?आत्माहीजानताहै । अथवाअनात्माजानताहै ॥ प्रथम पक्षमेंबहुतवक्तव्यहोनेसे तिसकोत्यागकरप्रथमअंत्यपक्षकोदूषितकरते हैं।अंत्यपक्षनहींसंभवता।क्योंकि अनात्माकोज्ञेयऐक्यस्वभावहोनेसे ज्ञातृत्वकाअभावहै ॥ औरप्रथमपक्षभीनहींसंभवता । क्योंकिव्या घातादोषकीप्राप्तिहोतीहै । तैसेदिखलातेहैं । क्या?आत्माअपनीसत्ता कालमेंअपनी असत्ताकोजानताहै अथवाअपनीअसत्ताकालमेंस्व असत्ताकोजानताहै।प्रथमपक्ष तोनहींसंभवता । क्योंकि अपनीसत्ता कालमेंअपनीअसत्ताकैसेहोसकतीहै और—

✽ परस्परविरोधेनप्रकारांतरस्थितिः ✽

अ० ॥ परस्परविरोधहुयेकोई अन्यप्रकारनहींस्थितहोता । इस

न्यायसे सत्ता और असत्ता का परस्परविरोध हुए एकके विद्यमान हुए दूसरा नहीं स्थित हो सकता ॥ शंका ॥ यद्यपि स्वसत्ताकालमे स्वयसत्तानहो परन्तु तिसको आत्मा जान तो सकता है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् असत्ता केन हुए आत्मा किसको जानेगा ॥ क्योंकि विषय का ही अभाव है । और आत्मा स्वअसत्ताकालमे स्वयसत्ताको जानता है । यह द्वितीयपक्ष भी नहीं संभवता । क्योंकि स्वअसत्ताकालमे ज्ञाता आत्मा का ही अभाव होनेसे किस प्रकार वह जान सकेगा ॥ शंका ॥ स्वसत्ताकालमे ही आत्मा अपनी असत्ताको जानता है इस प्रकार माननेसे व्याघात दोष की भी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि स्वसत्ताकालमे स्वअसत्ता का अज्ञान है और यदि सिद्धांती ऐसे पूछे कि स्वसत्ताकालमे स्वअसत्ता के अज्ञात हुए किस कालमे होनेवाली स्वअसत्ताको आत्मा जानेगा तिसका यह उत्तर है कालांतरमे होनेवाली स्वअसत्ताको आत्मा जान सकता है ॥ समाधान । हेवादिन् ऐसे माने हुए सत् रूप आत्मा सिद्ध हुआ इससे किसी अनिष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ शंका ॥ आत्मा की सत् रूपता आप कैसे कहते हो । जिस कारणसे वह आत्मा आगे होनेवाली स्वअसत्ता का अनुभव करता है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् भ्रमाण के अभावसे क्या ? अत्यंत असत् रूपता आत्मामे आपादन करने योग्य है । अथवा अनित्यता आपादन करने योग्य है । मध्यमपक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि विनाशसे मध्यम आत्मा सत् है । और द्वितीयपक्ष भी असंगत है । क्यों कि वह आत्मा की अनित्यता द्वितीयकास्त्रिके व्याख्यानमे कृतनाश तथा अकृताभ्यागम दोष की शक्तिसे निवारण कर था एहं । याते भ्रमाण के अभावसे आत्मा का असत्त्व नहीं है । यह सिद्ध हुआ । किंवा ॥

आत्मोके असत्पने की शंका का अन्य प्रकारसे परिहार ॥

आत्माका अथसत्त्वकहनेवालावादी अपने आत्माका निषेध करता है
अथवा दूसरे आत्माका निषेध करता है । प्रथमपक्षमें निषेध करनेवालेका
अभाव होनेसे निराकरण करने योग्य ही आत्मावास्तवसे सत्त्वरूप है यह सिद्ध
होता है । और द्वितीयपक्षमें निषेधकर्ता जिस कारणसे वास्तवसे स्थित है।
इसी कारणसे आत्माका अथसत्त्वकैसे हो सकता है ॥ शंका ॥ अन्य आत्मा
के निषेध करनेवालेका कोई अन्य तृतीय आत्मा निषेधकर्ता हो जायेगा ।
कैसे निषेध करनेवाला परमाथे रूपतासे स्थित हो सकता है ॥ समाधान ॥
हेवादि तृत्तिस तृतीय निषेधकर्ताका कोई अन्य निराकरणकर्ता है ॥ अथवा
नहीं ॥ प्रथमपक्षमें तो अथनवस्था दोष है और द्वितीयपक्षमें जिसमें वि-
श्रान्तिमानोगे । तिसीको वास्तवसे स्थित होनेकर किस हेतुसे आत्माका
अथसत्त्वकहते हो । यही अर्थ श्रुतिमें कथन किया है ॥

❀ असन्नेव समवति असद्ब्रह्मेति चेदचेत् ।

अस्ति ब्रह्मेति चेद्देद संतमेनंततो विदुः ❀

तै० ब्र० ३० अनु० ६

अ० प्रथमज्ञातापनाचेतनका धर्म है । क्योंकि अचेतन घटादिकों
में ज्ञातृत्वका अभाव है । और ब्रह्म भी चेतन है जिस कारणसे श्रुतिमें विज्ञान
घनसुना जाता है । सो विज्ञातासे भिन्न नहीं है । क्योंकि श्रुतिमें अभेद
श्रवण होता है। ऐसा माने हुए यह ज्ञाता पुरुष यदि ब्रह्मात्माको असत् जानता
है तो वह आप ही असत् हो जाता है । क्योंकि अपने आत्मस्वरूप ब्रह्मका
निषेधकर्ता है । अर्थात् निषेधकर्ता यदि अपने आत्माका निराकरण करता
है तो वह असत् हो जाता है यह हेतु रूपतासे कथन किया हुआ निराकरणक
र्ताका अथसत्त्वश्रुतिसंगत है । और यदि वादी दूसरे आत्माका निषेध करे तो इस

पक्षमें निराकरणकर्ता का सत्त्व श्रुतिसंमत है सो ईदिलखलाते हैं । ब्रह्मात्मा है ऐसे यदि यह ज्ञाता जानता है । तो सत्त्वरूप ब्रह्मात्मा के ज्ञाता को सूक्ष्म अर्थ के द्रष्टा पुरुष सत्त्वरूप ही जानते हैं । अर्थात् वह परमार्थ सत्त्वरूप ही होता है । याते आत्मा की असत्त्वरूपता का कथन अयुक्त है ॥ इति किंवा ॥

॥ प्रमाणाभावसे आत्मामें असत्पने की शंका का अन्यप्रकारसे परिहार ।

आत्मामें प्रमाण के अभावसे असत्यता की प्राप्ति कहनेवाले वादीने प्रमाण की सत्ता के हुए ही वस्तु की सत्ता होती है यह कहने योग्य है । तहां प्रमाण की सत्ता हुए ही वस्तु की सत्ता होती है । इसका क्या अर्थ है । क्या ? प्रमाण के विद्यमान हुए वस्तु की सत्ता उत्पन्न होती है । अथवा वस्तु की सत्ता जानी जाती है । प्रथम पक्षमें भी यह विचार कर्तव्य है । क्या ? प्रमाण सत्त्वस्तुमें प्रवृत्त होता है अथवा असत्त्वमें प्रवृत्त होता है । यदि असत्त्वमें प्रवृत्त होता है अर्थात् असत्त्वमें प्रवृत्त हुआ प्रमाण सत्ता को उत्पन्न करता है । यह अंत्यपक्ष कहो । तो शराश्रृंग की भी वह प्रमाण सिद्धि कर लेगा । क्योंकि असत्पने की उत्पत्ति है । और प्रमाण को असत्त्व के उत्पन्न करने की सामर्थ्य भी है । सो ऐसा देखने में नहीं आता । याते अंत्यपक्ष नहीं संभवता । और सत्त्वमें प्रमाण प्रवृत्त होता है अर्थात् सत्त्वस्तु की सत्ता को प्रमाण उत्पन्न करता है । यह प्रथम पक्ष भी नहीं संभवता । क्योंकि इस पक्षमें प्रमाण के आधीन वस्तु की सत्ता नहीं है । शंका । प्रमाण सत्त्वस्तुमें प्रवृत्त हो परंतु प्रमाण के आधीन वस्तु की सत्ता क्यों न हो ।

॥ समाधान ॥ हेवादि नृजिस की अपेक्षा से जो प्रथम ही विद्यमान हो । वह

तिसका कार्यनहीं होसकता । क्योंकि नियमसे पश्चात् होनेवाले कोही कार्यपनाहोताहै । जैसे इसप्रकरणमें प्रमाणकी अपेक्षासे प्रथमही वस्तु विद्यमान है । याते वह प्रमाणका कार्य कैसे होसकती है ॥ शंका ॥ सत्त्वस्तु में प्रमाणकी प्रवृत्ति नमानेहुए प्रमाणकी प्रवृत्तिसे पश्चात्ही वस्तुकी सत्ता उत्पन्न होजायेगी ॥ समाधान ॥ हेवादि न्यदि ऐसे मानोगे तो सत्त्वमेंही प्रमाण प्रवृत्त होता है । इसअपनी श्रुतिज्ञाकी हानि होगी । और यदि सत्त्वस्तुका भान प्रमाणके आधीन है । यह आद्यद्वितीय पक्ष कहो । तो अमान स्वरूप अनात्माका भान प्रमाणके आधीन हो । क्योंकि वह अचेतन है और स्वयंप्रकाशमान आत्मामें प्रमाणके आधीन भान कैसे होगा किंतु नहीं होसका । यहां यह भाव है । प्रमाणके अभावसे वस्तुकी सत्ताका अभाव है । याते प्रमाणसत्ता वस्तुसत्ताका व्यापक है यह कहने योग्य है ॥ इसलिये व्यापकाभाव कोही व्याप्याभावके प्रति साधक पना है । अर्थात् जहां वस्तुकी सत्ता होती है तहां प्रमाणसत्ता है । और जहां प्रमाणकी सत्ता नहीं है तहां वस्तुकी सत्ता भी नहीं है ॥ ऐसा मानेहुए सत्त्वस्तुका ही भान प्रमाणकर होता है ॥ यहां यह अर्थ सिद्ध होता है इसी अर्थका साधक यहां यह अनुमान भी जानना ॥

❀ विमतः आत्मा प्रमाणगम्यः सत्त्वात् घटवत् ❀

अ० ॥ विवादका विषय जो आत्मा है ॥ वह प्रमाणगम्य है ॥ सत्त्वरूप होनेसे ॥ जो जो सत्त्वरूप होता है । सो सो प्रमाणगम्य होता है जैसे घट है ॥ इति ॥ सो यह द्वितीय पक्ष भी असंगत है । क्योंकि प्रथम यह अनुमान तो जडत्वरूप उपाधिसहित होनेसे दुष्ट है सो दिखलाते हैं । जहां प्रमाणगम्यत्व है तहां जडत्व है ॥ जैसे अमान स्वरूप अनात्मा घटादिकों में प्रमाणके आधीनतिनका भान है याते तिनमें जडत्व भी है । इस प्रकार

दृष्टांतमें जडत्व उपाधिको साध्य के साथ व्यापकता कहकर अथपक्षमें साधन के साथ अत्र व्यापकता कथन करते हैं । तैसे ही स्वप्रकाश स्वरूप आत्मा में प्रमाण के आधीन कैसे मान हो सकता है । क्यों कि प्रमाण के आधीन जो मान है सो अपने व्यवहार के अर्थ अन्वेषण किया जाता है ॥ और आत्मा में स्वरूप भूत प्रकाश से ही स्वव्यवहार के सिद्ध हुए प्रमाणाधीन मान से क्या फल है किंतु तिसका कोई फल नहीं । इस प्रकार पक्ष रूप आत्मा में “सत्त्वात्” यह साधन तो है परंतु जडत्वरूप उपाधिका अभाव है ॥ याते उपाधिसाधन के साथ अत्र व्यापक है ॥ शंका ॥ भान स्वरूपता चेतन पने का प्रयोजक है ॥ और आत्मा भान स्वरूप नहीं किंतु भान का आश्रय है । तैसे मानें हुए जडत्व उपाधिसाधन का अत्र व्यापक किस प्रकार होगा किंतु नहीं हो सकता । याते जडत्व को उपाधिरूपता का अभाव होने से पूर्व उक्त अनुमान दुष्ट नहीं ॥ समाधान ॥ हेवादिन् आत्मा भान स्वरूप अर्थात् प्रकाश स्वरूप है ॥ इस अर्थ में श्रुति प्रमाण है ॥ तहां श्रुति ॥

*** तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वं**

मिदं विभाति ॥ * (फ० उ० ॥ व० ५ ॥ १५)

अ० ॥ तिस प्रसिद्ध आत्मा के भासमान हुए ही पश्चात् सर्व अनात्म प्रपंच का भान होता है ॥ शंका ॥ जैसे गमन करते हुए एक पुरुष के पीछे दूसरा गमन करता है । इस प्रयोग में जैसे गमन दोनों में स्वगत है अर्थात् वह दोनों स्वतंत्र गमन करते हैं । तैसे आत्मा के भासमान हुए सर्व अनात्म पश्चात् भान होता है ॥ इस प्रयोग में भी दोनों में भान स्वतंत्र ही क्यों न हो समाधान ॥ तिस आत्मा के स्वरूप भूत प्रकाश करके यह सर्व अनात्म प्रपंच भान होता है ॥ याते अनात्म स्वगत प्रकाश से भान नहीं होता ।

किंतु आत्माके प्रकाशसेही प्रकाशित है । इसलिये आत्मास्वयंप्रकाश स्वरूप है । इस प्रकार पूर्व उक्त उपाधिसाधनका अव्यापक ही है ॥ याते पूर्व उक्त अनुमान दुष्ट है ॥ इस प्रकार इतने ग्रंथ करके प्रमाणके अभाव हुए आत्मामें असत्त्वापत्तिकी शंका का परिहार पद प्रकारसे निरूपण किया । 'अवश्रुतिकी तिस आत्मामें प्रमाणाता निरूपण करने के लिये कैमुतिक न्यायसे सर्वप्रमाणोंकी विषयता आत्मामे कथन करते हैं । किंवा ॥

❀ अथ आत्मामे सर्वप्रमाणोंकी विषयताका निरूपण ❀

आत्मामे कौन प्रमाण हैं ऐसा अभिनिवेश करनेवाले वादीके प्रति सर्वही प्रमाण आत्माविषयक हैं । यही उत्तर कहने योग्य है ॥ क्योंकि अज्ञातपदार्थ ही प्रमाणोंका विषय होता है ॥ शंका ॥ प्रमाणकी विषयता मे अज्ञातत्व प्रयोजक नहीं अर्थात् जहां अज्ञातत्व होता है तहां प्रमाणकी विषयता होती है । ऐसानीयम नहीं । क्योंकि ज्ञातपदार्थ भी धारावाहिक प्रमाणका विषय देखने मे आता है ॥ समाधान ॥ हेवादि न ज्ञात वस्तु मे प्रमाण क्या ? तिस वस्तुके प्रकाश अर्थ है । अथवा तिसके व्यवहार अर्थात् ग्रहण त्यागके अर्थ है । दोनों प्रकार नहीं संभवते । क्योंकि प्रथम प्रमाण करके ही वस्तुका प्रकाश और तिसके व्यवहारका निर्वाह हो सकता है पुनः द्वितीय प्रमाणकी कुछ अपेक्षा नहीं । यदि ऐसे न माने तो द्वितीय प्रमाणसे भी वह दोनों कार्य कैसे सिद्ध होंगे । और इस प्रकार धारावाहिक ज्ञान निष्ठ प्रमाण ताभी नहीं हो सकती । क्योंकि उत्तम उत्तरक्षण विशिष्ट तिस विषयकी तिस तिस ज्ञान मे अधिकता मान होती है । यद्यपि कालको अतीन्द्रिय अर्थात् इन्द्रिय जन्य ज्ञानका विषय होनेसे मत्त ज्ञानकी विषयता नहीं संभवती । तथापि

वह काल सर्वभूतियों में मान होता है । यदि ऐसे माने तो “इदानीं गंधः”
 अ० ॥ इस काल में गंध है । इस प्रकार की भूत चक्षुः प्रतीति कैसे होगी । या तो
 काल सर्वभूतियवेद्य है ॥ शंका ॥ “अज्ञातो घटः” इस प्रतीति से घट में भी
 अज्ञातता है । कैसे आप केवल आत्मा को ही प्रमाण का विषय कथन करते
 हो ॥ समाधान ॥ हेवादिन् आत्मा ही अज्ञात है । इसी अर्थ को उपपादन
 करते हैं । प्रथम आत्मा परमप्रेम का विषय होने से सुख स्वरूप है । वह सुख
 नित्य तथा स्वप्न का शेष है । क्योंकि “सुखमहमस्वाप्सं” इस परामर्श केवल से
 सुषुप्ति अवस्थामें सर्व इन्द्रिय तथा विषय के उपरत हुए भी वह सुख भासमान
 होता है । तिसी हेतु से जाग्रत अवस्थामें भी तिस नित्य सुख की “अस्ति
 भाति” इस प्रकार की प्रतीति के भास हुए भी जो यह सुख “नास्ति न भाति”
 यह अन्य प्रकार का व्यवहार होता है । सो अधिष्ठान के अज्ञान से उत्पन्न हुआ
 है । यह वार्त्ताशुक्तिके अज्ञान जन्य रजत व्यवहार में देखने से ऐसे कल्पना
 की जाती है । और इस मिथ्या व्यवहार का अधिष्ठान आत्मा ही है ॥ या तो
 विपरीत व्यवहार की योग्यता स्वरूप जो अज्ञान जन्य आवरण वह आत्मा में
 कल्पना किया जाता है । इस प्रकार आत्मा ही अज्ञान का विषय होने से अज्ञात
 है । और जड़ में अज्ञान की अविषयता स्वीकार करने योग्य है ॥
 ॥ शंका ॥ जड़ पदार्थ में अज्ञान की अविषयता कैसे है ॥ समाधान ॥ जो
 जिसमें किसी अतिशयता को धारण करता है । वह तिस का विषय होता है । और
 अज्ञान तो घटादिक अनात्मामें अतिशयता को नहीं धारण करता । क्योंकि
 तिस अनात्मा के विषय करने का कोई फल नहीं ॥ शंका ॥ अज्ञान कृत आवरण
 निष्फल नहीं किंतु तिस आवरण का विज्ञेय प्रयोजन है ॥ समाधान ॥ हे
 वादिन् विज्ञेय के अर्थ आवरण को विद्यमान होने से अज्ञान जन्य आवरण

कीकल्पनाव्यर्थहै ॥ शंका ॥ अज्ञानकृतआवरणजडमेंअभावहुए
 किसप्रयुक्तआवरणजडमेंहै ॥ समाधान ॥ जडपदार्थ स्वभावसेही
 आवृतहै । क्योंकिअज्ञानसेवह आवृतस्वभावही उत्पन्नहुएहैं । याते
 तिसमेंअनात्मत्वप्रयुक्त आवरणहै । अज्ञानकृतआवरणजडमेंनहीं तिस
 कारणसेही जडकोप्रमाणका अविषयहोनेसेआत्माही प्रमाणकाविषय
 है । यहअर्थसिद्धहुआ । यद्यपिघटादिजडपदार्थोंमेंअज्ञानकृतआवरण
 न मानेहुए “अज्ञातोघटः” यहप्रतीतिनहुईचाहिये । तथापिअज्ञान
 केसहितहीघटादिकोंकासाक्षिचेतनमेंअध्यासहोनेसेसमानाधिकरणाता
 होनेकरयहप्रतीति बनसकतीहै ॥ शंका ॥

✽ अथअनात्माके भानकाप्रकारनिरूपण ✽

जडपदार्थको आवृतस्वभावहोनेसेस्वः तोतिसका भाननहीं
 संभवता ॥ औरप्रमाणसेभी तिसकाभाननहींसंभता ॥ क्योंकितिस
 प्रमाणकावहजड पदार्थविषयनहींहै ॥ इसप्रकारस्वतः तथाप्रमाण
 से जडकाभान नहोनेसे तिस अनात्माका भान कैसेहोगा ॥
 समाधान ॥ यद्यपिजडस्वतःनहींभानहोता । क्योंकिवहआवृतस्वभाव
 है । औरअज्ञानकाअविषयहोनेसेप्रमाणसेभीनहींभानहोता । तथापि
 आत्मस्वरूपचैतन्यकर जडकाभानहोता है । यद्यपिआत्मचैतन्यको
 स्वप्रकाशहोनेसेतिसकेसाथ संबंधवालाजडपदार्थसर्वदाकालही भान
 हुआचाहिये । तथापिसाक्षिरूपआत्माको अविद्याकारावृत्तहोने
 सेप्रपंचकाअभानबनसकताहै ॥ शंका ॥ साक्षीकोअज्ञानकरआवृत
 मानेहुएकिसीकालमेंभी प्रपंचकाभाननहींहोगा ॥ समाधान ॥ हे
 वादिन्घटावच्छिन्नजोचैतन्य वहघटके साथइंद्रिय कासंबंधहोनेकर

उत्पन्नहुईजोघटाकारअंतस्करणकीवृत्तितिसकरअविद्याकीनिवृत्तिविशिष्टहोताहै, औरवहीचैतन्यघटाकारवृत्तिभेदतिविवतहुआघटकोप्रकाशकरता है । इसप्रकारघटकी तीतिसंभवतीहै । औरघटादिकोंकीप्रतीतिमेभी यहीरीतिजानलेनी ॥ शंका ॥ ऐसेमानेहुएघटकोप्रमाणकीविषयता प्राप्तहुई ॥ समाधान ॥ हेवादिन् प्रमाणकरनिवृत्तिकेयोग्यजोअज्ञान हैतिसकेविषयकोहीप्रमाणकीविषयताहै । औरतैसेअज्ञानकीविषयता घटादिअवच्छिन्नचिदात्मानिष्ठहीहै ॥ इसलियेचेतनस्वरूपआत्माही सर्वघटादिकोंमेप्रमाणकाविषयहै ॥ औरघटतोस्वअवच्छिन्नअनावृत्त चिदात्माके साधकल्पिततादात्म्यसंबंधकोपाकरमानहोताहै ॥ याते तिसघटकोप्रमाणकीविषयता किसप्रकारहोसकतीहै किंतुकिसीप्रकार भीनहीं ॥ इसप्रकारआत्मामेप्रमाणकेअभावसेअसत्त्वापत्तिकाजोविकल्पवादीनेपूर्वकियाथासोपरिहारकिया ॥ अबचिदात्मामेसर्वप्रमाणकी विषयताकेनिरूपणकाफलकहतेहैं ॥ तिसपूर्वउक्तप्रकारसेसर्वप्रमाणों करसिद्धजोआत्माहै ॥ तिसमेप्रमाणाभावरूपआपादककेअसत्त्वसे आपादनकरनेयोग्यआत्माकेअसत्त्वकाअसंभवहै ॥ शंका ॥ आत्मा कोसर्वप्रमाणकाविषयमानेहुए “औपनिषदत्व” यहजोआत्माका विशेषणश्रुतिमेकथनकियाहै ॥ वहकैसेसंभवहोगा । क्योंकिसर्वप्रमाणकेविषयआत्माकोउपनिषद्मात्रगम्यत्वकाअभावहोगा । यद्यपि “प्रमेयोघटः” जैसेइसप्रयोगमेप्रमेयताघटकाविशेषणहै । तैसे “औपनिषदत्व” यहभीआत्माकाविशेषणबनजायेगा । तथापि—

❀ सर्वविशेषणसावधारणं ❀

अ० ॥ सर्वहीविशेषणइतरकेव्यावर्तकहोतेहैं । इसन्यायसेइतर

काव्यावर्त्तकमात्रविशेषणकल्पनाकरनेमेफलकात्रभावहै । औरतिस
 सेअध्ययनविधिकाविरोधहोगा । क्योंकिअध्ययनविधिनिष्फलअर्थ
 काअध्ययननहींविधानकरता। इसलियेआत्मामेइतरप्रमाणोंकाव्यावर्त्त
 कत्वहीऔपनिषदत्वविशेषणकोकहनायोग्यहै ॥ औरसर्वप्रमाणोंकेविषय
 आत्मामेवहइतरप्रमाणोंकाव्यावर्त्तकपनातिसविशेषणकोनहींसंभवता।
 याते औपनिषदत्वविशेषण आत्मा मे किसी प्रकारभी नहीं संभवता
 ॥समाधान॥ हेवादिन्यद्यपिप्रपंचावच्छेदकरकेआत्मा मेसर्वप्रमाणकी
 विषयताहै ॥ तथापिपरिपूर्णसच्चिदानंदप्रत्यक्षरूपतासेतिसआत्मामें
 औरप्रमाणोंकीअविषयताहोनेकरतिसरूपतासे श्रुतिमात्रगम्यताहै ॥
 यातेऔपनिषदत्वविशेषणकाविरोधनहींहै ॥ अवपरिपूर्णादिपदोंका
 अर्थनिरूपणकरतेहैं ॥ “परिपूर्ण” कहियेसर्वओरसेव्यापकअर्थात्
 निर्येक्षव्यापकहै ॥ शंका ॥ परिपूर्णादिरूपआत्माकोउपनिषदप्रमाण
 काविषयमानेहुएघटादिवत्दृश्यताहोनेसेमिथ्यापनाहोगा॥समाधान।
 वहआत्मासतकहियेत्रिकालमेअबाधितस्वरूपहै। इसीसेश्रुतिभास्यता
 केअनंगीकारसेवहमिथ्यानहींहै ॥ शंका ॥ श्रुतिभास्यताकेअनंगी
 कारसेतिसकाभानकैसेहोगा ॥समाधान॥ स्वप्रकाशचिद्रूपतासेही
 तिसआत्माकाभानहोताहै। इसीसेचेतनकथनकियाहै॥शंका॥परिपूर्ण
 रूपआत्माकोसर्वरूपताहोनेसेदुःस्वरूपताभीकहनेयोग्यहै । औरदुःस्व
 रूपतामानेहुएवहआत्माउपनिषदकाविषयकैसेहोगा।क्योंकिअप्ररूपार्थ
 रूपहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन् “परिपूर्ण”विशेषणसेआत्माकाउद्देश्य
 करकेसर्वत्वकाविधाननहींकियाजाता ॥ जिससेदुःस्वरूपताआत्मा मे
 हो ॥ किंतुसर्वत्वकाउद्देश्यकरकेआत्मत्वकाविधानहै॥तिससेआत्मा

ही सर्वका वास्तव स्वरूप है। आत्मा से विना अन्य कोई वास्तव स्वरूप नहीं ॥
 इस प्रकार दुःखत्वादिरूप को मिथ्या होने के तिसका बांध होने से
 आत्मा आनंद स्वरूप है ॥ इसी हेतु से श्रुति में ❀ आनंदो ब्रह्म ❀
 अ० ॥ आनंद स्वरूप ब्रह्म है ॥ ऐसा कथन किया है ॥ यहां आत्मा तथा
 ब्रह्म पद का एक ही अर्थ जानना ॥ इस प्रकार आत्मा को पुरुषार्थ रूपता होने
 से उपनिषद् पमाण की विषयता संभवती है ॥ शंका ॥ यद्यपि पूर्व उक्त
 रीति से आत्मा आनंद स्वरूप है ॥ तथापि पूर्ण रूपता तिसको नहीं संभवती ।
 क्योंकि परमात्मा का जीव से भेद होने के परिच्छिन्न पना है ॥ समाधान ॥ वह
 परमात्मा भूत स्वरूप है ॥ क्योंकि जो प्रत्यक्ष से भिन्न होता है वह अव्यक्त होता है
 या तो तिनका भेद कल्पित है । इसी से पूर्ण रूपता आत्मामें संभवती है । इस
 प्रकार प्रत्यगात्मा और ब्रह्म की एकता उपनिषद् मात्र गम्य है ॥

❀ अथ स्वयं प्रकाश चिदात्मा में अज्ञान की विषयता का
 अन्य प्रकार से निरूपण ❀

शंका ॥ उपनिषद् जन्य ज्ञान करके निवृत्तिके योग्य अज्ञान की
 जो विषयता है ॥ यही उपनिषद् पमाण की आत्मामें विषयता है ॥ और
 वह अज्ञान की विषयता स्वप्रकाश चिदात्मामें नहीं संभवती ॥ क्योंकि
 भासमानता तथा अभिमानता का परस्पर एक काल में एक अधिकरण
 में विरोध है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् स्वयं प्रकाश आत्मामें अज्ञान की विषयता
 नहीं संभवती ॥ यह जो लुप्त ने कहा सो सत्य है ॥ शंका ॥ हे सिद्धांतितो अज्ञान
 की विषयता आपने कैसे कथन की ॥ समाधान ॥ हेवादिन् आनंद आदि
 रूपता से आत्मा अज्ञान का विषय है और चिद्रूपता से अज्ञान का विषय नहीं ।
 यदि ऐसे न मानोगे तो अज्ञान की भी अस्ति शिष्ट होगी । इस प्रकार का

उत्तरयद्यपि पूर्वनिरूपण किया भी है तथापि पुनः प्रकारांतरसे इसका उत्तर
 निरूपण करते हैं ॥ हेवादि न एक काल में एक अधिकरण में भासमानता
 और भासमानता का विरोध है । इस पूर्व उक्त दोष से स्वयंप्रकाश आत्मा
 में अज्ञान वास्तव से नहीं है । यह कहते हो अथवा भ्रम से भी नहीं है यह कहते
 हो ॥ अथ मपन्न तो हमको भी स्वीकार है । क्योंकि वास्तव अज्ञान तो आत्मा
 में हम भी नहीं मानते । और द्वितीय पक्ष कहो तो वह नहीं संभवता । क्योंकि
 जैसे मय्याह कालीन जो स्वयंप्रकाशमान आदित्य है । यहां पर आदित्य
 में अंधकार का अत्यंत असंभव दिखलाने के अर्थ स्वयंप्रकाश यह तिसका
 विशेषण कथन किया है । तिस आदित्य में दिन को अंधतारूप दोष वाले
 जो पेचकादि वहे ऐसी कल्पना करते हैं । कि “तमसा वृत्तोऽयं सविता”
 अ० ॥ अंधकार से यह सूर्य आच्छादित है ॥ जैसे दोष के वश से अविद्य
 मान भी रजत शुक्ति में कल्पना करते हैं । तैसे यह कल्पना भी है । तैसे ही
 अत्यंत अज्ञान करके आच्छादित है बुद्धि जिनकी वह मूढ़ जन
 अज्ञान से यह आत्मा आच्छादित है ऐसी कल्पना करते हैं ॥
 और यह जो वादी ने पूर्व कहा था कि दिवांधत्व दोष से उल्लूकादिकों को
 सूर्य का अदर्शन है को ईतम की कल्पना वह सूर्य में नहीं करते ॥ सो यह
 कथन भी असंगत है । क्योंकि “यह सूर्य तमो मय है” इस प्रकार की जो
 तिनकी प्रति ति है तिसका विरोध है ॥ तैसे ही अभियुक्त पुरुषों का कथन है ।

घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं यथामन्यते नि
 ष्प्रमंचाति मूढः । तथा वद्धवद्भातियो मूढदृष्टेः स नित्यो
 पलाग्धिस्वरूपो ह मात्मात्मा ॥ १ ॥

अ० ॥ जैसे मधोकर के आच्छादित हुई है नेत्रों की दृष्टि जिसकी

वह अत्यंत मूढ़ जन स्वयंप्रकाशमान सूर्य में यह सूर्य मेघोंकर
 आच्छादित हुआ प्रकाशशून्य है ऐसे कल्पना करता है । तैसे अज्ञान
 कर आच्छादित हुई है बुद्धि जिसकी तिस अज्ञान को जो आत्मा वृद्ध की
 न्याई भासता है वह नित्य ज्ञान स्वरूप आत्मा में ॥ १ ॥ इति ॥ और
 यदि पूर्वपक्षी ऐसे कहे ॥ आत्मा को अज्ञान कर आवृत्तत्व की कल्पना में
 अज्ञान को ही दोष माने हुए आत्मा श्रय दोष की प्राप्ति होगी ॥ सो यह
 कथन भी समीचीन नहीं है ॥ क्योंकि आवरण को अज्ञान का कार्य होने
 कर अज्ञान जन्य माने हुए भी आत्मा श्रय दोष का अभाव है ॥ और यदि
 आवरण को अज्ञान स्वरूप भी मान लें ॥ तो भी आत्मा श्रय दोष की प्राप्ति
 नहीं होती । क्योंकि जैसे नैयायिकों के मत में ॥ “रूप समवायिघटः”
 “अ०” ॥ रूप के समवाय वाला घट है ॥ इस प्रतीति में जैसे रूप का समवाय
 संबंध घट में भासता है ॥ तैसे समवाय का संबंध भी संबंधियों से भासता है ।
 तहां संयोगादिसंबंध का तो असंभव है । क्योंकि संयोग द्रव्यों का ही होता
 है ॥ और समवाय द्रव्य नहीं है । और समवाय का अन्य समवाय संबंध
 माने हुए अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी । इसलिये यहां समवाय संबंध
 आप ही स्वसंबंध की प्रतीतिका निर्वाहिक है ॥ और जैसे भाट्ट मत में
 “भेदः पटो न” अ० ॥ पट प्रतियोगिक भेद वाला भेद है । इस प्रतीति में
 जैसे घट पट का भेद क भेद है । तैसे अपना और पट का भेद क भी वही भेद है ।
 यहां भी भेदांतर माने हुए अनवस्था दोष की प्राप्ति होती है । इसलिये
 अपना भेद क आप को ही मानने में आत्मा श्रय दोष की प्राप्ति नहीं होती ।
 तैसे अज्ञान की कल्पना में अज्ञान को ही दोष रूप मानने में आत्मा श्रय दोष
 की प्राप्ति नहीं होती । क्योंकि सर्वमत साधारण जो दोष है वह दोष नहीं

होसकता ॥ शंका ॥ आत्मामें वेदांतोंकी प्रवृत्ति आत्माके प्रकाशार्थ है । अथवा अज्ञानकी निवृत्ति अर्थ है । प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि दृश्यपनाहोनेसे घटादिकोंकी न्याई आत्मामें भी मिथ्यात्व प्राप्त होगा ॥ और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि तिस अज्ञान को आत्माकी न्याई अनादि होनेकर निवृत्तिकी अयोग्यता है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् आवरणस्वरूप जो आत्माका अज्ञान है तिसको कल्पित होनेकर निवृत्तिकी योग्यता है । क्योंकि प्रथम ही आत्माके स्वरूप प्रकाशके महात्मसे वास्तवसे निवृत्त होनेकर वह असत् है । तिस असत्की निवृत्तिके अर्थ ही सर्व वेदांतोंकी प्रवृत्ति है । जैसे शुक्तिका स्वरूप विचारनेसे तिस मेरजन वास्तव नहीं । तैसे आत्माके स्वरूपका विचार करनेसे अज्ञान भी तिसमें अत्यंत असत् है और अनादित्व मात्र हेतु निवृत्तिकी अयोग्यताका साधक नहीं । क्योंकि प्रागभावमेव्यभिचार है । तिसमें अनादित्वके द्रुए भी निवृत्तिकी योग्यता है ॥ और यदि ऐसे कहो कि “भाव रूप द्रुआ जो अनादित्व है सो नित्यत्वका साधक है” । यह कथन भी समीचीन नहीं । क्यों कि अज्ञानमें भावरूपता भी अंगीकार नहीं है । जैसे वह असत्से विलक्षण है । तैसे सत्से भी विलक्षणता तिसमें स्वीकार है । इसीसे अज्ञान कल्पित है । यह कथन किया है ॥ शंका ॥ अज्ञानकी निवृत्ति मात्र प्रमाणसे होती है । यह आप क्यों कल्पना करते हो । विषयका प्रकाश ही प्रमाणका फल क्यों न हो ॥ समाधान ॥ प्रकाश स्वरूप आत्माको प्रमाणसे बिना भी स्वप्रकाशता के प्रभावसे ही सिद्ध होनेकर तिसके निमित्त प्रमाणका ग्रहण व्यर्थ है । याते अज्ञानकी निवृत्ति अर्थ ही प्रमाणका ग्रहण बनसकता है । अन्य अर्थ नहीं ॥ शंका ॥ आत्मानिष्ठ अज्ञानकी निवृत्ति करनेवाले वेदांतों

को आत्मविषयतानहीं संभवती ॥ अन्यथा मृद्निष्ठजो घटादि हैं ॥ तिनके निवर्त्तक पापाणादिकों को भी मृत्तिकाविषयता प्राप्त होगी । क्योंकि दोनों में न्यायकी तुल्यता है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् घटादिकों के निवर्त्तक जो पापाणादि हैं । वह कोई मृत्तिका का सृष्टिको नहीं उत्पन्न कर सकते । इसी से तिनको मृद् विषयतानहीं संभवती । और दार्ष्टान्तमे तो आत्मा का सृष्टिके उत्पादक होने के वेदांतों को आत्मविषयता संभवती है ॥ शंका ॥ स्वयं प्रकाश आत्मा में अज्ञानकी निवृत्ति से बिना और कोई फल नहीं ॥ यह पूर्व कथन क्रियासौ अयुक्त है ॥ क्योंकि आत्मा की स्वयं प्रकाशता में प्रमाण का अभाव होने से विवाद है ॥ समाधान ॥

❀ अथ आत्मा की स्वयं प्रकाशता में अनुमान प्रमाण का निरूपण ❀

हेवादिन् आत्मा की स्वयं प्रकाशता में प्रमाण को विद्यमान होने से कोई विवाद नहीं । तै से हो दिखलाते हैं ॥

❀ आत्मा इतरानपेक्ष प्रकाशः ॥ स्वसत्तायां प्रकाशाव्यभिचारित्वात् ॥ संवत्स्वरूप आलोकवद्वा ❀

। अ० ॥ आत्मा इतरकी अपेक्षा से रहित प्रकाश स्वरूप है । स्वसत्ता काल में प्रकाश कर व्याप्त होने से । जो जो स्वसत्ता काल में प्रकाश से अव्यभिचारी है सो सो इतरानपेक्ष प्रकाश स्वरूप है । जैसे ज्ञान है । अथवा आलोक है ॥ इति ॥ यहां ज्ञान स्वप्रकाशवादी के प्रति संवत्स्वरूप दृष्टांत जानना और नैयायिकादिकन के प्रति आलोक रूप दृष्टांत जानना ॥ अथ पूर्वपक्ष ॥

❀ आत्मा की स्वप्रकाशता के साधक अनुमान का खंडन ❀

हेसिद्धांतिनइसअनुमानमेकौनआत्मापक्षहै । क्या?क्षुधापि
पासादिधर्मोंसेरहितआत्मापक्षहै । अथवाकर्त्ताभोक्ताआत्मपक्षहै ॥
प्रथमपक्षतो नही संभवता । क्योंकि नैयायिकके प्रति आश्रयासिद्धि है ।
जिसकारणसे वह नैयायिकक्षुधापिपासादिधर्मरहितआत्माको नही मानता
औरद्वितीयपक्षनही संभवता । क्योंकि वेदांतीके प्रति आश्रयकी असिद्धि
है । जिसकारणसे वेदांती आत्माको कर्त्ता और भोक्ता नही मानता ॥ किंवा
पक्षरूपआत्मा क्या? प्रमाणसिद्ध है अथवा भ्रमसिद्ध है वा स्वप्रकाशरूपता
से सिद्ध है । अथवा असिद्ध स्वभाव है । अंत्यपक्षतो नही संभवता । क्यों
कि असिद्धपदार्थको कहीं भी पक्षपना दे खने में नही आता । और प्रथमपक्ष
भी असंगत है । क्योंकि प्रमाणसिद्धकी स्वप्रकाशता सिद्ध करनेसे अनुमान
मे बाध प्राप्त होता है ॥ अर्थात् प्रमाणका विषयपदार्थ स्वप्रकाश नही होता
औरद्वितीयपक्ष भी नही संभवता । क्योंकि भ्रमसिद्ध आत्माको आभास
रूपता होनेकरतिसंश्रयवाले अनुमानरूप अंगीको भी आभासरूपता प्राप्त
होगी । और तृतीयपक्ष भी नही संभवता । क्योंकि आत्माकी स्वप्रकाशता
तो अवसिद्ध करने लगे हैं ॥ इस अनुमानसे प्रथम भी यदि स्वप्रकाशताकी
सिद्धि मानेतो सिद्धसाधनदोषकी प्राप्ति होगी ॥ किंवा । यह "इतरानपेक्ष
प्रकाशत्व" रूपसाध्य क्या है । अर्थात् इतरकी अपेक्षासे रहित जो प्रकाश
है तत्तत्स्वरूपत्वसाध्य है । अथवा तैसे प्रकाशकी अधिकरणतासाध्य है ।
दोनों पक्षों में प्रकाशको इतरानपेक्षत्व" क्या? उत्पत्तिमें है अर्थात् वह प्रका
श अपनी उत्पत्तिमें दूसरे की अपेक्षा नही करता । अथवा अपने प्रकाशमें
इतरकी अपेक्षा नही करता प्रथमपक्षमें स्वउत्पत्तिमें इतरानपेक्षप्रकाशात्मक
साध्यमाने हुए आत्माको स्वप्रकाशताकी निश्चिन्ता नही हो सकती । क्योंकि

उत्पत्तिमेइतरकीअपेक्षाअवश्यहोतीहै । यातेप्रथमपक्षनहींसंभवता ॥
 औरअपनेप्रकाशमेइतरानपेक्षप्रकाशरूपसाध्यहै । इस द्वितीयपक्षसे
 आलोकरूपदृष्टांतमेसाध्यकीविकलताहै । क्योंकिबाह्यालोकमेंअपने
 प्रकाशमेइतरानपेक्षप्रकाशभास्वरूपहै । औरदृष्टांतरूपआलोकमेभास्वर
 रूपात्मकतानहीं है ॥ जिसकारणसे रूपऔरूपीकी एकताअयोग्य
 है । यातेद्वितीयपक्षभीनहींसंभवना ॥ औरआद्यद्वितीयपक्षमे“इतरान
 पेक्षप्रकाशवत्ता”रूपसाध्यमानेहुएआत्माको स्वप्रकाशताकीसिद्धिनहीं
 होगी । किंतुस्वप्रकाशप्रकाशकीअधिकरणताहीहोगी ॥ तैसेमाने
 हुएसंचित्तरूपदृष्टांतमेसाध्यकीविकलताभीहोगी ॥ क्योंकिस्वप्रकाशरूप
 ज्ञान स्वप्रकाशज्ञानकाअधिकरणनहीं है ॥ यातेद्वितीयपक्षभीअसंगतहै
 और“प्रकाशाऽव्यभिचारित्व”हेतुभीआत्मामेंकैसेवर्तताहै । यहभीकथन
 करनेयोग्यहै । तहांप्रकाशकरजोव्याप्तपनाहैयहीप्रकाशाऽव्यभिचारित्व
 कहनाहोगा । औरव्याप्तिकाभीऐसाआकारकहनाहोगा । किजिसदेशमे
 आत्माहै । तहांप्रकाशहै । अथवाजिसकालमेआत्माहैतिसकालमेप्रकाशहै ।
 सोदोनोंप्रकारकीव्याप्तिनहींसंभवती ॥ क्योंकिआत्माकोव्यापकहोने
 सेकिसीदेशमेवृत्तितानहीं है ॥ औरनित्यहोनेसेकिसीकालमेभीवृत्तिता
 नहीं है । और“स्वसत्तायां” यहजोहेतुकाविशेषणकथनकियाहै ॥ वह
 भीव्यर्थ है ॥ क्योंकिपरप्रकाशघटादिकोंमेप्रकाशाऽव्यभिचारीपनानहीं
 किंतुप्रकाशसेव्यभिचारित्वहै ॥ यातेप्रकाशाऽव्यभिचारित्वमात्रहेतु
 कहनेसेभीतिनमेअतिव्याप्तिनहींहोती । औरयदिऐसेकहो । प्रकाशसे
 रहितजोध्वस्तदीपकहै तिसमेसाधनकीविकलतादूरकरनेकेलिये “स्व
 सत्तायां” यहहेतुकाविशेषणकथनकियाहै । सोयहकथनभीसमीचीन

नहीं । क्योंकि तिसमे हेतु की अश्वत्तिहुए भी विरोध का अभाव होने से साधन को दृष्टांत के किसी एक देश में अश्वत्तिहुए भी सतहेतु पना देखा है । जैसे “पर्वतो वह्निमान् भूमात्” इस अनुमान में महान समान के अनाश्रित धूम को महान सविशेष में अश्वत्ति होने से सतहेतुता स्वीकार है । तैसे इस अनुमान में भी प्रकाशाव्यभिचारित्व हेतु को अश्वत्ति प्रदीप में अश्वत्तिहुए भी तिस से भिन्न आ लोक में विद्यमान होने से साधन की विकलतारूप दोष नहीं प्राप्त होता । याते “स्वसत्तायां” यह हेतु का विशेषण व्यर्थ है । और सुखादिकों में यह हेतु व्यभिचारी भी है । क्योंकि सुखादिकों को स्वसत्ता काल में प्रकाश से अ व्यभिचारी पनाहुए भी इतरानपेक्ष प्रकाश रूप साध्य का अभाव है । और इस अनुमान में “तमो विरुद्धत्व” उपाधि भी है ॥ क्योंकि जहां जहां “इतरानपेक्ष प्रकाशत्व” है तहां तहां “तमो विरुद्धत्व” अर्थात् तम का विरोधी पना है ॥ जैसे प्रदीपादिकों में है ॥ और जहां जहां “स्वसत्ता काल में प्रकाश से अव्यभिचारी पना” है ॥ तहां तहां “तमो विरुद्धत्व नहीं” है । जैसे आत्मा में है । यद्यपि आत्मा में साधन के साथ उपाधि व्यापक है ॥ तथापि आत्मा को तम का साधक होने के तम का विरोधी पना नहीं है ॥ याते पूर्व उक्त हेतु सोपाधिक है ॥ और संवित रूप तथा आलोक रूप दोनों दृष्टांत भी साधन से रहित हैं ॥ क्योंकि देश से अथवा काल से प्रकाश की समानाधिकरणाता संवित् और आलोक में नहीं संभवती ॥ अर्थः यह ॥ संवित् को स्वप्रकाशता के हुए संवित् से अतिरिक्त प्रकाश का अभाव होने के संवित् की प्रकाश के साथ समानाधिकरणाता अयोग्य है ॥ और आ लोक की भी भास्वरूप संज्ञक प्रकाश के साथ समानाधिकरणाता का अभाव है । क्योंकि भास्वरूप तिस आलोक का धर्म है ॥ शंका ॥ यद्यपि आलोक

ग्रौभास्वरूपकागुणगुणीभावहोनेसे देशकृतसमानाधिकरणतानहीं
संभवती । तथापिजिसकालमेंआलोकहैतिसकालमेंप्रकाशहैयहकाल
कृतसमानाधिकरणता आलोकग्रौ प्रकाशकीवनसकतीहै ॥ समा
धान।हेसिद्धांतिकालकृतसमानाधिकरणताभीनहींसंभवती। क्योंकि

❀ क्षणमगुणद्रव्यंतिष्ठति ❀

अ०—एकक्षणमात्रगुणसेरहितद्रव्यस्थितहोताहै॥इसन्यायकाविरोधहै॥
यातेयहस्वप्रकाशताकासाधकअनुमानअसमीचीनहै ॥ इतिपूर्वपक्ष

❀ अथ सिद्धांत रीतिसेतिसअनुमानकामंडन ❀
समाधान॥हेवादिनयहलुम्हाराकथनहीअसमीचीनहै ॥तैसेहीस्पष्टकरके
दिखलातेहैं।जोवादीनेयहकथनकियाकि कौनआत्मापक्षहै।सोअसंगतहै।
क्योंकिआत्मशब्दकेजोयोग्यहैतिसीकोपक्षपनाहै ॥ औरप्रमाणसिद्ध
आत्माहैइत्यादिजोविकल्पपूर्वकहेथेवहभीअसमीचीन हैं।क्योंकिसिद्ध
पदार्थकोहीपक्षपनायुक्तहै ।तिसमेप्रमाणादिविशेषणोंकोअसमर्थहोने
सेतिनकाकथननिष्फलहै ॥ औरजोसाध्यकीविकलतापूर्वउक्त विक-
ल्पसेकथनकीथीसोभीनहींसंभवती॥क्योंकि“प्रकाशमेइतरकी अपेक्षा
सेरहितजोप्रकाश है तत्तत्तुल्यमानेहुएको हीसाध्यपना है ॥ और
ऐसासाध्यदृष्टान्तरूपआलोकमेसाध्यकीजोविकलतापूर्ववादीनेकहीथी
वहभीनहींसंभवती । क्योंकि तहांभी आलोकसे अतिरिक्त प्रकाश
अंगीकारनहींहै । किन्तु आलोकरूपहीप्रकाश है । जैसे

❀ पूरुष्टप्रकाशश्चंद्रः ❀

अ०—उत्कृष्टप्रकाशस्वरूपचंद्रहै । इसकथनमेचंद्रव्यक्तिजोप्राति
पदिकअर्थहैतिससेअर्थांतरप्रकाशपदार्थनहीं है।अर्थात्धातुतथाप्रत्य-

योंदिकोंसेभिन्नार्थवालाजोचंद्रशब्दतिसकोप्रातिपदिककहतेहैंतिसका
 प्रकाशहीअर्थहै। कोईप्रकाशचंद्रव्यक्तिसे भिन्न नहीं। भिन्नार्थमाने
 हुएप्रभृतीउत्तरकी समानाधिकरणातानहींहोगी ॥ क्योंकिप्रधानेतो
 चंद्रकेस्वरूपमात्रविषयकप्रश्रुतियाहै ॥ वक्ताभीयदिचंद्रकेस्वरूपविष-
 यकहीउत्तरनिरूपणकरेतो समानाधिकरणासंभवती है ॥ अन्यथा
 प्रश्रुतथाउत्तरकीव्यधिकरणाहोगी। औरभास्वरूपहीप्रकाशहै।
 आलोकप्रकाशस्वरूपनहीं यहवादीकाकथनभीअसंगतहै॥ क्योंकि
 तहांपरभीरूपतथारूपवालेकातादात्म्यस्वीकारहोनेकरआलोकरूपदृष्टांत
 मेसाध्यकीविकलताकाअभावहै ॥ औररूपतथा रूपवान्का समवाय
 संबंधकथनकरनाअशक्यहै ॥ तिसीसेनेयायिकोंनेभीरूपरूपीकाता
 दात्म्यहीस्वीकारकरनायोग्यहै॥ औरजोश्र्ववादीनेहेतुगतदूषण कहेथे
 वहभीनहींसंभवते॥ क्योंकियावत्प्रकाशकालहेतावत्कालविद्यमानता
 कोहीहेतुकाअर्थपनाहै। औरजोआत्मामेंकालकृतपरिच्छेदकाअभाव
 कहाथा॥ वहभीनहींसंभवता। क्योंकिअज्ञानकेवशसेकल्पितकालकृत
 परिच्छेदबनसकताहै। औरसुखादिकोंमेंयहहेतुव्यभिचारीभीनहीं॥ क्योंकि
 जितनाकालप्रकाशहै उतनाकालसुखादिकोंकीविद्यमानतानहीं ॥
 मुक्तिकालमेंआत्मरूपप्रकाशकेविद्यमानहुएभीदुःखनहीं है यद्यपिसुख
 तिसकालमेंभीहै ॥ तथापिसुखकोआत्मरूपता होनेसेपक्षपनाहै ॥
 तिसमेहेतुकोवृत्तिहुएभी व्यभिचारनहींहोसकता। औरयहआगे
 कथनकरनाजोहेतुहै ॥ उसीसेज्ञातसत्तावालेघटादिकोंमेंहेतुकीअनैकां-
 तिकताअर्थात् व्यभिचारस्तिपरिहारकी। क्योंकिसाक्षिभास्यघटा-
 दिकोंकीयावत्कालसाक्षीहै तावत्कालस्थितिका अनंगीकारहै ॥

और “तमोविरुद्धत्व” जो उपाधिपूर्ववादीने कहा था वह भी नहीं संभवता । क्योंकि साधन के साथ उपाधिव्यापक है । यद्यपि आत्मा तमका साधक है विरोधी नहीं । या तो उपाधिसाधन के साथ अव्यापक है । तथापि स्वरूप से आत्मा तमका विरोधी हुआ भी कल्पना करके तिसका साधक है । और वास्तव तथा काल्पनिक दो रूप एक पदार्थ के नहीं संभवते यह वादी का कथन भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि तैसे माने हुए भ्रम मात्र कालोप होगा ॥ और “इदं रजतम्” इत्यादि भ्रम में एक पदार्थ के दो नो रूप मान होने से भी वह कथन अयुक्त है ॥ और दृष्टांत भी साधन से विकल नहीं ॥ क्योंकि यावत् प्रकाश काल है ॥ तावत् विद्यमान स्वरूप हेतु का संवित् और आलोक इन दोनों में सद्भाव है ॥ संवित् अपरोक्ष प्रतीत होती है और पुनः नहीं है यह नहीं संभवता ॥ और आलोक भासता है और पुनः नहीं है ॥ यह कथन भी अयुक्त है । और पूर्व यह जो कथन किया था कि आलोक में जो भास्वरूप है वह प्रकाश है ॥ और तिस प्रकाश की यावत् काल स्थिति होती है । तावत् काल आलोक की स्थिति नहीं है ॥ क्योंकि निराश्रय हुआ गुण एक क्षण स्थित होता है ॥ यह स्वीकार है । जिस कारण से गुण के नाश को गुण नाश के प्रतिकारणता है । तिस कारण से आश्रय से बिना एक क्षण गुण की स्थिति बन सकती है ॥ सो यह कथन भी समीचीन नहीं ॥ क्योंकि उपादान के नाश को ही कार्य के नाश प्रतिकारणता है ॥ और यहां पर आलोक में भास्वरूप की उपादान कारणता नहीं । क्योंकि वह दोनों एक काल में उत्पन्न हुए हैं ॥ इसी कारण से एक काल में उत्पन्न हुए तिन दोनों का गौ के वाम तथा दक्षिण शृंग की न्याई उपादान और उपादेय भाव अंगीकार नहीं है ॥ शंका ॥ भास्वरूप के प्रति आलोक को उपादान कारण

नमानेंतो कौनतिसका उपादानकारणहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्
 आलोककेअवयवही तिसरूपकाभीउपादानकारणहैं ॥ यद्यपिऐसे
 मानेहुए “आलोकरूपवानहैं” यहप्रतीतिकैसेहोगी। तथापिउपादानके
 रूपकरकेहीकार्यमेरूपवत्ताकी प्रतीतिसंभवतीहै ॥ क्योंकिउपादानऔं
 कार्यकातादात्म्यहै ॥ इसप्रकारस्वप्रकाशताकासाधकअनुमाननिर्दोष
 है ॥ इति ॥ शंका ॥ इसअनुमानकीविषयताआत्मामेहै। वानहीं।
 यदिअंत्यपक्षकहो तोकैसेआत्माकीस्वप्रकाशतासिद्धहोगी ॥ क्योंकि
 तिसमेप्रमाणकाअभावहै ॥ औरयदिप्रथमपक्षकहोतोभीस्वप्रकाशता
 सिद्धनहींहोसकती। क्योंकिअनुमितिज्ञानकीविषयता होनेसेघटादिकों
 केतुल्यदृश्यपनाहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन् यदिइसअनुमिति ज्ञानकर
 भास्यताआत्मामेंमानेतो स्वप्रकाशताकीहानिहो। परन्तुहमअनुमिति
 ज्ञानकरभास्यताआत्मामेंनहींमानते। किंतुइसअनुमितिकरनिवृत्तिकेयोग्य
 अज्ञानविषयताही इसअनुमितिकी विषयताआत्मामेंमानते हैं। याते
 पूर्वउक्तदोषनहींप्राप्तहोता। इसप्रकारनिर्दोषअनुमानसे सिद्धहुईजो
 आत्माकीस्वप्रकाशता अवतिसकोउपसंहारकरतेहैं। तिसपूर्वउक्तप्रकार
 सेआत्मास्वरूपप्रकाशहै। यहअर्थसिद्धहुआ। इसीउक्तअर्थमें “अदृष्टद्वयम्”
 इत्यादिप्रथमकारिकाके पूर्वार्द्धमेंस्थित “ज्योतिः” विशेषणकाप्रवेशकरते
 हैं। इसीपूर्वउक्तसमग्रअभिप्रायकोलेकर मूलप्रथमकारिकामें “ज्योतिः”
 यहआत्माकाविशेषण कथनकियाहै ॥ शंका ॥ यहांज्योतिपदसे परे
 “मनुष्य” मत्पयकालोपहोनेसेअथवा “शुक्लः पटः” इसमयोगकीन्याई
 उपचारकअभेदहोनेसे “ज्योतिरात्मानम्” इससमानाधिकरणात्ताकामयोग
 है। कोईवास्तवअभेदसे यहमयोगनहीं। समाधान। जैसेलवणपिंडलवण

एकरसहोताहै। तेसेविज्ञानएकरसस्वभावहोनेकरयहआत्मास्वयंज्योतिस्वरूपहै। अर्थयहप्रथमप्रकाशस्वरूपहोनेसेऔरतमकाविसेधीहोने से विज्ञानहीज्योतिपदकावाच्यहैऔरविज्ञानस्वरूपहीआत्माहै। क्योंकिश्रुतिमेंविज्ञानधनहीआत्माकास्वरूपश्रवणहोताहैइसलियेपूर्वोक्तमतुष्कल्पनांथौऔपचारिकअभेदव्यवहारयहदोनोनोंहीसंभवतेक्योंकियहदोनोभेद निश्चयपूर्वकहोतेहैंऔरप्रकरणमेंभेद निश्चयकाअभावहै। और

॥ घटज्ञानयोर्संबंधः आत्मनिष्ठः ज्ञान
निष्ठत्वात् सत्तावत् ॥

अ० । घटऔरज्ञानकाजोसंबंधहै वहआत्मनिष्ठहै। ज्ञाननिष्ठहोनेसेजोज्ञाननिष्ठहै वहआत्मनिष्ठहै। जैसेसत्ताजातिहै॥इति॥ यहमहाविद्याअनुमानहै। दृष्टान्तमेंनिर्णीतव्याप्तिकेवलसेपक्षमेंवादीकोअनभिमतसाध्यके सिद्धकरनेवालाअनुमान महाविद्याअनुमानकहाजाताहै॥ इति ॥

इसअनुमानसेभी विज्ञानस्वरूपहीआत्माहै। तेसेमानेहुएविज्ञानैकरस स्वभावहोनेकर स्वयंज्योतिस्वरूपही आत्माहै। तिसआत्माकास्वरूपश्रुतिसे निश्चयकरके अवतिसमेंयुक्तिनिरूपणकरतेहैं यहपूर्वश्लोकसेअन्वयजानलेना॥शंका॥ यदिस्वयंज्योतिस्वरूपआत्माहै। तोतिसस्वप्रकाशआत्मामें अनुमानकाकथनअनुचितहै। क्योंकिवहआत्माउपनिषद्मात्रकाविषयहै। अन्यप्रमाणकाविषयनहीं॥समाधान॥ हेवादिअनुमानसे ब्रह्मात्माकी संभावनामात्रकेहुए आगे कथनकीहुईश्रुतिहीतिसमें प्रमाणहै॥ सोश्रुतियहहै॥

॥ अत्रायंपुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति ॥

(बृ० उ० अ० ६ ब्रा० १॥६)

अ०—इसस्वप्नअवस्थामें आत्माभानहोता है यहसर्वकोस्वीकार है । वहभानअर्थात्प्रकाश प्रथमबाह्यइन्द्रियों करके नहींसंभवता । क्योंकिबाह्यइन्द्रियोंकीतिसआत्माविषयक प्रवृत्तिनहींहोती । तथास्वप्न कालमेंनेत्रादिकइन्द्रिय स्वस्वव्यापारसे उपराम है । औरमनसेभीतिस आत्माकाप्रकाशनहींहोता । क्योंकितिसकारथादिरूपविषयाकारपरिणाम हुआहै । औरबाह्यसूर्यादि ज्योतियोंकाभीस्वप्नकालमें अभावहै । याते परिशेषसे स्वयंज्योतिस्वरूपतासेही आत्माकाभानहोता है । यहअर्थ सिद्धहुआ ॥ इति ॥

अथपुनः शंकासमाधानपूर्वकआत्माकीस्वयंज्योति रूपताकाप्रकारांतरसेनिरूपण । अथपूर्वपक्ष ।

हेसिद्धान्तिपूर्वउक्तश्रुति तथाअनुमानदोनोंही आत्माकीस्वप्रकाशतासिद्धकरनेकोसमर्थनहीं हैं । क्योंकिपूर्वउक्तअनुमानकोसत्यति प्रकृताहै । तथाअनुमानका विरोधहोनेसेश्रुतिका पूर्वोक्तअर्थयोग्यनहीं है । तैसेहीदिखलाते हैं ।

आत्मानस्वप्रकाशः ज्ञातत्वात्अनात्मवत् ॥१॥

तथाआत्मानस्वप्रकाशः अज्ञातत्वात् घटवत् ॥२॥

अ० । आत्मास्वप्रकाशरूपनहींहै । ज्ञानकाविषयहोनेसे जोजो ज्ञानकाविषयहोताहै सोसोस्वप्रकाशनहींहोता । जैसेअनात्माहै । (१) औरआत्मास्व प्रकाशस्वरूपनहीं है अज्ञानकाविषयहोनेसेजोजो अज्ञान काविषयहोताहै । सोसोस्वप्रकाशनहींहोता । जेसेघटहै ॥ २ ॥ इन

दोनों अनुमानों से पूर्व उक्त अनुमान दुष्ट है । तथा इनके साथ विरोध होने पर श्रुति अयोग्य अर्थ को कैसे कथन करेगी या तेवह स्वार्थ में प्रमाण नहीं ।

॥ शंका ॥ हेवादिन् दोनो प्रतिपक्षाऽनुमानों में पक्षरूप जो आत्मा है वह क्या ? विशिष्ट है अथवा शुद्ध है ॥ प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि स्थापना अनुमान में शुद्ध आत्मा को हमने पक्ष किया है ॥ विशिष्ट को नहीं ॥ तिस विशिष्ट की स्वप्रकाशता हम भी नहीं मानते ॥ और द्वितीय पक्ष कहो तो दोनों हेतुस्वरूप से ही तिस आत्मा में नहीं वर्तते ॥ क्योंकि तिस आत्मा को ज्ञात तथा ज्ञात पदार्थों से विलक्षणता श्रुति ने कही है ॥ समाधान ॥ हे सिद्धांतिन् यह दोनों हेतु अनुभव प्रमाण करके आत्मा में सिद्ध हैं सो दिखलाते हैं ॥ कवीतो (आत्मानमहं जानामि) अ० ॥ आत्मा को मैं जानता हूँ ॥ ऐसा अनुभव होता है और कवी (आत्मानमहं न जानामि) अ० ॥ आत्मा को मैं नहीं जानता हूँ ॥ ऐसा अनुभव होता है ॥ इस प्रकार इन दोनों अनुभवों के सिद्ध जो आत्मा में ज्ञातता तथा ज्ञात तारूप हेतु हैं तिन के आत्मा में स्वयं ज्योतिष नानहीं संभवता ॥ शंका ॥ हेवादिन् “आत्मानमहं जानामि” इस अनुभव के आत्मा में ज्ञातता सिद्ध भी है परंतु वह स्वप्रकाशता के निवारण करने में समर्थ नहीं ॥ क्योंकि ज्ञान करके निवृत्ति के योग्य जो अज्ञान की विषयता रूप ज्ञातता है तिसका स्वप्रकाशता के साथ विरोध नहीं ॥ समाधान ॥ तिस ज्ञातता का जैसे विरोध है सो दिखलाते हैं । यदि “आत्मानमहं जानामि” इस पूर्व उक्त अनुभव केवल से ज्ञातत्व आत्मा में स्वीकार है तो ज्ञान की विषयता अर्थात् ज्ञान का कर्म आत्मा है । यह स्वीकार किया चाहिये । तो अनात्मा घटादिकों की न्याई आत्मा में

स्वप्रकाशताकाअसंभवहै। यहांयहतात्पर्यहै। “आत्मानमहंजानामि”
 और “घटमहंजानामि” इसप्रकारकेअनुभवसे दोनोंमेंज्ञाततातुल्यही
 सर्वकोपूतीतहोतीहै। औरवेदांतीकेमतमेंघटविषयकज्ञान करकेनिवृत्तिके
 योग्यअज्ञानकीविषयतारूप ज्ञाततानहींसंभवती। क्योंकिजडघटादि
 पदार्थोंमेंअज्ञानकी विषयतातुमको स्वीकारनहीं। और तिसकोज्ञान
 भास्यत्वमाननेमें विरोधकामीअभाव है। औरघटादिकोंमेंज्ञानकी
 विषयताअन्यप्रकारकीहै। औरआत्मामेंज्ञानकीविषयताअन्यप्रकारकी
 है। यहकथनभीअयुक्तहै। क्योंकिज्ञातशब्दकोअनेक अर्थत्वप्राप्तहोगा
 औरअनेकअर्थत्वन्यायनहीं किंतुअन्यायहै। तिसीसेज्ञानभास्यत्वरूप
 ज्ञातताहीदोनोंमें युक्तहै ॥शंका॥ ज्ञानभास्यत्वरूपज्ञातताआत्मामेंहो
 तिससे स्वप्रकाशताकी क्या?हानीहै ॥समाधान॥ हेसिद्धांतित्तैसे
 मानेहुएपूर्वकथनकिया जोस्वप्रकाशत्वकी निवृत्तिकासाधकअनुमान
 वहभलीप्रकारसेस्थितहुआ ॥ तिससेस्वप्रकाशत्वकीहानीहुई ॥
 शंका ॥ ज्ञानभास्यत्वरूपज्ञानकीकर्मताभीआत्मामेंहोऔरस्वप्रकाशता
 भीहो ऐसामाननेमेक्यादोषहै ॥ समाधान ॥ स्वप्रकाशताऔरज्ञान
 भास्यताएकअधिकरणमेनहींदेखेजाते ॥ इसीसेस्वप्रकाशताकेहुए
 ज्ञानकर्मताकाअसंभवहै ॥ क्योंकिउसीकोस्वप्रकाशकहतेहैं ॥ जो
 किसीरूपकरकेकिसीभीज्ञानकीकिसीकालमेकर्मताकोनहीं सहोता॥
 यदिऐसानमानें किंतुज्ञानके विषयकोहीस्वयंप्रकाशमाने ॥ तोसां
 केतिकहीस्वप्रकाशतासिद्धहोगी ॥ कोईयुक्तिसिद्धनहीं ॥ याते
 आत्मास्वप्रकाशनहीं यहअर्थसिद्धहुआ ॥ शंका ॥ हेवादिन् “अप्र
 मेयं” अ० ॥ यहआत्माज्ञानकाविषयनहीं ॥ इसश्रुतिसेतिसकोज्ञान

विषयत्वका अभाव है ॥ तुम ज्ञान का कर्म तिसको कैसे कहते हो ॥ समाधान ॥ यद्यपि श्रुति का विरोध होने से “आत्मानमहं जानामि” इस अनुभव को तो अनात्म विषय कत्वरूपता से भी संभव होने के अन्तर्गत इसको नहीं है ॥ तथापि ॥

❀ अनीशया शोचति मुह्यमानः ❀ अ० ॥ (४) पं० ७ ॥ अ० ७३०

इस श्रुति से और “मामहं न जानामि” इस अनुभव से यदि अज्ञातता ही आत्मा में स्वीकार हो ॥ तो भी स्वयं ज्योतिष ने की हानि नहीं है ॥ शंका ॥ अज्ञातता भी आत्मा में स्वीकार हो ॥ परन्तु वह स्वयं ज्योतिष ने का विरोध नहीं ॥ क्योंकि अस्वप्रकाश घटादिकों में जड़ता होने से स्वतः ही आवृत्त स्वभावता है ॥ इसलिये अज्ञान की विषयतारूप अज्ञातता का तिनमें अभाव है ॥ और आत्मा को स्वप्रकाश होने से अज्ञान विषयतारूप अज्ञातता तिसमें बन सकती है ॥ समाधान ॥ हे सिद्धांतित् जैसे “मामहं न जानामि” यह अनुभव है तैसे ही “घटमहं न जानामि” यह अनुभव है ॥ अनुभव की तुल्यता से घटादिकों में अज्ञातता अवश्य स्वीकार करने योग्य है ॥ और घटादिकों में अस्वप्रकाशता हम दोनों को स्वीकार है ॥ तैसे माने हुए जहां अज्ञातता है तहां अस्वप्रकाशता है ॥ इस प्रकार अज्ञातता अस्वप्रकाशता के व्यापक है ॥ वह आत्मा में देखी हुई तिसमें स्वप्रकाशता की हानि को सिद्ध करती है ॥ शंका ॥ हे वादि नूतन की अपेक्षा से रहित जो अपनी भासमानता है इसी कानामस्वप्रकाशता है ॥ और अभासमानता कानाम अज्ञातता है ॥ सो अभासमानता भासमानता का विरोधी नहीं ॥ क्योंकि घटादिकों में किसी काल में भासमानता भी देखी जाती

है ॥ समाधान ॥ यद्यपि घटादिकों में अभासमानता औ भासमानता दोनों हैं । तथापि वह एक काल में नहीं हैं । क्योंकि भासमानता को कार्य होनेकर कदाचित् कल्पना है । और आत्मा में तो दोनों एक काल में प्राप्त हैं । क्योंकि स्वप्रकाशता आत्मा का तुम स्वरूप मानते हो ॥ तिसको अनादि भाव होनेकर नित्यता है । और अज्ञान को भी अनादि होनेकर कार्यता का अभाव है ॥ इस प्रकार दोनों को अनादिरूपता से नित्य होनेकर एक काल में दोनों विरुद्ध धर्म आत्मा में नहीं संभवते । और अज्ञातता तो हम दोनों को स्वीकार है । तिसी कारण से आत्मा में अज्ञान काल में “भाति” अ० ॥ भान होता है इस प्रकार के स्वरूप वाली भासमानता का विरोध होने से कोई भी तिसके अनुभव करने को समर्थ नहीं हो सकता । तिस विरोध को ही स्पष्ट करते हैं । जिस काल में आत्मा भान होता है । तिसी काल में (न भाति) अ० । नहीं भान होता । यह अनुभव नहीं हो सकता । और जिस काल में आत्मा भान नहीं होता । तिसी काल में (भाति) यह अनुभव भी नहीं हो सकता । इस प्रकार पूर्व उक्त ज्ञातता तथा अज्ञातता रूप हेतु को आत्मा में वृत्ति होने कर किस प्रकार तिसका स्वयं ज्योतिषना सिद्ध हो सकता है । किंतु किसी प्रकार भी नहीं । इति पूर्व पक्ष । अथासिद्धांत समाधान । हेवादिन पूर्व कथन किये हुए अनुमान के साथ विरोध होने से स्वप्रकाशता के साधक अनुमान में सत्प्रतिपक्षपना और श्रुतिके अर्थ में अयोग्यता की प्राप्ति रूप दोष जो तुम ने पूर्व कहा सो नहीं संभवता । क्योंकि अनुमान आभासरूप है । यही स्पष्ट करते हैं । शत तथा अज्ञात पदार्थ से विलक्षण को ही आत्मता है ॥ इसलिये पक्षभूत आत्मा में शतत्व तथा अज्ञातत्व यह दोनों हेतु नहीं वर्तते ॥ यद्यपि ॥

❀ परस्परविरोधेनप्रकारांतरस्थितिः ❀

इसन्यायसे शतथौ शतपदार्थोंसे आत्मा की विलक्षणता कैसे हो सकती है।
तथापितैसा आत्मा का स्वरूप श्रुतिमें कथन किया है ॥

❀ अन्यदेवतद्विदिता दथोविदितादधि ॥ ❀ उ० के० खं. १. ३

अ० ॥ वह आत्मा (विदितात्) शतपदार्थोंसे और (अविदितात्) शतपदार्थोंसे (अधि) विलक्षण है। इस श्रुतिके साथ विरोध होनेकर पूर्व उक्त न्याय को आभास पना है ॥ शंका ॥ प्रमाणसे बिना किया हुआ जो न्याय है वह आभासरूपता को प्राप्त हो परन्तु यह न्याय तो “मामहं जानामि” इत्यादि प्रमाण की सहकारिता वाला है। याते यह न्याय किस प्रकार आभासरूप हो सकता है ॥ अन्यथा इस पूर्व उक्त अनुभव की क्या गति होगी ॥ समाधान ॥ हेवादिन् इस अनुभव को विशिष्ट विषय कहनेसे अनात्मगोचरता ही है कोई निरूपण करने योग्य आत्मा की ज्ञातता को यह अनुभवन ही सिद्ध कर सकता ॥ शंका ॥ यह अनुभव किस विशिष्ट आत्मा को विषय करता है। क्या? अज्ञान विशिष्ट को विषय करता है। अथवा अहंकार विशिष्ट को विषय करता है। प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि “आत्मानमहं जानामि” इस अनुभव में अज्ञान का स्फुरण नहीं होता ॥ और द्वितीय पक्ष भी असंगत है ॥ क्योंकि “आत्मानमहं जानामि” इस अनुभव में अहंशब्द का अर्थ जो अहंकार है वह कर्त्तारूप कर पृथक् ही भान होता है। याते आत्मानमहं जानामि” यह अनुभव विशिष्ट विषयक नहीं किंतु निरूपणीय आत्मा विषयक ही है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् इस अनुभव में जातिगुणक्रियासे रहित तथा अज्ञान यौदुःखसे भिन्न वस्तु का स्वरूप मात्र भान होता है। ऐसा अनुभव तो होता नहीं जिसकर आत्मा को ज्ञान का कर्म

पनाहो ॥ किन्तु उपाधिविशिष्टकोही ज्ञानकार्कर्मपनाहै। औरतिसको ज्ञानकार्कर्ममानेहुएभी कोईविरोधनहीं ॥ यहांयहअर्थजाननेयोग्यहै “आत्मानमहंजानामि” यहअनुभवनिर्विकल्पकतोहैनहीं ॥ क्योंकि “किंचिद् इदं” ऐसाहीनिर्विकल्पककाआकारशब्दसेकथनकियाजाता है ॥ औरयहांकिंचिदाकारसे कथनतोहैनहींकिंतु “आत्मानं” इस प्रकारआत्मशब्दसेज्ञानकेआकारकाकथनहै ॥ यातेयहज्ञानसविकल्पक है ॥ औरयहज्ञाननैयायिकोंनेमानसहीस्वीकारकियाहै ॥ औरमनभी इंद्रियहै ॥ तिसकीद्रव्यमेंप्रवृत्तिगुणकेसंबंधसेहीकहनेयोग्यहै ॥ और गुणभीआत्मासेदुःखादिकही कहनेयोग्यहैं। औरदुःखादिकोंकासंबंध आत्मामेंनैयायिकजैसेस्वतःमानतेहैं ॥ तैसेहमारेमनमेंनहीं है ॥ किंतु दुःखादिकोंकेउपादानकारण अंतस्करणकेसाथतादात्म्यसंबंधसेहै ॥ औरतिसअंतःकरणकातादात्म्यअज्ञानसेविनानहींसंभवता॥तैसेमानेहुए “आत्मानमहंजानामि” इसअनुभवकेबलसेहीअज्ञानतथादुःखादिविशिष्टआत्मकाहीमानहोताहै। शुद्धस्वरूपकाभाननहीं। अन्यथायहज्ञाननिर्विकल्पकहोगा॥ तिसकारणसेयहअर्थसिद्धहुआ॥ किंविशिष्ट आत्माही ज्ञानकार्कर्महैशुद्धआत्मानहीं॥ शंका॥ यद्यपितैसेअनुभवकाविषयविशिष्ट हैतथापितिसविशिष्टस्वरूपकोभीज्ञानकार्कर्मपनानहींसंभवता॥ क्योंकि वहभीआत्माहै। जैसेकुंडलवालादेवदत्तदेवदत्तनहींहै ॥ ऐसानहींहो सकता। किंतुकुंडलविशिष्टहुआभीदेवदत्तदेवदत्तहीरहताहै। तैसेविशिष्ट आत्माभीआत्माही है अन्यनहीं॥ समाधान॥ हेवादिभूतिसविशिष्टको स्वप्रकाशमानेहुएअज्ञानादिविशेषणकोभीस्वप्रकाशताकी प्राप्तिहोगी क्योंकिविशिष्टवृत्तिधर्मकोविशेषणमेंवर्तनेकानियमहै। तिसकारणसे

विशिष्टज्ञानकाकर्म है। इस अर्थमें विरोधका अभाव होनेसे वह स्वप्रकाश नहीं ॥ शंका ॥ अज्ञानादिविशेषण को भी देहादिकों की अपेक्षासे अंतरता है तिसीसे तिसको आत्मपना होनेसे स्वप्रकाशता का भी संभव है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् अंतरता आत्मतामें प्रयोजक नहीं। किंतु जडता से विरुद्ध चेतनता आत्मतामें प्रयोजक है। और अज्ञानादिविशेषण को चेतनरूपता है नहीं क्योंकि वह चेतनसे विरुद्ध जडरूप है। इसलिये अज्ञानादिविशेषण को आत्मरूपता नहीं संभवती। और अनात्मता होनेसे तिसको स्वप्रकाशता भी नहीं है। या ते शुद्ध आत्मा को ही स्वप्रकाशता का अंगीकार है। अज्ञानादिविशिष्ट को नहीं ॥ शंका ॥ गनका विषय होनेसे विशिष्ट को स्वप्रकाशता माने हुए विशेष्य भाग को भी गनका कर्म पना होगा ॥ तिससे आत्म अंशमें भी प्रकाशता की प्राप्ति होगी ॥ समाधान ॥ (सविशेषणोहि) अ० ॥ विशेषण सहित में जो बुद्धि होती है वह विशेषण अंश में संभवती हुई विशेष्य भाग में पर्यवसान को प्राप्त होती है। इस न्यायसे विशेषणी भूत अज्ञानादिका तिरस्कार कर के शुद्ध जो विशेष्य मात्र है तिसको आत्मा होनेसे स्वप्रकाशता है। विशिष्ट को नहीं। क्योंकि तिसको कल्पित होने का अनात्मता है ॥ शंका ॥ यद्यपि ज्ञातता का जो अनुभव है ॥ वह विशिष्ट को विषय करता है। शुद्ध को ज्ञान की कर्मता का वह संपादक नहीं ॥ या ते पूर्व अनुमानमें स्वरूपाऽसिद्धिरूप दोषस्थित है ॥ तथापि अज्ञातता का जो अनुभव है वह विशिष्ट विषयक नहीं संभवता ॥ क्योंकि विशेषण रूप अज्ञान को अज्ञान विशिष्ट का प्रयोजक होनेकर अज्ञान विशिष्ट को अज्ञान विषयत्व का अभाव है ॥ यदि अज्ञान विशिष्ट को भी अज्ञात मानें तो आत्मा अय दोष की प्राप्ति होगी ॥

क्योंकि अज्ञानके विषयकोही यज्ञात कहते हैं ॥ स्वविशिष्टको विषय करता हुआ अज्ञान स्वको भी विषय ग्रहण करेगा ॥ और अपनी विषयतामें आपकोही कारण माननेमें यात्मा श्रयदोषकी प्राप्ति स्पष्टही है ॥ इस युक्ति से शुद्धात्मा मेही अज्ञातता है ॥ और—

अनीशया शोचति मुह्यमानः । नीहारेण प्रवृत्तः ॥

अ०—यविद्याकर्मोहित हुआ यथा अज्ञान आच्छादित हुआ शोक करता है ॥ और (नीहारेण) अज्ञान करके (प्रवृत्तः) आच्छादित है ॥ इत्यादि श्रुतिसे भी शुद्धात्मा ही अज्ञानका विषय है । तिस कारणसे सो पूर्व कथन किया अज्ञातत्व हेतु कैमैस्वरूपाऽसिद्ध हो सकता है । किंतु नहीं हो सकता ॥ समाधान ॥ हेवादिन् “मामहं न जानामि” यह अनुभव भी आत्माकी स्वप्रकाशताका ही साधक है । कोई स्वप्रकाशताका विरोधी नहीं । यद्यपि यह अनुभव अज्ञातताको शुद्धात्मामें स्थापन करता है । तथापि स्वप्रकाशतासे विना यात्मा में अज्ञातता बोधन करने को समर्थ नहीं । इसलिए अज्ञातता स्वप्रकाशताका विरोधी नहीं ॥ किंतु तिसका साधक है । याते अज्ञातत्व हेतु आत्मामें स्वप्रकाशताका साधक नहीं ॥ शंका ॥ स्वप्रकाशताका अभाव जो अभ्यासमानता है तिसको अज्ञातता कहते हैं ॥ तिसका ग्राहक जो “आत्मानमहं न जानामि” यह अनुभव है वह स्वप्रकाशताका साधक कैसे है । क्योंकि जो जिसका ग्राहक होता है । वह तिसका ही साधक होता है । यदि ऐसा न मानें तो “अयं घटः” यह ज्ञान जो घटका ग्राहक है तिसको पटकी माधकता प्राप्त होनेसे अति प्रमंग प्राप्त होगा ॥ समाधान ॥ जिस प्रकार यह अनुभव स्वप्रकाशताका साधक है सो दिखलाते हैं । यह अनुभव यात्मा विषयक अज्ञानको विषय करता है ।

और यह विशिष्ट ज्ञान है ॥ तिसमें विशेष्य अज्ञातत्व है ॥ सो विषय के आधीन निरूपण करने योग्य है ॥ और विषय आत्मा ही है । सो अज्ञातत्व का व्यावर्तक होने पर विशेषण है ॥ इस कारण से आत्मा भी विशिष्ट ज्ञान में भान होता है । क्योंकि विशिष्ट ज्ञान को विशेषण विषयत्व का नियम है ॥ अर्थात् विशिष्ट ज्ञान विशेषण को अवश्य विषय करता है ॥ याते इस अनुभव में अज्ञान की न्याई आत्मा का भान अवश्य कहने योग्य है ॥ शंका ॥ यह अनुभव आत्मा विषयक अज्ञातता को बोधन करता हुआ भी आत्मा को विषय नहीं करता ॥ क्योंकि आत्मा तिस अनुभव में उपलब्ध है विशेषण नहीं ॥ समाधान ॥ हेवादिन् जैसे “काकवाला देवदत्त का गृह है ॥ इस कथन में किंचित् मात्र अति शयता जो तृणों का ऊर्द्ध मुखत्वरूप होना सो देवदत्त के ग्रह का निश्चायक है तिस को द्वार करके ही काक देवदत्त के ग्रह का व्यावर्तक हुआ तहां उपलक्षण अंगीकार किया है । और यहां अज्ञान विषयक आत्मा से उत्पन्न हुआ कोई अति शयता रूप घटादि विषय से व्यावर्तक धर्म नहीं है । क्योंकि प्रतीत नहीं होता । इस प्रकार और किसी धर्म को द्वार पने का असंभव होने से आत्मा ही अज्ञान का व्यावर्तक हुआ अज्ञान में विशेषण कहने योग्य है ॥ यदि आत्मा को विशेषण नहीं मानोगे । तो अज्ञान को आत्मविषयत्व नहीं सिद्ध होगा । अन्यथा “न जानामि” इतना ही तिस अनुभव का आकार होगा ॥ शंका ॥ आत्मरूप विशेषण युक्त अज्ञातता को प्रमाण प्रकाश करो । तथापि उससे आत्मा की स्वप्रकाशता नहीं सिद्ध हो सकती ॥ क्योंकि विशेषण तथा विशेष्य के साथ इन्द्रिय के सन्निकर्ष को ही विशिष्ट भान की कारणता है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् विशेषण के साथ इन्द्रिय के

संबंधकोविशिष्टज्ञानकेप्रति कारणतानहीं है क्योंकिभूततथाभावी विशेषणोंमें इंद्रियकेसंबंधकाअभावहै । तिसीकारणसेविशेषणकाज्ञान हीनियमसेविशिष्टज्ञानमें कारणहै ॥ इन्द्रियसंबंधनहीं । इसीसे “आत्मानमहंनजानामि” यहअनुभव स्वप्रकाशरूपतासे भासमानआत्मा कोविषयकरकेतिसमें अज्ञानस्वरूपआवरणकोविषयकरताहै । तात्पर्य यहहै ॥ विशेषणरूपआत्माकीइसप्रत्ययमेंजो भासमानताहै । वह प्रमाणसेहै । अथवाभ्रमसेहै । अथवास्वप्रकाशरूपतासेहै । यहविचारणीयहै । तिनमेंप्रथमपक्षतोनोंसंभवता । क्योंकिप्रमाणकी प्रवृत्तिहुएतिसमें अज्ञातताकाअसंभवहोनेसे विरोधहै । औरद्वितीयपक्षभीअसंगतहै । क्योंकिआत्माकोकल्पितपनाहोगा ॥ भ्रमसिद्धपदार्थकोकल्पितपना नियमसेहोताहै ॥ यातेपरिशेषसेस्वप्रकाशरूपतासेही आत्माकीभासमानता कहने योग्यहै ॥ शंका भासमानता का अभाव अज्ञातता है । सो भासमानता के हुए कैसे आत्मा में संभवैगी । किंतु नहीं संभवती ॥ समाधान ॥ हेवादिन् अज्ञानका आवरक स्वभाव श्रुतिमेंप्रसिद्ध है । क्योंकि (नीहारेणप्रावृत्तः) इसश्रुतिमेंअज्ञानकोआवरकपनाकहा है ॥ औरआवरकस्वभावभावरूपवस्त्रादिकोंकाहीदेखा है ॥ अभावकोआवरकपनाकहीदिखानहीं ॥ तिससेभासमानआत्मा मेंभीअज्ञाततावनसकती है ॥ क्योंकिभावथौअभावकाहीएकअधिकरण मेंविरोधहोताहै ॥ औरभावपदार्थोंकातो रूपरसकीन्याईएकअधिकरणमेंस्थितिहुएभीविरोधनहींहोता ॥ शंका ॥ इसप्रकारमानेहुएषटादिकोंमेंभीअज्ञातताथौभासमानतादोनोंहुएचाहिये ॥ तिनमेंभीआत्माकीन्याईविरोधनहींहोगा ॥ समाधान ॥ हेवादिन्अनात्माघटादि

कौमें भासमानता प्रमाणसे कहने योग्य है क्योंकि तिनको स्वप्रकाश स्वरूपता का अभाव है ॥ और प्रमाण की प्रवृत्ति दुष्ट तिसका विरोधिनी अज्ञातता तहां नहीं रह सकती ॥ तिससे भासमानता और अभासमानता यह दोनों परप्रकाश घटादिकों में ही विरोध को प्राप्त होते हैं ॥ स्वप्रकाश या आविषयक एक काल में भासमानता या अभासमानता विरोध को नहीं प्राप्त होते ॥ इस प्रकार “आत्मानमहं न जानामि” यह जो आत्म में अज्ञातता का साधक प्रमाण है ॥ तिसकेवलसे ही आत्मा की स्वप्रकाशता सिद्ध हुई ॥ शंका ॥ अज्ञातत्व का साधक जो प्रमाण है ॥ वह अज्ञान के विषय में स्वप्रकाशता का साधक नहीं ॥ क्योंकि “घटमहं न जानामि” इस प्रकार का अनुभव अनात्मा घटादिकों में भी अज्ञातत्व का साधक है ॥ तिनमें भी स्वप्रकाशता की प्राप्ति हुई चाहिये ॥ और तिनमें स्वप्रकाशता देखने में नहीं आती ॥ याते पूर्व उक्त अनुभव आत्मा की स्वप्रकाशता का साधक नहीं ॥ समाधान ॥ हेवादिन् “घटमहं न जानामि” यह अनुभव अथवा आत्मा की न्याई घटादिकों में समान ही तुमने माना है ॥ याते घटादि अज्ञान में विशेषण है यह भी कहा चाहिये ॥ और विशेषण ज्ञान साध्य ही विशिष्ट भूतितिकहनी होगी ॥ सो विशेषण रूप घटकाशन प्रमाण से तो संभवता नहीं ॥ क्योंकि प्रमाण के विद्यमान हुए अज्ञातता का अभाव है ॥ प्रमाण के हुए भी यदि अज्ञातता घट में मानेंगे तो कभी भी तिसका नाश नहीं होगा और स्वतः भी तिस विशेषण का भान नहीं संभवता ॥ क्योंकि घट जड़ है ॥ और अन्तः से तिस विशेषण की सिद्धि मानो तो तिस को कल्पित पना होने से अज्ञातता नहीं संभवैगी ॥ अब इसी अर्थ के कथन करने के लिये आत्मामें भिन्न घट के स्वरूप को निराकरण करते हैं ॥

* अथआत्मासेभिन्नघटकेस्वरूपकाखंडन *

हेवादिन्यहघटकिसकोकहते हैं । जिसकीस्वप्रकाशतातुमआपादनकरतेहो ॥ शंका ॥ हेसिद्धांतिनजिसमेंघटत्वादिधर्मप्रतीतहोते हैं यहीघटहै ॥ अथवाव्यक्तिपदार्थपक्षमेंकंबुग्रीवाकारवालीव्यक्तिविशेषहीघटहै ॥ समाधान ॥ हेवादिनइसघटकास्वरूपतुमकथनकरो। क्योंकिसर्वादिजोसर्वनामशब्द हैं वहतोप्रसिद्धमात्रकेवाचक हैं। किसी एकविशेषपदार्थकीउपस्थितितिनसेहोती है इसमेंकोईनियामकनहीं। यातेतुमहीघटकाविशेषस्वरूपकहो ॥ औरशब्दसे तिसकाप्रतिपादन शुककीन्याईनहोकिंतुअर्थबुद्धिपूर्वककहनायोग्यहै ॥ औरवहअर्थ काअनुभवभीभ्रमरूपनहो। क्योंकिभ्रमकेविषयकोकल्पितपनाहोता है। इसलियेयथार्थअनुभवकरकेकहनेयोग्यहै ॥ औरवहयथार्थअनुभव भीप्रमेयत्वादिरूपतासे घटकाबोधकनहो। किंतुइतरपदार्थोंसेभिन्नअसाधारणरूपकरबोधनकरनेवालाहो ॥ अर्थात्तिसघटकोसम्यक्अनुभव करकेइतरपदार्थोंसेभिन्नरूपताकरतुमदिखलाओ ॥ शंका ॥ हेसिद्धांतिन्“कपालादिकोंकरकेआरब्धजोअवयविविशेष” तिसीकोघटकहते हैं ॥ अर्थयह ॥ कपालोंनेअपनेविषयकसमवेतरूपताकरजोउत्पन्न कियासोकपालारब्धकहियेहै ॥ यदिइतनाहीघटकालक्षणकरेतोकपालादिकोंमेंसमवायसंबंधसेरहनेवाले रूपादिकभीघटहोनेचाहिये। तिनकीव्यावृत्तिकेअर्थ“अवयवि”यहपदलक्षणमेकहाहै॥और“कपालादिआरब्धअवयवि” जोइतनाही घटकालक्षणकहते” तोशरावादिकोंमें अतिव्याप्तिहोती॥तिसकेनिवारणअर्थ“विशेष” यहपदलक्षणमेंकहाहै यातेकपालादिकोंने अपनेविषयकसमवेतरूपताकर जोउत्पन्नकिया

अवयविशेष तिसीको घटकहते हैं ॥ समाधान ॥ हेवादिन्
 क्या? यहवाक्यकपालऔ घटकेअवयवअवयवित्वसंबंधादिधर्मप्रतिपाद
 नपरहै । अथवाघटके स्वरूपकोबोधनकरताहै ॥ प्रथमपक्षकहोगेतो
 प्रश्नकाअनुत्तरहै ॥ क्योंकिघटकेस्वरूपविषयकहमाराप्रश्नहै । कोई
 तिसकेसंबंधिधर्मोंविषयकप्रश्ननहीं । औरअवयवऔअवयवित्वादितो
 घटकेसाथसंबंधवालेघटसे भिन्नहैं ॥ यातेप्रथमपक्षअसंगतहै ॥ और
 द्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिअवयवतथाअवयवित्वकोईघटका
 स्वरूपनहीं हैं । अवयवित्वरूपतासेजोप्रतीतिहैतिसको अवयवसापेक्ष
 होनेकरस्वस्वरूपअर्थात् तिसकोघटकास्वरूपहोनेकीयोग्यतानहीं ।
 औरअवयवोंको यदिअवयविस्वरूपहीमानलें तोअवयवोंकोअवयवों
 कीअपेक्षाहीनहींहोगी ॥ शंका ॥ स्वरूपनिर्णयकरनेसेआपका क्या
 प्रयोजनहै जैसातैसाघटकास्वरूपप्रसिद्धहीहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्
 अवयवित्वादिसेभिन्नघटकास्वरूपकहनेयोग्यहै यदिघटकास्वरूपहीतुम
 निर्णयनहींकरोगे । तोअतिप्रसंगदेनेको तुमकैसेसमर्थहोगे । अर्थात्
 किसकीस्वप्रकाशता आपादनकरोगे ॥ शंका ॥ घटकास्वरूपतो
 कहनेयोग्यहीहै ॥ परंतुमैंइससेभिन्नघटकास्वरूप विशेषकरकेकहने
 कोसमर्थनहींहूँ ॥ समाधान ॥ हेवादिन् तुमकोकहनेकीअसामर्थ्य
 कैसेहुईहै ॥ क्या? घटकास्वरूपअनुभवनहींहोता ॥ इससेतुमको
 अशक्तिहै । अथवाघटनिर्विशेषहैइससेअशक्तिहै ॥ प्रथमपक्षमेंतोसर्व
 लोकोंकाधिरोधप्राप्तहोगा ॥ क्योंकिघटकास्वरूपसर्वजनोंके अनुभव
 सिद्धहै ॥ औरघटकोनिर्विशेषस्वरूपहोनेसेतिसकेकथनकीहमको
 अशक्तिहै ॥ क्योंकिशब्दकीप्रवृत्तिकिसीशेषधर्मको सन्मुखकरकेही

होती है ॥ यदि यह द्वितीय पक्ष कहो तो तिसमें भी यह कथन करने योग्य है जो निर्विशेष घटका स्वरूप तुमने स्वीकार किया है। वह सर्वजनों के अनुभव सिद्ध है ॥ ऐसे सिद्ध हुए वह अनुभूयमान घटका स्वरूप क्या ? स्वतः ही अनुभव होता है। अर्थात् स्वप्रकाश स्वरूपता से भान होता है। अथवा अपने से भिन्न और किसी प्रमाण से भान होता है ॥ अंत्य पक्ष कहो तो निर्विशेषता की हानी होगी ॥ क्योंकि निर्विशेष वस्तु प्रमाणांतरका विषय नहीं हो सकता और नेत्रादिक सर्वलौकिक प्रमाण तो विशेष वस्तु की ही विषय करते हैं ॥ यहां पर यह अर्थ ज्ञात व्यर्थ है ॥ नेत्रादिक इन्द्रियों की तो रूपादि गुणवाले पदार्थ में ही प्रवृत्ति होती है ॥ क्योंकि रूपादिकों को सन्मुख करके ही तिनकी प्रवृत्तिकानियम है ॥ और अनुमान भी जाति आदिक धर्मन को सन्मुख करके ही प्रवृत्त होता है ॥ क्योंकि अनुमितिको व्यापकता अवच्छेदक प्रकारकत्वकानियम है ॥ अर्थ यह “पर्वतो बन्धिमान्” इस अनुमिति में बन्धिनिष्ठ व्यापकता का अवच्छेदक जो बन्धित्व धर्म वह प्रकाररूपता से भान होता है ॥ और शब्द प्रमाण भी गुण तथा जाति आदिक वाले पदार्थ में ही प्रवृत्त होता है ॥ क्योंकि आनंत्य तथा व्यवहार दोष के दूर करने के लिये सामान्यादि विशेष धर्म की अपेक्षा है ॥ तात्पर्य यह कि यदि घटपद की एक घटव्यक्ति मात्र में शक्तिमानें तो एक ही घट व्यक्तिकी तिससे उपस्थिति होगी ॥ दूसरी व्यक्तिके बोधन अर्थ और शक्तिकी कल्पना होगी ॥ या तो घटपद में आनंत्य शक्तियों की कल्पना प्राप्त होगी ॥ और यदि शक्ति से बिना ही दूसरी व्यक्ति उपस्थित हो। तो व्यवहार दोष की प्राप्ति होती है ॥ या तो घटत्वादि धर्म वाले घट में ही घटपद की शक्ति होने से विशेष पदार्थ में ही शब्द प्रवृत्त होता है ॥

और उपमान प्रमाण भी सादृश्यादि धर्म विशेष की अपेक्षा करके ही प्रवृत्त होता है ॥ इस प्रकार सर्व प्रमाण सविशेष पदार्थ को ही नियम से विषय करते हैं। निर्विशेष को नहीं ॥ शंका ॥ प्रमाण मात्र को सविशेष पदार्थ विषय कत्व माने हुए आत्मा को उपनिषद् मात्र गम्यत्व का अभाव होगा । क्योंकि निर्विशेष आत्मामें शब्द प्रमाण रूप वेदांतों की प्रवृत्ति की अयोग्यता है ॥ समाधान ॥ हेवादि न्लौकिक प्रमाणों में वह पूर्व उक्त नियम है । और अलौकिक प्रमाण रूप वेदांत तो लक्षणा से निर्विशेषाकार वृत्ति के उपस्थापक हैं। या तेतिन को आत्मामे प्रमाणता संभवती है ॥ जिस कारण से सर्व लौकिक प्रमाण सविशेष वस्तु को ही नियम से विषय करते हैं ॥ और निर्विशेष रूप घट सर्व को अनुभव भी होता है ॥ तिसी कारण से निर्विशेष तथा सकल इन्द्रियों का अविषय स्वप्रकाश स्वरूप घट परिशेष से सिद्ध हुआ ॥ यह पूर्व कथन किया प्रथम पक्ष ही अंगीकार करने योग्य है ॥ शंका ॥ तैसे मानने से भी स्वप्रकाश तथा निर्विशेष वस्तु घट का स्वरूप होने के योग्य नहीं । अनात्मा होने से जो अनात्मा होता है वह स्वप्रकाश निर्विशेष स्वरूप नहीं होता ॥ जैसे पटादि है । या ते घट स्वप्रकाश स्वरूप नहीं ॥ समाधान ॥ यह तुम्हारा हेतु स्वरूप से ही पक्ष में नहीं वर्तता । क्योंकि घट का स्वरूप आत्मा से भिन्न कोई निरूपण नहीं हो सकता ॥ इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं ॥ हेवादि न वह निर्विशेष स्वरूप घट आत्मा से भिन्न है । वानहीं । यह विचार करने योग्य है ॥ इनमें प्रथम पक्ष नहीं संभवता । क्योंकि भेदक धर्म का अभाव है ॥ शंका ॥ घटत्वादि धर्म ही घट को आत्मा से भिन्न करने वाले हैं । तिनका अभाव आपकैसे कहते हो ॥ समाधान ॥ हेवादि न घटत्वादि धर्म घट में भेदक हैं इसका क्या ? अर्थ है भाव यह क्या ? यह

धर्मव्यक्तिमात्रमें वर्तमान हैं अथवा घटव्यक्तियों में ही वर्तते हैं ॥ प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि सर्वव्यक्तियों को घटरूपता की प्राप्ति होगी । और घटव्यक्तियों में ही घटत्वादि धर्म वर्तते हैं यह द्वितीय पक्ष कहो तो तिसमें यह विचार करने योग्य है । वह घटव्यक्तियों कैसी हैं । यदि ऐसे कहो कि घटत्वादि धर्म बालियां ही घटव्यक्तियां हैं ॥ यह कह्य न नहीं संभवता । क्योंकि इसमें आत्मा श्रय दोष की प्राप्ति है । घटत्वादि धर्म न को घटव्यक्तियों में अपनी स्थिति अर्थ अपनी अपेक्षा है । या तो आत्मा श्रय दोष है ॥ और यदि आत्मा श्रय दोष के भय से वह घटव्यक्तियां धर्मांतर बालियां हैं ऐसे कह्य न करो । तो यह कह्य न भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि तिसमें भी पूर्व की न्याय प्रश्न करने से आत्मा श्रयादि दोष दूर नहीं हो सकते ॥ अर्थात् वह धर्मांतर घटव्यक्तियों में अपनी स्थिति के अर्थ यदि अपनी ही अपेक्षा करेंगे तो आत्मा श्रय दोष प्राप्त होगा या तो घटत्वादि धर्मों को भेद कपने का अभाव होने से निर्विशेष रूप ही घट है । कोई आत्मा से भिन्न करने वाला धर्म तिसमें नहीं है ॥ और निर्विशेष रूपता से जो भासमान है तिसकी स्वप्रकाशता भी अबाधित है ॥ इसी अभिप्राय से और द्रूपण कह्य न करते हैं ॥ हेवादि भेद का बोधक जो प्रमाण है वह भेद मात्र के बोधन करने को समर्थ नहीं ॥ क्योंकि तिस प्रमाण को धर्मों और प्रतियों की ग्रहण पूर्वक भेद का ग्राहक पना है । और भेद मात्र विषयक तिस प्रमाण को माने हुए आत्मप्रतियोगिक और घट अनुयोगिक भेद प्रमाण सिद्ध नहीं होगा ॥ इस प्रकार आत्मा से भिन्न घट प्रमाणक सिद्ध नहीं होता । और यदि भेद का ग्राहक प्रमाण प्रतियोगिक रूप आत्मा को अधर्मों रूप घट को भी प्रकाशक रता है । ऐसे कहो तो यह कह्य न भी कैसे संभवेगा । क्योंकि धर्मों और प्रतियों की दोनों ही स्वप्रकाश स्वरूप हैं । तिनका भेद प्रमाणक के ग्रहण करने को कोई भी

समर्थनहीं । अन्यथास्वप्रकाशताकीहोनिहोगी ॥ शंका ॥ इसप्रकार
घटतथाआत्माकाअभेदमानेहुए दोनोमेंएकशेषरहाचाहिये ॥ नियाम
ककेअभावसेघटहीशेष क्योंनहो ॥ समाधान ॥ हेवादिन्

❀ इदं सर्वं यदयमात्मा ❀ ६० व० अ० (६) ब्रा० (५) (७)

अ० ॥ यहसर्वदृश्यमानजगत्आत्मास्वरूपहीहै । इसश्रुति

मेंप्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धसर्वजगत्जोप्रथमउद्देशकियागियाहै। तिसका
अनुवादकरके आत्मस्वरूपताकाविधान प्रतीतहोताहै । यातेआत्मा
हीशेषरहाहै । घटशेषनहींरहा ॥ तिराकारणसेहीस्वप्रकाशआत्म
स्वरूपहीघटहै । तिससेभिन्नकिंचितमात्रभी घटकास्वरूपनहींयहअर्थ
सिद्धहुआइति॥ औरयहजोवादीनेपूर्वकहाथा किआत्मामेंअज्ञातत्वका
अनुभवयदिआत्मामेंस्वप्रकाशताकासाधकहै । तोघटमेंभीस्वप्रकाश
ताहुईचाहिये।क्योंकिआत्माकीन्याईघटविषयकभीअज्ञातताकाअनुभव
समानहीहै । सोयहकथनभीसमीचीननहीं । जिसकारणसेपूर्वउक्त
युक्तिकरआत्मासेभिन्नघटकानिरूपणनहींहोसकता । इसीरीतिको
अन्यअनात्मपदार्थों मेंभीनिरूपणकरतेहैं ।

❀ अथ आत्मासेभिन्नकरकेसर्वअनात्माकाखंडन ❀

इसप्रकारघटसेभिन्नऔरपदार्थभीआत्मस्वरूपहीहैं । यातेअनात्म
पदार्थआत्मासेभिन्नकिंचितमात्रभीनहींहैं।तोतुमकिसकीस्वप्रकाशता
आपादनकरतेहो । अर्थात्जिसअनात्मामेंस्वप्रकाशतातुमकहतेहो ।
वहआत्मासेभिन्नहीनहींहै । औरआत्मामेंस्वप्रकाशताकाकथनहमको
भीइष्टहै ॥ शंका ॥ स्तंभादिपदार्थअनात्मरूपताकरसर्वशास्त्रोंमें
प्रसिद्धहैं । तिनकोआत्मरूपताआपकैसेकथनकरतेहो ॥ समाधान ॥

हेवादिन्जोन्यायघटकेस्वरूपनिरूपणमेंकथनकिया वहन्यायस्तंभादि
कोंमेंभीतुल्यही है । अर्थयहसतंभत्वादिधर्मनकाथाश्रयस्तंभादिहैं ।
अथवास्तंभादिकोंकेअवयवोंकरआरब्धजो अवयविविशेषवहस्तंभादि
हैं । इसन्यायकीप्राप्तिसर्व अनात्मपदार्थों में तुल्यहोनेसेकोईअनात्म
पदार्थात्मासेभिन्नसिद्धनहींहोसकता ॥ शंका ॥ यदिघटादिसर्वजगत्
आत्मास्वरूपहीहै । तिससेभिन्नकिंचितमात्रभीनहीं । तोआत्मारूप
करकेहीसर्वकाभानहुआचाहिये । अन्यआकारतासे अर्थात्घटादि
आकारतासेभाननहुआचाहिये । क्योंकिआकारांतरका आपन्नभाव
कथन करतेहो ॥

शंकाकेनिराकरणपूर्वकज्योतिपदकीव्याख्याका
उपसंहार ॥

समाधान । हेवादिन्अनादितथाअनिर्वचनीयअविद्याकेसंबंध
सेस्वप्रकाशस्वरूपआत्माअन्याकारसेभानहोताहै ॥ शंका ॥ एकशुक्ति
मेंएकहीशुक्तिकाआकाररजतअज्ञानकेवशसेप्रतीतहोताहै । अनेक
आकारनहींप्रतीतहोते । तैसेअविद्यासेआत्मामेंभीएकहीमिथ्याआकार
प्रतीतहुआचाहिये । अनेकरूपतासेतिसआत्माकाभानकैसेहोताहै ।
समाधान ॥ हेवादिन्जैसेएकहीरज्जुअज्ञानकेवशसेसर्पदंडमालादि
अनेकमिथ्याआकाररूपतासेभानहोती है ॥ तैसेएकहीआत्माअज्ञान
केवशसेनानावर्णचरूपतासेभानहोताहै । इसप्रकारपूर्वउक्तयुक्तितसेस्व
यंज्योतिस्वरूपआत्माहै ॥ औरवहीपरमपुरुषार्थस्वरूपहै ॥ इसीसे
आनंदएकरसस्वभावहै क्योंकि —

आनंदोब्रह्मेतिव्यजानात् ॥ तै० उ० ३० १० ब० अनु० ६॥

अ० ॥ आनंदस्वरूपब्रह्म है ऐसे ज्ञाननामया ॥ इस श्रुतिमें
आनंदस्वरूप आत्मा कहा है ॥ शंका ॥ जैसे “चंदनं स्वर्गः” अ० ॥
चंदन सुखरूप है इस प्रतीति से सुख का साधन होने से चंदन को सुखरूप कहा
है ॥ तैसे किसी विषय रूप उपाधिके संबंध से आत्मा को आनंदरूपता श्रुति
ने कही है ॥ कोई स्वरूप से आत्मा आनंदरूप नहीं ॥ समाधान ॥
हे वादिन् ॥ असंगो ह्ययं पुरुषः ८० व० अ० ६ ब्रा० ३॥१५ ॥

अ० ॥ यह आत्मा असंग स्वभाव है। इस श्रुतिमें आत्मा को असंग
स्वभाव कहा है ॥ याते तिसका उपाधिके साथ संसर्ग नहीं है ॥ इसी से
आनंद एक मूर्ति है ॥ शंका ॥ आत्मा कर्ता है । याते तिसको दुःख की
संभावना भी की जाती है । तिसको सुख स्वरूप आपके से कथन करते हो ॥
समाधान ॥ हे वादिन् अविकारि स्वभाव होने से आत्मामें कर्तृत्व नहीं
संभवता । किंतु वह उदासीन स्वभाव है । और अज्ञान से कर्त्तापना तथा
नाना प्रपंच रूपता से तिसका भान है । और वास्तव से वह दैत रूप नहीं ॥
शंका ॥ “परस्परविरोधहु ए प्रकारांतर नहीं स्थित होता” । इस न्याय से
यदि दैत रूप आत्मा नहीं है । तो अदैत ही आत्मा का वास्तव स्वरूप कहने
योग्य है । और वह भी नहीं संभवता । क्योंकि दैत के अभाव का नाम अदैत है
तिस से आत्मा को अभावरूपता की प्राप्ति होगी । और तिस अभावरूप अदैत
का निरूपण प्रतियोगि रूप दैत के आधीन है । याते तिस अदैत को आत्म
स्वरूपता नहीं संभवती ॥ अन्य की अपेक्षा करके निरूपण करने योग्य को
स्वभाव देने का अभाव है ॥ समाधान ॥ हे वादिन् अदैत भी आत्मा का
वास्तव स्वरूप नहीं । किंतु दैताद्वैत से रहित विज्ञान एक स्वभाव आत्मा है
यह अर्थ सिद्ध हुआ । और घटादिकों में अज्ञातता का अनुभव तो अन्य

प्रकारसेहीसंभवहोसकताहै । सोदिखलातेहैं । एकहीआत्मामेंघटादि जगत्तथाअज्ञानकल्पितहै । एकअधिकरणरूपसंबंधसेअज्ञातरूपता सेघटकाअनुभवहोताहै । वास्तवसेघटादिकोंमेंअज्ञानकीविषयतानहीं संभवती । यातेघटादिकोंमेंस्वप्रकाशतानहीं । किंतुआत्माहीस्वयं प्रकाशचेतनस्वरूपहै ॥ २४ ॥

इतिज्योनिपदव्याख्या ॥

इति श्री १०८ मन्निर्मलसृताज्वतन्स ब्रह्म विदुत्तमहरिहरि
 पूज्यपाद शिष्येण गुरुदत्तसिंह साधुना विरचतायां
 वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावलीभाषायांपूर्वार्द्धम्
 ॥ ३३ ॥



❀ जें ❀

अथ

श्रीवेदांतसिद्धांत मुक्तावली

भाषाउत्तरार्द्ध प्रारंभः ।

दोहा-यजरयमर विभुसुप्रभो ज्योतीजोचिदरूप ।

सोहलखद्विनमैनसत जगसवभ्रमतमकूप ॥ १ ॥

त्रिभंगीछंद॥ भवदोपनभर्जनसूखनग्रजन अन्तकतर्जनजिहिनामं ।

अमरारिहरणं जनसुखकरणं शरणभरणं जिहकामं॥

मदनामदहारी सुंदरप्यारी सूतधारी निहकामं ॥

शिखेदनगम्यं योगीरम्यं पदमननम्यं तिहरामं ॥ २ ॥

क० ॥ निर्दुखनिरीहनिराकारपरब्रह्मजोऊ सोऊभएनानक

निवारेंकलिपापको । अंगदयमरदास रामदास यरजुनश्रीहरखिंदभए

अरिदिलतापको ॥ गुरुहरिगयहरिकृपणकृपणवपु तेगकेबहादरजुहि

दुधर्मथापको ॥ गुरुयुविंदसिंहलौपदाविन्दसवनके बंदोंकरजोरहते

दुःखमूलपापको ॥ ३ ॥

दो०॥ श्रीगुरुहरिहरिकेसदा चरणकमलरिदधार ।

शेषग्रंथभाषाकरोंजोजनकोहितकार ॥ ४ ॥

बीणाकरधरकरसदा भक्तनवांछितदेत ।

वाणीममवाणीवसो पुखोयहसंकेत ॥ ५ ॥

वेदशिरनसिद्धांतजो तांकीश्रेणीमाहि ।

उत्तरार्द्धभाषाकरों यथामतीममआहि ॥ ६ ॥

अथआनन्दपदव्याख्या। अथमूलटीकाकारकृतमंगल

यस्यभासाजगतसर्वं भातिस्थावरजंगमम् ।

तदहंब्रह्मपूर्णस्यां पुरुषार्थसुखात्मकम् ॥१॥

दो० ॥ जाप्रकाशभासतजगत स्थावरजंगमरूप ।

सोमेष्वर्णब्रह्मद्वंद्वपुरुषार्थ सुखरूप ॥ १ ॥

अथपूर्वपक्ष । आत्माकीपुरुषार्थरूपताकाखंडन ॥

आत्मामेंप्रमाणके विद्यमानहुए दृश्यरूपतासे अनात्मपनेकी प्राप्तिनहींहोती। तथाप्रमाणकेअभावहुए नरशृंगकीन्याईअसत्पनाभी नहींहोता ॥ क्योंकिवहआत्मास्वप्रकाशस्वरूपहै ॥ इतनाअर्थज्योति पदसेस्थापनकिया । अथआनन्दइसविशेषणसे आत्मामें सूचनकी हुईजोपुरुषार्थरूपताहै ॥ तिसकेनिरूपणकरनेकेलिये सिद्धांतीकेमत सेसिद्धजोआत्माकास्वरूपहै ॥ तिसकाअनुवादकरकेपूर्वपक्षीतिमकी पुरुषार्थरूपताका निषेधकस्ताहै ॥

मू०। आत्माऽयंसर्वसंबद्धो भानुभासकउच्यते ।

नित्योऽयमविनाशित्वा दुपादेयः कथंभवेत् २५॥

कुंडलियाछंद ॥ सबजगमेंसंबद्धयहनिजआत्मपहचान ।

भानूवतभासकसदायांश्रुतिकीनखलान ।

यांश्रुतिकीनखलाननित्यपुन ताकोगाययो ॥

अविनाशिताहेतु ताहिमेंनीक बताययो ॥

ग्रहनकरनवेयोग्यनहींआत्महैसोकव ।

सुखदुःखहानहभिन्नजानचाहेनहजनसब ॥२६॥

टी० ॥ साधनचतुष्टयसंपन्नअधिकारीकोयहआत्मा “उपादेय”

कहिये पुरुषार्थरूपकैसे हो सकता है । किंतु किसी प्रकार भी नहीं । क्यों
 कि उपादेयता में साध्यत्व प्रयोजक होता है । अर्थात् जो प्रयत्न साध्य पदार्थ
 है । वह उपादेय रूप होता है । और यह आत्मा तो साध्य है नहीं । क्योंकि
 सत्यरूप हुआ नित्य स्वरूप है । नित्यत्व की असीद्धि है ऐसी आशंका के हुए
 कहते हैं । “अविनाशित्वात्” कहिये विनाश रहित होने से यह आत्मा
 नित्य है । या तो नित्यता असीद्ध नहीं किंतु सिद्ध है । इस अर्थ को आगे उपा
 पादन करेंगे । आत्मा अनित्य होने के योग्य है परिच्छिन्न होने से । घट
 की न्याई । इस आशंका के हुए इसको स्वरूपा सिद्धि से दूषित करते हैं ।
 (आप्लव्याप्तौ) अ० “आप्ल” धातु व्याप्ति अर्थ में होता है । इस पाणि
 मुनिके स्मरण से इस धातु से आत्मशब्द को सिद्ध होने कर सर्व को पूर्ण करने
 वाला आत्मा है । अर्थात् व्यापक है । यह अर्थ लाभ होता है ॥ या तो परि
 च्छिन्नत्व हेतु स्वरूप से ही तिस आत्मा में वृत्ति नहीं ॥ इसी से आत्मानित्य है
 ॥ शंका ॥ इतने कथन से भी अनित्यत्व का परिहार कैसे हो सकता है ॥ क्यों
 कि आपके मत में व्यापक आकाश में भी अनित्यत्व देखा है ॥ समाधान ॥
 आत्मा सर्व पदार्थों में सर्वरूपता से संबंधवाला है ॥ अर्थात् सर्वजगत् का
 अधिष्ठान है ॥ यद्यपि अन्य सर्व पदार्थों का अधिष्ठान आकाश है । तथापि
 स्वयं प्रति अधिष्ठानता का अभाव होने से सर्वजगत् की अधिष्ठानता आकाश
 में नहीं संभवती ॥ तिसी से सर्वका उपादान होने से आत्मा अनित्य नहीं
 और न किसी का कार्य है ॥ शंका ॥ आत्मा को घट की न्याई जड़ता होने
 से सर्वजगत् की उपादानता नहीं संभवती ॥ समाधान ॥ सूर्य की
 न्याई वह आत्मा प्रकाशक है ॥ तैसे माने हुए जो आत्मा अन्य सर्व अनात्म
 पदार्थों को भी प्रकाश करता है ॥ तिसको अपने प्रकाश में इतर की अपेक्षा

नहींसंभवती ॥ जैसेसर्वजगत्केप्रकाशकआदित्यभगवान्कोअपने
प्रकाशमेंइतरकीअपेक्षानहीं । किंतुवहस्वयंप्रकाशहै । तैसेआत्माभी
स्वयंप्रकाशमानहै । तिसमेंजडताकाअभावहै । यहीअर्थश्रुतिमेंभी
कथनकियाहै ॥ इति ॥अबअपेक्षितअर्थकीपूर्णताद्वाराविस्तारपूर्वक
श्लोककीव्याख्याकरतेहुएआत्माकीपुरुषार्थरूपताका निषेधकरतेहैं ॥
इसलोकतथापरलोककेसर्वविषयानंदतथातिनकीसाधनसामग्रीसेविरक्त
जोपुरुषहै ॥ तथाअनादिसंसारमेंसंपादनकियेहुएपुण्यकर्मनकेसमूह
सेजिसकेपापकर्मनाशहुएहैं ॥ तथासकलविषयोंमेंदोषदृष्टिसेवैराग्य
जिसकोउत्पन्नहुआहै ॥ औरपरमपुरुषार्थकीकामनावालाजोमुमुक्षुहै
तिसकोयहआत्माकिसप्रकारउपादेयहै ॥ क्योंकिआगेकथनकीहुई
शुक्तिसे आत्मामें पुरुषार्थरूपता नहींसंभवती ॥ शंका ॥ अनित्य
जो सांसारिक सुखहै ॥ वह विनाशी होनेसे त्याग करने योग्य हो
परंतुआत्मातोनित्यहै । यातेवीणतादिदोषसेरहितहै।वहकैसेमुमुक्षुको
उपादेयनहींहैकिंतुउपादेयहै ॥ समाधान ॥ यद्यपिआत्मानित्यहै ।
तथापितिसकोउपादेयतानहींसंभवती ॥ इसीकोस्पष्टकरतेहैं ॥

❀ आत्मनित्यःअविनाशित्वात् ॥ आकाशवत् ❀

अ०॥आत्मानित्यहै।अविनाशीहोनेसे।जोअविनाशीहोता
हैसोसोनित्यहोताहै ॥ जैसेआकाशहै । इसअनुमानमेंअविनाशित्व
हेतुस्वरूपासिद्धनहीं ॥ क्योंकिआत्माकेविनाशकी सामग्रीकाअभाव
होनेसेतिसकाविनाश दुर्निरूप्यहै “तथाहि” समवायिकारणका
नाशअथवा असमवायिकारणकानाशद्रव्यकेनाशकी सामग्रीनेयापि
कोनेमार्गहै ॥ औरअकार्यआत्माके वहदोनोंकारणनहींसंभवते ।

और अनादि अदृष्टों के प्रवाह का आधार होने से आत्मा को अकार्यपना सिद्ध है यह अर्थ पूर्व ही कथन कर आये हैं ॥ शंका ॥ कार्य का यदि दर्शन हो तो सामग्री की भी कल्पना हो सकती है ॥ अर्थात् जव आत्मा का नाश देखा जाय तो नाश की सामग्री भी कोई अवश्य कल्पना करने योग्य है ॥ समाधान ॥ आत्मा का विनाश ग्रहण करने को कोई भी समर्थ नहीं है ॥ इसी अर्थ को उपपादन करते हैं ॥ क्या? अपने विनाश को आप ही आत्मा ग्रहण करता है अथवा अन्य आत्मा ग्रहण करता है ॥ इनमें प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि आत्मा की विद्यमानता काल में ग्रहण करने योग्य जो आत्मा का अभाव तिसका अभाव है ॥ और आत्मा के विनाश काल में ग्रहण करने वाले आत्मा का ही अभाव है ॥ और अन्य आत्मा प्रथम आत्मा के अभाव को ग्रहण कर लेगा यह पक्ष भी समीचीन नहीं ॥ क्योंकि प्रति योगी के ग्रहण पूर्व कही अभाव का ग्रहण होता है ॥ प्रतियोगी ग्रहण है यदि तिसको भी ग्राह्य माने तो आत्मपने का ही अभाव होगा ॥ या तो आत्मीय अभाव ग्रहण करने के अयोग्य है ॥ किंवा ॥ आत्मा के विनाश का ग्रहण प्रत्यक्ष से है ॥ अथवा अनुमान से है ॥ प्रथम पक्ष नहीं संभवता ॥ क्योंकि एक आत्मा को दूसरे आत्मा के प्रति अतीन्द्रिय होने पर आत्म प्रति योगिक संसर्गभाव प्रत्यक्ष से ग्रहण नहीं हो सकता ॥ अर्थात् संसर्गभाव के प्रत्यक्ष में प्रतियोगि प्रत्यक्ष को कारणता है ॥ और यहां आत्मरूप प्रतियोगी प्रत्यक्ष से ग्रहण नहीं हो सकता ॥ या ते तिसका अभाव भी प्रत्यक्ष से ग्रहण कैसे हो ॥ और परिच्छिन्नत्व हेतु से अनित्यत्व अर्थात् विनाश अनुमेय है यह द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि वह परिच्छिन्नत्व हेतु पक्ष में अवृत्ति होने से स्वरूपाऽसिद्ध है ॥ कारण यह कि देश काल वस्तु के

परिच्छेदसेरहितको आत्मा कहते हैं ॥ इसी उक्तार्थको श्रीवेदव्यासजी की उक्ति द्वारा दृढ़ करते हैं ।

यच्चाप्नोति यदा दत्ते यच्चात्ति विषयान्निह ।

यच्चास्य संततो भावस्तस्मादात्मेति कथ्यते ॥१॥

अ० ॥ यहां “आप्” और “आइ” पूर्व “हुदात्रं” और “अर्द” तथा “अत्तं” इन चार धातुओं से आत्मशब्द को सिद्ध करते हैं ॥ (यत्) जिस कारण से सकल अनात्म पदार्थों को सकल रूपता से (आप्नोति) व्याप्त करता है ॥ (तस्मात्) तिसी से आत्मा कहते हैं ॥ और (यत्) जिस कारण से सुषुप्ति आदिक अवस्थाओं में अज्ञान के कार्य अनात्मा को अज्ञान के वश से स्वस्वरूप में (आदत्ते) उपसंहार कर लेता है ॥ तिसी से आत्मा कहते हैं ॥ और (यत्) जिस कारण से विषयाकारवृत्तियों को (अत्ति) प्रकाश करता है ॥ तिसी से आत्मा कहते हैं ॥ और (यत्) जिस कारण से निरूपणीय रूपता से प्रकरण प्राप्त जो आत्मा है तिसकी (संततः) अंतराय से रहित रूपता को (भावः) स्थिति है ॥ वह स्थिति भी अपने आप में ही है किसी अन्य पदार्थ में नहीं ॥ क्योंकि अन्य अनात्म पदार्थ का अभाव है ॥ तिसी से (सातत्येन) नैरन्तर्य रूपता से (अतति) जो गमन करता है ॥ तिसको आत्मा कहते हैं ॥ अर्थात् गमन का फल तिस तिस देश में जाकर स्थित होना है और आत्मा सर्वत्र ही अवस्थित है ॥ क्योंकि आत्मा से भिन्न वस्तु का ही अभाव है ॥ याते स्वस्वरूप आत्मा में ही जो पूर्ण रूपता से स्थिति है ॥ इसी को संतत भाव कहते हैं ॥ तैसे माने हुए परिच्छिन्नत्व हेतु स्वरूपा सिद्ध है ॥ तिसी से यहां पर यह अनुमान जानना ॥

* आत्मानित्यः अपरिच्छिन्नत्वात् व्यतिरेकेणाघटादिवत् *

अ० ॥ आत्मानित्यहोनेकेयोग्यहै । अपरिच्छिन्नहोनेसेजो जो नित्यनहीं है ॥ सोसोअपरिच्छिन्नमीनहीं है । जैसेघटादिहैं ॥ इति ॥ शंका ॥ इसअनुमानमेंअपरिच्छिन्नत्वहेतुव्यभिचारीहै । क्योंकिव्यापकआकाशादिकोंमेंभीअनित्यत्वदेखाहै ॥ समाधान ॥ नित्यत्वकेअभाववालेआकाशादिकोंमेंअपरिच्छिन्नत्वहेतुकाअभावहोनेसेव्यभिचारदोषकीप्राप्तिअनुमानमेंनहीं है । क्योंकितुमकोव्यापकताकाज्ञानहीनहीं । जिसकारणसे “सर्वसंबद्धत्व” अर्थात्सर्वकेसाथसंबंधवालाव्यापककहाजाताहै ॥ शंका ॥ सर्वकेसाथजोसंयोगिपनाहैइसीकोसर्वसंबद्धत्वकहतेहैं । वहगगनादिकोंमेंविद्यमानहै । यातेहेतुव्यभिचारीहै समाधान ॥ “सर्वसंयोगित्व” सर्वसंबद्धत्वशब्दकाअर्थनहीं । किंतुसर्वमेंसर्वरूपतासेजोसंबंधवालाहोतिसकोव्यापककहतेहैं । आकाशादिकोंमेंइसलक्षणकाअभावहै ॥ यातेव्यभिचारकीशंकांनहींसंभवती ॥ शंका ॥ आकाशादिकभीसर्वमेंसर्वरूपतासेसंबंधवालेहीहैं । क्योंकितिनकोनिस्वयवहोनेकरएकदेशसेसंबद्धत्वकाअभावहै ॥ समाधान ॥ परस्परव्यभिचारीपदार्थोंकाअधिष्ठानअर्थात्सत्तास्फूर्तिदेनेवालाहीसर्वमेंसर्वरूपताकरसंबंधवालाहोसकताहै ॥ शंका ॥ व्यभिचारिपदार्थहीअन्यव्यभिचारिकाअधिष्ठानक्योंनहो ॥ समाधान ॥ एकव्यभिचारिपदार्थअन्यव्यभिचारिपदार्थकाअधिष्ठाननहींसंभवता ॥ जिसकारणसेअन्यजोयत्रादिकहैं ॥ वहअपनेसेभिन्नपटादिकोंकरसकलरूपतासेव्याप्तनहींकियेजाते । अर्थात्सत्तास्फूर्तिप्रयुक्तनहींकियेजाते । यदिसकल

रूपसेतिनकीव्याप्तिमानलेंतोव्याप्यघटादिकोंकेस्वरूपकाहीअभावहोगा
 क्योंकिएकअधिकरणमेंदोसत्ताकीअयोग्यताहै। भावयहकिव्यापकका
 स्वरूपसत्तुरूपहै। तिससेभिन्नव्यभिचारीजोव्याप्यघटादिकहैं तिनके
 स्वरूपकाहीअभावहै। तैसेमानेहुएजिसकीसत्तासेव्याप्यघटादिकसत्
 हैं। वहव्यापकसत्तहै व्याप्यसत्तरूपनहीं ॥ शंका ॥ व्याप्यमेंव्यापक
 प्रयुक्तसत्तामानेहुएभीस्वरूपभूतसत्ताकाविरोधनहीं। क्योंकिव्याप्य
 केएकदेशमेंव्यापककीसत्ताहै। औरदूसरेदेशमेंअपनीसत्ताहै। ऐसीव्यवस्था
 सेदोनोंसत्तावनसकतीहैं ॥ समाधान ॥ व्याप्यकोजिसदेशमेंव्याप्य की
 स्वरूपसत्ताहै तिसदेशमेंव्यापककीव्याप्तिहैवानहीं। प्रथमपक्षमेंव्याप्य
 कीसत्तामाननेकाकोईभीफलनहीं। क्योंकिव्यापककीसत्ताकरकेही
 सत्त्व्यवहारवनजायेगा। औरस्यदिद्वितीयपक्षकहो। तोसर्वरूपतासे
 व्यापककीव्याप्तिनहींसिद्धहोगी। इसकारणसेएकव्यभिचारिपदार्थदूसरे
 व्याभिचारिपदार्थकाअधिष्ठाननहींसंभवता। यातेआत्माहीसर्वजगत्
 काअधिष्ठानहै। आकाशादिकनहीं। इतनेग्रंथसे(आत्मायंसर्वसंबद्धः) इस
 प्रथमपादकाव्याख्यानकिया। अबदूसरेपादकाव्याख्यानकरतेहैं। शंका ॥
 आत्माकासर्वकेसाथ संबंधमानेहुएभी तिसको सर्वका अधिष्ठानपना
 नहींसंभवता। क्योंकितिसकोजडहोनेकरअज्ञानविषयतारूपअज्ञातता
 कीअयोग्यताहै। औरसर्वज्ञानोंकाविषयहोनेसेतिसकोजडपनाहै ॥
 समाधान ॥ देशकालादिपरिच्छेदसेरहितआत्मामेंप्रमाणांतरकीअपेक्षा
 नहींहै। जिससेवहसूर्यकीन्याईस्वयंप्रकाशमानहै। और
 तमेवमान्तमनुभातिसर्व। तस्यभासासर्वमिदंविभाति।
 अ० ॥ तिसआत्माकेप्रकाशहुएहीसर्वजगत्पश्चात्मानहोताहै

तिसके प्रकाशकरके यह सर्वजगत्मान होता है । इस श्रुतिमें सर्वजगत्का प्रकाशकरूपतासे आत्मा प्रसिद्ध है । सर्वही जगत् आत्मा करके प्रकाशके योग्य है । तिस जगत्से आत्मा का प्रकाशन ही संभवता । जैसे घट दीपक को प्रकाशन ही कर सकता । तिस कारणसे स्वयं प्रकाशमान ही आत्मा है जड़ नहीं । तिसको सर्वकी अधिष्ठानता संभवती है । यद्यपि आत्मानित्य है । तिसको क्षीणतादि दोष से रहित होने का उपादेयता संभवती है । तथापि सुख तथा दुःखाभाव से इतर होने की तिसको उपादेयता नहीं संभवती । यहां पर यह अनुमान जानना ॥

आत्मा अनुपादेयः । सुख दुःखाभावेतरत्वात् घटादिवत्
अ० । आत्मा उपादेय नहीं है । सुख तथा दुःखाभाव से भिन्न होने से । जो सुख तथा दुःखाभाव से भिन्न है वह उपादेय नहीं है । जैसे घटादिक हैं ॥ इति ॥

❀ अथ सिद्धांती द्वारा अनुपादेयत्वसाध्यका खंडन ❀

अब इस पूर्वपक्षीके अनुमानमें अनुपादेयत्वरूपसाध्यको सिद्धांती निषेध करता है ॥ हेवादि न्यह जो आत्मानिष्ठ तुमने अनुपादेयत्व कथन किया है वह क्या है ? क्या ? आदान क्रिया अर्थात् हस्तादिकों से ग्रहण क्रिया की अविषयता का नाम अनुपादेयता है ॥ अथवा इच्छा की विषयता के अभाव का अधिकरणत्वरूप अनुपादेयत्व है ? ॥ अथवा अपने प्रयत्न कर साध्यत्व के अभाव का अधिकरणत्वरूप अनुपादेयत्व है ? । अथवा स्वप्रयत्न कर साध्यत्व के अभाव विशेष सुख दुःखाभाव से जो इतर पना है यही अनुपादेयत्व है ? ॥ अथवा सुख तथा दुःखाभाव से जो इतर पना है यही अनुपादेयत्व है ? । अथवा अन्य ही कोई अनुपादेयत्व है ? इनमें प्रथम पक्ष तो असंगत है । क्योंकि आदान क्रिया की अविषयता आत्मा में वादी

प्रतिवादीसर्वहीस्वीकारकरतेहैं॥ जिसकारणसेस्पर्शवालेतथाक्रियावाले पदार्थकाहीहस्तादिकोंसेग्रहणहोताहै। क्रियातथास्पर्शसेरहितआत्माका ग्रहणनहींहोसकता॥ यातेप्रथमपक्षमेंहमकोभीइष्टापत्तिहै। औरइसमेंइष्टा पक्षिमानेहुएअनुमानमेंसिद्धसाधनदोपभीप्राप्तहोगा। भावयहआदान क्रियाकीअविषयतारूपअनुपादेयताआत्मामेंप्रथमहीसिद्धहै॥ तिसको पुनःसिद्धकरनेसेसिद्धसाधनदोपप्राप्तहोताहै ॥ अर्थात्तथाश्रयाऽ सिद्धिहेतुगतदोपहोताहै ॥ क्योंकिसंदिग्धसाध्यवान्पक्षहोताहै ॥ साध्यकातिसमेंनिश्चय होनेसेपक्षत्वकाअभावहै ॥ किंवायहअनु पादेयत्वकालक्षण अलक्ष्यसुखादिकोंमेंवृत्तिहोनेसेअतिव्याप्तिदोष वालाहै ॥ क्योंकिसुखतथादुःखाऽभावभीआदानक्रियाकंविषयनहीं होते ॥ इसप्रकारप्रथमपक्षकोनिरासकरकेअवद्वितीयपक्षकोद्वेषित करतेहैं ॥ औरइच्छाकीविषयताकाअभावजिसमेंहोवहअनुपादेयहै। यहद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ॥ क्योंकि“परस्परविरोधहुएतिनदोनों सेअन्यकोईप्रकारनहींस्थितहोसकता”॥ इसन्यायसेइच्छाकीविषयता काजोअनधिकरणहै तिसकोअनुपादेयमानेहुए इच्छाकीविषयताके अधिकरणनिष्ठ उपादेयताप्राप्तहोतीहै ॥ तिसमेंभीयहविचारकर्तव्यहै। इच्छाऔरइच्छाकीविषयताकरविशिष्टजोविषयहै ॥ वहउपादेयहै ॥ अथवातिनदोनोंकरउपलक्षितविषयकास्वरूपमात्रउपादेयहै ॥ प्रथमपक्ष तोनहींसंभवता क्योंकि“विशिष्टवृत्तिधर्मकोविशेषण मेंवर्तनेकानियमहै” ॥ इसन्यायसेइच्छाऔरतिसकीविषयताको भीउपादेयताप्राप्तहोगी ॥ सोतुमकोइष्टनहीं ॥ औरइच्छा औ तिसकीविषयताकरउपलक्षितजोविषयकास्वरूपमात्रवह

उपादेय है । यदि यह द्वितीयपक्षकहो । तो तिसमें भी यह विचार कर्तव्य है । जितना इच्छा का विषय है । वह सर्वही उपादेय है अथवा इच्छा के विषय का एक देश उपादेय है ॥ अथवा इच्छा के विषय में विशेष्य मात्र उपादेय है । प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि दुःख को भी उपादेयता हुई चाहिये । यद्यपि दुःख को कोई भी नहीं चाहता । तथापि जो ज्ञान का विषय होता है वही इच्छा का भी विषय होता है । अर्थ यह दुःखाभाव को पुरुषार्थरूपता सर्वही वादी कहते हैं । तिस दुःखाभाव के ज्ञान का जितना अर्थ विषय होता है । उतने ही अर्थ को इच्छा भी विषय करती है । क्योंकि ज्ञान इच्छा और प्रयत्न इन तीनों को समान विषयत्व का नियम है । अर्थात् इन तीनों का एक ही विषय होता है ॥ शंका ॥ दुःखाभाव के ज्ञान में प्रतियोगिरूप दुःख विशेषणरूपता से नहीं भान होता । क्योंकि तिस ज्ञान को निर्विकल्पकरूप होने कर विशेषण दुःख और विशेष्य दुःखाभाव के संबंध का ग्राहक पतन नहीं है ॥ समाधान ॥ “किंचित् इदं” यह निर्विकल्पज्ञान इच्छा के उत्पन्न करने को समर्थ नहीं । क्योंकि विषय की सौंदर्यता का यह ज्ञान प्रकाशक नहीं है । और विषय की सौंदर्यता के ज्ञान से ही इच्छा उत्पन्न होती है । यह न्याय के जानने वालों की मर्यादा है । और विषय की सौंदर्यता का ग्राहक जो ज्ञान है । वह निर्विकल्पक है । यह कथन भी समीचीन नहीं जिस कारण से वह ज्ञान विशेषण तथा विशेष्य के संबंध का ग्राहक है । या तो इच्छा का जनक जो ज्ञान है । तिस को सविकल्पक पना ही युक्त है ॥ शंका ॥ दुःखाभाव का ज्ञान सविकल्पकहो तथापि तिस को दुःख विषयता कैसे है ॥ समाधान ॥ दुःखाभाव में प्रतियोगी रूप दुःख विशेषण है । और अभाव ज्ञान को विशिष्ट विषयक होने कर दुःख रूप विशेषण

विषयता भी संभवती है ॥ तिस कारण से जितना इच्छा का विषय है वह सर्वही उपादेय है । ऐसे यदि माने तो दुःखको उपादेयता कैसे न होगी । किंतु अवश्य होगी । याते प्रथम पक्ष असंगत है । और इच्छा के विषय का एक देश उपादेय है । यह द्वितीय पक्ष भी नही संभवता । क्योंकि यह लक्षण अव्याप्ति दोष वाला होने से दुष्ट है । तिसीको स्पष्ट करते हैं । सुख विषयणी इच्छा का सुख एक देश नहीं है ॥ क्योंकि सुख से भिन्न और कोई विषय है नहीं ॥ शंका ॥ सुख मात्र पुरुषार्थ नहीं है किंतु आत्म संबंधी सुख उपादेय है ॥ तिस कारण से इच्छा भी आत्मीय सुख विषयणी है । इसलिये सुख में इच्छा के विषय का एक देशात्वरूप उपादेयत्व संभवता है ॥ समाधान ॥ हेवादि न्यदि आत्मीय सुखको उपादेय माने तो आत्म उपाधिक ही सुख में पुरुषार्थ रूपता होगी । स्वभाव से सुख उपादेय नहीं होगा । याते द्वितीय पक्ष भी नही संभवता ॥ और इच्छा का विषय जो विशेष्य मात्र वह उपादेय है ॥ इस तृतीय पक्ष के माने हुए दुःख में उपादेयत्व की प्राप्ति नहीं होती । क्योंकि दुःखको इच्छा का विषय हुए भी विशेष्य रूपता का अभाव है ॥ सो यह आद्य द्वितीय पक्ष में तृतीय पक्ष है यह भी नही संभवता ॥ क्योंकि (अहं स्वर्गी स्याम्) “मंसुखी हो जाऊं” यह इच्छा सुख विशेषण विशिष्ट आत्म विषयणी है ॥ तिस इच्छा का विषय जो विशेष्य मात्र आत्मा है ॥ तिस में पूर्व पक्षी को अनिष्ट जो उपादेयता सो प्राप्त होगी ॥ और अनुमान में बाध की प्राप्ति भी होगी । क्योंकि अनुपादेयत्व साध्य का अभाव निश्चय हुआ है । इस प्रकार द्वितीय पक्ष को निषेध करके अस्वकृतिसाध्यत्व का अभाव है जिसमें वह अनुपादेय है इस तृतीय पक्ष को निराकरण करते हैं ॥ और यह तृतीय पक्ष भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि स्वप्रयत्न करके साध्य जो

दुःखऔतिसकेसाधनहैं तिनमेंभीअनुपादेयताहै। औरपूर्वउक्तलक्षण
 तिनमेंअनुगतहैनहीं। यातेतृतीयलक्षणअव्याप्तिदोपयुक्तहोनेसेदुष्टहै।
 औरस्वकृतिसाध्यत्वके अभावविशिष्टसुखदुःखाभावसेजोइतरत्वहैयही
 अनुपादेयत्वहै। यहचतुर्थपक्षहै ॥ इसमें “सुखदुःखाभावेतरत्व” इतना
 विशेष्यमात्रहीअनुपादेयत्वकालक्षणकहें । तोसुखकेसाधनयागादि
 कोमेंअतिव्याप्तिहोती। तिसकीनिवृत्तिअर्थविशेषणभागलक्षणमेंकहाहै
 वहयागादिकोंमेंनहीं यातेतिनमेंअतिव्याप्तिभीनहीं ॥ सोयहचतुर्थ
 पक्षभीअसंगतहै। क्योंकिविशेषणभागकीव्यर्थताहै। औरसुखकेसाधन
 यागादिकोंमेंस्वप्रधान्यतासे उपादेयतानहीं। किंतुसुखकेसाधनहोनेकर
 सुखउपाधिकी उपादेयताहै । यातेविशेष्यमात्रलक्षणमानेहुएभी
 तिनमेंअतिव्याप्तिनहींहोती ॥ क्योंकिपरमपुरुषार्थत्वका अभावसुख
 केसाधनोंमेंभीस्वीकारहै । यातेविशेषणका ग्रहणव्यर्थहै । औरसुख
 दुःखाभावसेइतरत्वहीअनुपादेयत्वहै यहपंचमपक्षभीनहीं संभवता ।
 क्योंकिसाध्यतथाहेलुकाएकत्वप्राप्तहोताहै ॥ तैसे मानलेंतोसंदिग्धा
 ऽसिद्धहेलुअनुमानमेदोपहोगा ॥ अर्थयहजोसंदिग्धरूपताकरअसिद्ध
 होवहहेलुसंदिग्धाऽसिद्धकहाजाताहै । सोसंदिग्धाऽसिद्धहेलुवाला
 अनुमानदुष्टहोताहै ॥ औरइनसेभिन्नऔरकोईअनुपादेयत्वकालक्षण
 कथनकरनेकेयोग्यनहीं ॥ शंका ॥ कथनकरनेकीअसामर्थ्यआप
 क्योंकहतेहो । जिसकारणसेदुःखादि स्वरूपहीअनुपादेयत्वशब्दका
 अर्थहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्आत्मामेंदुःखऔतिसकेसाधनोंका
 तादात्म्यस्वीकारनहींहै ॥ यातेआत्मामेंअनुपादेयत्वरूपताकाअसं
 भवहै ॥ शंका ॥ यदिआपआत्माकोदुःखादिरूपतानहींमानोगे ॥

तोसर्वात्मताकाव्याघातहोगा ॥ समाधान ॥ हेवादिन् आत्माकी
सर्वात्मताकाव्याघातनहीं है। क्योंकिसर्वकीअधिष्ठानताही सर्वात्मता
शब्दकाअर्थहै। औरआत्मामेंसर्वाऽअधिष्ठानता सर्वअध्यस्तपदार्थों
कोसत्तास्फूर्तिप्रदत्वरूपहै॥ कोईमिथ्याकार्यरूपता तिसको नहीं है॥
क्योंकिसत् पदार्थकामिथ्याकेसाथतादात्म्यनहींसंभवता। यदिमिथ्या
दुःखादिकातादात्म्यमानोगे तोसत्यत्वकीहानीहोगी। अब सिद्धांती
अपनेपूर्वपक्षकोसमाप्तकरताहै ॥ इसप्रकारपूर्वउक्तअनुमानमें अनुपा
देयत्वसाध्यकेकथनकीही अशक्यताहोनेसे किसप्रकारतुमयह अनुपा
देयत्वरूपअनिष्टआत्मामेंसिद्धकरतेहो। (इतिसिद्धांतीकापूर्वपक्ष)

❀ अथपूर्वपक्षीकासमाधान ।

अथउपादेयत्वकानिरूपण ❀

हेसिद्धांतिन्पूर्वउक्तआपकीआशंकानहींसंभवती ॥ क्योंकि
अनुपादेयत्वजोहै ॥ वहस्वप्रतियोगिरूपउपादेयत्वनिरूपणकिया
जाताहै ॥ तिसउपादेयत्वरूपप्रतियोगीसेबिनातिसकानिरूपणनहीं
करसकते ॥ यातेअनुपादेयत्वकेजाननेअर्थप्रथमउपादेयत्वकानिरू
पणकियाचाहिये। सोउपादेयत्वअन्यानुपसर्जनत्वरूपहीजाननेयोग्य
है ॥ अर्थयहजोअन्यसर्वपदार्थोंमेंप्रधानहोवहउपादेयहै ॥ औरयदि
सिद्धांतीऐसेकहेकिअन्यसर्वसेप्रधानताआत्मामेहीवर्तमानहै। यातेआ
त्माकोहीउपादेयताहै। सोयहकथनभीनहींसंभवता॥ क्योंकिवहअन्यानु
पसर्जनत्वरूपउपादेयत्वसुखतथादुःखाऽभावमेंही है॥ अन्यसर्वआत्मादि
पदार्थोंकोतिनदोनोंकाउपसर्जनपनाअर्थात्तगेषपनाहै॥ तिनमेंआत्मा
तोसुखतथादुःखाभावकाअधिकरणरूपतामेंगेषहै ॥ औरसुखादिकोंके

जोसाधनवहकरणरूपतासेशेषहैं ॥ ऐसेऔरभीजानलेने॥ शंका ॥हे
वादिन्सुखतथादुःखाभावरूपभीआत्माहीहै ॥ तोकैसेतिसकोतुमउप
सर्जनअर्थात्शेषकहतेहो ॥ समाधान ॥ आत्माप्रथमसुखतथादुःखा
भावसेभिन्नहै । प्रथमतिसमें

❀ अथआत्मामेंदुःखाभावरूपताकानिषेध ❀

दुःखाभावरूपताकानिषेधकरतेहैं । आत्माकोभावरूपहोनेकर
दुःखाभावरूपताकाअसंभवहै । औरयदिऐसेकहोकिआत्माकोदुःखा
भावरूपतामाननेवालेवादीकेप्रतिभावरूपत्वहेतुस्वरूपाऽसिद्धहै । सोयह
कथनभीनहींसंभवता । क्योंकि “अहमस्मि” इसप्रकारकीप्रतीतिमें
किसीकाविवादनहीं । औरयहप्रतीतिदुःखरूपप्रतियोगीकरनिरूपण
करनेकेयोग्यभीनहीं । क्योंकिदुःखकेनप्रतीतिहुएभी(अहमस्मि)यह
प्रतीतिसर्वकोउत्पन्नहोतीहै । तिसीसेदुःखरूपप्रतियोगीकरननिरूपण
करनेयोग्यहोनेसेभावस्वरूपहीआत्माहै । दुःखाभावरूपनहीं ॥

❀ अथशून्यवादीकोअभिमतआत्मा
केखंडनकाप्रकार❀

शंका ॥ अव्यभिचारिस्वभावहीआत्माहोताहै । औरशून्यभी
अव्यभिचारिस्वभावहै । इसकारणसेसर्वपदार्थोंकाजोवास्तवस्वरूप
शून्यवहीआत्माहै । भावरूपआत्मानहीं । औरशून्यरूपताआत्माको
होनेसेदुःखाभावरूपताकाभीसंभवहै ॥ समाधान ॥ वहबुद्धाराशून्य
क्याज्ञेयरूपहैअथवाज्ञातारूपहै । प्रथमपक्षतोनोंसंभवता । क्योंकिज्ञेय
पदार्थकोआत्मपनेकाअसंभवहै । विज्ञाताकोहीआत्मपनाहोताहै ।
यदिऐसेनमानें । तोघटादिकोंमेंभीआत्मताहुईचाहिये । औरद्वितीय

पक्षभीनहींसंभवता । क्योंकिज्ञानकायाश्रयकोज्ञाताकहतेहैं । शून्यको ज्ञानकाअनाश्रयहोनेसेज्ञातृत्वकाअभेदभवहै । औरशून्यकोज्ञानकाअनाश्रयपनाअशुक्तनहींहै । क्योंकिशून्यसर्वाभावकानामहै । औरअभावकोभावस्वरूपज्ञानकीअधिकरणताकाअसंभवहै । ऐसेकहींदेखानहीं जोअभावभीभावपदार्थकायाश्रयहो ॥ शंका ॥ यद्यपिअभावभावकायाश्रयप्रमाणसेनहींसंभवता । तथापिभ्रमसेतिनकाधर्मधर्मिभावसंभवताहै क्योंकिभ्रमकोकोईकार्यअशक्यनहीं ॥ समाधान ॥ हे शून्य वादिन्धर्मधर्मिभावकोआरोपितमानेहुए जिसकंसाथअन्वितरूपताकर आरोपितप्रतीतहोताहै । वहआरोपकाविषयअधिष्ठानप्रकृतआरोपमें अर्थात्ज्ञानतथाशून्यकेधर्मधर्मिभावमेंहै वानहीं । अंतिमपक्षकहोतो वहनहींसंभवता । क्योंकिअधिष्ठानसेबिनाकहींभीभ्रमनहींहोसकता । जिसकारणसेसर्वभ्रमोंमेंअधिष्ठानतथाअव्यस्तकाआकारमानहोताहै । औरअधिष्ठानहै । इसप्रथमपक्षमेंयहविचारकर्तव्यहै । क्या? शून्यसे भिन्नकोईअधिष्ठानहै । अथवाशून्यहीअधिष्ठानहै । प्रथमपक्षतोनहीं संभवता । क्योंकिअधिष्ठानसेभिन्नकोकल्पितहोनेकर शून्यमेंकल्पितत्वपूंसंगहोगा । औरशून्यहीअधिष्ठानहैयदिहृदितीयपक्षकहो । तोशून्यकरअन्वितहीसर्वघटादिपदार्थसर्वकोप्रतीतहुएचाहिये । जिसकारणसे जोअव्यस्तपदार्थहोताहै । तिसमेंअधिष्ठानकोअनुगतहोनेकरवहअव्यस्ततिसकेसाथतादात्म्यरूपताकरप्रतीतहोताहै । औरआरोपितमेंशून्यकीअनुगतिहैनहीं । क्योंकिआरोपितसत्वरूपसेहीप्रतीतहोताहै । अन्यथाशून्यंघटः “शून्यंघटः” ऐसीप्रतीतिहोनीचाहिये । किंवावहशून्यसर्वभ्रमोंकाअधिष्ठानहै । अथवाकिसीएकभ्रमकाअधिष्ठानहै । प्रथम

पक्षमेंतिसशून्यकीप्रतीतिकहनेयोग्यहै । क्योंकिसामान्यरूपतासेज्ञात कोहीअधिष्ठानपनायुक्तहै । औरवहअधिष्ठानकाज्ञानस्वतःहीहोताहै। अथवापरसेहोताहै । यहविचारकर्तव्यहै । इनमेंअंत्यपक्षतोनहींसंभवता। क्योंकिअधिष्ठानसेभिन्नअन्यसर्वपदार्थोंकीकल्पनासेप्रथमअसिद्धिहै । कल्पनासेप्रथमतिनकोसिद्धमानेहुएकल्पितपनेकीहानिहोगी औरयदिप्रथमपक्षकहोतोशून्यताकीहानिहोगी। क्योंकिशून्यकोज्ञानस्वरूपताकाअभावहोनेसेस्वतःसिद्धिकाअभावहै ॥ शंका ॥ शून्यकी स्वप्रकाशताकेअर्थतिसकोहमज्ञानस्वरूपहीमातलेंगे । जिसकारणसे अन्यथाऽनुपपत्तिसर्वसेबलवालीहोतीहै । अर्थयहशून्यकोज्ञानस्वरूपतासेबिनास्वप्रकाशताकीअनुपपत्तिहै । यातेशून्यज्ञानस्वरूपहै ॥ समाधान ॥ यदिशून्यकोतुमज्ञानस्वरूपमानोगे । तोस्वप्रकाशज्ञान जोसर्वजगत्काअधिष्ठानहै तिसकाशून्यहनामएकसंकेतमात्रहै । वहज्ञान वास्तवसे कोईशून्यरूपनहींहोगा क्योंकिवहभावस्वरूप है । औरकिसीविशेषभ्रमकाशून्यअधिष्ठानहै । यहपूर्वजोद्वितीयपक्षकहा था । वहभीनहींसंभवता । क्योंकिसर्वभ्रमकीअधिष्ठानताका अभाव होनेसेतिसशून्यकोव्यभिचारिपनाहै ॥ इसीसेवहआत्मानहीं । किंतु भावस्वरूपहीआत्माहै । इसप्रकार आत्माकोभावरूपहोनेसे दुःखाभाव रूपतानहींयहअर्थसिद्धहुआ।इति ॥

❀ अथआत्माकी सुखरूपताकानिषेध ❀

इसप्रकारआत्मामें दुःखाभावरूपताकानिषेधकरके अतिसमें सुखरूपताकाअभावनिरूपणकरतेहैं । यहांपरयहअनुमानजानना ।

आत्मानसुखरूपः अकार्यत्वात् । अकाशवत् ॥

दोनोंकोसमानहीहै॥समाधान॥ हेसिद्धांतिन् आत्माथौरसुखकेभेदका
 ग्राहक“अहंसुखी”यहजोप्रत्यक्षहै॥ तिसकाविरोधहोनेकरश्रुतित्रयकी
 अयोग्यताहोनेसेतिसकोऔपचारिकअभेदपरताहै।अन्यथा‘अहंसुखम्’
 इसप्रकारकिसीकोप्रतीतहुआचाहिये।औऐसीप्रतीतिकिसीकोनहींहोती
 इसलियेआत्माऔसुखकाभेदहै॥इति॥ अबआत्माकीअनुपादेयताके
 साधकअनुमानकोममाप्तकरतेहैं ॥ जिसकारणसेपूर्वउक्तयुक्तियोंकर
 आत्माकोसुखतथादुःखाभावसेभिन्नपनाहैतिसीकारणसेउपसर्जनरूप
 अनुपादेयहीआत्माहै । यातेयहअनुमाननिर्दोषसिद्धहुआ ॥(आत्मा
 अनुपादेयःसुखदुःखाभावेतरत्वात्घटादिवत्।वाव्यतिरेकसुखादिवत्)
 यहदृष्टीतजानना ॥ इति ॥ शंका ॥ आत्मामें“सुखदुःखाभावेतरत्व”
 रूपहेतुकेहोतेभीअनुपादेयत्व रूपसाध्यतिसमेंनहो ॥ इसप्रकारविप
 पक्षमानेहुएअर्थात्आत्मकोउपादेयमानेहुएकौनबाधकहै ॥ समा
 धान ॥ हेतुजिसपक्षमेंविद्यमानहोतिसमें साध्यकेसनहींहोगा किंतु
 अवश्यहोगा । यातेहेतुसाध्यकीसमव्याप्तिजहांहोतहांहेतुकेअभावहुए
 हीसाध्यकाअभावहोसकताहै।इसकारणसेहेतुकाअभावहीविपक्षमेबाध
 कहै । इसीअर्थकोस्पष्टकरतेहैं ॥ सुखतथादुःखाभावसेभिन्नऔरकोई
 पदार्थपुरुषार्थरूपनहींजिसकारणसेआत्माभीमुमुक्षुपुरुषोंकोउपादेयहो
 तात्पर्ययह । किंसुखतथादुःखाभावसेभिन्नकोईपदार्थ पुरुषार्थरूपहोता
 तोतिसमेंहेतुकाव्यभिचारहोनेकरउक्तहेतुसाध्यकानिश्चायकनहोता ।
 तिसीकारणसे पूर्वउक्तहेतुवालेआत्मामें पूर्वकथनकियाहुआअनुपा
 देयत्वरूपसाध्यभीसिद्धनहींहोगा । यातेआत्मासुमुक्षुपुरुषोंकोउपादेय
 होजायेगा सोयहप्रकारनहींसंभवता । क्योंकिसुखदुःखाभावसेअन्य

पदार्थकोपुरुषार्थरूपताका अभावहोनेसे “सुखदुःखाभावेतरत्व” हेतु
व्यभिचारीनहीं किंतु स्वसाध्यकानिश्चायक है ॥ याते साध्यके अभावहुए
हेतुका अभावही विपक्षमाननेमें बाधक है अर्थात् आत्मामें “सुखदुःखा
भावेतरत्व” हेतुको मानकर जो वादी तिसमें अनुपादेयत्वसाध्यनहीं मानता
तिसको हेतुका भी अभाव अवश्य मानना होगा ॥ इति ॥ शंका ॥
इस प्रकार विपक्षमें बाधकर्तृके विद्यमानहुए भी पुनः पूर्वोक्त अनुमानमें
“आत्मेतरत्व” उपाधितो है। और वह उपाधि अनुपादेयत्वरूपसाध्यके साथ
अव्यापक नहीं। क्योंकि उपाधिका अभावजो “आत्मत्व” है। तिसको
साध्याभावरूप उपादेयत्वके साथ व्यापन है ॥ याते जहां अनुपादेयत्व है।
तहां आत्मेतरत्व है” जैसे घटमें है। और जहां सुखदुःखाभावेतरत्व है। तहां
आत्मेतरत्व नहीं। जैसे आत्मामें है। इस प्रकार सोपाधिक होनेसे तुम्हारा हेतु
दुष्ट है संत हेतु नहीं ॥ समाधान ॥ हे सिद्धांति च आत्मत्वही परमपुरु
षार्थत्वका बोधक नहीं है। क्योंकि लोकमें आत्मा पुरुषार्थरूपतासे उपादेय
है ऐसे व्यवहारका अभाव है। और पक्षेतरत्वको उपाधिपना भी नहीं
संभवता ॥ यदि तिसको भी उपाधिरूप मान लें तो अनुमान मात्र का ही
संसारसे उद्बेद हो जायेगा ॥ क्योंकि पक्षेतरत्व उपाधितो सदनुमानमें
भी वर्त्तमान है ॥ याते वह उपाधि नहीं ॥ शंका ॥ पक्षेतरत्वको उपाधि
रूपतान माने हुए ।

❀ तेजोऽनुष्णः द्रव्यत्वात् रज्जुवत् ॥ ❀

इस अनुमानमें तेजोभिन्नत्वको उपाधिरूपता कैसे होगी ॥ क्योंकि
यह भी पक्षेतरत्वरूप उपाधि है ॥ समाधान ॥ इस अनुमानमें तेजकी
अनुष्णता प्रत्यक्ष प्रमाणकराधित है ॥ याते “तेजोभिन्नत्व” उपाधि

बाधोन्नीतहै अर्थयह बाधकर (उद्भावित) कहिये प्रगटहुआहै । औरप्रकरणमेंतो “आत्मेतरत्व” उपाधिबाधकरउद्भावितहेनहीं।क्योंकि लोकमेंयदि आत्मापुरुषार्थरूपतासे उपादेयहोतातो “पक्षेतरत्व” उपाधिबाधकरउन्नीतहोता। सोलोकमेंतिस प्रकारके व्यवहारकाअभाव है ॥ याते “आत्मेतरत्व” कोउपाधिरूपतानहींसंभवती ॥

शंका ॥ हेवादिअन्यरीतिकेअभावसेलोकमेंआत्माहीउपादेयकहने योग्यहै । क्योंकिआत्मासेभिन्नसर्वपदार्थअपुरुषार्थरूपहैं । और सुखादिकभीपुरुषार्थरूपनहीं। यदितिनकोभीपुरुषार्थरूपमानोगे । तो शत्रुकेसुखादिकोंमेंभीपुरुषार्थरूपताहुईचाहिये । औरयदिऐसेकहोकि आत्मसंबधिसुखादिकहीउपादेयहैं अन्यउपादेयनहीं सोयहकथनभी समीचीननहीं । क्योंकिआत्मीयत्व अर्थात्आत्मसंबधित्वविशेषण विशिष्टसुखादिकोंकोपुरुषार्थरूपमानेहुए आत्माहीपुरुषार्थरूपताकरव्यवहारकरनेयोग्यहै सुखादिकनहीं ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन् “सुखं मेत्यात् दुःखंभाभूत्”इसप्रतीतिसे आत्मसंबधिसुखतथादुःखाभावकोही कामनाकाविषयहोनेसेयहदोनोंहीपुरुषार्थरूपहैं । आत्मापुरुषार्थरूप नहीं । तात्पर्ययहहै। निरुपाधिकइच्छाकाविषयही पुरुषार्थरूपतासेउपादेयहोताहै।औरवहीपुरुषार्थरूपकहनेयोग्यहै।औरसुखतथादुःखाभावही कामनाकाविषयहोनेसेपुरुषार्थव्यवहारकेयोग्यहैं।औरयदियहकहोकि आत्मसंबधिसुखतथादुःखाभावहीपुरुषार्थरूपहैं केवलवहदोनोंपुरुषार्थरूपनहीं । सोयहकथनभीअसंगतहै । क्योंकिआत्माकोसुखतथा दुःखाभावकाअधिकरणहोनेसेकारकपनाहै । औरकारककोगौणहोने करवास्तवसेअनुपादेयताहै । यातेआत्मापुरुषार्थरूपनहीं ॥ शंका ॥

“सुखमेस्यात्” इसप्रतीतिसे आत्मीयसुखविषयणीकामनाप्रतीतहोती है । तहांसुखकीन्याईआत्माभीतिसकामनाकाविषयहै । यातेतिस आत्मामेंसुखउपाधिकीइच्छातुमकैसेकहतेहो ॥ समाधान ॥ “आत्मा मेस्यात्” इसप्रकारकीकामनाकिसीकोनहींहोती ॥ औरकामनाका अविषयपुरुषार्थरूपनहींहोता ॥ इसलियेसुखअनुपहितकेवलआत्मा मेंकामनाकाअदर्शनहै ॥ औरसुखउपहितआत्मामेंकामनाकादर्शनहै यातेसुखादिकहीकामनाकेविषयहैं। आत्माकामनाकाविषयनहीं। तिसीसे आत्मापुरुषार्थरूपताकरउपादेयनहीं ॥ शंका ॥

✽ आत्मलाभान्नपरंविद्यते ✽

अ० ॥ आत्माकेलाभसेउत्कृष्टऔरकोईलाभनहींहै ॥ और
आत्मकामः ८० व० अ० ६ प्रा० ४ ॥ ६ ॥ अ० ॥ आत्माकीकामनावाला पुरुषआसकामादिहोताहै ॥ इत्यादिश्रुतिकेवलसे आत्माकोकाम्यमानत। निश्चयहोनेसेपुरुषार्थरूपताहै ॥ समाधान ॥ यद्यपिपूर्वउक्तश्रुतिहमकोभी स्वीकारहै ॥ तथापिवहश्रुतिस्वनिष्ठअविरोधकीसिद्धिकेअर्थक्या? लोक व्यवहारकीअपेक्षाकरतीहैवानहीं ॥ यदिप्रथमपक्षकहोतोलोकमेंआत्म विषयणीकामनाकाअभावहै ॥ किसप्रकारवहश्रुतिआत्माकोकाम्य मानतासे पुरुषार्थरूपताको बोधन करेगी ॥ क्योंकियहआत्माकोई अलौकिक पुरुषार्थरूप तोहैनहीं ॥ यातेश्रुतिभी लौकिकव्यवहार को न उल्लंघन करके ही पुरुषार्थ रूपता को प्रतिपादन करेगी ॥ तेसेमानेहुए । “मंचाःकोशंति” अ० । मंचपुकारतेहैं । जेसेयह चाक्यलोकविरोधसेलक्षणावृत्तिकर अन्यअर्थकाप्रतिपादकहै । तेसे

लोकव्यवहारकेविरोधहुए पूर्वउक्तश्रुतिवाक्यभी औपचारिकहै ।
 अर्थात्सुखउपहितआत्मामेंही कामनाकीविषयताकाप्रतिपादकहै ॥
 केवलआत्मामेंनहीं ॥ शंका ॥ अपनेअर्थकेबोधनकरनेमेंश्रुतिलोक
 व्यवहारकीक्यों अपेक्षाकरतीहै । यदिकहोकि विरोधपरिहारकेअर्थ
 अपेक्षाकरतीहै । तोयहकथननहींसंभवता । क्योंकिलोकव्यवहारका
 बाधकरकेभी विरोधकापरिहारसंभवहोसकताहै । औरश्रुतिलोकव्यव
 हारकरबाधकेयोग्यनहीं । क्योंकिवहस्वार्थमेंतात्पर्यवालीहै । याते
 श्रुतिकोलोकव्यवहारकीकिंचित्मात्रभीअपेक्षानहीं ॥ समाधान ॥ यदि
 लोकव्यवहारकीश्रुतिअपेक्षानहींकरती यहद्वितीयपक्षस्वीकारकरोतो
 अलौकिकहोनेसे स्वर्गकोभी मुखरूपतानहीं सिद्धहोगी । क्योंकि
 लोकव्यवहारकीअपेक्षानकरेहुए (ज्योतिष्मेनस्वर्गकामोयजेत)
 इसवाक्यमेंकामनाका विषयभूतस्वर्गप्रथम पुरुषार्थरूपप्रतीतहोताहै ।
 यहवास्तवमर्यादाहै । तहांकेवलवेदकरप्रतिपादितहोनेकरस्वर्गकोपुरु
 षार्थरूपमानेहुए तिसको मुखरूपतानहींसिद्धहोगी । क्योंकिसुखमें
 स्वर्गपदकावेदने संकेतनहींकिया । औरयदिलौकिकपुरुषार्थव्यवहार
 कोवेदअनुसरणकरताहै ॥ तोलोकमेंसुखतथादुःखाभावकोहीपुरुषार्थ
 पनाहै । तिनमेंभीस्वर्गकोदुःखाभावरूपतामाननेमेंगौरवहै । क्योंकि
 प्रतियोगिआदिकोंकी कल्पनाकरनीलगतहै । इसलियेभावरूपसुख
 रूपताहीस्वर्गमेंयुक्तहै ॥ औरस्वार्थमेंतात्पर्यवालीहोनेसे श्रुतिलोक
 व्यवहारकाबाधकहै ॥ यहकथनभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिस
 मुन्चयकरलोकव्यवहार तथाश्रुतिकोप्रमाणताके सिद्धहुएदोनोंमें

एककेवाधकीकल्पनाअथुक्तहै ॥ शंका ॥ (ज्योतिष्टोमेनस्वर्गकामो यजेत)इसस्वर्गकामश्रुतिमेंश्रवणकियेहुएस्वर्गकोलोकव्यवहारकीअनुसारतासेसुखरूपताहै ॥ यहलुम्हाराकथनअथुक्तहै ॥ क्योंकि ॥

यन्नदुःखेनसंभिन्नं नचग्रस्तमनंतरम् ।

अभिलाषोपनीतंच तत्सुखंस्वःपदास्पदम् ॥ १ ॥

अ० ॥ जोदुःखकरमिश्रतनहींहै । औरअभावरूपनहींतथाअंत रायसेरहितजोहै । औरअभिलाषाकाजोविषयहैसोसुख स्वर्गशब्दका अर्थहै ॥ इत्यादिअर्थवाद स्वर्गकीसुखरूपताकाग्राहक विद्यमानहै । तिसीकारणसेआत्मकामादिक श्रुतिकेवलसेकामनाका विषयजोआत्माहै वहपुरुषार्थरूपताकर उपादेयहीहै ॥ समाधान ॥ यहआत्मा कीपुरुषार्थरूपतालोकसे विलक्षणभूतक्याहै । जिससेइसलोकके सुखतथातिनकेसाधन वनितादिक औरपरलोकमें होनेवालेस्वर्गादि सुखतथातिनकेसाधनयागादिक इनसर्वकोत्यागकर जन्मसेलेकरब्रह्म चर्यादिरूपसकलदुःखोंके समूहसेअपनेआपको यहपुरुषक्लेशयुक्त करताहै।यद्यपिपरमपुरुषार्थकीकामनासेइनसर्वक्लेशोंकासहनसंभवताहै तथापियहअलौकिकपुरुषार्थरूपआत्माहै इसप्रकारकेकथनमात्रसेही यहपुरुषअपनेआपकोकृतार्थमानताहै । कोईलोकसेअथवास्वअनुभव सेआत्माकोपुरुषार्थरूपताकीसिद्धि नहीं । किंतुकेवलवेदमात्रसेही सिद्धिहै । तैसेमानेहुएअसिद्धविषयसुखकोत्यागकर अग्रसिद्धपुरुषार्थ काउद्देश्यकरकेब्रह्मचर्यादिक्लेशकासहनकरनाबुद्धिमानोंको युक्तनहीं यहभावहै ॥ इसीसेरागीपुरुषोंने यहकहाहै ॥

❀ वरवृंदावनेशून्येशृंगालत्वंसइच्छति ।

नतुनिर्विषयंमोक्षमंतुमर्हतिगौतम॥१॥❀

अ० ॥ हेगौतमवहरागीपुरुषयहइच्छाकरताहै ॥ किशून्यवृंदा वनमेंशृंगालअर्थात्गीदड़होनाथेष्टहै ॥ परन्तुवनितादिविषयोंसेहीन मोक्षमाननेयोग्यनहीं ॥१॥किंवा॥ यदियहआत्माहीपुरुषार्थरूपहोतो

❀ अकेचेन्मधुविंदेत्किमर्थपर्वतंत्रजेत् ।

इष्टस्यार्थस्यसंप्रप्तौकोविद्वान्यत्नमाचरेत्१॥❀

अ० ॥ यदिअपनेगृहकेकोनेमेंहीमधुप्राप्तहोतोयहपुरुषपर्वतपर किसलियेगमनकरे किंतुनहींकरता ॥ तैसेयत्नसेविनाहीवांछितअर्थ केप्राप्तहुएकौनविद्वान्यत्नकरे किंतुनहींकरता ॥१॥ इसन्यायसेप्रयत्न विनाहीप्राप्तजोअपनाआत्माहै तिसकोत्यागकरविषयजन्यसुखकेलोभ सेमनुष्य किसलिये प्रयागादितीर्थों में प्राणों का त्याग करते हैं याते प्रयागादितीर्थोंमें मरनेके अर्थजोतिनकी प्रवृत्तिहै ॥ वहआत्माकीअपुरुषार्थरूपताकोबोधनकरतीहै ॥ इसकारणसेआत्मा उपादेयनहीं ॥ शंका ॥ तिनकीमरणमेंप्रवृत्तिमात्रप्रमाणरूपनहींहो सकती ॥ क्योंकिप्रमाणमूलकप्रवृत्तिकोहीप्रमाणरूपताहै अन्यथा अतिप्रसंगहोगा ॥ अर्थात्प्रवृत्तिमात्रकोप्रमाणतामानेहुए जलार्थी पुरुषकीभरुस्थलमेंजोभ्रमसेप्रवृत्तिहोतीहै तिसकोभीप्रमाणताहुईचाहिये औरप्रयागादितीर्थोंमेंजाकरप्राणत्यागनेमेंकोईप्रमाणभीनहींहै । क्यों किआत्महननकानिषेधकरनेवालेशास्त्रकाविरोधहै ॥ समाधान ॥ प्रयागादिकोंमेंप्राणत्यागकरनेवालेपुरुषभ्रान्तनहीं हैं । क्योंकिशास्त्र नेहीप्रयागादिकों मेंमरणकाअनुमोदनकियाहै ॥

नलोकवचनात् तातनवेद वचनादपि ।

मतिरुत्क्रमणीयाते प्रयागमरणांप्रति ॥ १ ॥

अ० ॥ हे प्यारे लोको के कथन से तथा वेद के वचन से भी तुमको प्रयाग में मरण की बुद्धि त्याग करने योग्य नहीं । किंतु अवश्य प्रयाग में प्राणों का त्याग करना ॥ इति ॥ केवल शास्त्र ही प्रयाग में मरण का अनुमोदन नहीं करता किंतु लोक भी इसका अनुमोदन करते हैं । और आत्मा के हनन का निषेध करने वाले शास्त्र का भी विरोध नहीं । क्योंकि तिस आत्महनन के निषेधक शास्त्र को उत्सर्गता अर्थात् गौणता है । और प्रयागादिकों में मरण को कथन करने वाला शास्त्र अथवा दूर है । और विशेष शास्त्र से सामान्य शास्त्र का बाध हो जाता है । याते किंचित् भी विरोध नहीं । तिसी से आत्मा पुरुषार्थरूप नहीं । किंतु विषयजन्य सुख ही पुरुषार्थरूप है । यह सिद्ध हुआ ॥ इति ॥

✽ अथ दुःखाभावकी पुरुषार्थ रूपता का निरूपण ॥ ✽

और दुःखाभाव भी लोक प्रवृत्ति से आत्मा की अपेक्षा कर पुरुषार्थरूप है । अब इसी को स्पष्ट करते हैं । कुष्टादि रोग युक्त मनुष्य दुःखाभाव का उद्देश्य करके प्राण त्याग करते हैं । यह वार्त्ता सर्व लोक में प्रसिद्ध है । याते दुःखाभाव भी सुख की न्याय पुरुषार्थरूप है । आत्मा पुरुषार्थरूप नहीं ॥ शंका ॥ हेवादि न आत्मा की अपुरुषार्थरूप होने से तो क्या? अनात्मा ही पुरुषार्थरूप है ॥ समाधान ॥ अनात्मा ही पुरुषार्थरूप हो इसमें क्या संशय है ॥ शंका ॥ यदि अनात्मा को ही पुरुषार्थरूप मानोगे । तो अनात्मपने की तुल्यता से दुःखादिक भी पुरुषार्थरूप हुए चाहिये ॥ समाधान ॥ हेः सिद्धांतिन् । सुख तथा दुःखाभाव और दुःखन के साधन पुत्र स्त्री गृह क्षेत्र पशु

सुखार्थादिकजोहैं । तिनकोउपादेयत्वअनिदितहै । औरदुःखादिक निदितहोनेसेउपादेयनहींहैं ॥ शंका ॥ इसलोकतथापरलोककेसर्व सुखऔतिनकेसाधनोंकीउपादेयताकोजोअनिदितपनाहै । वहअनिदितपनाक्या?पामरोंकीदृष्टिसेहै । अथवापरीक्षकोंकीदृष्टिसेहै । प्रथम पक्षतो नहींसंभवता । क्योंकिपामरोंकीदृष्टिसेअनिदितपनाकिसीअर्थ कासाधकनहीं । औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता । क्योंकिइसलोक तथापरलोककेसुखऔतिनकेसाधनोंकोत्यागकरपरीक्षकपुरुषआत्ममात्र काउद्देश्यकरकेश्रवणादिकोंमेंप्रवृत्तहोतेहैं । इसकारणसेतिनकीदृष्टि करअनिदितपनेकीअयोग्यताहै ॥ समाधान ॥श्रवणादिकोंमेंप्रवृत्ति वालेपुरुषपरीक्षककनहींकिंतुवहभ्रांतहैं । औरयदि तुमऐसेकहो कि तिन कीप्रवृत्तिभीश्रुतिमूलकहै भ्रममूलकनहीं । यातेवहपरीक्षकहैं । तिन कोत्रातिशुक्ततुमकैसेकहतेहो तोहमभीयहकथनकरसकतेहैं । किपर लोककेसुखअर्थप्रवृत्तिभीश्रुतिमूलकहीहै । भ्रममूलकनहींयातेनिदित नहीं । यद्यपिऐसेमानेहुएआत्मातथासुखादिइनदोनोंकोहीपुरुषार्थ रूपताकहनेयोग्यहै । तथापि ॥

*** बहुनामनुग्रहोन्यायः ॥ ***

अ० ॥ बहुर्तोकाअनुग्रहयुक्तहोताहै । इसन्यायसेपारलौकिक सुखादिकोंकेअर्थसाधनअनुष्ठानकरनेवालेबहुतहैं । तिनसेविरोधहुए दोवातीनपुरुषजो श्रवणादिसाधनोंकेअनुष्ठानहैं । तिनकोभ्रांतपना युक्तहै । औरतिनकीप्रवृत्तिकामूलभूतजोश्रुतिहैतिसकोअन्यअर्थकीबोध कताहै । अर्थात्दुःखाभावका उद्देश्यकरकेश्रवणादिकों मेंप्रवृत्तिको

वहश्रुतिबोधनकरतीहै । यातेतिसकास्वार्थमेंतात्पर्यनहीं । इसप्रकार ।
आत्माअनुपादेयःसुखदुःखाभावेतरत्वात्दुःखादिवत् ।

इसअनुमानमें “पक्षेतरत्व” कोउपाधिपनेकाअभावऔरतिसको
बाधकरउद्भावितत्वकाअभावइननेग्रंथसमुदायसेस्थापनकिया ॥ शंका ।

• आत्मापुरुषार्थःसुखरूपत्वात् । विषयानंदवत् ॥

अ० ॥ आत्मापुरुषार्थरूपहै ॥ सुखस्वरूप होने से जो
जो सुखरूपहै सोसोपुरुषार्थरूप है । जैसे विषयानंदहै । इस
प्रतिपक्षाज्जुमान के विद्यमानहुए पूर्वपक्षीका अनुमान सत्प्रति
पक्षहोनेसेदुष्टहै । औरआत्माकीसुखरूपता श्रुतिमेंभीप्रसिद्ध है
। क्योंकि (विज्ञानमानंदब्रह्म) इसश्रुतिमेंब्रह्मस्वरूप आत्माको
थ्यानंदस्वरूपकहाहै । यातेआत्माहीपुरुषार्थरूपहै ॥ समाधान ॥ हे
सिद्धांतित्नात्माकीथ्यानंदरूपताकोश्रुतिकथनकरो । परन्तुकथनमात्र
सेआत्माकीपुरुषार्थरूपता सिद्धनहींहोसकती क्योंकिपूर्वउक्तयुक्तिसे
सुखरूपतानहींसंभवती ॥ शंका ॥ सुखरूपताकेहुए फिरआत्माको
पुरुषार्थरूपताक्यों नहींसंभवती ॥ समाधान ॥ आत्माकोसुखरूप
मानेहुएक्यावहयात्माहीस्वतंत्रपुरुषार्थरूपहै । अथवासुखरूपआत्मामें
समवायसंबंधसेरहनेवालाकोईअन्यसुखवहपुरुषार्थरूपहै । इनमेंप्रथम
पक्षतोनोंसंभवता । क्योंकिसुखमात्रहीपुरुषार्थनहीं किंतुस्वसंबंधि
रूपतासे तिससुखकोपुरुषार्थपनाहै । अन्यथाशत्रुकेसुखकोभीपुरु
षार्थरूपताप्राप्तहुईचाहिये । औरयभेदमेंस्वसंबंधिपनाभीनहींसंभवता ।
तिसकारणसेसुखरूपआत्मास्वतंत्रपुरुषार्थरूपनहीं । यातेप्रतिपक्षाज्जु
मानसाधुनहीं । औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता । जिसकारणसेसुख

हीसुखका पुरुषार्थनहीं होसकता । क्योंकि सुखरूपआत्माकोस्वरूपसुखकरहीतृप्ति है । तिसकोऔरसुखविषयककामनाकी अयोग्यता है । यातेसुखरूपआत्माकाऔरकोईसुखपुरुषार्थनहींसंभवता ॥शंका॥
 आत्माअनुपादेयहै यहअर्थतुमनेबहुतयुक्तियोंसेसिद्धकिया । और विषयानंदभीबहुतदुःखोंकरमिश्रतहोनेसेअनुपादेयही है । तैसेमानेहुए सुखकाउद्देश्यकरके यागादिसाधनोंमेंकोईभी पुरुषप्रवृत्तनहींहोगा ॥ समाधान ॥ यहआपकाकथनसत्यहै जोसांसारिकसुखदुःखसेमिला हुआहै । तथापिपुर्वउक्तयुक्तिसेआत्मातोप्रथमअनुपादेयहीहै । याते अन्यगतिकेअभावसेसुखमेंजिसप्रकारदुःखकासंबंधनहोतिसप्रकारपुरुषों कोयत्नकरनायोग्यहै । औरदुःखकेसंबंधकाभयहोनेकरसुखकात्यागकरनायोग्यनहीं । जैसेकोईकहेकि “भिक्षुकोकैभयसेहमस्थालीनहीं अधिश्रयणकरते”अर्थात्अन्नहीनहींपकाते।सोयहकथनयुक्तनहीं।क्यों किअन्नकापाकनहोनेसेमरणप्रसंगहोगा । तैसेहीजबदुःखआजायतो वहपरिहार करनेयोग्यहै तिसकेभयसेसुखकात्यागकरनाउचितनहीं । किंतुसुख उपादेयहीहै ॥ शंका ॥

❀ आत्मावाजरेद्रष्टव्यःश्रोतव्योमंतव्यःनिदि

ध्यासतव्यः । व० उ० अ० (६)ब्रा० ५ कं०॥६ ❀

इसवाक्यमेंप्रथमग्रहणकियाजोआत्मदर्शनहै । तिसकाअनुवाद करकेश्रवणादिसाधनविधानकियेहैं । तिसवाक्यमेंआत्मज्ञानकोस्वतः फल रूपता तो प्रतीत नहीं होती ॥ क्योंकि वह पुरुषार्थरूप नहीं औरसुमुक्तकोतिसमेंअधिकारीहोनेसेमोक्षहीतिसकाफलहै।यहकथनभी नहींसंभवता॥क्योंकिआत्माकेस्वरूपसेभिन्नमोक्षकाअभावहै।औरआ

त्मासेभिन्नमोक्षकोजन्यमानेहुएअनित्यपनेकीभीप्राप्तिहोगी।इसप्रकार
श्रवणविधिकीअन्यथाऽनुपपत्तिसे आत्माहीपुरुषार्थरूपहै दुःखाभावा
दिकपुरुषार्थरूपनहीं॥ समाधान॥ आत्मासेभिन्नहीपुरुषार्थश्रवणादि
साधनोंकेअनुष्ठानकाफलहै।आत्मातिनसाधनोंकाफलनहीं।क्योंकिति
सकोअजन्यहोनेसेअनित्यपनानहींहै।औरतिसकीअभावरूपताभीस्वी
कारनहीं है।यातेआत्मासेभिन्न आत्यंतिकदुःखकीनिवृत्तिहीमोक्षहै।तिस
केअर्थहीश्रवणादिविधिहै। इससेश्रवणादिविधिआत्माकोपुरुषार्थरूप
माननेसेविनाअन्यथाही उपपन्नहै। इसप्रकारविषयानंदऔरदुःखाभाव
यहदोनोहीपरमपुरुषार्थरूपतासेउपादेयहैं ॥ आत्माउपादेयनहीं।
यहअर्थसिद्धहुआ ॥ इति ॥ २५ ॥ पूर्वपक्षकेसंग्रहकाश्लोक ❀

दुःखाभावोनायमात्मा सुखंनापिसङ्ग्यते ।

मुमुक्षुभिरयंतस्मादुपादेयः कथंभवेत् ॥ १ ॥

दो० ॥ दुःखाभावनहिआतमासुखपुन यहनहिहोय ।

तातेमुमुक्षुजननकसिपादेय किमहोय ॥ १ ॥

❀ इतिपूर्वपक्ष ॥ ❀ अथासिद्धान्त ❀

❀ पूर्वपक्षकेअनुवादपूर्वक आत्माकीपुरुषार्थ

रूपताका मंडन ❀

यहजोपूर्वपक्षीनेकहाथा । किआत्माअनुपादेयहै ॥ सुखतथा
दुःखाभावसेअन्यहोनेसे । दुःखादिकोंकीन्याई । तिसमेंअन्यपदार्थोंमें
जोअनुपसर्जनअर्थात्प्रधानहै । सोउपादेयहै । औरतिससेभिन्नको
अनुपादेयताहै । औरआत्माभीसुखादिकोंका शेषहोनेसेउपसर्जनहै।
यातेअनुपादेयहै । इसकथनको दूषितकरनेकेलियेसिद्धांतीइसमें

अनेकहेतुओंको संग्रहकरताहै ॥

मू०। यथात्मासर्ववस्तूनांयदर्थसकलंजगत् ।

आनंदाब्धिः स्वतंत्रोसावनादेयः कथं वद ॥२६॥

दो० ॥ सकलवस्तुकोआत्मा जाहिलियेजगहोय ।

आनदसिन्धुसुतंत्रसो ताहि त्यागकतहोय ॥ २७ ॥

टी०॥ हेवादिन्वहआत्माअनुपादेयहै यहलुमनेकैसेकथनकिया सोलुमकहो ॥ शंका ॥ हेसिद्धांतिन्इसअर्थमें कौनसीअनुपपत्तिहै जिसकारणसेपूर्वउक्तअनुमानसे यहअर्थसिद्धहैअर्थात् आत्माअनुपादेयहै ॥समाधान॥ हेवादिन्आत्माकोअनुपादेयत्वनहींसंभवता । क्योंकियहआत्मा “स्वतंत्रहै” अर्थात् अन्यसर्वपदार्थोंमेंप्रधानहै ॥ तैसेमानेहुएपूर्वउक्तअनुमानमेंत्राधप्राप्तहुआ । यहभावहै ॥ शंका ॥ आत्माकोसर्वसेप्रधानथापकैसेकहतेहो ॥ जिसकारणसेसर्वआत्मादिपदार्थसुखतथा दुःखाभावकेशेपहैं ॥ समाधान ॥ हेवादिन्जिसकेअर्थसकलजगतहै सोआत्माहीप्रधानहै ॥ तात्पर्ययह । किजवसर्वहीजगत्आत्माकेअर्थहुआ आत्माकाशेपहैतोजगत्काएकअंशरूपजो सुखतथादुःखाभावहैं । तिनकोआत्माका शेषहोनेमेंक्याहीकथनकरनाहै । यहअर्थअभियुक्तपुरुषोंनेभीकहाहै ॥

(सुखंचपुरुषार्थत्वात्)अ०। सुखतथादुःखाभावआत्माकेअर्थहोनेसेआत्माकाशेपहै ॥ इति ॥ औरआत्मासेभिन्नसकलपदार्थोंको ‘परार्थत्व” अर्थात्आत्माकाशेपपनाहै । इसप्रकारवैशेषिकादिकभी कहतेहैं ॥ तिसकारणसेसर्वजगत्आत्माकेअर्थहै ॥ किंवा “सुखदुःखाभावेतरत्व” हेतुभीस्वरूपासिद्धहै ॥ क्योंकियहआत्मा (आनंदाब्धिः)

निरतिशयसुखकासमुद्रहै ॥ अर्थात्निरतिशयसुखस्वरूपहै ॥ अंशतिस
 आत्माकीदुःखाभावरूपताकोकथनकरतेहैं ॥ औरजो घटादिकसर्व
 पदार्थोंका (आत्मा) स्वरूपहै ॥ तिससेभिन्नकरकेघटादिकोंकोकोईभी
 निरूपणनहींकरसकता ॥ इसीसेवहअसत्है ॥ तिससेभिन्नअसत्का
 जोअभाववहसत्स्वरूपहीहै ॥ जैसेकल्पितसर्पकाअभावसत्स्रज्जुस्वरूपहै ॥
 औरअभावकेअभावको भावरूपताहीस्वीकारहै ॥ औरभावरूपसत्
 पदार्थहीआत्माहै । इसप्रकारकल्पितदुःखकाअभावआत्मारूपहोनेसे
 आत्माहीदुःखाभावरूपहै ॥ यातेकिसप्रकारतुम्हाराअनुमानस्वरूपा
 सिद्धनहीं किंतुस्वरूपासिद्धहै ॥ २६ ॥ अवकारिकाकेप्रथमपादका
 अर्थउपपादनकरतेहैं ॥

मू-यदन्यत्त्वस्तुतत्सर्वंयद्भेदेनरशंगवत् ।

सत्तासर्वपदार्थानामनादेयःकथंवद ॥२७॥

स्वैयाछंद-तंतु भिन्न कीये जिम पटको रूपनकिंचित होवत भान ।

मृदजन मृदसे होत किनारे तुच्छ रूपहोवत हियजान ।

तिम यहविश्व आत्मते न्यारो वंध्यासूनतुल्य पहचान ।

सकलपदार्थकी जो सत्ताअनादेयसोकहविधगान ॥२८॥

टी० ॥जिसआत्मासेभिन्नरूपताकरखादियोंनेजोघटादियदार्थस्वी

कारकियेहैं।वहसर्वहीजिसआत्मासेभिन्नकियेहुएनशृंगकेसमानअसत्

होजातेहैं ॥ इसीसेसर्वघटादिपदार्थोंकाआत्माहीवास्तवस्वरूपहै ।

औरआत्माकोहीसर्वपदार्थोंकास्वस्वरूपमानेहुए अपनेस्वरूपविषयक

सर्वकोही प्रेमहोताहै॥यातेवहआत्माहीपुरुषार्थरूपतासेउपादेयहै। वह

अनुपादेयतुमकिसप्रकारकहतेहो ॥२७॥ अवकारिकामेंकथनकीयेहुए

“स्वतंत्र” पदकाव्याख्यानकरतेहैं ॥

मृ०—यद्वशेप्राणिनःसर्वेब्रह्मादयःकृमयश्चये ।

ईशानःसर्वभूतानामनादेयःकथंभवेत् ॥२८॥

यच्चचक्षुःसर्वभूतानांमनसोयन्मनोविदुः ।

यज्ज्योतिर्ज्योतिर्पादेवनोपादेयःकथंविभुः॥२९

स्वै—ब्रह्मातेकूमिलों जग जेतो जाँके वशमें वरतेनीत ।

सर्वविश्वकोईशयहैजोताकोत्यागनकाँनेरीत ॥

सर्वभूतकोचक्षुजोहैमनकोमनश्रुतिभापेगीत ॥

ज्योतिनकाज्योतीहैजोऊअनादेयसोकिस्त्रिधकीत ॥२९॥

टी० ॥ शंका ॥ जोसत्तास्फूर्ति देनेवालाहो वह अधिष्ठान होता है ॥ अन्यनहीं । और ईश्वरही सर्वकोसत्तास्फूर्ति देताहै । याते वही अधिष्ठानहै आत्मा अधिष्ठान नहीं । इस से आत्मा घटादिपदार्थोंकोकैसेसत्तास्फूर्ति देनेवालाहोगा ॥ समाधान ॥ हेवादिन्आत्माहीअज्ञानके वशसेईश्वररूपताकोप्राप्तहोताहै । इसी अभिप्रायसेयहकहाहै । ब्रह्मासेलेकरकृमिपर्यन्तसर्वप्राणीजिसके आधीनवर्ततेहैं । औरसर्वभूतोंकाजोनिर्गताहै वहआत्माकैसेअनुपादेयहोसकताहै किंतुनहींहोसकता ॥ २८ ॥ अबसत्तास्फूर्तिप्रदत्वरूप अधिष्ठानताकेस्फुटकरनेकेलिये तिसआत्माकी प्रकाशकरूपताको कहतेहैं । औरजोआत्मासकलभूतोंका नेत्रअर्थात्प्रकाशकहै । और मनकाभीजोमनअर्थात्सान्तिरूपहै ऐसेजिसकोब्रह्मवेत्ताजानतेहैं । औरसूर्यादिकज्योतिर्योंकाभी ज्योतिअर्थात्प्रकाशकहै । वहस्वप्रकाशव्यापकआत्माकैसे उपादेयनहींकिंतुवही उपादेयहै (२९) अब

कारिकोमेंजोआनंदाविपदहै तिसकीव्याख्याकरतेहैं ।

मू०॥ मोदप्रमोदपक्षाभ्या मानंदात्मातमोगतः।

जीवयत्याखिलाँल्लोकान्नोपादेयःस्वयंकुतः३०

यस्यानंदसमुद्रस्य लेशमात्रंजगत्गतम्।

प्रसृतं ब्रह्मलोकादौ सुखाब्धिकःपरित्यजेत्॥३१॥

स्वै०॥ तमउपाधियुतहोकर आत्मप्रिपुनमोदप्रमोदहहोय ।

अखिललोकजीवावनकर्ता ताकोत्यागकहोकिमहोय ॥

जासुखसागरकीइकविंदू पसरीतीनलोकमेंजोय ।

ब्रह्मलोकादिमेंपुनपसरी अससुखसागरतजेनकोय ॥३०॥

टी० ॥ आनंदस्वरूपआत्माही अज्ञानउपहितहुआप्रियऔरमोदतथाप्रमोदादि रूपशिरुतथा पर्क्षादिकल्पनाकोप्राप्तहोताहै । यहांइष्टवस्तुकेदर्शनसेजोआनंद होताहैतिसकोप्रियकहतेहैं । औरइष्टवस्तुकेलाभसेजोआनंदहोताहै । तिसकोमोदकहतेहैं । औरइष्टवस्तुकेभोगसेजोआनंदहोताहै । तिसकोप्रमोदकहतेहैं । सामान्यसुखकोआनंदकहतेहैं । औरजोआत्मासर्वप्राणिमात्रको स्वस्वरूपसुखकीमात्राको देकरजीवावताहै ॥ अर्थात्सुखयुक्तकरताहै वहआपअनुपादेयकैसेहोसकताहै ॥ ३० ॥ इसकारिकाकेउत्तरार्द्धका अर्थहीउत्तरकारिका मेंस्पष्टकरतेहैं । जिसआत्मानंदरूपसमुद्रका लेशमात्रआनन्दसकल जगत्मेंअनुस्यूतहै । औरब्रह्मलोकादिकोंमेंजो आनंदलेशव्याप्त होरहाहै । ऐसेआनंदकेसमुद्रआत्माकोकौन बुद्धिमानत्यागकरसकता हैकिंतुनहींकरसकता॥३१॥अथआत्माकीसुखरूपतामेंऔरहेलुकहतेहैं।

मू०॥ हैरण्यगर्भमैश्वर्ययास्मिन् दृष्टे तृणायते।

सीमासर्वपुमर्थानामपुमर्थः कथं भवेत् ॥ ३२ ॥

यत्कामाब्रह्मचर्य्यत इन्द्रादयः प्राप्तसंपदः ।

स्वस्वभोगंत्यजंत्येवमपुमर्थः कथं नृणाम् ॥ ३३ ॥

स्वै-जिसकेदेखेब्रह्मलोकगतजोऐश्वर्य्यसुतृणवत्होय ।

सबपुरुषार्थकीजोअवधी कहोदुःखतामेंकिमुहोय ।

धारपुरंदरजांकीवाञ्छास्वर्गभोगदीनेसबखोय ।

ब्रह्मचर्य्यतनधारनकीनो कहोदुःखमेंकैसे होय ॥ ३१ ॥

टी० ॥ जिसआनंदस्वरूपआत्माकेसाक्षात्कारहुएहिरण्यगर्भ

कीविभूतिशुष्कतृणकेसमानभासतीहै । औरजोसर्वपुरुषार्थोंकीअवधि

है ॥ वहआत्माअपुरुषार्थरूपकेसेहोसकताहै किंतुनहींहोसकता ३२॥

शंका ॥ आत्मासकलपदार्थोंकीअवधिहै ॥ यहआपनेकैसेकहा ॥

क्योंकि (इदिपरमैश्वर्य्ये) अ० इदिधातुपरमैश्वर्य्यार्थमेंहै ॥ इसपाण

निमुनिकीस्मृतिसेइन्द्रादिकोंकीसंपदाहीपरमपुरुषार्थरूपहै आत्मापरम

पुरुषार्थरूपनहीं ॥ तात्पर्य्ययह इदिधातुसेइन्द्रशब्दसिद्धहोताहै।इसलिये

परमऐश्वर्य्यवान्इन्द्रशब्दकाअर्थहै। यातेतिनकीसंपदाको परमपुरुषार्थ

रूपताकाकथनसंभवताहै ॥ समाधान ॥ हेवादिनजिसआत्माकी

कामनाकरकेइन्द्रादिकमहान्संपदाकीप्राप्तिवालेहुएभीब्रह्मचर्य्यकोधारण

करतेहुएअपनेअपनेभोगोंको त्यागतेभये यहवार्त्ता

मघवान्प्रजापतौब्रह्मचर्य्यमुवासा। छां० अ० (८) खं० (१०) कं० (३)

अ०॥इन्द्रब्रह्माजीकेसमीपब्रह्मचर्य्यव्रतकोधारणकरनिवासकरता

भया । इसश्रुतिमेंप्रसिद्धहै । जबइन्द्रादिकभीतिसआत्माकोपरमपुरु

षार्थरूपमानतेहैं॥तोमनुष्योंकोयहआत्माअपुरुषार्थरूपकेसेहोसकताहै

किंतु नहीं हो सकता ॥३३॥ शंका ॥ यदि आत्मा ही परम पुरुषार्थरूप है । तो स्वतः प्राप्तिस आत्मा को त्याग कर स्वर्गादिसुखके अर्थसाधनों का विधान वेदने क्यों किया है । इससे प्रतीत होता है कि आत्मा पुरुषार्थरूप नहीं ॥ समाधान ॥ हेवादि न्यहशं का भी नहीं संभवती क्यों कि—

सू० । यद्विद्वक्षाफलाः सर्वा वैदिक्यो विविधा क्रियाः ।

यागाद्याविहितास्तस्मिन्नुपेक्षावदते कथम् ॥३४॥

यद्वद्विद्वक्षाफलाः सर्वाः कामाद्याः दुःखसूचकाः ।

विनश्यन्ति क्षणेनासावुपादेयः कथं नते ॥३५॥

सू० ॥ वेदविहित शुभकर्मन को फल जां हि दशकीप्यासाचीन ।

ताके विपेत्यागकी इच्छा कहो कौन करसके प्रवीन ॥

कामादिक सब दुखके कारन जां कि दर्शन होवत छीन ।

सो आनंदस्वरूपी आत्म उपादेय तुम कथं न कीन ॥ ३२ ॥

टी० ॥ जिस आत्मा के दर्शन की इच्छा ही नाना प्रकार की वेदोक्त सर्व यागादिविहित क्रियाओं का फल है । तो तिस आत्मामें तुमको उपेक्षा बुद्धि कैसे हुई है । यह तुम कहो । तात्पर्य यह कि—

* तमेतं वेदानुवचनेन ❀ (ब० उ० अ० ६ ब्रा० ४ क० २२)

इत्यादि श्रुतिकेवलसे विहित यागादिक्रिया का अंतस्करणीय शुद्धिद्वारा आत्मजिज्ञासा ही फल है । स्वर्गादितिसक्रिया का फल नहीं ॥ और स्वर्गादिकों का जो फलरूपतासे श्रवण है वह अज्ञानी पुरुषों को प्रोचन करने के लिये है । अर्थात् तिनसे निषिद्ध कर्मों का त्याग कराकर शुभकर्मों में प्रवृत्तिके अर्थ वेदतिनको स्वर्गादिकों का लोभ दिखलाता है ॥ यदि ऐसे न माने ॥ तो सर्व प्रकारसे सत्यवादी और सकलार्थका प्रकाशक

जो वेदवह क्षीणता तथा अनित्यत्वादि दोष युक्त होने से अपुरुषार्थरूप जो स्वर्गादिति न का उद्देश्य करके यागादिकों को कैसे विधान करेगा ॥ किंतु नहीं करेगा ॥ तिस कारण से अज्ञानों के प्ररोचन अर्थ ही स्वर्गादिकों का श्रवण है फल के अर्थ नहीं। या तो कोई विरोध नहीं ॥३४॥ शंका ॥ स्वर्गादिकों का श्रवण अज्ञानों की कर्मों में रुचिकराने के लिये है यह कथन अयुक्त है। क्योंकि आत्मजिज्ञासा को तो फलपना अंगीकार नहीं। और आत्मा भी यागादिक्रिया का फल नहीं। क्योंकि वह अजन्य है। और आत्मा का अनुभव भी फलरूप नहीं। क्योंकि तिसको मोक्ष का साधन होने से स्वतः फलपने का अभाव है। और आत्मजिज्ञासा का भी ज्ञान मात्र ही फल है वह स्वतः आप फलरूप नहीं। इस प्रकार आत्मादि सर्व पदार्थों को फलपने का अभाव होने से परिशेष से स्वर्गादिक ही यागादिक्रिया का फल हैं। अन्य नहीं ॥ समाधान ॥ हेवादिन् ॥

❀ यतो ज्ञानमज्ञानस्यैव निवर्तकम् ❀

अ० ॥ जिस कारण से ज्ञान अज्ञान मात्र का ही निवर्तक है। इस वचन से ब्रह्मज्ञान से अज्ञान के निवृत्त हुए अज्ञानमूलक जो कामादिक दुःख के कारण वह भी सकल निवृत्त हो जाते हैं। तिनकी निवृत्तिको आत्मरूप होने से आत्मा ही परम पुरुषार्थरूप है वह तुझको कैसे उपादेय नहीं ॥ या तो स्वर्गादिकों का श्रवण अज्ञानों के प्ररोचन अर्थ ही है। फलार्थ नहीं ॥३५ पूर्व (मोद प्रमोद पक्षाभ्यां) इसकारिक में आत्मा की सुखरूपता में--

❀ तस्य प्रियमेव शिरः तै० उ० व० ब्र० अनु० ५ ❀

अ० ॥ तिस आनंदमय पक्षिरूप आत्मा का प्रियवृत्तिरूप ही शिर है इत्यादि श्रुतिवाक्य प्रमाणरूपता से कथन किये हैं। अब सुप्रति से उठे हुए

पुरुषका (सुखमहमस्वाप्सम्) इसपरामर्शकरसिद्ध जोसुषुप्तिका लीन
अनुभववहभीआत्माकीमुखरूपतामेंप्रमाणहै यहकहतेहैं ॥

मू० ॥ अदलादरूपतायस्यसुषुप्तेसर्वसाक्षिकी ।

तत्रोपेक्षाभवेद्यस्यतदन्यःस्यात्पशुःकथम् ॥३६॥

स्वै० ॥ सुखसरूपताजांकीसबको सुपपतिमाहिहोतहैमान ।

तांकोत्यागकरनजोचाहत तांतेअधिकपशुकोआन ।

याते परमानंद रूपमें परंप्रेम को नीके ठान ।

इवैसाज्ञात रिदेमोतवही नाशहोतसंसृतदुखखान ॥३३॥

टी० ॥ हेवादिन् जिसआत्माकीआनंदरूपतासुषुप्तिमेंसर्वप्राणि
योंकेअनुभवसिद्धहै । तिसआनंदसमुद्रमेंजिसकोउपेक्षाबुद्धिहुईहै ॥

तिससे अधिक और कौनपशुहै ॥ अब आत्माकी पुरुषार्थरूपताको
विस्तारसेनिरूपणकरतेहैं ॥

* अथआत्माकोसर्वशेषित्वनिरूपण *

पूर्वपक्षमेंआत्माविषयक अनुपादेयताकी सिद्धिकेलिये तिसका
प्रतियोगिरूपताकरजोवादीनेइतरानुपसर्जनत्वरूपउपादेयत्व निरूपण
कियाथा । वहहमकोभीस्वीकारहै । यद्यपिऐसामानेहुएपूर्वउक्तअनु
मानमेंअनुपादेयत्वसिद्धहुआ । तथापिवहइतरानुपसर्जनत्वरूपउपा
देत्व आत्मामें ही विश्रांतिको प्राप्त होताहै ॥ अन्यमेंनहीं इसीअर्थ
कोस्पष्टकरतेहैं । सग्वनितादिक विषयजो सुखके साधनहैं ॥
प्रथमवहविषयसुखकेशेपहैं । औरसर्पकंटकादिकोंकाजोपरिहारहै वह
दुःखाभावकासाधनहोनेसेदुःखाभावकाशेपहै ॥ औरसुखतथादुःखा
भावआत्माकेअर्थहोनेसेआत्माकेशेपहैं । यातेपरिशेषसेआत्माहीसर्वमें

प्रधानहैसुखादिकनहीं ॥ शंका ॥ यदिआत्माहीपुरुषार्थरूपहै । तो सुखादिकोंमेंपुरुषार्थत्वकाकथनक्योंहोताहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन् आत्माकाशेषहोनेसेहीसुखादिकोंमेंपुरुषार्थत्वकाकथनहै । स्वतःतिन मेंपुरुषार्थत्वरूपताकाकथननहीं । तिसकारणसेआत्माहीपरमपुरुषार्थ रूपहै यहसिद्धहुआ । औरआत्माकोपुरुषार्थत्वकेकथनसेअनुपादेय त्वकासाधक अनुमान बाधितहै यहभाव सूचनकिया ॥ शंका ॥ आत्माकोसुखादिकोंका अधिकरणहोनेसे सुखतथादुःखाभावके प्रति तिसकोकारकपनाहै।इससेसुखादिकोंकाशेषत्वहीआत्मामेंयुक्तहै।विपरीत पनायुक्तनहींअर्थात्आत्माशेषिनहींहोसकता ॥ समाधान ॥

❀ अथआत्मामेंसुखतथादुःखाभावरूपताकानिरूपण ❀

हेवादिन्भेदमेंहीअधारऔरआधेयभावहोताहै।औरसुखादिकोंका आत्मासे भेदनहींहै। क्योंकिसुख तथादुःखाभावस्वरूपहीआत्माहै । आत्मातथासुखादिकोंकेभेदकाअभावहोनेसे आत्मातिनकाशेषकैसेहो सकताहै। और“सुखतथादुःखाभावेतरत्व” रूपहेतुभी आत्मारूपपक्षमें नहींवर्तता । यातेपूर्वउक्तअनुमानस्वरूपासिद्धहै ॥ शंका ॥ आत्मा सर्वपदार्थोंकोसत्ताफ़र्तिदेनेवालाहै । वहआपअसत्स्वरूपअर्थात्तदुःखा भावरूपकैसेहोसकताहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्भावरूपआत्माको दुःखाभावस्वरूपताकीअनुपपत्तिनहीं । क्योंकिदुःखआत्मामेंकल्पित है । इसीसेतिसकाअभावआत्मासेअतिरिक्तनहीं । यहपूर्वउक्तदोषतब होसकताहै।यदिदुःखआत्मामेंपारमार्थिकहो।सोऐसेतोहैनहीं।किंतुदुःख आत्मामेंआरोपितहै ॥शंका॥ दुःखएकयुगलहै । औरवहअबाधितहोने सेकल्पितनहीं ।किंवा।आरोपमेंआरोप्यतथाअधिष्ठानकासादृश्यकारण

देखा है । और आत्मा में तिस दुःख का सादृश्य नहीं । क्योंकि वह दोनों ही निरवयव हैं । किंवा । भ्रमकाल में अधिष्ठान विशेष रूप से अज्ञात कहने योग्य है । और यहाँ प्रकरण में दुःख की प्रतीतिकाल में आत्मा विशेष रूप से अज्ञात नहीं ॥ किंतु “अहमस्मि” इस प्रकार की तिस की विशेष रूप से प्रतीति होती है । या तो दुःख का आत्मा में आरोप कैसे हो सकता है किंतु नहीं हो सकता समाधान ॥ हेवादि न्यह पुरुष अपने आत्मा में दुःखों के समूह का केवल आरोप ही करता है ॥ यद्यपि आरोप का हेतु आत्मा तथा दुःख का सादृश्य यहाँ नहीं । तथापि आरोप से व्यभिचारी जो सादृश्य तिस से क्या प्रयोजन है ॥ शंका ॥ यदि सादृश्य आरोप में कारण नहीं । तो आरोप का कौन कारण है । और यदि अज्ञान मात्र को दुःख के आरोप में असाधारण कारण कहोगे । तो सुषुप्ति में भी दुःख का आरोप हुआ चाहिये । क्योंकि अज्ञान तहाँ भी विद्यमान है ॥ समाधान ॥ हेवादि नशरीरादि द्वारा ही अज्ञान को दुःख की कारणता है सो दिखलाते हैं ॥ अज्ञान रूपी एक सर्प है । और राज गुण तथा तम गुण की प्रधानता ही तिस का फल अर्थात् मुख है । तिस में देहादि अभिमान लक्षण विषय दाढ़ें हैं ॥ और तिन के अग्रवर्त्ति राग द्वेष रूपी हलाहल विष की ज्वाला है । तिस विष के प्रवेश से जिस की स्वरूप दृष्टि प्रतिबद्ध होगई है ॥ वह पुरुष स्वस्वरूप आत्मा में गैरवादि अनेक भेदों का भिन्न जो न रकों का समूह तिस से उत्पन्न हुए दुःखों के समुदाय को केवल आरोप ही करता है जैसे तमरहित आदित्य भगवान् में प्रतिबद्ध दृष्टि वाले उल्लूकादिक तम का केवल आरोप करते हैं ॥ शंका ॥ जो वस्तु जिस में वास्तव से न हो वह तिस में आरोप करने योग्य है और दुःख को तो गुणरूपता होने से एक आत्मा में ही समवेत पना है । या तो तिस आत्मा में ही

तिसदुःखका आरोपकैसेहो सकताहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्
 गुणरूपहुआभी दुःखआत्मामें समवेत नहीं । क्योंकि " मेरेपाद
 मेंदुःखहै" ॥ इसप्रतीतिसेपादआश्रित दुःखप्रतीतहोताहै ॥ अथवा
 दुःखकोअंतस्करणका परिणामहोनेसे वहअंतस्करणमेंसमवेतहै ॥
 यातेआत्मामेंदुःखका अत्यन्ताभावहै । औरआत्मामेंदुःखकासमवाय
 मानेहुए (केवलोनिगुणश्च) इसश्रुतिकाविरोधभीप्राप्तहोगा। तिसी
 कारणसे दुःखाऽत्यन्ता भावके अधिकरण आत्मामें अज्ञानके वशसे
 हीदुःखकाआरोपहोताहै यहकथनसमीचीनहै ॥ शंका ॥ यद्यपिपूर्व
 उक्तप्रकारसेदुःखआरोपितहो ॥ तथापिआत्मातिसदुःखकाअभावरूप
 किसकारणसेहै । क्योंकिवहभावरूपहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्कल्पित
 वस्तुप्रतियोगिकजोअभावहोताहै वहअधिष्ठानसे भिन्ननहींहोता ॥
 क्योंकि अधिष्ठानसे अभिन्नरूपताकरही आरोपित प्रतीतहोताहै ॥
 औरअधिष्ठानरूपताकल्पितनहीं है । तिसकोसत्यहोनेसेअकल्पितपना
 है ॥ शंका ॥ यदिदुःखादिजगत् अधिष्ठानरूपतासेकल्पितनहीं तो
 किसरूपतासेवहकल्पितहै ॥ समाधान ॥ आत्मासेभिन्नअनात्माजो
 दुखादिहैतत्वरूपतासेहीजगत्कल्पितहै ॥ शंका ॥ सत्वरूपआत्मासेभिन्न
 होनेकरदुःखादिआरोपितहों। परन्तुतिससेक्यासिद्धहुआ ॥ समाधान ॥
 हेवादिन्सत्वरूपआत्मासेभिन्नकीयेहुए दुःखादिकोंको असत्वरूपता
 सिद्धहोतीहै ॥ शंका ॥ दुःखादिअसत्वरूपहों तिससेआपकोक्या
 लाभहुआ ॥ समाधान ॥ हेवादिन्अभावकाअभावभावरूपहोताहै ।
 इससेअसत्दुःखकाअभावसत्आत्मरूपहोताहै । यहअर्थहमकोलाभ
 हुआ ॥ शंका ॥ दुःखाभावरूपताकरआत्माकोपरमपुरुषार्थरूपता

सिद्धकियेहुएआपकोअपसिद्धांतप्राप्तहोगा ॥ अर्थात्आपकेसिद्धांत
कीहानिहोगी । क्योंकिसुखरूपतासेहीतिसआत्माकोपुरुषार्थरूपता
आपमानतेहो ॥ समाधान ॥ (तुष्यतुर्जुनः)इसन्यायसेसिद्धांत
केसाथविरोधनहींआता । क्योंकिजोवादीदुःखाभावकोहीपरमपुरुषार्थ
रूपमानतेहैं । तिनकोभीआत्माहीपरमपुरुषार्थरूपमाननाचाहिये । जिस
कारणसेवहआत्माहीदुःखाभावरूपहै ॥ शंका ॥ सकलसंसारकी
निवृत्तिकानामपरमपुरुषार्थहै । केवलदुःखमात्रकीनिवृत्तिकानामपरम
पुरुषार्थनहींकहसकते । क्योंकिवहसंसारकाएकदेशहै ॥ समाधान ॥
हेवादिन्तिसदुःखकीनिवृत्तिकोही सकलसंसारकी निवृत्तिरूपताहै ।
क्योंकिएकविंशतिप्रकारकेदुःखनकीनिवृत्तिपरमपुरुषार्थरूपमानीहै ॥
औरसंसारभीएकविंशतिदुःखनसेभिन्ननहीं । किंतुएतद्वरूपहीसंसार
है । यातेकोईविरोधनहीं ॥ शंका ॥ यदिआत्माहीदुःखाभावरूपहै ।
तोतिसकोअकार्यताहोनेसेअसाध्यताहै । यातेतिसकोपुरुषार्थरूपता
कासंभवकैसेहै । क्योंकिपुरुषतिसीअर्थकीवांच्छाकरताहैजोअसिद्धहो
सिद्धपदार्थकीकोईभीवांच्छानहींकरता ॥ समाधान ॥ हेवादिन्साध्य
त्वपुरुषार्थताकाप्रयोजकनहीं । क्योंकिसाध्यपदार्थकोचीणतादिदोषयुक्त
होनेसेहेयताहै । औरभाष्यकारश्रीशंकराचार्योंनेसाध्यरूपतासेपुरुषार्थ
पनेकानिषेधभीकियाहै । यातेआत्माहीपुरुषार्थरूपहै ॥ शंका ॥ आत्मस्व
रूपदुःखाभावकोअनादिहोनेसेस्वतःसिद्धताहै । तिसकीसिद्धिकेलिये
मुमुक्षुपुरुषोंकीसाधनोंमेंप्रवृत्तिनहींहोगी । क्योंकिसिद्धपदार्थकेसाधन
कीअयोग्यताहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्मोक्षकाउद्देशकरकेमुमुक्षु
पुरुषसाधनोंमेंप्रवृत्तहोताहैयहतुमकहतेहो । अथवाब्रह्मात्माकेसाक्षात्कार

का उद्देश करके प्रवृत्त होता है । प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि श्रवणा दिसाक्षात् मोक्ष के साधन हैं । इस अर्थ में कोई प्रमाण नहीं । और द्वितीय पक्ष में भी यह विचार कर्तव्य है । क्या वह साक्षात्कार सिद्ध है वा नहीं । प्रथम पक्ष कहो तो हमको भी स्वीकार है । क्योंकि ब्रह्म साक्षात्कार से अनंतर साधनों में प्रवृत्ति नहीं संभवती । जिस कारण से साधनों का फल ब्रह्म साक्षात्कार तिस को प्राप्त है । और यदि द्वितीय पक्ष कहो तो साधनों में प्रवृत्ति सफल है । क्योंकि प्रथम ब्रह्म साक्षात्कार असिद्ध है । जब पुरुष साधनों में प्रवृत्त होता है । तब सकल दुःखों का अभाव रूप जो ब्रह्मात्मा तिसका साक्षात्कार सिद्ध होता है । तिस कारण से साधनों में प्रवृत्ति फलवाली है ॥ शंका ॥ आत्म साक्षात्कार के होने से मुमुक्षु की प्रवृत्ति फलवाली है ॥ यह जो सिद्धांतीने कहा सो असंगत है । क्योंकि वह साक्षात्कार वृत्ति रूप है । अथवा चैतन्य रूप है । यह कहने योग्य है । यदि प्रथम पक्ष कहो तो तिसको फल देने की अनुपपत्ति है । क्योंकि वृत्तिको आरोपित होने कर मिथ्यापना है ॥ और तिसको सत्य माने हुए द्वैतापत्ति भी होगी । और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता । क्योंकि स्वरूप चैतन्य को अजन्य होने कर फल देने का असंभव है । इस प्रकार आत्मा की न्याई ज्ञान भी साध्य नहीं । या तो साधनों में मुमुक्षु की प्रवृत्ति नहीं संभवती ॥ समाधान ॥ हेवादिन् वृत्ति मिथ्या है इस प्रकार का ज्ञान क्या ? बाध के उत्तर काल में होता है । अथवा बाध से पूर्व काल में होता है । अंत्य पक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि यह परामर्श ज्ञान से उत्तर काल में होता है । अग्रमात्व को परतो ग्राह्यता होने से बाध से विना तिसका मिथ्यात्व ग्रहण करने को कोई भी समर्थन नहीं हो सकता । और प्रथम पक्ष में तो हमारे इष्ट की सिद्धि है ॥ क्योंकि बाध से उत्तर

“वृत्तिज्ञानमिथ्याहै” ऐसा परामर्श हम भी मानते हैं। और वृत्तिज्ञान को स्वतः फलपनानहीं किंतु अज्ञानका निवर्तक होने से तिसको फलपना है। सो अज्ञानका निवर्तक पना मिथ्यात्वग्रहण से प्रथम ही तिसमें सिद्ध है। पश्चात् तिसमें मिथ्यात्वका ग्रहण अनुपयोगी है ॥ शंका ॥ दुःखाभाव भी केवल पुरुषार्थरूपनहीं है। क्योंकि दुःखाभाव केनहुए अर्थात् दुःख केनहुए भी पाका दिक्रियामें भोजनजन्य सुखके लोभ से पुरुषकी प्रवृत्ति देखी जाती है। और दुःखाभावत्व पुरुषार्थत्वका प्रयोजक अर्थात् अवच्छेदक भी नहीं। क्योंकि सुखमें व्यभिचार है ॥ अर्थात् सुखमें दुःखाभावत्व के अभावहुए भी पुरुषार्थ पना विद्यमान है ॥ और जो न्यून अधिक देशमें वृत्तिन हो तिसीको प्रयोजक कहते हैं। समाधान ॥ हेवादिन् दुःखाभाव क्या? पुरुषार्थ ही नहीं है यह तुम कहते हो। अथवा दुःखाभाव से भिन्न सुख भी पुरुषार्थ है यह तुम कहते हो। प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि दुःखाभावका उद्देश करके शिष्ट पुरुषों की प्रवृत्ति देखी जाती है। इस कारण से दुःखाभाव भी पुरुषार्थरूप है। और दुःखाभाव से भिन्न सुख भी पुरुषार्थ है। यदि यह द्वितीय पक्ष कहो। तो सुखस्वरूपता आत्मा में सुखेन ही संपादन हो सकती है ॥ क्योंकि आत्मा को ही परम प्रेमका विषय होने कर सुखरूपता भी तिसमें विद्यमान है। या ते सर्व प्रकार से आत्मा ही परम पुरुषार्थरूप है ॥ शंका ॥ सुख एक गुण है। इस प्रकार वैशेषिकादिक मानते हैं। वह गुण द्रव्यरूप आत्माका स्वरूप कैसे हो सकता है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् आत्माकी सुखस्वरूपता में विवाद नहीं। क्योंकि परम प्रेमकी विषय तारूप हेतु से तिस आत्मा में सुखरूपता की सिद्धि है। और जो सुखस्वरूप नहीं तिसमें परम प्रेमकी विषयता भी देखनेमें नहीं आती ॥ शंका ॥

✽ आत्मानसुखरूपः अजन्यत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथाविषयसुखम् ✽

इस अनुमान से यात्मा सुखस्वरूप नहीं । और सुख को जन्य होने से अजन्य यात्मा के साथ तिसका अभेद भी नहीं संभवता ॥ समाधान ॥ हेवादि नृइस तुम्हारे अनुमान में व्यतिरेक व्याप्ति नहीं संभवती । क्योंकि यहां साध्याभाव के विद्यमान हुए भी हेतु का अभाव नहीं है । यर्थ यह कि विषय सुख में य सुखत्वाभाव तो वर्तता है परन्तु अजन्यत्वाभाव नहीं वर्तता याते अजन्यत्व हेतु व्याप्यत्वाऽसिद्ध होने से दुष्ट है । इस प्रकार सुख को अजन्य होने से अजन्य यात्मा के साथ तिसका अभेद संभवता है । और पूर्व पक्ष में सुख विषय क जन्य पक्ष की सिद्धि के लिये वादी ने जो “सुखं मे जातम्” यह प्रतीति कथन की थी । वह भी अन्य प्रकार से ही संभव हो सकती है । तिसी को दिखलाते हैं । पुण्य कर्मों के वश से यात्मस्वरूप सुख का अभिव्यंजक जो अंतस्करण की वृत्ति है । तिसकी उत्पत्तिको वह प्रतीति विषय करती है । कोई यात्मस्वरूप सुख की उत्पत्तिको वह प्रतीति विषय नहीं करती । याते प्रतीतिको अन्य प्रकार से उपपन्न होने पर सुख की उत्पत्ति तिस से नहीं सिद्ध हो सकती । और यह जो वादी ने पूर्व कहा था कि यात्मा और सुख का अभेद माने हुए “अहं सुखम्” ऐसी प्रतीति हुई चाहिये । सो ऐसी प्रतीति तो होती नहीं । किंतु तिमकी विरोधिनी “अहं सुखी” इस प्रकार की भेद प्रतीति होती है । सो यह कथन भी असंगत है । क्योंकि सुख तथा यात्मा का अभेद हुए प्रतीति भी अभेद को विषय करने वाली होगी । यह जो आपादन है । सो क्या ? विद्वान् के प्रति है । यथवा यज्ञानी के प्रति है । प्रथम पक्ष में तो हम को भी इष्टा पत्ति है । क्योंकि विद्वान् को “अहं सुखम्” यह प्रतीति हम भी

स्वीकारकरते हैं ॥ और द्वितीयपक्षमें तो अज्ञान अवस्थामें आत्मस्वरूप को अविद्याकरा वृत्त होने का अस्फुरण होने से कल्पित देहादिकों में आत्म अभिमान है इस कारण से देहादिकों को सुख की अधिकरणता होने का भिन्न रूपता से प्रतीति होने से तिनका अभेद प्रतिपादन अयोग्य है । तहां आत्मा सुख का शेषरूप कर ही स्फुरण होता है । अज्ञानी जनों की भ्रान्त प्रतीतिके कथन से सुख तथा आत्मा की भेद प्रतीतिका विरोध भी निरास कर दिया । किंवा । जो वादी सुख को गुण कहते हैं । और आत्मा को गुणी कहते हैं । वह भी अज्ञान के वश हुए ही कहते हैं । तिनका कथन भी यथार्थ नहीं है । क्योंकि आत्मा को निर्गुण कहने वाली श्रुतिका विरोध तिनको प्राप्त होता है । इसी से ज्ञान सुखादि गुणवाला आत्मा है इस प्रकार तार्किक पुरुष भ्रान्तिको प्राप्त हुए हैं ॥ शंका ॥ पूर्व उक्त युक्ति से सुख में जो जन्य पने की प्रतीति है वह अन्यथा उपपन्न है । अर्थात् सुख का अभिव्यंजक जो वृत्तितिस की उत्पत्तिको विषय करती है या तो आत्मा सुख स्वरूप है ऐसामानने से दुःख रूपता भी आत्मामें सिद्ध होगी । क्योंकि दुःख में जो जन्यता की प्रतीति है । तिस की भी अन्य प्रकार से सिद्धि है सो दिखलाते हैं । पापकर्मों के अनुसार आत्मस्वरूप दुःख का अभिव्यंजक जो वृत्ति है । तिस की उत्पत्तिको विषय करने से “दुःखमे जातं” यह प्रतीति अन्यथा सिद्ध है । इत्यादि युक्तिको तुल्य होने से दुःख रूपता भी आत्मा को हुई चाहिये ॥ समाधान ॥ हेवादि नुसुप्ति आदिक अवस्थाओं में दुःख का व्यभिचार होने से व्यभिचारि आत्मस्वरूपता दुःख में नहीं संभवती ॥ किंवा ॥ केवल युक्ति वस्तु का साधक नहीं किंतु प्रमाण मूलक युक्ति वस्तु का साधक है । और आत्मा की दुःख रूपता में कोई प्रमाण नहीं है । या तो युक्ति या भासरूप है ॥ और केवल मूल प्रमाण के अभाव से ही युक्तिको अभास

पनानहीं ॥ किंतु प्रियोवित्तात् अ०॥ आत्माधनादिसर्वपदार्थों सेप्रियहै । इत्यादिश्रुतिजोआत्माकीसुखरूपताकोकथनकरतीहैतिसका विरोधभीप्राप्तहोताहै॥ यातेआत्मादुःखरूपनहींकिंतुसुखस्वरूपहै। शंका सुखत्वधर्मभी पुरुषार्थत्वकाप्रयोजकनहीं। क्योंकि दुःखाभावमेंतिसका व्यभिचारअर्थात्अभावहै ॥ औरस्तेसेहीदुःखाभावत्वधर्मभी पुरुषार्थत्व काप्रयोजकनहीं। क्योंकिसुखमेंतिसकाव्यभिचारहै औरदोनोंधर्मभी पुरुषार्थत्वकेप्रयोजकनहींसंभवते ॥ क्योंकिदोनोंकोप्रयोजकमाननेमें गौरवदोषहोताहै ॥ औरदोनोंकोप्रयोजकमाननेसे पुरुषार्थशब्दको अनेकअर्थत्वप्रसंगभीहोगा। तिससेदोनोंकोपुरुषार्थत्वकाअसंभवहै॥ समाधान ॥ हेवादिन्आत्मत्वही पुरुषार्थत्वकाप्रयोजकहै। औरवह सुखतथादुःखाभावइनदोनोंमें अनुगतहै। इसप्रकारआत्माकोसुख तथादुःखाभावरूपमानेहुए आत्मत्वहीपरमपुरुषार्थत्वकाप्रयोजकहै ॥ ऐसामानेहुएआत्माकीअनुपादेयताकेसाधकअनुमानमें "पक्षेतरत्व" उपाधिजोहमनेपूर्वकहाथावह "वाधोन्नीत" अर्थात्वाधकरउद्धावितहै यहसूचनाकियाहुआअर्थभी जानलेना ॥ औरइसप्रकारआत्माको पुरुषार्थरूपमानेहुएसांसारिकसुखकोत्यागकरकेवलआत्मलाभकाउद्देश करकेप्रवृत्तहुएजोमुमुक्षुहैंतिनको"लोकोत्तरत्व"अर्थात्लोकोंसेविलक्षण पनेकाउपालंभभीनिषेधकरदिया। क्योंकिलौकिकहीजोमहानुभावव्यास वसिष्ठादिब्रह्मऋषिहुएहैं। औरऋषभादिजोराजऋषिहुएहैं॥ तिन्होंनेइस लोकतथापरलोककेसुखऔरतिनकेसाधनोंकात्यागआत्मप्राप्तिकीकामना सेहीकियाहै। क्यावहसर्वहीमहानुभावभ्रांतहोसकतेहैंयहकवीनहीं॥ किंतु उनकोउपालंभकरनेवाला पुरुषहीभ्रांतहै। औरयहजोपूर्ववादीने

कहा था। कि श्रवणादिसाधनों के अनुष्ठान करने वाले मुमुक्षुजनों को अल्प होने से तिनको भ्रांत पना है ॥ और ज्योतिष्टोमादि श्रुतिमूलक पारलौकिक सुख के साधन या गादिकों के अनुष्ठाता बहुत हैं । इस से तिनका अनुग्रह युक्त है ॥ तिनके विरोध से श्रवणादिसाधनों के विधान करने वाले श्रुतिवचन स्वार्थ में तात्पर्य वाले नहीं । किंतु अन्यार्थ के बोधक हैं । सो यह कथन भी समीचीन नहीं। क्योंकि तिन पुरुषों को ज्योतिष्टोमादि श्रुतिके तात्पर्य का अनभिज्ञ होने के यथार्थ ज्ञान का अभाव है । इसी से वह भ्रांत हैं । और श्रवणादिविधायक वाक्यों के तात्पर्य को जानने वाले मुमुक्षु यद्यपि अल्प भी हैं । तथापि प्रामाणिक होने से वह भ्रांत नहीं हैं । और यदि बहुतों के अनुग्रह को ही न्यायमाने तो देह को आत्मा मानने वाले बहुत जन हैं। तिनके विरोध से ज्योतिष्टोमादि श्रुतिमूलक साधनों के अनुष्ठाता पुरुष भी तुम्हारी रीति से भ्रांत हुए चाहिये। और वह तुमने भ्रांत माने नहीं याते “बहु अनुग्रह न्याय” यहां पर नहीं प्राप्त हो सकता ॥ और जो वादी ने पूर्व यह कहा था । कि आत्मा को सुख स्वरूप माने हुए भी स्वसंबंधि सुख का अभाव होने से तिसको पुरुषार्थ पनाना ही संभवता । यद्यपि स्वसंबंधि सुख ही उपादेय है यह वार्ता सत्य है। तथापि स्वतंत्र सुख मात्र को उपादेयता कैसे होगी । सो यह कथन भी असंगत है । क्योंकि आत्मामें सुख के संबंध का उद्देश करने वाला पुरुष सुख के दातात्म्य की ही कामना करता है। इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं। सुख ही अत्यंत उपादेय पदार्थ है वह किसी प्रकार अत्यंत प्रिय मेरे स्वरूप में अभेद रूपता से प्रवेश करे । ऐसी कामना यह पुरुष करता है। यहां और संबंधों की अपेक्षा से तादात्म्य संबंध को अंतरंगता जान लेनी शंका । तादात्म्य संबंध को अंतरंग माने हुए यह पुरुष संबंध मात्र से कैसे तो प

करलेताहै। क्योंकि अन्यपदार्थकी कामना करता हुआ किसी अन्यपदार्थकी प्राप्तिसे तो पको कोई भी प्राप्त नहीं होता। अन्यथा अतिप्रसंग होगा। अर्थात् जल की कामना वाला पुरुष पापाण की प्राप्तिसे भी प्रसन्न हुआ चाहिये॥ समाधान॥ हेवादिन् अज्ञानके प्रभावसे सुख तथा आत्माका भेद भ्रम इस पुरुषको होता है तिस भेद भ्रम की प्रावल्यतासे अ भेद करनेको असमर्थ हुआ संबंध मात्रसे तो पको प्राप्त होता है । क्योंकि कहीं मुख्यपदार्थ के अलाभ हुआ गौण की प्राप्तिको भी पुरुषार्थ पना देखा है । जैसे कोई पुरुष चक्रवर्ती राजकी प्राप्तिमें असमर्थ हुआ किसी एक देशके राज प्राप्त होने कर ही अपने को कृतार्थ मानता है ॥ शंका ॥ इतनी गुरु कल्पना करनेसे क्या प्रयोजन है। सुखका संबंध ही साक्षात् प्रयोजन क्यों न हो ॥ समाधान ॥ हेवादिन् संबंध को स्वतः पुरुषार्थ रूपता नहीं संभवती । क्योंकि वह सुख तथा दुःखाभावसे भिन्न है । याते सुख तथा दुःखाभाव स्वरूप आत्मा ही परम पुरुषार्थ रूप मानने योग्य है। अन्य कोई पदार्थ पुरुषार्थ रूप नहीं। और जो पूर्ववादी ने यह कहा था कि यदि आत्मा ही एक सुख स्वरूप है तो विषय सुखको पुरुषार्थ पनान नहीं होगा। क्योंकि सुख का सुख ही पुरुषार्थ नहीं हो सकता। जिससे सुखको सुख विषयणी कामना का अभाव है। और कामना का विषय ही पुरुषार्थ रूप होता है । यद्यपि सांसारिक सुखको तो हम भी पुरुषार्थ रूप नहीं मानते। तथापि आत्म सुखको भी पुरुषार्थ रूपता सिद्ध नहीं होगी क्योंकि सुख पना दोनों में तुल्य है । सो यह कथन भी नहीं संभवता । क्योंकि जो वादी यह कहता है । कि सुख का सुख पुरुषार्थ नहीं। तिस वादी के मतमें सांसारिक सुखमें अभिव्यंजक वृत्ति का संबंध होनेसे वृत्ति विशिष्ट में अनुपादेयता है । तिसमें सुखत्व पुरुषार्थत्व का प्रयोजन नहीं । जिससे आत्म सुख भी पुरुषार्थ रूप हो। किंतु विशिष्ट

रूपतासे भ्रम होने के कारण आत्मत्व ही तिसमें अपुरुषार्थत्व का प्रयोजक है। और
 आत्मत्व ही परम पुरुषार्थत्व का प्रयोजक पूर्व स्थापन कर आए हैं। अथवा
 विषय सुख में तिस अपुरुषार्थत्व की सिद्धि अनात्मत्व के आरोप के आधीन है
 और पुरुषार्थत्व में आत्मत्व ही प्रयोजक है। यह पूर्व कथन किया है। और
 यह जो वादी ने पूर्व कहा था। कि यदि आत्मत्व को पुरुषार्थता का प्रयोजक
 मानोगे तो कुष्ठादि रोग युक्त पुरुषों की दुःखाभाव का उद्देश करके जो आत्मा
 के त्याग में प्रवृत्ति होती है। सो न हुई चाहिये। और तिनकी प्रवृत्ति देखने
 में आती है। तिस कारण से आत्मत्व पुरुषार्थत्व का प्रयोजक नहीं। सो यह
 कथन भी नहीं संभवता। क्योंकि कुष्ठादि रोग युक्त पुरुष यद्यपि मरण में प्रवृत्त
 होते हैं। तथापि वह आत्मा के त्याग में प्रवृत्त नहीं होते। जिस कारण से स्थूल
 शरीर के त्याग का नाम मरण है। कोई आत्मा के त्याग का नाम मरण नहीं।
 और सुख स्वरूप आत्मा में कुष्ठादि रोग युक्त स्थूल शरीर दुःख का हेतु है इसी
 से तिस के त्याग में प्रवृत्ति होनी उचित ही है। “केवल सुख रूप ही परलोक में
 में हो जाऊं” ऐसा उद्देश करके देह त्याग करने में वह पुरुष प्रवृत्त होते हैं। कोई
 आत्म त्याग का उद्देश करके प्रवृत्त नहीं होते। यदि ऐसे मानों तो आत्मा
 का त्याग करके दुःखाभाव भी किस को होगा। तिस हेतु से जाना जाता है।
 कि वहां पर आत्मा का त्याग नहीं। किंतु रोग ग्रस्त देह का ही त्याग है। या तो
 मरण में जो तिनकी प्रवृत्ति है। तिस से भी आत्मा की सुख रूपता ही सिद्ध
 होती है। इस प्रकार कुष्ठादि रोग युक्त पुरुषों को दुःख के संसर्ग से रहित सुख
 स्वरूप आत्मा की कामना से देह के त्याग रूप मरण में प्रवृत्ति कथन करने से
 प्रयागादि तीर्थों में मरण के निमित्त प्रवृत्ति का उत्तर भी कथन किया गया।
 क्योंकि तहां पर भी दुःख संसर्ग से रहित सुख स्वरूप आत्मा की कामना से ही

देहत्यागरूपमरणमें प्रवृत्ति होती है आत्मा के त्याग में प्रवृत्ति नहीं । तिनकी प्रवृत्ति से भी आत्मा को ही परम पुरुषार्थ रूपता सिद्ध होती है । याते आत्मा ही परम पुरुषार्थ रूप है यह सिद्ध हुआ ॥ इति ॥ शंका ॥

✽ अथ ज्ञानी तथा अज्ञानी की विलक्षणता का निरूपण ✽

पूर्व उक्तरीति से भी आत्मा पुरुषार्थ रूप नहीं सिद्ध हो सकता । क्योंकि मुक्त तथा संसारी में आत्मा को तुल्य होने से समान नहीं तिसकी दोनों को प्राप्ति है । इस लिये ब्रह्मचर्यादि सकल जो मुक्तिके साधन हैं तिनमें सुमुत्तु पुरुषों की प्रवृत्ति नहीं होगी भाव यह कि जव साधन हीन और साधन युक्त पुरुष को समान नहीं मुक्ति रूप फल होता है । तो फिर साधनों के अनुष्ठान का क्या फल है । समाधान हेवादि न्यद्यपि आत्मा मुक्त तथा संसारी में समान ही है । तथापि स्वरूप से विद्यमान हुआ वह पुरुषार्थ रूप नहीं । किंतु स्वस्वरूप कसाक्षात्कार किया हुआ पुरुषार्थ रूप है । जैसे लोक में भी ज्ञात निधियादिकों को ही पुरुषार्थ पना देखा है । अज्ञात को नहीं । तैसे संसारी आत्मस्वरूप को नहीं जानता । और विद्वान् आत्मा को जानता है । याते विद्वान् प्रति ही तिसको पुरुषार्थ रूपता है । अज्ञानी प्रति नहीं । इस कारण से मुक्त तथा संसारी को समान प्राप्ति नहीं ॥ शंका ॥ आत्मा को सर्व ही जन जानते हैं । याते ज्ञान तथा अज्ञान कृत विलक्षणता यापकैसे कहते हो ॥ समाधान ॥ हेवादि न जिस कारण से अज्ञान मे कर्त्ता भोक्ता जरा मरण धर्म वाला हूं ॥ इस प्रकार आत्मा को जानता है । तिसी हेतु से मुक्त से वह विलक्षण है ॥ यद्यपि स्वस्वरूप आत्मा स्वप्रकाश है वह संसारी को कैसे स्फुरण नहीं होता । तथापि अज्ञान के प्रभाव से सुखादि ग्रंथ आवृत्त है । याते तिसका स्फुरण नहीं होता । और अज्ञान के आश्रय तथा विषय का एकत्व पूर्व उप

पादनकराएहैं। इसहेतुसे अज्ञानीही अज्ञानका विषय है। शंका॥ अज्ञान कर सुखादि शंका को आवृत माने हुए सुखरूपताही आत्मा की न प्रतीत हो तिससे विपरीत कर्तृत्वादिरूपतासे तिसका भान किसहेतुसे होता है। समाधान॥ अज्ञान के वशसे भ्रांति युक्त हुआ अकर्तृत्वादिस्वरूप आत्मा को भी कर्तृत्वादिरूपतासे देखता है। अज्ञान को कौन अर्थ कठिन है। किंतु कुछ भी कठिनता अज्ञान को नहीं। इसलिये अज्ञान अवस्थामें यथार्थ रूपतासे आत्मा को न स्फुरण होनेसे तिस अवस्थामें मुक्त पनानहीं हो सकता। इस प्रकार अज्ञान कृत विलक्षणता निरूपण करके अज्ञान कृत विलक्षणता को निरूपण करते हैं। और विद्वान् पुरुष अज्ञानी से विलक्षण पुरुषार्थ स्वरूप है। तिस पुरुषार्थ का स्वरूप ही कहते हैं। देश काल वस्तु परिच्छेद से रहित परिपूर्ण आनन्द स्वरूपतासे स्थित होता है। जिस कारणसे तिस विद्वान् को अपुरुषार्थत्व का प्रयोजक जो अभान तिसका हेतु जो अज्ञान तिसका बाध हुआ है ॥ यद्यपि अज्ञान स्वरूपसे विद्यमान हुआ अनर्थ का हेतु नहीं होता। क्योंकि सुषुप्ति में तैसे देखा है। तथापि सकल दुःखों का बीज जो अज्ञान है वही कार्यकार परिणाम को प्राप्त होकर अनर्थ का हेतु है। याते कार्य सहित तिसका बाध करके अर्थात् अज्ञान तत्कार्य तीनों काल में भी मुक्त ब्रह्मात्मामें नहीं है ऐसी निश्चय करके विद्वान् पुरुषार्थ स्वरूप होता है ॥ शंका॥ सुख स्वरूप का भान कैसे होगा ॥ क्योंकि प्रकाशक का अभाव है ॥ समाधान॥ हेवादिन् स्वप्रकाश स्वरूपतासे ही सुख का भान होता है। अन्य प्रकाशक की तिसको अपेक्षा नहीं। और सकल दुःखों का बीज होनेसे कार्य सहित अज्ञान की निवृत्ति विद्वान् करता है। अवसर्ग अज्ञान की निवृत्ति का साधन कहते हैं। आत्मसाक्षात्कारसे ही वह अज्ञान

निवृत्तहोताहै । औरतिसमाप्तात्कारकोहेतु महावाक्यरूप आगम प्रमाणहै । इतनेकथनसेश्रवणादिसाधनोंमें मुमुक्षुकीप्रवृत्तिकीव्यर्थतापरिहारकी। क्योंकिश्रवणादिसाधनोंके अनुष्ठानसेयप्रतिबद्धहुया महावाक्यरूपशब्दप्रमाण आत्मसाक्षात्कारको उत्पन्नकरताहै । याते तिनमेप्रवृत्तिसफलहै । औरतिसमहावाक्यको आपहीग्रहणकरे किंतुयासवक्ताजोश्रोत्रिय तथाब्रह्मनिष्ठयाचार्यहै उनकेमुखद्वाराही महावाक्यकोग्रहणकरे। और विद्वानका अनुभवभीऐसाहीहै । यातेमहा वाक्यसेउत्पन्नहुया “अहंब्रह्मास्मि” याप्रकारकाप्रमाज्ञानसकार्य अज्ञानकोबाधकरताहै । परन्तुवहवाक्यार्थज्ञानपदार्थज्ञानपूर्वकहोता है । इसलिये “तत्त्वमसि” इसमहावाक्यगत “तत्” औ “त्वं” यह दोपदहै । तिनमेंप्रथमतत्पदका वाच्यार्थनिरूपणकरतेहै । अज्ञान केवशसेसर्वजगत्की अधिष्ठानताको प्राप्तहुया आत्मा तत्पदका वाच्यार्थहै । औरकर्तृत्वादिसांसारिकधर्मोंका आश्रयहुया त्वंपदका वाच्यार्थहै। अथवास्तवजोआत्माकालक्ष्यस्वरूपहै । तिसकोनिरूपण करतेहै । पूर्वकथनकियाजो अज्ञानकेवशसे कर्तृत्वादिमिथ्यास्वरूप उससेविरुद्धयकर्त्ताआत्माहै ॥ इसकथनसे नैयायिकमतकानिषेध जानलेना । औरवहआत्माअभोक्ताहै ॥ इसकथनसेसांख्यमतका निषेधकिया । औरवहआत्माजरामरणजन्मादि सर्वविकारोंसेरहितहै। इसकथनसेदेहात्मवादकानिषेधकिया ॥ औरवहआत्मास्वप्रकाशस्व रूपहै इसकथनसे मीमांसकमतकानिषेधकिया। औरवहआत्मासत्स्वरूप है। इसकथनसेशून्यवादीमाध्यमिककामतनिषेधकिया ॥ इसप्रकारइन विशेषणोंसेइतरमतोंक निरासकियेहुए अथस्वमतसंमत आत्माकास्वरूप

कहते हैं। आत्माचिदृक् संपरिपूर्णस्वभाव है। और वह अणुपुरुषार्थस्वरूप नहीं ॥ किंतु आनंदस्वरूप है। पूर्वसर्वमतों के निरसमें हेतु सूचन करने के लिये पुनः और विशेषण आत्मा के कहते हैं। जुधापिपासादि धर्मों से रहित होने से आत्मा अकर्ता और अभोक्ता तथा असंसारी है ॥ और स्थूलता से हीन होने केर तथा अणुता से हीन होने केर तथा सर्वदृश्य धर्मों से अतीत होने केर आत्मा देह रूप नहीं। और सत्य स्वरूप होने से आत्मा शून्य रूप नहीं और ज्ञान स्वरूप होने से स्वप्रकाश स्वरूप है ॥ और नित्य स्वरूप तथा विज्ञान स्वरूप तथा आनंद स्वरूप तथा ब्रह्म स्वरूप होने से यह आत्मा सुख स्वरूप तथा परिपूर्ण स्वरूप है। इस प्रकार तिस आत्म से अधिक और कोई कामना का विषय नहीं है ॥ क्योंकि सर्व कामों की अवधि आत्मा की प्राप्ति है ॥ इसी से श्रुति में कहा है ॥

(आत्मलाभान्नपरं विद्यते। आत्मकामः प्राप्तकामः)
इत्यादि श्रुति से आत्मप्राप्तिको ही सर्व काम प्राप्तिकी सीमा होने से आत्मा ही परमपुरुषार्थ स्वरूप है यह अर्थ सिद्ध हुआ ॥ इति ॥ ३६ ॥

❀ अथ आत्मसाक्षात्कार के करण का विचार ❀

“आगमप्रमाण से साक्षात्कार होता है” यह सिद्धांती का कथन सुन कर तिस को न सहन करता हुआ पूर्वपक्षी शंका करता है। हे सिद्धांतिन् आत्मसाक्षात्कार शब्द जन्य नहीं यहां यह अनुमान जानना ॥

❀ आत्मसाक्षात्कारः न शब्दजन्यः साक्षात्कारत्वात्।

घटादि साक्षात्कारवत् ❀

अ० ॥ आत्मसाक्षात्कार शब्द जन्य नहीं है। साक्षात्कार रूप होने से। जो जो साक्षात्कार होता है। वह शब्द जन्य नहीं होता। जैसे घटादि

साक्षात्कार है ॥ इति ॥ और आत्मसाक्षात्कारको शब्दजन्य माने हुए इन्द्रियको साक्षात्कारकी करणता का अभाव प्रसंग होगा । क्योंकि इन्द्रिय जन्य ज्ञान को ही साक्षात्कारत्व का नियम है ॥ शंका ॥ हेवादिन् जन्य साक्षात्कार में इन्द्रियकारणत्व प्रयोजक नहीं अर्थात् जहां जहां जन्य साक्षात्कार होता है । तहां तहां इन्द्रियको कारणता है ऐसी नियम नहीं । क्योंकि “दशमस्त्वमसि” इस वाक्य से उत्पन्न हुआ ज्ञान भी प्रत्यक्ष ही देखा है ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन् “दशमस्त्वमसि” इस वाक्य में भी यह शब्द दशम के साक्षात्कारको नहीं उत्पन्न करता ॥ किंतु दशम पुरुष के शरीर से इन्द्रिय का संबंध होने से ही साक्षात्कार होता है या ते इन्द्रिय जन्यत्व ही साक्षात्कार में प्रयोजक है । अर्थात् इन्द्रिय जन्य ज्ञान ही साक्षात्कार होता है ॥ शंका ॥ हेवादिन् अन्वयव्यतिरेक इन्द्रिय जन्यत्व में और शब्द जन्यत्व में तुल्य है । अर्थात् “दशमस्त्वमसि” इस शब्द के हुए दशम साक्षात्कार होता है । इस शब्द के अभाव हुआ नहीं होता । और ते से ही इन्द्रिय का संबंध हुआ दशम का साक्षात्कार होता है । और इन्द्रिय का संबंध न हुआ नहीं होता । इस प्रकार अन्वयव्यतिरेक दोनों में तुल्य होने से इन्द्रिय ही दशम साक्षात्कार का हेतु है शब्द नहीं यह नियम तुम कैसे करते हो ॥ समाधान ॥ शब्द का परोक्ष ज्ञान के उत्पन्न करने का ही स्वभाव है । अपरोक्ष ज्ञान के उत्पन्न करने का स्वभाव शब्द का कहीं भी देखा नहीं ॥ और इन्द्रिय का तो अपरोक्ष ज्ञान के उत्पन्न करने का स्वभाव प्रसिद्ध है । या ते शब्द के स्वभाव से ही अपरोक्ष ज्ञान में शब्द को करणता नहीं किंतु इन्द्रिय को ही करणता है ॥ शंका ॥ अपरोक्ष आत्मा विषयक शब्द को अपरोक्ष ज्ञान का ही जनक पनायुक्त है ॥ क्योंकि वेद वाक्य तब ही प्रमाण हो सकता है ॥ जब जैसा आत्मा का स्वरूप होति सी के आकाश ज्ञान को उत्पन्न करे ॥ अन्यथा

ज्ञानको भ्रमरूपता होगी ॥ और आत्मानित्य अपरोक्ष स्वभाव है ॥
 तिससे अपरोक्ष आत्मा का साक्षात्कार श्रुतिजन्य ही है ॥ समाधान ॥ करण
 का स्वभाव अन्यथा करने को कोई भी समर्थ नहीं ॥ क्योंकि प्रमेय के स्वभाव
 की अपेक्षा से अपना स्वभाव अभ्यर्हित है अर्थात् उत्कृष्ट है ॥ याते पूर्व कथन
 अयुक्त है ॥ किंवा ॥ ब्रह्म की अपरोक्षता मात्र से तिस विषयक ज्ञान को
 अपरोक्षता युक्त नहीं है ॥ क्योंकि अपरोक्षता के योग्य बन्दि आदिकों में
 शब्द से परोक्ष ज्ञान ही उत्पन्न होता है ॥ यह वार्त्ता हम तुम दोनों को स्वीकार है
 तिसी कारण से आत्म साक्षात्कार श्रुतिरूप शब्द से जन्य नहीं ॥ शंका ॥
 आत्म साक्षात्कार से ही प्रयोजन है ॥ सो जिस किमी कारण से उत्पन्न हो और
 अभ्यास किया हुआ परोक्ष ज्ञान ही अपरोक्ष रूपता को प्राप्त हो जायेगा ॥
 याते परोक्ष ज्ञान का अभ्यास ही अपरोक्ष ज्ञान का हेतु है ॥ समाधान ॥
 यह किसी कामत भी समीचीन नहीं ॥ क्योंकि श्रुति मिति आदिक परोक्ष
 ज्ञानों में तैसा देखने में नहीं आता ॥ अर्थ यह “पर्वतो बन्दिमान्” इस
 परोक्ष ज्ञान का वारंवार अभ्यास किये हुए भी यह ज्ञान अपरोक्ष रूपता को नहीं
 प्राप्त होता ॥ किंवा ॥ जैसे प्रथम ज्ञान अपरोक्ष रूपता को नहीं धारण
 करता ॥ तैसे उत्तम ज्ञान का प्रवाह भी अपरोक्ष रूपता को नहीं धारण करेगा ॥
 क्योंकि शब्द जन्यता दोनों में तुल्य है ॥ और शाब्द ज्ञान नियम से परोक्ष ही
 होता है ॥ शंका ॥ साक्षात्कार के करण का विचार करने से क्या सिद्ध होता
 है ॥ क्योंकि साक्षात्कार को निष्फल होने कर हमारे कर बह त्यागने योग्य है
 भाव यह कि आस पुरुष ने उच्चारण किया जो “नायं सर्पः” यह वाक्य तिस
 से उत्पन्न हुआ जो परोक्ष ज्ञान तिस कर के ही भय कं पादिक निवृत्त हो जाते हैं ॥
 फिर अपरोक्ष ज्ञान के साथ क्या प्रयोजन है ॥ याते तिस के करण का विचार

निष्फल है ॥ समाधान ॥ जैसे जिस पुरुष को पूर्व दिशा में पश्चिम दिशा का भ्रम हो जाता है ॥ तिसको परोक्ष ज्ञान दिशा का हुआ भी तिससे दिशा का अपरोक्ष भ्रम निवृत्त नहीं होता ॥ क्योंकि अपरोक्ष भ्रम का अपरोक्ष प्रमाज्ञान ही निवृत्तर्क होता है ॥ तैसे “अहंकर्ता” अहंभोक्ता । इत्यादि जो समूल अपरोक्ष भ्रम है तिसकी निवृत्ति भी आत्मसाक्षात्कार से विना नहीं होगी ॥ याते लुम्हारे मत में आत्मसाक्षात्कार त्याग करने योग्य नहीं ॥ और “नायं सर्पः” इस वाक्य से लुम्हारे मत की रीति से अपरोक्ष ही ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ याते यह दृष्टांत भी समीचीन नहीं ॥ और पूर्व उक्त प्रकार से कोई भी करण निरूपण नहीं हो सकता ॥ याते

✽ सामग्र्यभावेन फलाभावः ✽

अ० ॥ सामग्री के अभाव से फल का भी अभाव होता है ॥ इस न्याय से आत्मसाक्षात्कार का अभाव अर्थ से सिद्ध होता है ॥ याते आत्मा का अपरोक्ष ज्ञान किसी को भी नहीं होता ॥ इति पूर्वपक्ष ॥

✽ अथ एकदेशी के मत की रीति से पूर्वपक्ष का खंडन ।

और मन को आत्मसाक्षात्कार की करणता का निरूपण ✽

हे वादिन् पूर्व जो करण के अभाव से आत्मसाक्षात्कार का तुमने

अभाव कहा सो नहीं संभवता ॥ क्योंकि अंतस्करण ही आत्मसाक्षात्कार का करण है ॥ शंका ॥ हे एकदेशिन् आत्मसाक्षात्कार की करणता

अंतस्करण में नहीं संभवती ॥ क्योंकि सर्व अविवेकीजनों का अंतस्करण तो विद्यमान है ॥ परन्तु आत्मसाक्षात्कार तिनमें नहीं देखा जाता ॥

समाधान ॥ हे वादिन् जे से केवल चक्षु को प्रत्यभिज्ञा ज्ञान की करणता नहीं भी है । परन्तु वस्तु के पूर्व अनुभवजन्य संस्कार सहकृत हुआ चक्षु तिस

वस्तुविषयक ऐक्यप्रतिभिज्ञाकाहेतुहोताहै । तैसेकेवलमनशुद्धात्मा केसाक्षात्कारका अजनकहुआभी सजातीयप्रत्ययोंके प्रवाहसहित ह्वातिसकाजनकहोजायेगा ॥ शंका ॥ जैसेकिसीपुरुषको भावना करनेसेमृतपुत्रका अप्रमारूपसाक्षात्कार उत्पन्नहोताहै । तैसेमूल प्रमाणसेहीनकेवलभावनासे उत्पन्नहुआ आत्मसाक्षात्कारभीअप्रमा रूपहोगा ॥ समाधान ॥ हेवादिन्श्रवणादिकोंके अभ्याससेजन्य जोशाब्दपरोक्षज्ञानहै । वहीभावनाकामूलहै । यातेभावनाकेप्रवाह सहकृतअंस्करणरूपकरणसे उत्पन्नहुआआत्म साक्षात्कारअप्रमारूप नहीं किंतुप्रमारूपहीहै ॥शंका॥

यतोवाचोनिवर्ततेअप्राप्यमनसासह । (तै)उ ब्र०व०अनु ६)

अ० ॥ जिसब्रह्मसेमनसहितवाणियेंतिसकोनप्राप्तहोकरनिवृत्त होजाती हैं॥इति॥मनकोकरणमानेहुएइसश्रुतिकेसाथविरोधहोगाक्योंकि यहश्रुतिआत्मामेंमनकीविषयताकाअभावकहतीहै॥समाधान॥हेवादिन् यहविकल्पकिसीवेदांतीकाहै।अथवानैयायिककाहै ॥ प्रथमपक्षतोनोंहीं संभवता॥क्योंकिआगमप्रमाणकीआत्मामें विषयतामाननेवालेकोश्रुति काविरोधतुल्यहीहैजिसकारणसेश्रुतिनेमनकीविषयताकेअभाववत्वाणी कीविषयताकाभीअभावकथनकियाहै॥औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता। क्योंकिवहश्रुतिवचनलौकिकशब्दतथावैदिकसंस्काररहित मनकीविषयताकोनिषेधकरताहै ॥ कोईवैदिकशब्दतथाशुद्धमनकीविषयताका निषेधनहींकरता । इसप्रकारशुद्धमनकोआत्मसाक्षात्कारमेंकरणाताहै । तिसकेविद्यमानहुएकरणकाअभावकहनाअयुक्तहै(इति एकदेशिमतम्) (अथसिद्धांत)

❀ शब्दकोसाक्षात्कारकीकरणाताकाप्रतिपादन ❀

इसप्रकारएकदेशीद्वारामहापूर्वपक्षको निरासकरके अथपरम सिद्धांती एकदेशीकेमतको निरासकरताहै ॥ समाधान॥ पूर्वजोएक देशीने मनकोकरणाताकथनकी सोनहींसंभवती।क्योंकिआगमकोही आत्माविषयकअपरोक्षज्ञानकाजनकपनाहै ॥ शंका ॥

❀ दृश्यतेत्वग्रथयाबुद्ध्या। मनसैवेदमाप्तव्यम् ❀

अ०—एकाग्रबुद्धिसेआत्मादेखाजाताहै ॥ औरमनकरकेहीयह आत्माप्राप्तहोनेयोग्यहै । अर्थात्दर्शनकरनेयोग्यहै। इत्यादिकश्रुति सेऔरपूर्वकथनकीहूईयुक्तिसे मनकोही तिसआत्मसाक्षात्कारमें करणाता संभवतीहै। तिसकाआपनिपेधकैसेकरतेहो ॥ समाधान ॥ हे वादिन्मनकोजोआत्मसाक्षात्कारमें तुमकरणाताकल्पनाकरतेहो ॥ सो क्या?शुद्धात्मासेजुदाकहींअन्यवस्तुकेअपरोक्षज्ञानमें तिसकोकरणाता निर्णीतहै इसलियेशुद्धआत्माके साक्षात्कारमेंभीलाघवसेमनहीकरणा हो यहकहतेहो।अथवाकेवलश्रुतिप्रमाणकेवलसेतिसकोकरताकहतेहो प्रथमपक्षतोनोंसंभवता । क्योंकिनिरूपणहीनहींहोसकता॥ तथाहि प्रथमबाह्यअर्थकेप्रक्षेपमेंमनकोकरणातानहींसंभवती ॥ क्योंकिबाह्य अर्थकोमनस्वतंत्रनहींग्रहणकरसकता ॥ यदिस्वतंत्रग्रहणमानेतोअंध तथावधिरपुरुषोंकोभी रूपतथाशब्दकाप्रत्यक्षहोनाचाहिये ॥औरअंतर दुःखादिपदार्थोंकेसाक्षात्कारमेंभी तिसकोकरणातानहींसंभवती । क्यों किदुःखादिकेवलसाक्षीकेविषयहैं । औरशुद्धआत्माकेसाक्षात्कारमें भी तिसकोकरणातानहीं। क्योंकितिसकाविचारतोअवप्राप्तहीहै । और यदिसोपाधिकआत्माके साक्षात्कारमें मनकोकरणाकहोतोयहकथनभी

नहींसंभवता । क्योंकितहांउपाधिअज्ञानहै अथवाअंतस्करणहैयह विचारकर्तव्यहै ॥ प्रथमपक्षकहो तोसुषुप्तिमेंअज्ञानउपाधिकआत्मा कासाक्षात्कारनहींहुआचाहिये । क्योंकिमनकातिसुषुप्तिअवस्थामें विलयहै । औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता । क्योंकितिसमेंआत्मा श्रयदोषप्राप्तहोताहै । अर्थात्आत्मामें साक्षात्कारकेअर्थमनकी प्रवृत्तिहोनेमेंमनकोही उपाधिरूपताहोनेकर अपनेकोअपनीअपेक्षा रूपआत्माश्रयदोषस्पष्टहीहै ॥ औरयदिऐसेकहो किअंतस्करणकाकार्य जोवृत्तिहैवहीउपाधिहै।यातेआत्माश्रयदोषकीप्राप्तिनहींहोतीसो कथन भीनहींसंभवता ॥ क्योंकितहांभीकार्यकारणका अभेदहोनेसेअंश रूपताकरआत्माश्रयदोषकीप्राप्ति अवश्यहोतीहै । औरयदिआत्मामें मनकीप्रवृत्तिकेअर्थ अंतस्करणकोउपलक्षणमानकर तिसमेंअंतस्करण उपलक्षितत्वधर्मकोस्वीकारकरें तोवहधर्मभीविशेषणरूपताकरतथाउप लक्षणरूपताकर निरूपण नहीं कियाजाता ॥ क्योंकिऐसेमाननेसेभी पूर्वउक्तदोषदूरनहीं होसकते । अर्थात्अंतस्करणउपलक्षितत्वधर्मको विशेषणमानेतोआत्माश्रयदोषप्राप्तहोताहै। औरयदितिसकोउपलक्षण मानें तोअनवस्थादोषप्राप्तहोताहै ॥ तथाहि । अन्तःकरणउप लक्षितआत्मामेंअन्तःकरणकीविषयतामानेहुएतिसआत्माकाविशेषण उपलक्षितत्वऔरतिस उपलक्षितत्वकाविशेषण अन्तःकरण इनदोनों मेंभी तिसकीविषयताअवश्यहोगी । तिससेआत्माश्रयदोषस्पष्टहीहै क्योंकिविशिष्टवृत्तिधर्मको विशेषणमेंवर्तनेकानियमहै ॥ किंवाजैसे उपलक्षणरूपकाककेधर्मोंका देवदत्तकेगृहमें अध्यासनहींसंभवता । तेसेअन्तःकरणको उपलक्षणमानेहुए तिसके कर्तृत्वादिधर्मोंकाभी

आत्मामें अध्यासनहींसंभवेगा । यातेभीयहपञ्चअसंगतहै । औरश्रुति मात्रकेवलसेभीतिसमनकोकरणाता नहींसिद्धहोसकती । क्योंकि “मनसा” यहतृतीयाविभक्तिरूपाश्रुति तोसहिकारतामात्रकोबोधनकरतीहै। तिसकेकरणपनेकोनहींबोधनकरती । यातेमनकोकिसीरीतिसेभी आत्मसाक्षात्कारकेप्रति करणतानहीं। किंतुआगमही तिसकाकरणहै । औरश्रुतिरूपशब्दको आत्मसाक्षात्कारकीकरणतामें श्रुतिउक्तलिंगभीप्रतीतहोताहै । क्योंकि ॥

❀ तंतवौपनिपदंपुरुषंपृच्छामि सू० उ० ॥ ३० (५) ब्रा० ६। २६)

अ० ॥ हेशाकल्यतिसउपनिपद्गम्य पुरुषकास्वरूपमें तुझकोपूछताहूं । इसश्रुतिनेआत्माकाही “औपनिपदत्व” विशेषणकथन कियाहै । सोविशेषणतबहीसमीचीनहोसकताहै । जबइतरप्रमाणोंकेअविषयभूतआत्मामात्रकोहीविषयकरे । यदिऐसेनमानें । तोप्रमाणांतरकाअव्यावर्तकहोनेसे तिसविशेषणकीव्यर्थताहोगी ॥ शंका ॥ मनकीन्याईशब्दभीकहीं साक्षात्कारकाकरणरूपताकरनिर्णयितनहीं तो वह आत्मसाक्षात्कारकाकरण कैसे होसकताहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन् । लौकिकशब्दजो “दशमस्त्वमसि” इत्यादिवाक्यहै। तिसकोभीदशमरूपअपनेआत्माविषयकसाक्षात्कारकाजनकपनादेखाहै ॥ औरतहांइंद्रियकोकरणतानहींसंभवती । क्योंकिइंद्रियकेविद्यमानहुएभीदशमकाज्ञाननहींहोता । औरअत्यंतअन्धकारमेंइंद्रियकीशक्तिकेनिरुद्धहुएभीवाक्यसे “दशमोज्झमस्मि” इसप्रकारकासाक्षात्कारदेखाहै । औरइसज्ञानकोपरोक्षनहींकहसकते । क्योंकि “अस्मि” इत्याकारकप्रतीतिअपरोक्षरूपहीहोतीहै । इसप्रकारव्यभिचारहोनेसे

इन्द्रियकोतिससाक्षात्कारमेंकरणनानहींहै ॥ शंका ॥ पूर्वउक्तप्रकार
 सेशब्दको अपरोक्षज्ञानकी जनकतामानेहुए तिसकेस्वभावकीहानि
 होगी । क्योंकिशब्दकापरोक्षज्ञानकेहीउत्पन्नकरनेकास्वभावहै ॥
 समाधान ॥ हेवादिप्रमाणकोप्रमेयकेआश्रितहोनेकरप्रमेयकेअनु
 सारीहीतिसकास्वभावहोताहै । स्वतंत्रतिसकाकोईस्वभावनहींहोता ।
 यातेपरोक्षज्ञानकेउत्पन्नकरनेकास्वभावअसिद्धहै ॥ शंका ॥ जिस
 प्रमेयकेअनुसारीप्रमाणकास्वभावआपनेकहा।तिसप्रमेयकाक्यास्वभाव
 है ॥ समाधान ॥ हेवादिप्रमाण । यहामहावाक्यरूपशब्दप्रमाणकाप्रमेय
 आत्मवस्तुहै । सोअपरोक्षस्वभावहै । यद्यपिअपरोक्षताकिसीकाल
 मेंघटादिकोंमेंभीहोतीहै । तथापितिनमेंनित्यअपरोक्षतानहीं । और
 आत्मातोअपरोक्षएकरसहै । यातेघटादिकोंसेविलक्षणहै ॥ शंका ॥
 प्रमेयपरोक्षएकस्वभावभीनहीं।तथाअपरोक्षएकस्वभावभीनहीं । क्यों
 किएककालमेंहीवन्हिआदिकविषयमें पुरुषोंकेभेदकीअपेक्षाकरसाक्षात्
 कारतथाअनुमितिकीविषयताहोनेसेअपरोक्षतातथापरोक्षतायहदोनों
 रूपप्रतीतहोतेहैं। औरविरुद्धदोरूपएककालमेंएकपदार्थमेंनहींसंभवते।
 यातेवहदोनोंरूप प्रमेयकेस्वाभाविकधर्मनहींहैं । किंतुज्ञानविशेषरूप
 उपाधिकृतहोनेसे वहऔपाधिकधर्महैं ॥समाधान॥ हेवादिज्ञानगत
 अपरोक्षत्वनहींकिंतु

❀ यत्साक्षादपरोक्षात्ब्रह्म यच्चात्मासर्वांतरः ❀

(८०) उ० अ० (५) ब्रा० (४) १ *

अ०॥ जोब्रह्म“साक्षात्”कहियेअव्यवहितस्वरूपहै।यद्यपिगौण
 अव्यवहितत्वश्रोत्रब्रह्मादिकोंमेंभीहै । तथापिब्रह्ममें “अपरोक्षात्”

कहिये मुख्यअव्यवहितत्वहै । औरजोआत्मासर्वकेअंतरहै । यद्यपि अंतरत्वइंद्रियतथाप्राणादिकोंमेंभीहै। तथापिवहसर्वसेअंतरनहीं । किंतु आत्माहीसर्वकेअंतरहै । इत्यादिश्रुतिमें आत्माकाहीअपरोक्षपनासुना जाताहै । यातेब्रह्मात्माकीअपरोक्षताश्रुतिसिद्धहै औपाधिकनहीं। औरजोवादीनेयहशंकाकीथी किप्रमेयमेंस्वाभाविकअपरोक्षतामानेहुए बन्हिआदिकोंमें दोनोंविरुद्धधर्मएककालमेंप्राप्तहोंगे । इसशंकाकेदूर करनेकेलिये अबअपरोक्षताकास्वरूपजिज्ञासापूर्वकरूपणकरतेहैं ॥

✽ अथ अपरोक्षत्वका स्वरूप निरूपण ✽

वहअपरोक्षताक्याहै अर्थात्तिसअपरोक्षताकास्वरूपआपनिरूपणकरो ऐसीजिज्ञासाकेहुएकहतेहैं । वास्तवसेजोप्रमातासेअव्यवहितत्वहै यहीअपरोक्षत्वहै । अपरोक्षज्ञानकीविषयताकानामअपरोक्षत्व नहीं । सोअव्यवहितत्वप्रमातामेंही विश्रान्तिकोप्राप्तहोताहै । क्योंकि जितनाजितनाकोईपदार्थप्रमातासेदूरहोताहै। उतनाउतनाहीवहअधिक परोक्षताकोप्राप्तहुआदेखाहै । तेसेमानेहुए बन्हिआदिकोंमेंपरोक्षता हीमुख्यहै । औरअपरोक्षता तिनमेंगौणहै ॥ क्योंकिअपरोक्षतातिन मेंप्रमाताकीसमीपतासेप्राप्तहुईहै स्वतःनहीं । यातेएककालमेंदोनों काविरोधनहीं । क्योंकिस्वाभाविकतथाऔपाधिकदोनोंरूपएककाल मेंएकपदार्थमें रहसकतेहैं॥ शंका ॥जेसेघटादिकथनात्माहोनेसेपरोक्ष एकरसहैं तिनमेंगौणअपरोक्षतावर्ततीहै । तिसगौणअपरोक्षताको लेकर इंद्रियकोप्रमाणताहै । तेसेप्रमातामेंभी गौणपरोक्षताको लेकर शब्दतिसमेंप्रवृत्तहोजायेगा ॥ समाधान ॥ हेवादिन् गौणपरोक्षता भीआत्मामेंनहीं संभवती । क्योंकिआत्मासे आत्माकाव्यवधानकोईभी

कल्पना करने को समर्थ नहीं हो सकता । या तो प्रमाण रूप हुआ वेद अपरोक्ष स्वरूप आत्मा में परोक्ष ज्ञान को कैसे उत्पन्न करेगा । और यदि परोक्ष ज्ञान को वेद उत्पन्न करेगा ॥ तो भ्रम ज्ञान को उत्पन्न करता हुआ वेद प्रमाण रूप कैसे होगा क्योंकि अन्य प्रकार से स्थित पदार्थ को अन्य प्रकार से बोधन करने का प्रमाण रूप तब नहीं संभवेंगी । या तो अपरोक्ष आत्मा विषय के वेद अपरोक्ष ज्ञान को ही उत्पन्न करता है । और वही कारण है । इस प्रकार सिद्धांती ने अपने मत को सिद्ध करके पूर्वोक्तरीति से एक देशी कामत निरास किया । अब तिसी के निषेध में और हेतु कहते हैं । हे एक देशीन् प्रमाकर व्यास प्रमाण होता है ॥ अर्थात् जहां जहां "प्रमाणता है" तहां तहां प्रमाकरणत्व है । ऐसे नैयायिक कहते हैं । और मन प्रमाकर व्यास है नहीं । क्योंकि तिस को भ्रम तथा प्रमासाधारण उपलब्धि मात्र की कारणता है । या तो मोक्ष के साधन आत्मसाक्षात्कार को मनो जन्य माने हुए व्यभिचारिकरण से जन्य होने का आत्मज्ञान में भ्रमत्व प्राप्त होगा । इस लिये मन आत्मसाक्षात्कार का कारण नहीं । यदि करण मानोगे तो आत्मसाक्षात्कार भी भ्रम रूप होगा । और तिस को भ्रम रूप तब नहीं संभवती । क्योंकि वह सकार्य अज्ञान का निवर्तक है । और भ्रम ज्ञान अज्ञान को नहीं निवृत्त कर सकता । अन्यथा अति प्रसंग होगा अर्थात् रजत भ्रम से शुक्तिके अज्ञान की भी निवृत्ति हुई चाहिये ॥ शंका ॥ हे सिद्धांतिन्यदि केवल मन आत्मसाक्षात्कार को उत्पन्न करे तो तिस में भ्रमत्व की आशंका हो सकती है । परन्तु केवल मन को तो हम करण नहीं मानते । किंतु तत्त्व मस्यादि वाक्य जन्य ज्ञान के प्रवाह सहित मन ही तिस आत्मसाक्षात्कार का कारण है । तैसे माने हुए मूल प्रमाण शब्द के साथ समति होने से अप्रामाण्य शंका की प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ समाधान ॥ हे वादिन् शब्द

प्रमाणको मूल होने के समान को प्रमाण तानहीं संभवती । क्योंकि अपरोक्ष रूपता से वेद तिसको बोधन नहीं करता । ऐसा तु ममाने हो । और परस्पर संमतिके अर्थ जैसा ज्ञान मन उत्पन्न करता है तैसा ही यदि शब्द ने भी उत्पन्न किया । तो दोनों में एक को अप्रमाणता अवश्य होगी । क्योंकि अनधिगत अर्थत्व का अभाव है । और इस अप्रमाणता दोष के दूर करने के लिये यदि शब्द को परोक्ष ज्ञान का जनक मानोगे । तो तिसके साथ विरोध होने से पुनः मन को अप्रमाणता होगी ॥ शंका ॥ तत्त्व मस्यादि वाक्य परोक्ष ज्ञान के जनन स्वभाव वाला हुआ भी आत्मा विषयक अपरोक्षाकार ज्ञान को ही उत्पन्न करेगा । क्योंकि ब्रह्मात्मा में अपरोक्ष रूपता विद्यमान है । और तिस शब्द के साथ संवाद होने से मन को अप्रमाणता भी नहीं हो सकती । क्यों कि धारावाहिक ज्ञानों की न्याई तिसमें प्रमाणता हो जायेगी ॥ समाधान ॥ हेवादि न्यह कथन भी तुम्हारा नहीं संभवता । क्योंकि वेद शब्द स्वरूप है । वह अपरोक्ष ज्ञान के उत्पन्न करने को समर्थ नहीं । तिसको परोक्ष ज्ञान के उत्पन्न करने का ही स्वभाव है । यदि ऐसा माने तो [पर्वतो वह्निमान्] इस प्रतिज्ञा वाक्य से परोक्ष वह्नि विषयक “अयं वह्निः” यह अपरोक्षाकार प्राप्त होगा । तिस कारण से परोक्षाकार ज्ञान के उत्पन्न करने का ही शब्द का स्वभाव है । यह वार्त्ता सुरेश्वराचार्यों ने भी कही है ॥

❀ स्वभावतोऽखिलं वाक्यं संसर्गात्मकमेव हि ।

परोक्षवृत्त्या च तथा वस्तुबोधयति स्वतः ॥१॥ ❀

अ० ॥ सर्व वाक्य स्वभाव से संसर्गरूपता को ही बोधन करता है ।

और ते से ही परोक्ष रूपता करणार्थ को स्वभाव से शब्द बोधन करता है ॥१॥

इति ॥ और आत्मसाक्षात्कार के प्रति मन को करण माने हुए आत्मा को

मनवाणीकी अविषयताकहनेवाली श्रुतिका विरोधभी निवारणकरना कठिनहोगा । यद्यपियह श्रुति अशुद्धमनकी विषयताको निषेधकरती है । यह पूर्वकथन किया है । तथापि ऐसी व्यवस्थामाननेमें लक्षणाकी प्राप्ति होगी । और वह लक्षणा मुख्यार्थमें किसी बाधकके विद्यमान हुए ही युक्त होती है । अन्यथा नहीं । याते श्रुतिका विरोध दुर्बल है । यद्यपि आत्मा में श्रुतिरूपशब्दकी विषयतामाननेमें भी श्रुतिका विरोध तुल्य ही प्राप्त होता है ॥ तथापि

❀ वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः । ७० मु० ३ ख० २ म० ६ ❀

अ० ॥ वेदांतजन्यज्ञानकरब्रह्मात्मारूप अर्थजिन अधिकारि पुरुषों को भली प्रकार निश्चित है । इत्यादिक श्रुतिप्रमाणसे ब्रह्मसाक्षात्कारकी करणता वेदांतवाक्योंको प्रतीत होती है । और (यतो वाचो निवर्तते) इत्यादि वाक्यसे शब्दको आत्मसाक्षात्कारकी करणताका निषेध प्रतीत होता है । इस प्रकार दोनों वचनोंका परस्पर विरोध हुआ क्या ? दोनों में एक वचनको अग्रमाणा जाता होगी । अथवा दोनों वचनोंका समुच्चय स्वीकार है । अथवा यहां कोई व्यवस्था है । और ब्रह्मसाक्षात्कारमें वेदांतविकल्पसे करण है । इस पक्षका यहां उपन्यास नहीं किया । क्योंकि विकल्पका यागादि क्रियामें ही संभव है । वस्तुमें विकल्प नहीं होता । तहां प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि दोनों में वेदवाक्यता तुल्य है । याते एकको अग्रमाण नहीं कह सकते । और समुच्चय पक्ष भी नहीं संभवता । क्योंकि विरुद्धों का समुच्चय तेजतिमरवत् अयोग्य है । इस प्रकार दोनों पक्षोंके अग्रसंभव हुए तृतीय पक्ष ही शेष रहता है । याते व्यवस्थासे ही विरोधका परिहार कर्तव्य है । सोई दिखलाते हैं । तहां निषेधश्रुतितो शब्दकी शक्तिवृत्तिसे जो

आत्मामें प्रवृत्ति है । तिसका निषेध करती है । और वेदांतों को करणता कहनेवाली श्रुति लक्षणावृत्ति से तिस आत्मामें शब्दकी प्रवृत्तिको बोधन करती है । याते किंचित्मात्रभी श्रुतिका विरोध हमारे पक्षमें नहीं । यह अर्थ सिद्ध हुआ ॥

✽ अथ पुनः पूर्वपक्ष महावाक्योंमें लक्षणाका निषेध ✽

ब्रह्मात्मा के अन्तर्भेद साक्षात्कारमें तत्त्वमस्यादि आगमको लक्षणावृत्ति से करणता है यह पूर्वसिद्धांतीने कथन किया । तिसमें लक्षणावृत्ति से आत्मामें शब्दकी प्रवृत्तिको वादी निषेध करता है । हे सिद्धांति तत्त्वमस्यादि महावाक्योंमें जो तुमने लक्षणाकथन की सो अयुक्त है । क्योंकि भागत्यागलक्षणासे वाच्यार्थके एकदेशका ग्रहण करे हुए श्रुतार्थका परित्याग प्राप्त होगा । तात्पर्य यह है कि प्रथम महावाक्योंमें जहत् लक्षणा तो नहीं संभवती । क्योंकि वाच्यार्थके एकदेशरूप आत्माका ग्रहण है । और जहत् लक्षणामें समग्र वाच्यार्थका त्याग होता है । और अजहत् लक्षणा भी नहीं संभवती । क्योंकि परोक्षत्वादिवान्वयार्थके एकदेशका परित्याग है ॥ अंगतिमें वाच्यार्थसे अधिकार्थका ग्रहण होता है । और जहत् अजहत् लक्षणाका भी संभवन नहीं । क्योंकि वाच्यार्थके एकदेशमें लक्षणामें शब्दकी प्रवृत्ति होनेका वाच्यके एकदेशरूप शुद्धमन्त्रिदानन्दस्वरूप आत्माका ग्रहण स्वीकार करें तो "तत्" "तथा" "त्वं" इन दोनों पदों के सामानाधिकरस्यके बलमें ध्वन्य किया जो परोक्ष तथा अपरोक्ष अंगमार्ग तथा अमंगमार्गका अन्तर्भेदरूपार्थ निमका परित्याग होगा । याते भागत्यागलक्षणाभी महावाक्योंमें नहीं संभवती ॥ शंका ॥ एक विभक्ति अर्थकथन किये जो पद है । तथा प्रवृत्तिकानिमित्तजिनमें भिन्न

है । तिनपदोंकीजोएकअर्थमेंनिष्ठाहै। इसीकोसामानाधिकरायकहते हैं । पर्यायपदजो एकविभक्तियंतहैं तिनमेंसामानाधिकरायकीप्राप्ति केनिवारणअर्थ“प्रवृत्तिकानिमित्तजिनमेंभिन्नहै “यहपदलक्षणमेंकहा है । यहसामानाधिकराय “तत्त्वौत्वं” इनदोनोंपदोंमेंभीहै । क्योंकि एकविभक्तियंतभीहैं । औरतिनकी प्रवृत्तिकानिमित्तभीभिन्नभिन्नहै । औरएकअर्थमेंनिष्ठाभीहै ॥ यातेदोनोंपदोंकेसामानाधिकरायकेपरा मर्शसेअनंतरपदार्थोंका अभेदरूपवाक्यार्थप्रतीतहोताहै। औरवह अभेद संसारीऔरअसंसारीरूपतासेविरुद्धस्वभाववालेजीवतथापरमात्माकानहीं संभवता । इसप्रकारमुख्यार्थकेअसंभवसे (अर्द्धत्यजतिपंडितः) अ०॥ विरोधकेप्राप्तहुएपंडितजनआधाभागत्यागदेताहै । इसन्यायसे विरुद्धअंशकोत्यागकरअविरुद्धअंशके अभेदको महावाक्यलक्षणासे बोधनकरताहै।ऐसामाननेमेंकोईदोषनहीं॥समाधान॥ हेसिद्धांतिन्यह आपकाकथनभीसमीचीननहीं । क्योंकिश्रुतिसिद्धअर्थमें अनुपपत्ति काअभावहै॥अर्थयह किवेदनेजोअर्थकथनकियाहै वहग्रहणकरनेको हमसमर्थहैं । तिसअर्थमेंकिसीप्रकारकी प्रेरणाअर्थात्तयहवेदऐसेक्यों कहताहै ऐसेनहींकरसकते । औरवहवेदसंसारीतथाअसंसारीकेअभेद कोग्रहणकरताहै । यातेवहअभेदअनुपपन्ननहीं । औरअनुपपत्तिके अभावसे लक्षणाकाभीअभावहै ॥ शंका ॥ हेवादिन्जैसेलौकिक वाक्य प्रत्यक्षादिप्रमाणांतरकेसाथ विरोधकाअभावकरकेही स्वार्थको प्रतिपादनकरताहै।तैसेवेदवाक्यभीप्रतिपादनकरताहै।इसकानामलोक वेदअधिकरणन्यायहै ॥ इसन्यायसेवेदभीलौकिक वाक्यकीरीतिसेही स्वार्थकोग्रहणकरताहै ॥ औरलौकिकवाक्य प्रमाणांतरके विरोधका

अभावहुए स्वार्थकाबोधकहोताहै। औरप्रकरणमें प्रत्यक्षादिकोंकाविरोध प्राप्तहै । क्योंकि सर्वज्ञतादि धर्मविशिष्ट ईश्वरका तथा अल्पज्ञतादि धर्मविशिष्टजीवका परस्परभेद " नाहमीश्वरः " इत्यादिप्रमाणोंसे सिद्धहै । तिनके साथविरोध दूरकरनेकेलिये तिनकेभेदको त्याग कर शुद्धचिन्मात्रका अभेद लक्षणसे वेदबोधनकरेगाइसमें कोईदोष नहीं ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन् यहकथनभी आपकासमीचीननहीं क्योंकिश्रुतिकेविरोधसे भेदग्राहिप्रमाणकोहीअप्रमाणाताहोजायेगी । यहांयहतात्पर्य है । लौकिकवाक्य अपनेअर्थकेबोधनकरनेमें प्रमाणांतरके अविरोधकीअपेक्षाकरताहै । यहकथनतोसंभवताहै । क्योंकि लौकिकवाक्य तथाअन्यप्रमाण इनदोनोंमें लौकिकपनातुल्यहै। और वेदतोअपौरुषेयहोनेसे प्रबलहै। अपनेअर्थकाविरोधीजोप्रमाणांतरतिस कोबाधकरदेगा । तिसकारणसे स्वार्थकीअनुपपत्तिनहीं । यातेमहावाक्योंमें भागत्यागलक्षणाभी नहींसंभवती ॥ शंका ॥ हेवादिन् जिसकिसीप्रकारसे प्रमाणांतरकोबाध नकरके यदिअपनी प्रमाणांतरार्थात्स्वार्थकीबोधकता वेदमें संभवहोजाय तोप्रयोजनसे बिनाइतर प्रमाणकाबाध किसलियेकरनाहै। किंतुतिसकाबाधकरनायोग्यनहीं ॥ समाधान॥ हेसिद्धांतिन्यदिइतरप्रमाणका बाधनहींमानेंगे तोअखंड तथासंसर्गसेरहिततथासजातीय आदिकभेदसेरहित जोअद्वयब्रह्मवही सर्वकाअंतरात्माहै । इसप्रकारजोलक्षणासेबोधनकरनाहै । वहभी नहींसंभवेगा । क्योंकिसजातीयआदिसर्वभेदकेबोधकजोप्रत्यक्षादिक प्रमाणहैं । तिनकेसाथविरोधविद्यमानहै । तिससेप्रमाणांतरकाबाध श्रुतिकान्यवश्यहोनाचाहिये । यातेप्रथमहीश्रुतिसुरख्यार्थकेविरोधि

प्रमाणांतरकोबाधकरेगी । लक्षणासेतिसको अन्यत्रर्थपरत्वयुक्त नहीं । किंवा ॥

❀ मानांतरविरोधेतुमुख्यार्थस्यपरिग्रहे ।

मुख्यार्थेनाविनाभूतेप्रवृत्तिर्लक्षणोप्यते ❀

अ० ॥ मुख्यार्थकेपरिग्रहणकरनेमें जहांप्रमाणांतरकाविरोधहो तहांमुख्यार्थकेसाथसंबंधवालाजोअर्थहै तिसमेंशब्दकीवृत्तिकोलक्षणा कहतेहैं । यहलक्षणाकास्वरूपजाननेवालेवृद्धपुरुषोंकीमर्यादाहै । इसलियेशक्यसंबंधिअर्थमेंहीलक्षणाहोतीहै । औरयहांतत्त्वमस्यादि वाक्योंमें वाच्यार्थकेसाथ संबंधवालाकोईपदार्थहैनहीं । क्योंकिशुद्धात्मातोसंसर्गसेरहितहै । औरतिसशुद्धात्माकोही तुमलक्ष्यअर्थ मानतेहो । तिसमेंलक्षणानहींसंभवती ॥ शंका ॥ यद्यपिलक्ष्यार्थ असंसर्गीहै तथापि वाच्यार्थ जोविशिष्टहै वहतोसंसर्गीहै । वही लक्ष्यार्थकेसाथबलात्कारसे संबंधवालाहोजायेगा ॥ समाधान ॥ संबंधदोनोंपदार्थोंकेआश्रितरहताहै । एकपदार्थकोअसंसर्गीहुएइतर पदार्थकरनिरूपणकरनेयोग्यसंबंधकीअयोग्यताहै । औरअसंसर्गिपदार्थ लक्ष्यनहींहोसकता । क्योंकितैसाकहींदृष्टनहीं जोअसंसर्गिपदार्थ भीलक्ष्यहो । किंतुवाच्यार्थकेसंबंधीमेंहीलक्षणालोकमेंदेखीजाती है ॥ किंवा ॥ लक्ष्यजोचेतनमात्रतुममानतेहो वहकिसीपदकावाच्यहै वानहीं । प्रथमपक्षकहो तोजेसेवहशब्दशक्तिवृत्तिसेशुद्धचिदात्मा मेंप्रवृत्तहोगया । तेसे “तत्त्वं” पदभीशक्तिवृत्तिसेप्रवृत्तहोजायेंगे फिर लक्षणामाननेकाक्याप्रयोजनहै । औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिसर्वप्रकारसे जोअवाच्यअर्थहै वहलक्षणासेबोधनकियाजाता

है यहकहींभीनहीं देखा । यातेलक्ष्यपदार्थमेंमूकताप्रसंगहोगा । क्योंकिकोईपदतिसकावाचकनहीं ॥ शंका ॥ हेवादिन् लक्ष्यार्थमें मूकताकीप्राप्तितुमक्योंकहतेहो।जिसकारणसेलक्षणिकपदसेही तिस काकथनहोजायेगा ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन्लक्ष्यकाबोधकजो पदहै । वहलक्षणावृत्तिसेप्रवृत्तहोताहै। ऐसामानेहुए तिसकेलक्ष्यका बोधक कोईअन्यपदकहनेयोग्यहै । औरवहपदभी लक्षणासेहीप्रवृत्त होगा । इसप्रकारतिसतिसलक्ष्यकेबोधक औरऔरपदमाननेमें अनवस्थादोषकीप्राप्तिहोगी ॥ किंवा ॥ “तत्” औ “त्वं” इनदोनोंपदों कालक्ष्यक्या? एकहै।अथवाभिन्नहै। प्रथमपक्षकहो तोदूसरापदव्यर्थ होगा । क्योंकिएकपदसेही लक्षणावृत्तिकरकेप्रत्यक्तथाव्रह्मकेअभेद रूपलक्ष्यार्थकाजोसाक्षात्कारतिसकीसिद्धिहै ॥ शंका ॥ हेवादिन् दूसरेपदकीव्यर्थताकिसलिये तुमकहतेहोकिंतुनहींकहमकते। क्योंकि साक्षात्कारको प्रमापनातवसिद्धहोगा।जबकोईवाक्यरूपप्रमाणहोऔर वहवाक्यदोनोंपदोंसेहीसंभवताहै । इसप्रकारप्रमाणताकीसिद्धिअर्थ अपेक्षितवाक्यत्वका निर्वाहकहोनेकर द्वितीयपदभीसफलहै निष्फल नहीं॥ समाधान ॥दोनोंपदोंकाएकअर्थमानेहुए पदार्थांतरकाअभाव होनेकर संसर्गरूपवाक्यार्थ पदार्थसेभिन्नसिद्धनहींहोगा। क्योंकिपदों कोसमानार्थकहोनेकर पर्यायताकीप्राप्तिहै । यातेद्वितीयपदकाप्रयोग होनेसेभी वाक्यत्वकानिर्वाहनहींहोसकता॥ शंका ॥ यद्यपिसामान्य रूपतासेलक्ष्यएकहीहै। तथापितिसलक्ष्यमें किसी विशेषअंशकोलेकर दूसरापदप्रवृत्तहोजायेगा । इसप्रकारअपर्यायताहोनेसे वाक्यत्वकैसे नहींहोसकता ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन् लक्ष्यकोसामान्यविशेष

भावकासंसर्गीमानेहुए अखंडवाक्यार्थत्वकीहानिहोगी । औरअखंड
वाक्यार्थत्वकीहानिसेही द्वितीयपक्षभीअसंगतहै । औरलक्षणाकी
व्यर्थता द्वितीयपक्षमें औरअधिकदोषप्राप्तहोताहै ॥ शंका ॥ लक्षणा
काअभावतुमक्योंकथनकरतेहो। क्योंकिभिन्नपदार्थोंकेअभेदकोभीवेद
लक्षणासेबोधनकरदेगा ॥ समाधान ॥ विरुद्धधर्मवालेपदार्थोंका
अभेदनहींसंभवता । इसकारणसे लक्षणाकरकेभी भिन्नोंकेअभेदको
तात्पर्यवृत्तिसे वेदनहींबोधनकरसकता।क्योंकिप्रमाणवस्तुकाउत्पादक
नहींहोता । किंतुविद्यमानवस्तुकाज्ञापकहोताहै । औरभिन्नपदार्थों
काअभेदवास्तवसेहोतानहीं । लक्षणासेभीवेदकिसकोबोधनकरेगा ।
अवमहावाक्योंमेंलक्षणाकाअभाव औरहेतुसेपूर्वपक्षीउपपादनकरताहै
॥ किंवा ॥ जैसेमीमांसकमतमेंभग्यपदार्थजोअदृष्ट तिसकेअर्थभूत
पदार्थब्रीहिआदिकोंका उपदेशकियाजाताहै । तैसेवेदांतमतमेंनहीं॥
किंतु भूत पदार्थ जो आत्मा तिसकी प्राप्तिके अर्थ भग्यपदार्थ जो
श्रवणादि तिनकाउपदेश कियाजाताहै। यहांसिद्धपदार्थकानामभूत
है।औरसाध्यपदार्थकानामभव्यहै ॥ तिसकारणसेवेदांतशास्त्रमें“तत्त्व
मस्यादिमहावाक्य सच्चिदानंदस्वरूप सर्वकाशेपीजोचिदात्मा तिसके
प्रतिपादकहोनेकर प्रधानवाक्यकहेजाते हैं ॥ तिनसेभिन्नजोश्रव
णादिकोंकेबोधकवाक्यहैं वहमहावाक्योंको अपेक्षितअर्थका समर्पक
होनेकर उपकरणहोनेसे तिनकाअंशभूतगौणवाक्यहैं ॥ शंका ॥
महावाक्योंकोप्रधानताहो परंतुतिससेअध्यासिद्धहोताहै ॥ समाधान ॥
इसप्रकारमहावाक्योंको प्रधानवाक्यताकेहुए तिनमें लक्षणाकासंभव
किसरीतिसेहोसकताहै। किंतुकिसीरीतिसेभीनहीं॥यहसिद्धहोताहै ।

शंका ॥ हेवादिन्द्रसमंभ्या विलक्षणाताहे ॥ जिसवाक्यमें अनुपपत्ति हो तिसीमें लक्षणा संभव हो सकती है ॥ समाधान ॥ प्रधानवाक्यों में जिन गौणवाक्यों का ग्रन्थ असमवेत है । तिनको प्रधानवाक्यों के अनुसार रूपता कर व्याख्यान करने के लिये गौणवाक्यों में ही लक्षणा का संभव है ॥ प्रधानवाक्यों में नहीं । यद्यपि दोनों वाक्यों में वेदपना तुल्य है । याते प्रधानवाक्यों में भी लक्षणा संभवती है । तथापि न्याय का विरोध होने से तिनमें लक्षणा का असंभव है । सो न्याय पूर्वमीमांसा के नवम अध्याय में महर्षि जैमुनी जी ने कहा है ॥

❀ विप्रतिपत्तौ विकल्पः स्यात् समत्वात् ।

गुणोत्वन्याय कल्पने कदेशत्वात् । ५०मी० (६) (३) १५

अ० ॥ अग्निपोमीय एकपाशवाले पशु संबंधियाग के प्रकरण में (पाशान्) और (पाशं) यह दो मंत्र श्रवण किये हैं । तहां बहुवचनांत मंत्र क्या प्रकरण से उत्कर्षण करने योग्य है वानहीं ॥ इस प्रकार संशय के प्राप्त हुए तहां यह पूर्वपक्ष प्राप्त हुआ ॥ (पाशं) औ (पाशान्) इन दोनों मंत्रों का यहां पर विकल्प है । क्योंकि पाश जो प्रातिपदिक है ॥ वह दोनों मंत्रों में समान है ॥ याते मंत्र का प्रकरण से उत्कर्ष है । (सिद्धांत) यहां अग्नीपोमीय में समवेत ग्रन्थ होने कर पाशवाचि प्रातिपदिक प्रधान है । तिसके अनुसारी होने से बहुवचनवाचि प्रत्यय गौण है । याते तिस गौण प्रत्यय में लक्षणा करके वह पाश के अवयवों को कहता है । इसलिये गौण शब्द में ही लक्षणा की कल्पना होती है । तिसकेवल से मंत्र का प्रकरण से उत्कर्ष नहीं हो सकता । क्योंकि प्रत्यय को पद का एक देश होने से प्रातिपदिक के ग्राही न होने कर उत्कर्षता की योग्यता है । इस न्याय से गौण वाक्य

मेंहीलक्षणायुक्तहै ॥ प्रधानमेंनहीं ॥ इति ॥ अबपूर्वपक्षीसिद्धांत मुद्राकोयाश्रयणकरकेएकदेशीकामत निराकरणकरनेके लियेतिसको दिखलाता है ।

* अथएकदेशीकी रीतिसेमहावाक्योंमें लक्षणाका निषेध ॥ *

यहांकोईएकदेशीवेदांतीयहकहतेहैंकितस्वमस्यादिमहावाक्योंमें हमलक्षणाहीनहींमानते। यातेलक्षणाकानिषेधहमारमतमेंअनिष्टनहीं। औरयहजोसिद्धांतीकहताहै। किल्लक्षणाकाअभावमानेहुएमहावाक्योंमें सामानाधिकराय कैसेसंभवेगा । क्योंकि जिनपदोंकी प्रवृत्तिका निमित्तभिन्नभिन्नहै। तिनकीएकअर्थमेंवृत्तिकाअभावहै। औरलक्षणासे विनाजीवतथा परमात्माकासामानाधिकरायकोईभीसंभावनाकरनेको समर्थनहीं । यहांसामानाधिकरायएकताकानामहै अथवाजीवतथा परमात्माइनदोनोंशब्दोंकरकेतिनकेवाचकपदोंकाग्रहणकरना लक्षणा केअनंगीकारसेतिनकासामानाधिकरायनहींसंभवेगा॥ यातेमहावाक्यों मेंलक्षणाअवश्यमानीचाहिये। सोयहकथनभीसमीचीननहीं। क्योंकि रज्जुसर्पकीन्याईएककावाधकरकेभीवहसामानाधिकरायचनसकताहै। अबइसीअर्थकोस्पष्टकरतेहैं। “सर्पोरज्जुः” प्रथमइसवाक्यमेंदोपदहैं । सोदोनोंएकविभक्तिअंतहुएएकहीअर्थकोकथनकरतेहैं । क्योंकिसर्प काअनुवादकरकेरज्जुकाविधानहै । सोरज्जुकाविधानसर्पकास्वरूप विद्यमानहुएनहींकरसकते । किंतुसर्पकास्वरूपसर्पपदसेअनुवादके वहानेसेवाधकरकेरज्जुकास्वरूपमात्रशेषरहताहै। इसप्रकारएकहीअर्थ मेंदोनोंपदोंकीवृत्तिनेसे जैसेसामानाधिकरायसंभवताहै । तैसेही

“त्वं” इसपदसे जीवको वाध कर “तत्” पदसे शेष रहनेवाला मात्र का प्रतिपादन है । इससे दोनों पदों को एक अर्थ में वृत्ति होने का सामानाधिकराय संभवता है ॥ शंका ॥ हे एकदेशिन् इस प्रकार वाध सामानाधिकराय माने हुए भी दोनों पदों की एक अर्थ में वृत्ति नहीं संभवती । क्योंकि तिनमें यद्यपि परमात्मपद विदात्मा का उपस्थापक है तथापि त्वं पद जीवाभाव का बोधक है । तैसे माने हुए भिन्न अर्थ वाले पदों की एक अर्थ में वृत्तिके से कहते हो ॥ समाधान ॥ कल्पितपदार्थ का अभाव अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होता या ते जीवाभाव अधिष्ठान ब्रह्मस्वरूप है । इस कारणसे दोनों पदों की एक अर्थ में वृत्ति संभवती है ॥ शंका ॥ यद्यपि दोनों पदों में लक्षणा नहीं भी है तथापि ब्रह्मपद में यह लक्षणा परिहार करनी पड़ती है । क्योंकि विशिष्ट पदार्थ में शक्तिवाला जो पद निमित्त को शुद्ध पदार्थ की उपस्थिति में लक्षणा की अवश्य अपेक्षा है ॥ समाधान ॥ जैसे सत्यादिपद शक्तिवृत्ति में शुद्ध के उपस्थापक माने हैं । तैसे तत्पदसे भी शुद्ध की उपस्थिति बन जायेगी । लक्षणा का अंगीकार निष्फल है ॥ शंका ॥ पूर्व उक्तार्थ से तत्पदसे शुद्ध की उपस्थिति माने हुए “तत्त्वमसि” महावाक्य में जीव के स्वरूप का वाध करना अयुक्त है । क्योंकि इस वाक्य में तत्पदार्थ का प्रथम निर्देश होने कर निमित्त को अनुवाद के योग्य होनेसे तत्पद का वाध करने जीवत्व का विधान है । यद्यपि प्रथम कथन किये पदार्थ को अनुवाद के योग्य माने हुए “अथमात्मा ब्रह्म” इन महावाक्य में क्या गति होगी । क्योंकि तिसमें जीव का ही वाध प्रतीत होता है ॥ तथापि एक अर्थ के निश्चायक वृत्ति में कोई हेतु नहीं प्रतीत होता । इसलिये यदि जीवपक्ष पक्षी ब्रह्म के ही वाध की अंश का रंग तो रंजक पुरुष के वाक्य की न्याय अयुक्त

पार्थस्वरूपजीवमें तात्पर्यवालाहुआशास्त्रभी अप्रमाणरूपहोगा । समाधान ॥ यहतुम्हारीआशंकानहींसंभवती । क्योंकिब्रह्मपदार्थके स्वरूपमेंप्रमाणरूपसत्यादिवाक्यकाविरोधहोनेसेविनिगमनाविरहदोष नहींप्राप्तहोसकता ॥ औरजीवभीशेष नहींरहता । तात्पर्ययह (सत्यंज्ञानमनंतं ब्रह्म ।) इसमंत्रसब्रह्मकी सत्यरूपताके निश्चयहुएपरिणामसेसंसारीजीवकाहीबाधहोताहै ब्रह्मकानहीं । याते शास्त्रकोअप्रमाणातानहीं होती ।

❀ अथएकदेशीकेमतसेजीवके स्वरूपकाविचार ❀

शंका॥हेएकदेशिचजिसजीवकाआपबाधकहनेहो । यहक्या? चिदात्माहीजीवहै । अथवावहजडपदार्थ है । प्रथमपक्षमें तोब्रह्मका हीनामजीवहै । यातेबाधकाअसंभवहै । और द्वितीय पक्षमें जडघटादिकोंके तुल्य तिसजीवमें भोक्तापनेका अभावहोगा । क्योंकिभोक्तापनाचेतनमेंही होताहै ॥ समाधान ॥ यहपूर्वउक्त दोषहमारेपक्षमेंनहींप्राप्त होसकते ॥ क्योंकितिसजीवकोचेतनका आभासहोनेकर प्रसिद्धजडचेतनसे विलक्षणअनिर्वचनीयपनाहै । अस्वप्रकाशहोनेसेचेतन्यसेभीविलक्षणाताहै । औरभोक्ताहोनेसेतथा चेतन्यकीन्याईभायमानहोनेसे इसकोचेतन्याभासकहतेहैं यातेजडसे भीविलक्षणाहै । यहांपरयहअनुमानभीजानना ।

जीवोनब्रह्मअस्वप्रकाशत्वात् घटवत् ॥ १ ॥

जीवोनजडःभोक्तृत्वात् । व्यतिरेकेणघटवत् ॥ २ ॥

अ०॥जीवब्रह्मनहीं है अस्वप्रकाशहोनेसे जोजोस्वप्रकाशनहींहै।सोसो ब्रह्मअर्थात्चेतनभीनहींहै ॥ जेसेघटहै ॥ १॥ औरजीवजडनहीं है

भोक्ताहोनेसे जो जड है । सो भोक्तानहीं है । जैसे घट है ॥२॥ इति ॥
 शंका ॥ चैतन्यको रूपरहित होनेसे तिसका आभास जीव है यह कथन
 हीनहीं संभवता । क्योंकि रूपरहित वायुका आभास कहीं भी देखनेमें
 नहीं आता ॥ समाधान ॥ रूपरहित चैतन्यका भी प्रतिबिम्ब संभवता है ।
 क्योंकि रूपरहित आकाशका स्वच्छ जलमें आभास देखनेमें आता है ।
 और दृष्ट्यर्थमें कोई भी अनुपपत्ति नहीं हो सकती ॥ शंका ॥ जलमें आ
 काशका प्रतिबिम्ब हीन संभवता । क्योंकि वह नीरूप है । और जलमें जो
 तिसके आभास की प्रतीति है । वह तो आकाशवर्त्ती जो सूर्य की किरणें तिन
 के आरोप से होती है । ऐसे तुम निश्चय करो । याते जीव चैतन्यका आभास
 नहीं ॥ समाधान ॥ स्वल्प जलमें और अगाध जलमें महाकाशकी
 प्रतीति होती है । इस हेतु से कामना से विना भी पुरुष ने ऊर्ध्वदेशवर्त्ती आका
 शका प्रतिबिम्ब स्वीकार किया चाहिये ॥ ऊर्ध्वदेशवर्त्ती महाकाश के आभास
 से विना अल्पगंभीरता वाले स्वच्छ जलमें महत्परिमाण गंभीरता का भ्रमन ही
 संभवेगा तिस कारणसे जलमें आकाशका आभास विद्यमान ही है । याते
 चेतनका आभास रूप जीव से ही संभवता । किंतु संभवता है ॥ पूर्व
 उक्त युक्ति से सिद्ध चिदाभासरूप जीव को श्रुतिप्रमाण से भी सिद्ध करते हैं ।
 (रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।) श्र० ॥ हर एक उपाधिमें चिदा
 त्मा प्रतिबिम्बभाव को प्राप्त हुआ । इस श्रुति से भी चिदाभासरूप जीव की
 सिद्धि है ॥ शंका ॥ हे एक देशिन् संसारि जीव को बाध किये हुए भी आत्मा
 की मुक्ति नहीं सिद्ध हो सकती । क्योंकि मूलमहित अनर्थरूप जो बाध
 संसार है तिसका तो उच्छेद हुआ नहीं । समाधान ॥ (इदं सर्वं यद
 यमात्मा ।) श्र० ॥ जो यह सर्व दृश्य है मोयह आत्मारूप ही है । इस

वाक्यकरत्रज्ञानतत्कार्यरूप सकलत्रनर्थरूप संसारकेबाधहुएकेवल
आनंदस्वरूपपरमात्माही मुक्तिकालमेंशेषरहताहै । यातेचैतन्याभास
पक्षहीश्रेष्ठहै ॥ इति एकदेशिमत् ॥

✽ अथमहापूर्वपक्षीकीरीतिसे सिद्धांतमुद्राको

आश्रयणकर एकदेशीके मतकाखंडन । ✽

अविद्योत्थंचिदाभासं जडाजडविलक्षणम् ।

जीवयेवाध्यमित्याहुस्तानाचार्यों निषेधति ॥ १ ॥

चौ०—जडचिदभिन्नजीवहै जोई । अविद्यक चिदाभासहै सोई ॥

ताकोबाधजोउ नसरहैं । तिनेनिषेध आचार्य करहैं ॥ १ ॥

समाधान ॥ यह एकदेशीकामत् समीचीननहीं । क्योंकि
बंधतथामोक्षको व्यधिकरणताकी प्राप्तिहोतीहै ॥ तथाहि प्रथम
भोक्तातोजीवहीहै । क्योंकि “मैं सुखीहूं” यहप्रतीतिजीवमेंहोतीहै ॥
औरअपनेमेंसमवेतसुखके साक्षात्कारवालेकोही भोक्तापना होताहै ।
औरवहभोक्तृत्वकर्तृत्वसेविनानहींसंभवता । क्योंकिकर्त्ताहीभोक्ता
होताहै । औरवहकर्तृत्वप्रमातृत्वसेविनानहींसंभवता । क्योंकिप्रथम
यहपुरुषकिसीवस्तुकोजानताहै । पुनःतिसकीइच्छाकरताहै । तिससे
अनंतरतिसकीप्राप्तिकेनिमित्तकोईक्रियाकरताहै । यहवार्त्तासर्वलोकों
मेंप्रसिद्धहै । तिसकारणसे भोक्ताभोगभोग्य औकर्त्ताक्रियाकर्मतथा
प्रमाताप्रमाणप्रमेय यहनवप्रकारकाबंधजीवनिष्ठहीहै । तिसजीवऔर
अज्ञानकाबाधहोनेकरमोक्षदशामें निरावरणसुखस्वरूपतासेअवस्थिति
रूपमुक्तिपरमात्माकीहोगी । इसप्रकारबंधतथामोक्षकीव्यधिकरणता
है । सोनहींसंभवती । क्योंकिबद्धहीमुक्तहोताहै । बद्धअन्यहोऔर

मुक्तअन्यहो यहनहींहोसकता । किंवायदिजीवकाबाधमानोंगे । तो श्रवणादिसाधनोंमेंकौनप्रवृत्तहोगा ॥ औरयदिऐसेकहो । किमोज कीइच्छावालासुमुक्षु निनसाधनोंमेंप्रवृत्तहोगा । तोहमयह पूछतेहैं । वहकिसकामोजचाहताहै । क्या ? किसीअन्यपुरुषका मोक्षचाहताहै । अथवाअपनामोक्षचाहताहै । प्रथमपक्षतोनहींसंभवता क्योंकिदूसरेकीमुक्तिकेअर्थकोईअन्ययत्नकरताहै । यहकहींदृष्टनहीं । औरयदिद्वितीयपक्षकहो तोतिसमेंयहविचारकर्तव्यहै । क्या ? अपना नाशपुरुषार्थहै । अथवास्वदुःखकीनिवृत्तिपुरुषार्थहै । इनमेंभीप्रथम पक्षमेंयहविचारणीयहै । अपनानाशक्या ? स्वतः पुरुषार्थरूपहै । अथवा पुरुषार्थकासाधनहै । प्रथमपक्षतोनहींसंभवता । क्योंकिस्वनाशसुख तथादुःखाभावसेभिन्नहै । यातेतिसकोपुरुषार्थरूपतानहींसंभवती । औरयदियहद्वितीयपक्षकहो । किदुःखकाउपादानकारणजीवहै । और उपादानकानाशकार्यकेनाशमेंहेतुहोताहै । यातेजीवकेनाशसेदुःख निवृत्तहोताहै । इसप्रकारदुःखाभावपुरुषार्थरूपहै तिसकासाधनहोने सेस्वनाशभीपुरुषार्थरूपहै । सोयहपक्षभीसमीचीननहीं । क्योंकि केवलदुःखाभावकोहीतुमपुरुषार्थरूपकहतेहो । अथवाआत्मीयदुःखा भावकोकहतेहो । इनमेंप्रथमपक्षतोनहींसंभवता । क्योंकिशत्रुके दुःखाभावकोभी पुरुषार्थरूपताहुईचाहिये ॥ औरद्वितीयपक्षभीनहीं संभवता ॥ क्योंकिआत्माकानाशहोनेसे यहदुःखाभावरूपपुरुषार्थ किसकोप्राप्तहोगा ॥ औरअपनेआत्माकेनाशकायत्नकोईभीकरतानहीं औरआत्मीयदुःखाभावपुरुषार्थहै ॥ इसपक्षकेनिराकरणसेस्वदुःखकी निवृत्तिपुरुषार्थहै ॥ यहप्रथमकथनकियाद्वितीयपक्षभी निरासहुआ

जानलेना ॥ यातेजीवकाबाधनहींसंभवता ॥ पूर्वआत्माकाबाधमान
कर अभासपक्षमेवंधमोक्षादिव्यवस्थाकी अनुपपत्तिप्रतिपादनकी। अत्र
जीवात्मा के अस्त्यत्वका अभावहोनेसे तिसकाबाधहीनहींसंभवता ॥ इस
अर्थकोप्रतिपादनकरतेहैं ॥ औरजीवात्माकल्पितभीनहीं ॥ योंकि
जोवादीजीवात्माकोकल्पितमानताहै ॥ तिसकोहमयहपूछतेहैं ॥
किजीवकेअस्त्यत्वकाग्राहककोईप्रमाणनहीं। इसकारणसेतुमजीवकोअस-
त्यकहतेहो ॥ अथवायुक्तिसेतिसकाबाधहोजाताहै । यातेअस्त्य
कहतेहो । अथवाअस्त्यत्वकाबोधकप्रमाणविद्यमानहै यातेअसतहै ॥
इनमेंप्रथमपक्षनहींसंभवता ॥ क्योंकि (अनेनजिवेनात्मना)
यहश्रुतिजीवकीसत्तरूपतामेंप्रमाणहै । यद्यपिजीवतथापरमात्माका
अभेदमात्रइसश्रुतिमेंप्रतीतहोताहै । कोईजीवकाअस्त्यत्वनहींप्रतीत
होता ॥ यातेजीवकल्पितकैसेनहीं किंतुकल्पितहै ॥ तथापिसत्यज्ञाना
दिपदार्थोंके निर्वचनसे सिद्धजो सत्तरूपपरमात्मा तिसकेसाथअभेद
श्रवणहोनेसे जीवकाअस्त्यत्वबाधितहै ॥ शंका ॥ “नाहमीश्वरः”
इसभेदग्राहिप्रत्यक्षकेविद्यमानहुए अभेदश्रुतिउपचारिकहै ॥ अर्थात्
अन्यार्थकोबोधनकरतीहै ॥ समाधान ॥ (नान्योतोऽस्तिद्रष्टा)
अ० ॥ इसआत्मासेभिन्नऔरकोईद्रष्टानहीं ॥ इसश्रुतिमेंभेदकानिषेध
श्रवणहोताहै ॥ यदिभेदकोपारमार्थिकमानोगे तोयहनिषेधव्यर्थहोगा
यातेजीवकाबाधनहींहोता ॥ औररवतःअसंसारिस्वभावजोपरमात्मा
है तिसकोसंसारिस्वभावजीवरूपतानहींसंभवती ॥ यातेजीवकोअस्त्य
मानेहुएयुक्तिकाविरोधप्राप्तहोगा । यदियहद्वितीयपक्षकहो तोयहभी
नहींसंभवता । क्योंकिजैसेआकाशमें अविद्याकेवलसेकल्पितनीलता

प्रतीतहोतीहै । तैसेस्वतःअसंसारिस्वभावआत्मामेंअविद्यादिउपाधि केसंबंधसे कल्पितसंसारिजीवरूपतासंभवतीहै ॥और॥

रूपंरूपंप्रतिरूपोवभूव

इसश्रुतिप्रमाणसेजीवकीअसत्वरूपतासिद्धहै । यहतृतीयपक्षभी असंगतहै । क्योंकितिसवाक्यमें मनुष्यत्वादिधर्मयुक्त मनुष्यपशु पक्ष्यादिशरीरदोवारकथनकियेहुए रूपशब्दकाअर्थहैं । औरतिन शरीरोंको सादृश्य प्रतिरूपशब्दकाअर्थहै जैसे (मुद्राप्रतिमुद्रा) इसवाक्यमेंमुद्राकेसादृश्यकोही प्रतिमुद्राशब्दबोधनकरताहै । किसी औरअर्थकोनहीं । तैसेयहांभी प्रतिरूपशब्दसे रूपसादृश्यहीकथन कियाहै । आभासरूपतानहींकथनकी ! तैसेहीअन्यवाक्यमेंभीकहाहै

देहंदेहंप्रविष्टःसंस्तद्देहाकारतामगात्

अ०॥ देहदेहमेंप्रविष्टहुआआत्मा तिसतिसदेहकीसमानाकारता कोप्राप्तहुआ। इसप्रकारजीवकोआभासरूपताकाअभावहोनेसेसत्वरूपता संभवतीहै॥ शंका ॥ प्रतिरूपशब्दको दर्पणस्थमुखादिकोंमें रूढ़होने सेतिसकासादृश्यअर्थ आपकैसे कथनकरतेहो । औरयदितिसकाअर्थ प्रतिविंवमानोगेतोजैसेदर्पणस्थमुखमिथ्याहीहोताहै। तिसकीन्याईजीव कैसेसत्वरूपहोसकताहै किंतुवहभीमिथ्याहीमाननेयोग्यहै ॥ समाधान ॥ यद्यपिपूर्वउत्तरीतिसेजीवप्रतिविंवरूपहो तथापिवहअसत्तनहींहै । क्योंकिजैसे “ग्रीवामेंस्थितजोमुखहै सोईदर्पणमेंस्थितहै” इसप्रत्य भिज्ञासेविंवप्रतिविंवकाअभेदप्रतीतहोताहै । यातेप्रतिविंवमिथ्यानहीं किंतुसत्विंवरूपहीहै तैसेजीवभीविंवचेतनस्वरूपहोनेसे मिथ्यानहीं किंतुसत्वरूपहीहै । औरआभासतोउपाधिगतत्वरूपएकधर्महै। सोजीव

रूपनहीं किंतु जीवका धर्म है । और जीव तो आभास से भिन्न चेतन रूप ही है । तिसी से असत्य नहीं । यह उक्त अर्थ सर्वज्ञात्म महामुनियों ने भी कथन किया है ॥

उपाधिरंतःकरणं त्वमर्थं जीवत्वमाभासनमत्र तद्वत् ।
तदन्विता चित्प्रतिविम्बमेव मनन्वितांतामिह विवमाहुः ।

(सं० शा० अ० २ श्लो० २७८)

अ० ॥ इससे पूर्व कारिका में कथन किया जैसे तत्पद के वाच्य में प्रविष्ट आभास रूप ईश्वरत्व मिथ्या है तैसे त्वपदार्थ में अंतःकरण उपाधि है । और यहां जीवत्व ही आभास रूप है ॥ अर्थात् मिथ्या है ॥ और साभास अंतःकरण रूप उपाधिके संबंधवाला चेतन प्रतिविम्ब कहा जाता है । और साभास अंतःकरण के संबंध से रहित चेतन को यहां विवकहते हैं ॥ १ ॥ इति ॥ या तो जीव का स्वरूप मिथ्या नहीं किंतु सत्य है ॥ शंका ॥ प्रति विम्बरूप जीव यदि विव स्वरूप ही है ॥ तो विव और प्रतिविम्ब तथा स्वरूप यह भेद का कथन रूप व्यवहार कैसे होता है ॥ समाधान ॥ एक वस्तु में भी भेद व्यवहार उपाधिके आधीन संभवता है । क्योंकि जैसे सर्वकल्पना से रहित एक ही स्वरूप मुख तथा चंद्रादिकों में विव और प्रतिविम्ब तथा स्वरूप यह तीन प्रकार का व्यवहार उपाधि में तिनके प्रवेश के आरोप से अनंतर देखने में आता है । तैसे सर्वकल्पना से रहित एक स्वरूप आत्मा में भी त्रिविध भेद व्यवहार संभवता है ॥ यद्यपि आत्मा को अनेक प्रपंच रूपता होने से एक रूपता का कथन युक्त नहीं ॥ तथापि अज्ञान के वश से तिसको अनेक रूपता है ॥ परन्तु वास्तव से स्वरूप सर्वकल्पना से रहित एक रूप ही है ॥ शंका ॥ यद्यपि पूर्व उक्तरीति से जीव सत्य स्वरूप हो । तथापि तिमका वाद्यमान कर सामाना

धिकररायक्योंनहो ॥ समाधान ॥ हेएकदेशिन्वाधक्यविरोधीही सत्यत्वहै ॥ यातेतिसकावाधकेसेहोसकताहै ॥ किंतुनहींहोसकता । इसप्रकारजीवको आभासरूपताकाअभावहोनेसे तत्त्वमस्यादिकमहा वाक्योंमेंवाधसामानाधिकररायकी कल्पनावेदवाह्यहै।यद्यपिइसकल्पना कोवेदवाह्यकहनानहींसंभवता । क्योंकिवेदिकएकदेशीनेहीस्वीकार कीहै । तथापियुक्तियोंप्रमाणका विरोधहोनेसेअयुक्तहै ॥ सोयुक्ति' तथाप्रमाणपूर्वकथनकरआएहैं । इसप्रकारसिद्धांतमुद्राकोआश्रयण करकेमहापूर्वपक्षीनेएकदेशीका मतनिरासकिया ॥ अवलक्षणानि रासप्रकरणकोपूर्वपक्षी समाप्तकरताहै । पूर्वकथनकियेहुएलक्षणोंकी अनुपपत्तिरूपहेतुसेलक्षणकरके परिपूर्णसच्चिदानंदप्रत्यगात्माका बोधननहींसंभवता ॥ इतिपूर्वपक्ष ।

❀ अथसिद्धांत) महावाक्योंमें लक्षणाके संभवकाप्रकार निरूपण । ❀

अखंडार्थपरत्वं हिपदयोर्लक्षणांविना ।

निर्णीयेत्यंतमाचार्यः पूर्वपक्षंनिपेधति ॥ १ ॥

चौ० ॥ अखंडार्थपरताहै जोई । लक्षण विनापदोंको सोई ॥

याविधतां निर्णयकर गुरुवर । पूर्वपक्षनिपेधहिवलधर ॥१

समाधान ॥ यहांपरपूर्वपक्षीसेहमयहपूछतेहैं । महावाक्यनिष्ठ पदोंमेंलक्षणकाअभावजोतुमकहतेहो।वहक्या?मुख्यार्थकीअनुपपत्ति के अभावसेकहतेहो । अथवामहावाक्योंका अखंडअर्थमे तात्पर्य नहींइसलियेकहतेहोप्रथमपक्षतोनहींसंभवता क्योंकि—

मू० ॥ विरुद्धयोरभेदोहिनवैदेनपूमीयते ।

अनन्यगतिकत्वेनमानांतरस्यबाधनम् ॥३७॥

नीलछंद ॥ वैसिनकेरथभेद नवेदहुवोधसके ।

लोकविषेयहरीति कर्हजनखोजथके ।

थौरगतीनहिकोय कहुंविधिजाहिवनै ।

बाधतहांहुइमान नरचकदोपगनै ॥ ३४ ॥

टी० ॥ प्रत्यक्षादिकप्रमाणोंका विशेषहोनेसेजीवग्रहकेअभेद कीअयोग्यताहै ॥ यातेविरुद्धधर्मवालोंकाअभेद वेदबोधनकरनेको समर्थनहीं। इसप्रकासमुख्यार्थकेअसंभवसेतन्मूलकलक्षणामहावाक्यों मेंसंमतीहै । औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता । क्योंकिअखंडएकरस चिदात्मामें तात्पर्यकेग्राहकपदविधिलिंगकी विद्यमानताहै । यातेतिस तात्पर्यकोअतिप्रसिद्धहोनेसे तात्पर्यकेअभावसे लक्षणोंकाअभावभी नहींकहसकते ॥ शंका ॥

❀ पौर्वापर्यं पूर्वदौर्बल्यं पूकृतिवत् ॥ १०॥ अ० ६० पा० ५॥ मू० ५५॥

अ० ॥ ज्योतिष्टोमसंज्ञकयागमेंसामगायनकरनेवालेउद्गाताऔं प्रतिहर्त्तादोक्तत्वक्प्रसिद्धहैं । तिसयागमेंअध्वर्यादिकृत्वक्परस्पर पृष्ठभागमेंशाट्काकोहस्तसेग्रहणकरकेपवमानस्तोत्रकेअर्थयज्ञशालासे बाह्यनिकसतेहैं । तिनमेंयदिदेवगतिसे उद्गातावाप्रतिहर्त्ताका क्रमसे वियोगहोजाय तोवहांवियोगनिमित्तक विरुद्धप्राप्यश्चित्तसुनाजाताहै । एकतोप्रतिहर्तृविच्छेदनिमित्तक सर्वस्वदक्षणादेकस्मिन्नं कर्मकाममाप्त करना।औरदूसराउद्गातृविच्छेदनिमित्तक दक्षणासेविनापारंभकियेहुए कर्मकासमाप्तकरना । यहांपरयहसंशयहै। क्या?प्रतिहर्तृवियोगनिमित्त

कसर्वस्वदक्षणादेकरप्रारंभकर्मकासमाप्तकरनायोग्यहै । अथवाउद्गातृ
 वियोगनिमित्तकदक्षणासेविनायागकासमाप्तकरनायोग्यहै।तहांयहपूर्व
 पक्षप्राप्तहुआ।कोईविरोधीनउत्पन्नहोनेसेपूर्वनिमित्तबलवानहै। यातेपूर्व
 विच्छेदनिमित्तकप्रायश्चित्तही अनुष्ठानकरनेयोग्यहै।अथसिद्धांत।निमि
 त्तोंकेपूर्वअपरभावकेहुएपूर्वनैमित्तिककोदुर्बलताहै। औरपूर्वनिर्पेक्षउत्तर
 नैमित्तिकको तिसकाबाधकरूपताकरउदयहोनेसेपरबलताहै। औरपूर्व
 नैमित्तिककेउदयकालमेंउत्तरकी अप्राप्तिहोनेकर पूर्वनैमित्तिककरउत्तर
 निमित्तकाबाधनहींहोसकता। औरउत्तरनैमित्तिकतोपूर्वनैमित्तिकको
 बाधकरकेहीउत्पन्नहोताहै।जैसेदर्शपूर्णमासरूपप्रकृतियागमेंनिर्णीतउप
 कारवालीकुशमयजोवर्हिहैंवहश्वेनरूपविकृतियागजोउपकारकीथाकां
 क्षावालातिसमेंप्रथम अतिदेशसेप्राप्तहोतीहैं।वहवर्हि उपदिष्टजोशरमय
 वर्हिनिर्पेक्षपश्चात्भावी अर्थात्अवी जिनकाउपकारकल्पनानहींकिया
 तिनकरप्रथमबाधकीजातीहैं॥ इति ॥इसन्यायसेपूर्वहोनेवालेजोभेदके
 ग्राहकप्रत्यक्षादिप्रमाणतिनकापश्चात्भावीश्रुतिप्रमाणसेबाधहोजायेगा
 औरब्रह्मात्माकेएकत्वकीसिद्धिअर्थ सर्वभेदग्राहिप्रत्यक्षादिप्रमाणोंका
 बाधअवश्यकरनेयोग्यहै । इसकारणसेमंमारीतथाअसंमारीकेभेदको
 ग्रहणकरनेवालाजो प्रमाणहै तिसकाबाधकरकेहीवेदतिनके अभेदको
 बोधनकरेगा।तिससेमुख्यार्थकीअनुपपत्तिआपकैसेकहतेहो॥समाधान
 हेवादिन्परिपूर्णतथा ब्रह्मात्मएकरसजो अखंडअर्थहै। तिसकीसिद्धि
 केअर्थजोसकलप्रमाणांतरका बाधकरनाहै । वहअन्यगतिकेअभाव
 सेहोताहै । जहांकिसीप्रकारसेभी प्रमाणांतरकेबाधविनाही स्वार्थकी
 सिद्धिहो तहांतिसका बाधकरनाशुक्तनहीं॥तैसेमानेहुए प्रमाणांतरको

बाधनकरकेतिसकी अनुसारतासेतोमुख्यार्थकी अनुपपत्तिसंभवतीहै। तिसकोदेखकर लक्षणावृत्तिसे वेदब्रह्मात्माकीएकताको बोधनकरता है । इसप्रकारमहावाक्यों में लक्षणाकीसिद्धिहोतीहै ॥ अबइसीअर्थ कोदिखलातेहुएपूर्वपक्षके अनुवादपूर्वक तिसकोदूषितकरनेलियेवि स्तारपूर्वकश्लोककी व्याख्याकरतेहैं । यहजोपूर्वपक्षीनेकहाथाकि महावाक्योंमें मुख्यार्थकीअनुपपत्तिके अभावसे लक्षणाकाअभावहै। सोकथननहींसंभवता । क्योंकिजीवतथापरमात्माकाअभेद प्रत्यक्षा दिप्रमाणकरबाधितहै। यद्यपिविरुद्धोंकाभीअभेद शुक्तिरजतादिकोंमें देखाहै । तथापिविरुद्धोंकाअभेद प्रमाणसेकहींनहींदेखा। औरशुक्ति रजतादिकोंकाअभेदतोअप्रसिद्धहै । यातेतिसकोदृष्टांतरूपतानहीं संभवती । औरप्रमाणांतरकोवेदकर बाधितहोनेसे मुख्यार्थकीअनुप पत्तिनहीं । यहकथनभीअसंगतहै ॥ क्योंकियहबाधकेयोग्यहै इतने कथनसेही बाधकीसिद्धिनहींहोसकती॥ किंतुस्वविषयसिद्धिकीअन्य थाअनुपपत्तिसे बाधकीसिद्धिहोतीहै । अर्थयह जहांश्रुतिकेविषयकी सिद्धिप्रमाणकेबाधसेविनानसिद्धहोतहांप्रमाणांतरका बाधसिद्धहोता है। अन्यगतिकेहुएनहींसिद्धहोता॥ औरयहांतत्त्वमस्यादिमहावाक्योंमें तोलक्षणावृत्तिसेभीतिनको ब्रह्मात्माकेअभेकीप्रतिपादकता संभवती है ॥ यातेतत्त्वमस्यादिमहावाक्योंसे प्रमाणांतरकाबाधनहींहोता ॥ औरजबप्रमाणांतरकाबाधनहुआ । तबमुख्यार्थकीअनुपपत्तिसिद्ध हुई । तिससेलक्षणाकीसिद्धि महावाक्योंमेंहुई ॥ यहभावहै । और प्रमाणांतरकेविरोधकर मुख्यार्थकी अनुपपत्तिनमाने तोसर्वत्रहीलक्ष णाकाअभावहोजायेगा ॥ क्योंकिलोकमेंभीनिश्चितप्रामाण्यवाले

वाक्यमेंही लक्षणा मानी है। तैसे वाक्य का विरोध होने से विरोधि प्रमाणां तरका बाध हो जायेगा। तिससे मुख्यार्थ की अनुपपत्तिका अभाव होने से लक्षणा की प्राप्ति भी नहीं होगी। याते अन्यगतिके हुए प्रमाणां तरका बाध करना युक्त नहीं। और यह जो वादी ने पूर्व कहा था कि सर्वसंसर्ग से रहित शुद्ध ब्रह्मात्मा का अभेद रूप जो अर्थ तिसमें लक्ष्यता के प्रयोजक रूप वाच्यार्थ के साथ संबंध का अभाव होने से तिसमें लक्षणा का असंभव है ॥ ऐसे कथन करने वाले वादी से हम यह पूछते हैं। वाक्य में लक्षणा की कल्पना अधिकारी मुमुक्षु करता है। मो कल्पना तिसको क्या? तत्त्व साक्षात्कार से उत्तर काल में होती है। अथवा पूर्व काल में होती है। इनमें प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि तत्त्व ज्ञान में उत्तर लक्षणा की कल्पना प्रयोजन शून्य होने से व्यर्थ है और अन्योऽन्याश्रय दोष की भी प्राप्ति है। क्योंकि साक्षात्कार से उत्तर लक्षणा की कल्पना होगी। और लक्षणा की कल्पना से अनंतर साक्षात्कार होगा। और वाक्य में योग्यता का संपादक होने कर लक्षणा को वाक्यार्थ ज्ञान में कारणाता है। याते तत्त्व ज्ञान से पूर्व लक्षणा की कल्पना संभवती है। यह द्वितीय पक्ष यदि मानो तो वाच्यार्थ के साथ संबंध सुखे नहीं बन सकता है क्योंकि शुद्ध लक्ष्यार्थ यद्यपि स्वभाव से असंग भी है। तथापि अविद्या और अंतःकरण रूप उपाधिका जो अविद्या कर कल्पित संबंध हैं वह संभव हो सकती है। जैसे दिवांधत्व रूप दोष युक्त जां उल्लूकादि तिनकी कल्पना कर सिद्धतम का आदित्य में कल्पित संमर्ग होता है। तैसे अविद्या केवल से वाच्यार्थ के साथ शुद्ध लक्ष्यार्थ का कल्पित संबंध संभवता है। तात्पर्य यह है। अविद्या उपाधिक चेतन्य तत्पद का वाच्यार्थ है। और अंतःकरण उपहित चेतन्य तत्पद का वाच्यार्थ है। तिन दोनों के साथ लक्ष्यार्थ रूप ब्रह्मात्मा के अभेद का

अविद्याकरकल्पितसंबंधभीविद्यमानहै । क्योंकितत्त्वज्ञानसेपूर्वकालमें
ब्रह्मात्माकाअविद्याकेसाथविरोधनहोनेसे अविद्याविद्यमानहै।यातेतिस
अविद्योपाधिकमेंलक्षणाकैसेनहींसंभवती। किंतुसंभवतीहै।शंका।कल्पित
संबंधमूलकलक्षणाकोभी कल्पितहोनेसेलक्षणापारमार्थिकीनहींहोगी
औरतिसलक्षणामूलक वाक्यार्थकासाक्षात्कारभी कल्पितहोगा ॥
उपहासपूर्वक।समाधान।हेवादिनलक्षणाकोकल्पितकथन हमकोअनिष्ट
नहीं।यातेयहवार्ताउच्चस्वरसे तुमनेनकहनीचाहिये।क्योंकिकोईसुनन
ले।अर्थयह अद्वैतकाविरोधहोनेसेहीसकलद्वैतकोअसत्मानेहुएभी हम
अद्वैतवादीयोंकेसिद्धांतका अविरोधअतिस्पष्टहै । तोतिसद्वैतकाएक
अंशरूपलक्षणाऔतत्मूलकवृत्तिरूपसाक्षात्कारकोकल्पितहोनेसेहमारे
सिद्धांतकीक्याहानिहोसकतीहै।औरयहजोपूर्वकहाथा।किकिसीपदसे
लक्ष्यकीउपस्थितिहोतीहै वानहीं । यदिनहींहोती तोलक्ष्यार्थ
मेंमूकताप्रसंगहोगा अर्थात् लक्ष्यार्थका बोधनहींहोगा । सोयह
कथनभी समीचीन नहीं । क्योंकि पदार्थके प्रतिपादन करने
वालेजोसत्यज्ञानादिपदहैं । तिनसेहीतत्पदकेलक्ष्यार्थकी उपस्थिति
होनेसे तत्पदकेलक्ष्यार्थमें मूकताकीप्राप्तिनहींहोती । और सत्यादि
पदशक्तिवृत्तिसे ब्रह्ममें प्रवृत्तहोतेहैं । बाललक्षणासे प्रवृत्तहोते हैं ।
इनदोनोंपक्षोंमेंवादीनेदोपकहाथा । सोतिनमेंलक्षणासेतोसत्यादि
शब्दकीप्रवृत्ति ब्रह्ममेंहममानतेनहीं।यातेअनवस्थादोपकेपरिहारकीहम
कोकिंचित्भीअपेक्षानहीं।क्योंकिलक्षणाकेअभावसेअनवस्थादोपप्राप्त
हीनहींहोता॥ शंका ॥सत्यादिपदशक्तिवृत्तिसे ब्रह्मकोबोधनकरतेहैंयह
पक्षभीनहींसंभवता। क्योंकितत्त्वमस्यादिमहावाक्यगतपदोंमेंभीतैसेही

माननाहोगा। अर्थात् वह भी लक्षण से विना शक्तिवृत्ति से ही ब्रह्म को बोधन करेंगे॥ समाधान॥ हेवादि न कर्तृत्व भोक्तृत्व अपरोक्षत्वादि धर्म विशिष्ट चेतन में त्वंपद की शक्ति ग्रहण होने से त्वंपद के श्रवण से कर्तृत्वादि धर्म विशिष्ट की ही उपस्थिति होगी ॥ और सर्वज्ञत्व अर्थात् भोक्तृत्व अपरोक्षत्वादि धर्म विशिष्ट चेतन में तत्पद की शक्ति ग्रहण होने से तत्पद के श्रवण हुए सर्वज्ञत्वादि धर्म विशिष्ट चेतन की ही उपस्थिति होगी ॥ शुद्ध की उपस्थिति नहीं होगी। या तेतिन में विरोध के परिहार अर्थ लक्षणा स्वीकार की है॥ शंका ॥ इस प्रकार माने हुए सत्यत्व ज्ञानत्वादि धर्म विशिष्ट चेतन में सत्यादि शब्द की प्रवृत्ति होने से तिस शब्द कर शुद्ध लक्ष्यार्थ ब्रह्मात्मा का जो अभेद वह नहीं प्रतीत होगा। क्योंकि तिस से भी विशिष्ट की ही उपस्थिति होगी। समाधान ॥ हेवादि नाना उपाधियों के साथ संबंध वाली जो एक व्यक्ति है उस से भिन्न सामान्य का अंगीकार है। यहां पर यह अर्थ ज्ञात व्यर्थ है। ज्ञानपद की शक्तिका ज्ञानव्यक्ति में ग्रहण नहीं ॥ क्योंकि व्यक्ति मात्र में शक्ति माने हुए अनंत तथा व्यभिचार दोष की प्राप्ति है ॥ और यदि ऐसे कहो कि ज्ञानत्व सामान्य वालियां जो अंतःकरण की वृत्ति रूप ज्ञानव्यक्ति या हैं। तिन में ज्ञानपद की शक्ति है। सो यह कहन क्या? त्रितयपदार्थ में शक्तिवादी ने यायिक कहा है ॥ अथवा जाति मात्रपदार्थ में शक्तिवादी मीमांसक कहा है ॥ दोनों मतों की रीति से ब्रह्म निष्ठ वाच्यता की हानि नहीं होती। तैसे ही दिखलाते हैं। नाना व्यक्तियों में अनुगत धर्म जो सामान्य वह तिन में अनुगत व्यवहार का हेतु रूपता कर स्वीकार किया जाता है। और वह ज्ञानत्व सामान्य ब्रह्म से भिन्न नहीं है ॥ नाना भिन्न भिन्न जो अंतःकरण की वृत्तियें वह ज्ञानत्व का व्यक्तीरूपता कर स्वीकार की हैं। तिन में कल्पित सं

बंधवाली जो अनुगतव्यक्ति है अर्थात् ॥

❀ व्यज्यते अनया इति व्यक्तिः स्वरूपचैतन्यम् ❀

अ० ॥ प्रकट हो इसकरके वह व्यक्ति कहिये है। याते स्वरूपचैतन्य ही व्यक्तिशब्द का अर्थ है। उससे ही सर्ववृत्तियों की प्रकटता है। तिस अनुगतचैतन्यव्यक्तिसे भिन्न सामान्यका अनंगीकार है। और तिसके मानने का कोई प्रयोजन भी नहीं। क्योंकि अनुगतव्यवहारकी सिद्धि अनुगतव्यक्तिसे ही हो जायेगी। इस प्रकार दोनों मतों में ज्ञानत्व सामान्यके स्थानापन्न शुद्धब्रह्म ही वाच्य सिद्ध होता है। इस प्रकार सत्यादि पदों में भी सत्यत्वादि सामान्यस्थानापन्न शुद्धब्रह्म ही तिनका वाच्य जान लेना। अब अनेक उपाधियों में संबंधवाली एक अनुगतव्यक्तिसे ही अनुगव्यवहारकी सिद्धि में दृष्टान्त कहते हैं। जैसे जलकरूपरिति जो दशपात्र है तिनमें दशही चंद्रके प्रतिबिंब प्रतीत होते हैं। तिनमें “यह चंद्र है” यह चंद्र है। ऐसा अनुगतव्यवहार होता है। वह व्यवहार चंद्रत्वजातिरूप नहीं। क्योंकि तहां नाना व्यक्ति रूपजातिके व्यंजक का अभाव होनेसे और चंद्रकी एकव्यक्ति को जाति का बाधक होनेसे चंद्रत्वधर्म में जातिरूपता अनंगीकार है। और जलपात्ररूप उपाधियों को भी अनुगत होनेसे तिनको भी अनुगतव्यवहारकी हेतुता नहीं संभवती। याते तहां सर्व उपाधियों में अनुगत जो चंद्रव्यक्ति है तिससे ही अनुगतव्यवहारकी सिद्धि होती है। तैसे अंतःकरणकी वृत्तियों में अभिव्यक्त हुई जो चैतन्यरूप ब्रह्मव्यक्ति है। तिसकर ही “यह ज्ञान है” यह ज्ञान है। ऐसा अनुगतव्यवहार संपादन किया जाता है। याते ज्ञानत्वजातिका स्वीकार अर्थ है। इस प्रकार ज्ञानत्व को जातिरूपता का निषेध करनेसे सत्यत्वादि धर्मों को भी जातिरूपता का

निषेधजानलेना ॥ शंका ॥ सत्यादिपदोंसेतत्पदकेलक्ष्यार्थकीउपस्थितिहुएभी त्वंपदकेलक्ष्यार्थकीउपस्थितिकिसपदसेहोगी औरयदि सत्यादिपदोंसेही तिसकीउपस्थितिकहो तोवहनहींसंभवती। क्योंकि सत्यादिपदोंकीब्रह्मपदकेसाथ समानाधिकरणाताहै। त्वंपदकेसाथतिन कीसमानाधिकरणतानहीं । यातेत्वंपदार्थमेंमूकताप्रसंगउसीप्रकार अवस्थितहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन् यद्यपिसत्यादिपदोंसेत्वंपदके लक्ष्यार्थकी उपस्थिति नहींहोती । तथापिपूर्वउत्तरीतिसे साक्षीऔर प्रत्यगादिपदोंसे तिसकीउपस्थितिभीकथनकरनेयोग्यहै । इसीअर्थ कोस्पष्टकरतेहैं । अनेकअज्ञानजो चेतनकेप्रतिध्वंसहितहैं । वह चैतन्यकी प्रधानतासेसाक्षिपदकेवाच्यहैं औरव्यक्तिस्थानापन्नतिन साभासअज्ञानोंमेंकल्पितसंबंधवाली जोअनुगतचैतन्यरूपएकव्यक्तिहै वहतिनअज्ञानोंकाअवच्छेदकहोनेकरघटत्वादिजातिकीन्याईसाक्षिपद कावाच्यहै। इसप्रकारसाक्षिपदसे चैतन्यकीउपस्थितिकासंभवहोनेसे त्वंपदकेलक्ष्यार्थमेंभीमूकताकीप्राप्तिनहींहोती ॥ शंका ॥ इसप्रकार सत्यज्ञानतथासाक्षिआदिकपदोंसे अनेकव्यक्तिस्थानापन्नजोसाभास अज्ञानतथा वृत्तिरूपउपाधियेंतिनकरयुक्तसामान्यस्थानापन्नब्रह्मचैतन्य कीउपस्थितिमानेहुएतत्त्वंपदकेलक्ष्योंकोअखंडत्वकीसिद्धिकैसेहोगी॥ क्योंकिअखंडअर्थत्वउपाधियुक्तनहीं ॥ समाधान ॥ हेवादिन् यह विकल्पनैयायिककातोनोंसंभवता ॥ क्योंकि— (पशुनायजेत) अ०॥ पशुकरणाकयागकाअनुष्ठानकरे ॥ इसवाक्यमेंपशुपदसेजाति औरव्यक्तितथाआकृति इनतीनपदार्थोंकी समानउपस्थिति हुएभी योग्यताकेवलसे यागकीसाधनताजैसेपशुव्यक्तिमेंहीमानीहै जात्यादि

में नहीं । तैसे प्रकरण में भी सत्यादिपदों से उपाधि उपहित की उपस्थिति
हुए भी योग्यता से केवल शुद्ध का ही ग्रहण होता है । और सीमा संकका तो
यह विकल्प संभवता ही नहीं । क्योंकि वह जाति मात्र को ही पदार्थ मानता है
तिसकी रीति से व्यक्ति स्थानापन्न जो साभास उपाधि तिसके साथ संबंध
वाला जो सामान्य स्थानापन्न ब्रह्म चैतन्य है । तिसकी ही सत्यादिपदों से
उपस्थिति होने कर तत्त्व मस्यादि महावाक्य शुद्ध चैतन्य को ग्रहण करके
कैसे अखंड अर्थ में तात्पर्य वाले नहीं किंतु तात्पर्य वाले हैं ॥ शंका ॥ तत्त्व
मस्यादि वाक्यों का पूर्व उक्त रीति से अखंड अर्थ में पर्यवसान माने हुए भी
सत्यादि तथा साक्षादि पदों की “तत्त्वम्” आदि पदों के लक्ष्य शुद्ध
चेतन में शक्तिवृत्ति से प्रवृत्ति युक्त नहीं । क्योंकि (यतो वाचो निव
र्तते) इत्यादि श्रुति वचनों का विरोध है । और संप्रदाय वेत्ता पुरुषों का
विरोध भी प्राप्त होता है ॥ क्योंकि उन्होंने यह कहा है ॥

तत्त्वं पदार्थविषयोनय एव योज्यः । सत्यादि व
स्तु निन तत्र विशेष कल्प्यः ॥ सत्यादि शब्द विषयाः
श्वलास्तदर्थं भागेषु लाक्षणीकी वृत्तिरपीह तुल्या १॥

(सं० शा० अ० (१) खंडो० १७७)

अ० ॥ तत्त्वं” पदार्थविषयक जो लक्षण रूप न्यायमाना है
वही न्याय सत्यादि पदार्थों में भी स्वीकार करने योग्य है । तिनमें और कोई
विशेष रीति कल्पना करने योग्य नहीं । क्योंकि सत्यादि शब्दों का विषय
भी उपाधियुक्त पदार्थ है । या तो सत्यादि वाक्य में जो वाच्य अर्थ के भाग हैं
तिनमें लक्षणावृत्ति भी समान ही है ॥ १ ॥ इति ॥ समाधान ॥ हे वा

दिन्यहत्तुम्हाराकथनभी अयुक्त है । क्योंकि प्रथम जो श्रुतिका विरोध कहा था सो नहीं संभवता । तथा हि । वह श्रुति अविद्यातत्कार्यके संबंध से रहित शुद्ध चेतन में शक्तिवृत्तिकानिषेध करती है । अथवा अविद्यातत्कार्यके साथ संबंधवाले चेतन में तिसका निषेध करती है । यह प्रष्टव्य है । इनमें यदि प्रथम पक्ष कहो तो अणिष्टकी प्राप्ति नहीं होती । क्योंकि मोक्षकाल में शुद्ध ब्रह्म विषयक किसी पदकी वृत्तिका स्वीकार नहीं । और द्वितीय पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि तिसमें दोष का अभाव है । यद्यपि उपाधियुक्तकी सत्यादिपदों से उपस्थिति हुए शुद्ध चिन्मात्र लक्ष्य स्वरूपकी उपस्थिति कैसे होगी । तथापि उपाधिको तटस्थ रूपता से वाच्य कोटि में अग्रवेश होने पर शुद्ध सच्चिदानंद एक रस “तत्त्वं” इन दोनों पदों का लक्ष्य है ॥ तिसकी सत्यादिपदों से उपस्थिति संभवती है । जैसे धेनु पद गोत्व उपहित व्यक्ति में शक्तिवाला हुआ भी तिस से गोव्यक्ति विशेषकी ही उपस्थिति होती है । गोत्व जातिकी नहीं । क्योंकि गोत्वको तटस्थ रूपता होने से वाच्य कोटि में तिसका प्रवेश नहीं ॥ तैसे ही सत्यादिपद से शुद्ध ब्रह्मकी ही उपस्थिति होती है । अज्ञानादिक उपाधिको तटस्थ रूपता होने से वाच्य कोटि में तिनका प्रवेश नहीं है । या ते तिनकी उपस्थिति नहीं होती । इस प्रकार श्रुतिके विरोध का अभाव है ॥ और जो पूर्वसंप्रदाय का विरोध कहा था सो सत्य है । परन्तु उन संप्रदाय वेत्ताओं ने भी श्रुतिका विरोध परिहार करने के लिये ही वेदांत पदों में लक्षणामानी है । वह विरोध यदि हमारी कथन की हुई रीति से परिहार हो सकता है । तो पुनः सत्यादिपदों में लक्षणामानने का क्या फल है । क्योंकि मुख्यार्थके संभव हुए लक्षणामाननी अयुक्त है । और इस प्रकार तिनको अज्ञान की प्राप्ति भी नहीं हो सकती । क्योंकि एक

उपाय दूसरे उपाय का दूषक नहीं होता । तिन वृद्धों का प्रयोजन भी विरोध के परिहार करने का है । उस विरोध का परिहार जिस जिस प्रकार से संभवे तिस तिस प्रकार से ही युक्ति कल्पना करने योग्य है । यह ही उन का अभिप्राय है ॥ याते पूर्व उक्त सर्व ही अर्थ निर्दोष है ॥ और यदि अज्ञान एक है । और तब उपहित चैतन्य का नाम साक्षी है ॥ तो अज्ञान रूप उपाधिको त्याग करके शुद्ध चैतन्य ही त्वंपद काल द्यार्थ साक्षिपद से पूर्व उक्तरीति से उपस्थित होता है ॥ यह जानने योग्य है । इस समग्र अभिप्राय के प्रकट करने के लिये मूल ग्रंथकर्ता आचार्यों ने

* नाना उपाधिसंबद्ध व्यक्ति अतिरिक्त सामान्या नभ्युपगमात् *

इस मूल ग्रंथ में सामान्य को व्यक्तिकी अपेक्षा होने से उपाधि पद के स्थान में व्यक्ति पद देना योग्य था तो भी जिस कारण से व्यक्ति पद को त्याग कर उपाधि पद का प्रयोग किया है । तिस कारण से हम निश्चय करते हैं । कि जैसे अन्य स्थल में उपाधिका वाच्य कोटि में प्रवेश नहीं होता तैसे सत्यादि वाक्य में शुद्ध चेतन ही सत्यादि पद के वाच्य कोटि में प्रवेश होता है । अज्ञानादि उपाधिका वाच्य में प्रवेश नहीं । इसलिये ग्रंथकर्ता आचार्य उपाधि लभके योग्य नहीं हैं ॥ इति ॥

* अथ साक्षी की सिद्धि का प्रकार निरूपण *

शंका ॥ पूर्व प्रकरण में जो साक्षी यापने कहा वह कौन है । यह विचारणीय है । तहां पर ब्रह्म का नाम साक्षी है । अथवा जीव का नाम साक्षी है । प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि तिस पर ब्रह्म को य संग होने का साक्षिपने का असंभव है । जिस कारण से साक्ष्य के संबंध बिना लोक में कोई भी

प्राप्तिहोगी । क्योंकिविषयनिष्ठप्रमाणकीकीहुई अतिशयताका
 अभावहै । अर्थयह ॥ अज्ञानकीनिवृत्तिहीप्रमाणकृतअतिशयताहै ॥
 वहजबप्रमाणसेसिद्धनहुई तोतिसप्रमाणसेक्याप्रयोजनहै । औरयदि
 विषयकाप्रकाशहीप्रमाणकाफलकहो तोयहभीनहींसंभवता । क्योंकि
 अज्ञानरूपआवरणकेविद्यमानहुए विषयकेप्रकाशकीभीअयोग्यताहै ।
 इसप्रकारअज्ञातता प्रमाणकाविषयनहीं । औरद्वितीयपक्षभीअसंगतहै
 क्योंकिभ्रमसिद्धपदार्थको प्रमाणकीविषयताकाविरोधहै । अर्थयह
 अज्ञाततारूपविषयकेबाधसेहीअज्ञातताकीसिद्धिकोभ्रमपनाकहनेयोग्य
 है । इसप्रकाराधिन अर्थमेंप्रमाणकैसेप्रवृत्तहोगा । क्योंकिविषयको
 हीअसत्पनाहै । औरअज्ञातताकीस्वतःसिद्धिहै यहतृतीयपक्षभीनहीं
 संभवता । क्योंकिअज्ञातताको अनात्मताहोनेसेजडताहै । औरजड
 काभानस्वतःनहींहोता । औरवहअज्ञातताकिसीअन्यसेसिद्धहोतीहै ।
 यहचतुर्थपक्षकहो तोवहअन्यपदार्थहीपरिपोषसेसाक्षीहै । तैसेमानेहुए
 प्रमाणकीप्रवृत्तिसेप्रथमहीअज्ञातरूपतासेसाक्षीकरबोधनकियाहुआजो
 विषयहै तिसकोहीप्रमाणविषयकरताहै । यहकथनयुक्तहै । इतने
 कथनसे साक्षीकामाननानिष्फलहै इसकापरिहारकिया । क्योंकि
 अज्ञातताकीसिद्धिसाक्षीकेआधीनहै । यातेसाक्षीकास्वीकारसफलहै ।
 औरपूर्वउक्तरीतसेसाक्षीसेविनाप्रमाणकीअनुपपत्तिहोनेकर साक्षीकी
 सिद्धिहै । इसीकारणसेसाक्षीमें विवादकरनायुक्तनहीं । इसीअर्थमेंआप्त
 पुरुषोंकावाक्यभीप्रमाणहै । तैसेहीसुरेश्वराचार्योंनेकहाहै ॥

❀ प्रमाणमप्रमाणं वा प्रमाभासस्तथैव च ।

कुर्वन्त्येव प्रमां यत्र तदसंभावनाकुतः ॥ १ ॥ ❀

(श्लो० ८७४ । दृ० वा० अ० १)

अ० ॥ जैसे प्रमाण की सिद्धि साक्षी के आधीन है । तैसे मिथ्याज्ञान और संशय ज्ञान इन दोनों का साधक भी साक्षी है । क्योंकि मिथ्याज्ञान और संशय ज्ञान की प्रमाण से तो सिद्धि कहन ही सकते । प्रमाण के साथ तिन का विरोध है । और मिथ्याज्ञान और संशय ज्ञान रूप वृत्तिको जड़ता होने से स्वतः भीति का भान नहीं संभवता । और भ्रम से भीति का भान नहीं होता । क्योंकि भ्रम वृत्तिके भान का विचार तो प्रकरण में यत्र प्राप्त ही है । तिस कारण से तिन दोनों ज्ञानों की सिद्धि भी साक्षी कर ही होती है । या तो प्रमाण और भ्रम ज्ञान तथा संशय ज्ञान यह तीनों जिस साक्षी विषयक प्रमा को उत्पन्न करते हैं । अर्थात् साक्षी से बिना इनकी सिद्धि नहीं होती । तो तिस साक्षी की असंभावना कैसे हो सकती है ॥ १ ॥ इस प्रकार सर्व प्रमाणादिकों का साधक त्वं पद कालक्षयार्थ साक्षी मिद्धुया ॥ इति ॥

❀ अथ उभयपदमेलक्षणा का प्रकार निरूपण ❀

और “तत्त्वं” इन दोनों पदों का एक अर्थ है । अथवा अनेक अर्थ हैं । यह विकल्प जो वादी ने पूर्व किया था । मो भी यमंगत है । क्योंकि यद्यपि दोनों पदों का एक ही अर्थ है । तथापि दोनों पद स्वीकार करने योग्य हैं ॥ गंका ॥ भेद का जनक जो यज्ञान है । तिम की निवृत्तिके अर्थ अथ भेद ज्ञान ही उपेक्षित है । वह अथ भेद ज्ञान यदि रूपदमे ही उत्पन्न हो जाय तो दुमरे पद से क्या प्रयोजन है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् प्रमाणजन्य ज्ञान ही भेद भ्रम का निवर्तक होता है । मिथ्याज्ञान भेद भ्रम का निवर्तक नहीं होता ।

और वह प्रमाण जन्य ज्ञान एक पद से नहीं उत्पन्न हो सकता ॥
 क्योंकि पदमात्रको प्रमाज्ञानकी हेतुता का अभाव है । तिसकारणसे भेद
 भ्रमके निवर्तक ज्ञानकी उत्पत्तिके अर्थ वाक्यरूप प्रमाणकी अपेक्षा है ।
 और एक पदमें वाक्यरूप तानहीं संभवती ॥ याते वाक्यताकी सिद्धिके
 अर्थ दूसरा पद अवश्य अपेक्षणीय है । और पदोंकी एक अर्थता माने
 हुए पर्यायशब्दोंकी न्यांई वाक्यपनेकी अनुपपत्तिरूप दोष पूर्ववादीने
 कहा था वह भी नहीं संभवता । क्योंकि पदोंकी प्रवृत्तिके निमित्त का भेद है ।
 जिस कारणसे भोक्तृत्वादिक धर्मत्वं पदकी प्रवृत्तिके निमित्त हैं और सर्व
 ज्ञत्वादिक धर्म तत्पदकी प्रवृत्तिके निमित्त हैं । इस प्रकार पर्यायता प्राप्ति
 का अभाव होनेसे वाक्यत्वकी हानि नहीं ॥ शंका ॥ दोनों पदोंका प्रयोग
 वाच्यार्थकी उपस्थितिके लिये नहीं है । क्योंकि तिस वाच्यार्थकी उपस्थिति
 का कोई प्रयोजन नहीं ॥ किंतु लक्ष्यार्थकी उपस्थितिके लिये दोनों पदों
 का प्रयोग है ॥ वह लक्ष्यकी उपस्थिति यदि एक पदसे सिद्ध हो तो दूसरे
 पदका प्रयोग करना निष्फल है ॥ और पदको भी अनुभव का जनक होनेसे
 और तिसके विषय का अबाध होनेसे प्रमाणाता संभवती है । याते द्वितीय पद
 निष्फल है ॥ समाधान ॥ हेवादि नृजैसे घोपनिवासका वाचक जो
 “घोप” पद तिसके प्रयोगसे विना गंगा पदतीरको लक्षणावृत्तिसे घोधन
 नहीं कर सकता । क्योंकि मुख्य अर्थमें किसी प्रकारकी अनुपपत्ति नहीं ।
 तैसे तत्पद का अथवा तत्पद का प्रयोग करे हुए विशिष्ट चेतन्य ही तिस पद
 से उपस्थित होगा । अखंड एकरस शुद्ध चिदात्माकी उपस्थिति नहीं
 होगी । तिससे जिज्ञासु को वाञ्छित अर्थ का बोधन होनेसे तिस “त्वं वातत्”
 पद का प्रयोग व्यर्थ ही होगा ॥ और वैदिक पदोंका प्रयोग निष्फल नहीं हो

सकता॥तिसकारणसेलक्षणावृत्तिकरअखंडअर्थकेलाभनिमित्तद्वितीय पदकाप्रयोगहै । तिसद्वितीयपदसेविना विरोधकाअस्फुरणहोनेसे मुख्यार्थकाहीसंभवहोजायेगा ॥ पुनःलक्षणासेअखंडअर्थकाप्रति पादननहींसंभवेगा॥ यातेअखंडअर्थकीसिद्धिकेलिये दूसरापदसफल है । औरपदमात्रको जोवादीने अनुभावक कहाथा वहभीनहीं संभवता ॥ क्योंकि—

*** पदमप्यधिकाभावात् स्मारकान्नविशिष्यते ***

अ० ॥ पदकोस्मारकहोनेसे अधिकअर्थजोवाक्यार्थतिसकी बोधकतापदमेंनहीं। इसीसेतिमकोविशेषतानहीं अर्थात्प्रमाणतानहीं। इसन्यायसे पदमात्रको अप्रमाणाहोनेसे तिसकोअनुभावकतानहीं संभवती । औरप्रधानवाक्योंमें लक्षणाकीअनुपपत्तिहैयहजोवादीने पूर्वकहाथा सोकथनभी अयुक्तहै । क्योंकिइतरपदार्थोंमेंजो “अनुप सर्जन” अर्थात्प्रधानपदार्थहै । तिसकाप्रतिपादकहोनेसेही वाक्यको प्रधानपनाहै। सोप्रधानकीप्रतिपादकतालक्षणासेहो। अथवाशक्तिवृत्ति सेहो। इसमेंकोईआग्रहनहीं॥ यातेलक्षणाकेमानेहुएभी वाक्यमेंप्रधान ताकीहानिनहीं ॥ और (गुणोत्वन्यायकल्पना) अ० गौणवाक्यमेंलक्षणाकीकल्पनाहोतीहै। इसन्यायकाविरोधजोपूर्ववादीनेकहाथा वहभीनहींसंभवता। क्योंकिजहांप्रतिपादनकरनेयोग्यअर्थमें शब्दकी शक्तिवृत्तिकीविषयताहै । तहांहीयहन्यायप्राप्तहोताहै औरयहांतोप्रति पादनकरनेयोग्यअर्थमें तत्त्वआदिकपदोंकीशक्तिवृत्तिकी विषयताका अभावहै । यातेन्यायकाविरोधनहीं । तिसीहेतुसे तत्त्वमस्यादिमहा वाक्यलक्षणासेप्रत्यक्ब्रह्मकाजोअभेदअखंडएकरसशुद्धचिदात्मातिस

कोबोधनकरतेहैं । इसकारणसे (यतोवाचोनिवर्तते) इसश्रुति सेविरोधनहीं ॥ इति ॥

❀ अथब्रह्मात्माकेअभेदरूपप्रमेयमेंप्रत्यक्षादिप्रमाणों केविरोधकापरिहारशंकासमाधानपूर्वकनिरूपण ❀

इसप्रकारअखंडएकरस जोब्रह्मात्माका अभेद तिसमेंवेदान्तोंका समन्वयजोशारीरकमीमांसाकेप्रथमअध्यायकाअर्थतिसकोसंक्षेपसेनिरूपणकरके अतिसअभेदरूपअखंडार्थमें प्रत्यक्षादिप्रमाणोंके विरोधका परिहार जोद्वितीयअध्यायकाअर्थतिसकोसंक्षेपसेनिरूपणकरनेकेलिये पूर्वपक्षकोनिरूपणकरतेहैं। (अथपूर्वपक्ष) शंकाकोस्पष्टरूपतासेप्रकट करनेकेलियेपूर्वपक्षी प्रथमतत्त्वमस्यादिमहावाक्योंमें हेयतथाउपादेय अंशकोनिरूपणकरतेहैं । कर्तृत्वादिधर्मविशिष्टतथासुषुप्तिआदिक अवस्थावालाचैतन्यत्वंपदकावाच्यार्थहै । औरजगत्कर्तृत्वादिधर्म विशिष्टतथाआकाशादिकोंका उपादानचैतन्य तत्पदकावाच्यार्थहै । तिनदोनोंकाअभेदगुरुमुखद्वाराश्रवणकियेहुएमहावाक्यसेप्रतीतहोताहै परंतुसंसारीतथाअसंसारीकाअभेदरूपजोमुख्यार्थहै तिसकीप्रत्यक्षादि प्रमाणकेविरोधसेअनुपपत्तिहै । तिसकारणसेत्वंपदार्थमेंविरुद्धधर्मजो कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखित्वदुःखित्वादि तिनकोत्यागकरतिनसेपृथक्किया हुआ अवस्थात्रयमें अनुस्यूतशुद्धचेतनअंश जोप्रत्यगात्मातिसकातत्पदार्थमेंविरुद्धजगत्कर्तृत्वादिधर्मोंकोत्यागकरतिनसेपृथक्कियाहुआ आकाशादिकोंमें अनुस्यूत तथा शुद्धपरिष्कारसच्चिदानंदस्वरूप जो परमात्मातिसकेसाथअभेदलक्षणावृत्तिसेमहावाक्यबोधनकरताहै। यह अर्थसिद्धांतीनेपूर्वनिरूपणकिया॥ शंका ॥ हेवादिन्यद्यपिइसप्रकारका

अर्थहमने पूर्वप्रतिपादनकियाहै । तथापिइसमेंविरोधकी आशंकाकैसे प्राप्तहोतीहै ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन् प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धजोसर्व भेद तिसकानिराकरण आपनेपूर्वनहींकिया।यातेअभेदका प्रतिपादन नहींसंभवता । यद्यपिपूर्वकथनकीहुईयुक्तिसे जीवब्रह्मकेभेदकानिरा करणकियाहै यातेकैसेतुमयहकहतेहो जोभेदकानिराकरणनहींकिया। तथापियहांभेदपद अनात्मभेदपरहै । यातेअनात्मभेदतो तिसीप्रकार अवस्थितहै । यद्यपिअवस्थात्रयमेंअनुगततथाआकाशादिकोंमेंअनु स्मृतयहजोब्रह्मात्माकाविशेषणपूर्वकहाहैतिसकेप्रभावसेविजातीयभेदका निराकरणभीकियागया। क्योंकिजैसेअधिष्ठानरज्जुमेंपरस्परव्यभिचारी जोमृत्रधारादंडमालादिसोकल्पितहैं।तैसेअधिष्ठानब्रह्मात्मामेंसर्वजगत् कल्पितहै ॥ और (मृत्तिकेत्येवसत्यं) इसश्रुतिनेकारणसेभिन्न कार्यकीसत्ताकाअभावकथनकियाहै । यातेआकाशादिकार्यकोमिथ्या होनेसे तत्प्रतियोगिकभेदकोभी मिथ्यापनाहै । इसकारणसे पूर्व उक्तशंकानहींसंभवती । तथापिइसविशेषणकेतात्पर्यकोनजानकर वादीकीशंकासंभवतीहै ॥शंका॥ हेवादिन्जैसेआत्मातथापरमात्माके भेदकोग्रहणकरनेवालाप्रमाणअप्रमाणरूपहै तैसेअनात्माके भेदकाग्रा हकजो प्रत्यक्षादितिसकोभीअप्रमाणाताहै॥यहांयहअनुमानजानना ।

❀ विमतंअनात्मभेदग्राहकं अप्रमाणां भेदग्राहक त्वात् । आत्मपरमात्म भेदग्राहकवत्॥❀ अ० विवाद काविषयजोअनात्मभेदग्राहक प्रत्यक्षादिसोअप्रमाणांरूपहै । भेदका ग्राहकहोनेसे जोजोभेदका ग्राहकहोताहै। सोसोअप्रमाणांरूपहोताहै। जैसेआत्मातथापरमात्मका भेदग्राहिप्रत्यक्षादिहैं ॥इति॥ समाधान ।

हेसिद्धांतिदृष्टांतकी असिद्धिहोनेसेयहबुझाया हेतुअसाधारणअनै
कांतिकहै। इसीकोस्पष्टकरतेहैं। अनुमानमेंजोअप्रमाणरूपसाध्यहैतिस
काक्याअर्थहै। अर्थात्प्रमाणत्वकाजो अत्यंताभावतिसकाजोअधि
करणाहो वहअप्रमाणहै। अथवाप्रमाणसेभिन्नकोअप्रमाणकहतेहो। यह
दोनोंप्रकारकाअप्रमाणशब्दकाअर्थमानेहुएभीनिश्चितसाध्यवालेहोनेसे
घटादिकसपक्षहीकहेजातेहैं। क्योंकिप्रमाणत्वके अत्यंताभावका
अधिकरणभीघटादिकहैं। औरप्रमाणसेभिन्नभीहैं। औरअभेदकेग्राहक
प्रमाणजोतत्त्वमस्यादिमहावाक्यहैं वहविपक्षहैं। क्योंकिअप्रमाणाता
रूपसाध्यकेअभाववालेहैं। तिनदोनोंसपक्षविपक्षोंसेव्यावृत्तहोनेसे
हेतुमेंअसाधारणअनैकांतकिता संभवतीहै ॥ और दृष्टांताभासोंकी
हेत्वाभासोंमेंहीअंतरभावताहै। यातेपूर्वउक्तअनुमानदुष्टहै॥ शंका ॥
दृष्टांतकाअभावतुमकैसे कहतेहो। क्योंकिजीवतथा परमात्माकेभेदका
ग्राहक(नाहमीश्वरः) “मैंईश्वरनहींहूँ” यहप्रत्यक्षहीदृष्टांत रूपतासे
विद्यमानहै ॥ समाधान ॥ आत्मातथापरमात्माकेभेदकाग्राहककोई
प्रमाणनहींहै। इसीकोस्पष्टकरतेहैं ॥ क्या? यहपूर्वकथनकियाप्रत्यक्ष
भेदमात्रकोविषयकरताहै ॥ अथवा ॥ आत्मप्रतियोगिकभेदकोवि
षयकरताहै॥ प्रथमपक्षतोनहींसंभवता। क्योंकिआत्माकेभेदकाग्राहक
पनातिसकोअसिद्धहै। यातेदृष्टांतकाअभाव उसीप्रकार अवस्थितहै।
औरयदिद्वितीयपक्षकहो तोतिसमेंभी यहविचारकर्तव्यहै। कितिस
पक्षमेंआत्मशब्दसे स्वप्रकाशचेतनसुखस्वरूपका ग्रहणहै। अथवा
कर्तृत्वादिधर्मविशिष्टचेतनकाग्रहणहै। प्रथमपक्षतोनहींसंभवता। क्योंकि
आत्मा तथा परमात्मा इनदोनोंको स्वयंप्रकाशमान होनेसे किसी

प्रमाणकी विषयतातिनमें नहीं हो सकती ॥ औरद्वितीय पक्षभी नहीं संभवता ॥ क्योंकि (सविशेषणोहि) अ० ॥ विशेषण सहितवस्तुमें जो प्रमाण प्रवृत्त होता है ॥ यदि वह विशेष्यभागमें बाधित हो जाय तो वह विशेषण को ही प्राप्त होता है । इस न्याय से कर्तृत्वादि धर्मविशिष्ट आत्मा के भेद को विषय करनेवाला जो प्रमाण है तिसको विशेष्य चेतनमात्र के भेदकी विषयता के बाधित हुए विशेषण जो कर्तृत्वादितिनके भेदकी गोचरता होने से तिसकी अन्यप्रकार से सिद्धि है । याते वह प्रमाण आत्मा तथा परमात्मा के भेद का साधक नहीं । इस प्रकार पूर्व उक्त दृष्टांत असिद्ध है यह भाव है । किंवा ॥ विशेष्यभाग जो चेतनमात्र तिसके अभावे का ग्राहक जो तत्त्वसंख्यादि वाक्यरूप प्रमाण तिसके पूर्व उक्त अनुमान को बाधित होने से भी तिस अनुमान को आत्मा तथा परमात्मा के भेदकी साधक त नहीं संभवती । इस प्रकार पूर्व उक्त सिद्धांती के अनुमान को दुष्ट होने से अनात्मभेद के ग्राहक जो प्रत्यक्षादि वह प्रमाण रूप हैं । और यहाँ यह अनुमान भी जान लेना ॥

❀ अहंनविश्वं इत्यनात्मप्रतियोगिकभेदग्राहकं प्रत्यक्षं ।
तच्च नाप्रमाणं । विपरीतार्थगोचरप्रमाणाभावात् ।
महावाक्यप्रमाणवत् ॥ ❀

अ० ॥ मैं पंचरूप नहीं हूँ यह अनात्मप्रतियोगिकभेद का ग्राहक जो प्रत्यक्ष है । सो अप्रमाण नहीं है । विपरीतार्थ को विषय करनेवाले प्रमाण का अभाव होने से । जहाँ जहाँ विपरीतार्थ विषय प्रमाण तानहीं है तहाँ तहाँ अप्रमाणात्ता भी नहीं है । जैसे महावाक्यरूप शब्द प्रमाण है ॥ इति ॥ इसरीति से अनात्मप्रतियोगिकभेद के ग्राहक जो प्रत्यक्षादि हैं तिन

काकोईबाधकनहीं। यातेपूर्वउक्तप्रमाणत्वकासाधकअनुमानबाधित है। यहांपूर्वग्रंथमें (प्रत्यक्षादि) इसआदिपदसे

❀ आत्मानात्मानौ । मिथोभिन्नौ विरुद्धधर्माक्रांतत्वात् । द्रवकाठिनवत् ❀

इत्यादिअनुमानकाग्रहणकरना॥ अ० ॥ आत्मातथाअनात्मा परस्परभेदवालेहैं। विरुद्धधर्मयुक्तहोनेसे। जोजोविरुद्धधर्मवालेहोते हैं सोसोपरस्परभेदवालेभीहोतेहैं। जैसेद्रवताऔरकाठिनताहैं॥इति॥

❀ अथधर्मभेदकेनिराकरणाकाप्रकारनिरूपण ॥

सिद्धांतीकीआशंका ॥❀

हेवादिन्यप्रत्यक्षादिप्रमाणोंको अनात्माकेस्वरूपविषयकत्वमाने हुएभीभेदगोचरता तिनकोनहींसंभवती। क्योंकिधर्मातथाप्रतियोगीऔर भेद इनतीनोंकेग्रहणमेंक्रमतथायौगपद्यादिविकल्पोंकीप्राप्तिहुएअन्योन्याश्रयआत्माश्रयचक्रिकाअनवस्थाप्राग्लोप विनिगमनाविरहादि अनेकदोषोंकीप्राप्तिहोगी॥ इसीकोस्पष्टकरकेनिरूपणकरतेहैं॥ क्या? प्रत्यक्षप्रमाण भेदमात्रकोग्रहणकरताहै॥ अथवाधर्मातथाप्रतियोगीऔर भेद इनतीनोंकोग्रहणकरताहै॥ प्रथमपक्षतो नही संभवता॥ क्योंकि धर्मातथाप्रतियोगीकेज्ञानसेविना भेदकाज्ञाननहींहोसकता॥ धर्मिप्रति योगिज्ञानपूर्वकही भेदकाज्ञानहोताहैयहनियमहै॥ औरद्वितीयपक्षमें भी यहविचारकरनेयोग्यहै। धर्मिआदिकोंकाग्रहणक्या?क्रमसेहोताहै अथवाएककालमें तिनकाग्रहणहोताहै। यदिक्रमसेकहोतोतिसमेंभी यहविचारणीयहै। क्या?प्रत्यक्षभेदकोप्रथमग्रहणकरके पश्चात्धर्मातथा प्रतियोगीकोग्रहणकरताहै॥ अथवाधर्माप्रतियोगीकोग्रहणकरकेपश्चात्

भेदको ग्रहण करता है। और युगपद ग्रहण पक्ष में भी यह वक्तव्य है। क्या? जैसे “दंडी देवदत्तः” यह प्रतीति दंड तथा देवदत्त को विशेषण विशेष्य भावसे ग्रहण करती है। तैसे यहां धर्म और प्रतियोगी तथा भेद इन तीनों को विशेषण विशेष्य रूपतासे प्रत्यक्ष ग्रहण करता है ॥ अथवा अंगुलि त्रय की न्याई परस्पर तीनों को संबंधसे रहित रूपतासे ग्रहण करता है। तहां सर्वसे प्रथम विकल्प में धर्म और प्रतियोगी तथा भेद इन तीनों को प्रत्यक्ष ग्रहण करता है। यह द्वितीय पक्ष नहीं संभवता ॥ तथा हि ॥ तिस द्वितीय पक्ष के अंतर्गत जो क्रमसे ग्रहण यह प्रथम पक्ष था तिसमें भेद के ग्रहण पूर्वक धर्म और प्रतियोगी का ग्रहण होता है यह क्रम तो नहीं संभवता। क्योंकि भेद ज्ञान के प्रति धर्म और प्रतियोगी के ही न को कारण होनेसे पूर्वक धन किया हुआ क्रम अयुक्त है ॥ और धर्म आदिकों को प्रथम ग्रहण करके पश्चात् भेद का ग्रहण होता है यह द्वितीय क्रम पक्ष है। तिसमें भी यह विचार कर्त्तव्य है। क्या? स्वरूपसे धर्म आदिकों का ग्रहण भेद का निरूपक है। अथवा घटत्वादि रूपतासे तिनका ग्रहण भेद का निरूपक है ॥ अथवा धर्मित्व रूपतासे धर्म का ग्रहण और प्रतियोगित्व रूपतासे प्रतियोगी का ग्रहण भेद का निरूपक है। इनमें प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि जल तथा दुग्ध का तादात्म्य होनेसे स्वरूपसे वह दोनों भासमान भी हैं। परन्तु तिनका भेद ग्रहण नहीं होता। या ते स्वरूपसे धर्म आदिकों का ग्रहण भेद का निरूपक नहीं ॥ और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता। क्योंकि घटत्वादि रूपतासे जो प्रतियोगि आदिकों का ग्रहण है तिसको भेद की अपेक्षा होनेसे अन्योऽन्याश्रय दोष की प्राप्ति स्पष्ट ही है। इस अन्योऽन्याश्रय दोष की प्राप्ति होनेसे ही तृतीय पक्ष भी नहीं संभवता। क्योंकि भेद ज्ञान के आधीन प्रतियोगि आदिकों का ज्ञान है। जिस

कारणसेधर्मीसेभिन्न भेदके निरूपककोप्रतियोगीकहतेहैं । औरइसी प्रकारधर्मीकाज्ञानभीभेदज्ञानपूर्वकही कल्पनाकरनेयोग्यहै । क्योंकि प्रतियोगीसेभिन्नभेदके आश्रयकोधर्मीकहतेहैं । औरधर्मीतथाप्रति योगीकेज्ञानपूर्वकभेदज्ञान प्रसिद्धहीहै । यातेइसपक्षमेंकैसेअन्योन्याश्रयदोषकीप्राप्तिनहोगी किंतुअवश्यहोगी ॥ किंवा ॥ भेदभिन्न धर्मीमेंवर्तताहै । अथवाअभिन्नधर्मीमेंवर्तताहै । अन्त्यपक्षतोनहीं संभवता । क्योंकितिसथभिन्नधर्मिविषयकभेदके ग्राहकप्रत्यक्षकोभ्रम पनाहोगा । भावयह भेदकेअनधिकरणकानाम अभिन्नहै । तिसमें यदिप्रत्यक्षभेदकोग्रहणकरेगा । तोवहकैसेभ्रमरूपनहींहोगा । और यदिप्रथमपक्षकहो तोतिसमें यहविचारणीयहै । क्या?अपनेकरभिन्न कियेहुएधर्मीमेंआपभेदवर्तताहै । अथवाकिसीदूसरेभेदकरभिन्नकिये हुएधर्मी मेंभेदवर्तताहै । प्रथमपक्षतोनहींसंभवता । क्योंकिअपनेकर भिन्नकियेहुएधर्मी मेंअपनीवृत्तिहोनेसेआत्माश्रयदोषकीप्राप्तिहै । और यदिद्वितीयपक्षकहो तोतिसमेंभी यहविचारकर्त्तव्यहै । वहद्वितीय भेद भीक्या?अभिन्नधर्मी में वर्तताहै।अथवाभिन्नधर्मीमें वर्तताहै । प्रथम पक्षमें तोभेदग्राहकप्रत्यक्षकोभ्रमपनाहोगा।यहपूर्वकअनकियाहै।और द्वितीयपक्षमेंभीयदिअपनेकरभिन्नकियेहुएधर्मीमेंवहदूसराभेदआपवर्तताहै तोआत्माश्रयदोषकीप्राप्तिहै।क्योंकिअपनीस्थितिकेअर्थइतरकेव्यवधान रहितअपनीहीअपेक्षाहै । औरप्रथमभेदकरभिन्नकियेहुएधर्मी मेंद्वितीय भेदरहताहै ऐसेयदिमानो तोअन्योन्याश्रयदोषरूपहीप्राप्तहोताहै । औरइनपूर्वउक्तदोषोंकेपरिहारकरनेकेलिये द्वितीयभेदको भिन्नधर्मी में स्थितिकेअर्थयदितृतीयभेदस्वीकारकरो तोचक्रकादोषकीप्राप्तिहोगी ।

क्योंकिदोकेव्यवधानसेजहांपुनः अपनीअपेक्षाहोतहांचक्रकादोपप्राप्त होताहै । औरतिसचक्रकादोपकेदूरकरनेकेलियेयदिचतुर्थभेदस्वीकार करोतोअनवस्थादोपकीप्राप्तिहोगी । औरयदिऐसेकहोकिअन्यगतिके अभावसेअनवस्थादोपकोहमस्वीकारकरलेंगे।तोतिसमेंभीयहतुमनेकहा चाहियेक्या?वहअनंतभेदक्रमसे धर्मीमेंवर्त्ततेहैं।अथवाक्रमसेविनाएक कालमेंवर्त्ततेहैं।यदिक्रमसेकहोतोधर्मीकोअनादिपनाप्राप्तहोगा।क्योंकि अनंतधर्मोंकाआश्रय सादिनहींहोसकता । औरउत्तरउत्तरभेदसेहीपूर्व पूर्वभेदकाकार्यजोधर्मीमेंभिन्नव्यवहार तिसकीअन्यप्रकारसेसिद्धिहोने से पूर्वपूर्वभेदकोव्यर्थहोनेकर प्राग्लोपदोपकीप्राप्तिहोगी। पूर्वपूर्वभेदों कालोपअर्थात्निष्फलताहोनी इसीकोप्राग्लोपकहतेहैं । औरयदिवह अनंतभेद धर्मीमेंएककालमेंरहतेहैं।यहद्वितीयपक्षकहो तोभिन्नधर्मीमें भेदवर्त्तताहै।इसपक्षकी हानिहोगी। औरयदिइसदोपके दूरकरनेकेलिये एकभेदविशिष्टधर्मीमें अपरभेदोंकीस्थितिमानोगे । तोविनिगमना विरहदोपकीप्राप्तिहोगी। क्योंकिप्रथमभेदविशिष्टधर्मीमें द्वितीयभेदकी स्थितिहै । इसअर्थकानिश्चायककोईयुक्तिनहीं । इसीकानामविनि गमनाविरहहै ॥ किंवा ॥ विनिगमनाविरहदोपकेविद्यमानहुएभी अनंतभेदोंकोस्वीकारकरलें यदिभेदोंकीपरंपराकोग्रहणकरनेवालाकोई ज्ञानप्रकटहो।औरऐसाज्ञानकोईउदयनहींहोता । यातेप्रमाणकेअभाव सेअनंतभेदोंकास्वीकारनहींसंभवता । औरयदिइनसर्वदोषोंकोपरिहार करनेकेलियेधर्मातथाप्रतियोगीऔरभेदइनतीनोंकोएककालमेंहीप्रत्यक्ष ग्रहणकरताहै।यहपक्षकहो तोपरस्परअसंबंधिरूपतासे भेदकाग्रहणनहीं संभवेगा क्योंकिभेदप्रतीतिकोविशेषण तथाविशेष्यकेसंबंधकीग्राहकता

कानियमहै ॥ शंका ॥ भेदप्रतीतिकोविशिष्टग्राहकताकानियममाने, हुए विशेषणविशेष्यरूपताकरही प्रत्यक्षभेदकोग्रहणकरेगा ॥ समाधान हेवादिन्ऐसेमानेहुएक्या? भेदकोविषयकरनेवालीही प्रतीतिविशेषण कीप्रतीतिहै । अथवाइससेवहप्रतीतिभिन्नहै। प्रथमपक्षतोन्हींसंभवता। क्योंकिकार्यतथाकारणबुद्धिकी एकताकाअसंभवहै । अर्थयहविशेषण ज्ञानकारणहै । औरभेदज्ञानकार्यहै । तिनकीएकरूपताविरुद्धहै । और द्वितीयपक्षभीअसंगतहै । क्योंकिविशेषणरूपतासेजोज्ञानहै । वह भेदज्ञानकेआधीनहै । ऐसामाननेसे अन्योऽन्याश्रयदोष प्राप्तहोताहै । औरस्वरूपमात्रसेभासमानधर्मी तथाप्रतियोगीको भेदज्ञानकाअजनक पनाहै । यहअर्थपूर्वकथनकरआएहैं । यातेप्रत्यक्षवस्तुकेस्वरूपमात्र कोविषयकरताहै भेदकोविषयनहींकरता ॥ इति॥

❀ अथस्वरूपभेदकानिरूपण । पूर्वपक्षीकासमाधान ❀

हेसिद्धांतिन्यद्यपिपूर्वउक्तयुक्तिबाधसे धर्मभेदमेंप्रत्यक्षकीअविषय ताहुएभी, स्वरूपभेदनिष्ठतिसकी विषयताका लोपनहींहोसकता। अर्थ यह स्वरूपभेदकोप्रत्यक्षविषयकरताहै ॥ शंका ॥ हेवादिन्वस्तुका स्वरूपहीभेदहै यहकथनयुक्तिकरबाधितहै । क्योंकिभेदकेअधिकरण कोभिन्नकहतेहैं । औरएकहीवस्तुमेंआधाराधेयभाव अंगीकारनहीं और “स्वरूपभिन्न” यहप्रतीतिसर्वमेंप्रसिद्धहै। तिसकेनवननेसेस्वरूप हीभेदहैयहलुमकैसेकहतेहो ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन “स्वरूपं भेन्न” इसप्रतीतिकीअनुपपत्तिनहींहै। क्योंकिजैसे (राहोःशिरः) अ० ॥ राहुकाशिरहै ॥ और (आत्मनश्चैतन्यं) अ० ॥ आत्माका चैतन्यहै । यहांएक पदार्थमेंभी भेदप्रतीति होतीहै-

भावयह । राहुतथाशिस्काभेदनहीं तोभी भेदप्रतीतिहोतीहै । औरआत्मातथाचैतन्यकाभेदनहीं । क्योंकिचैतन्यस्वरूपहीआत्माहै तोभीभेदप्रतीतिहोतीहै । तैसेस्वरूपकोऔरभेदको एकहुएभी भेदप्रतीतिसंभवतीहै ॥ शंका ॥ हेवादिन्स्वरूपतथाभेदशब्दकी प्रवृत्तिकानिमित्तभिन्नहै।वानहीं । यदिप्रवृत्तिकानिमित्तभिन्ननहीं यहअंतिमपक्षकहोतो “स्वरूपंभेदः” ऐसेदोनोशब्दोंकाएकठा प्रयोगनहींहोगा । क्योंकि पर्यायशब्दोंकाएकठाप्रयोग देखनेमेंनहींआता ॥ औरयदिप्रवृत्तिकानिमित्तभिन्नहै तोवहकौननिमित्तहै । समाधान ॥ स्वरूपशब्दप्रयुक्तजोव्यवहारहै तथाभेदशब्दप्रयुक्तजोव्यवहारहै तिसमेंइतरनिर्पेक्षता तथाइतरसापेक्षतारूप निमित्तसेदोनोशब्दोंकीप्रवृत्तिहै।अर्थयहइतरनिर्पेक्षत्वरूपनिमित्तकोलेकरस्वरूपशब्दकीस्वरूपमेंप्रवृत्तिहै । औरप्रति योग्यादिसापेक्षत्वरूपनिमित्तकोलेकर भेदशब्दकीस्वरूपमेंप्रवृत्तिहै । यातेपर्यायताकीप्राप्तिनहीं ॥ शंका ॥ अभेदमेंसापेक्षत्वतथानिर्पेक्षत्वप्रयुक्तविलक्षणताकी अनुपपत्तिहै । अर्थात्स्वरूपशब्दतथाभेदशब्द कीप्रवृत्तिकेनिमित्तका भेदनहींसंभवतता । क्योंकिस्वरूपतथोभदएकहीपदार्थहै । तिसएकपदार्थके वाचकपदोंकीप्रवृत्तिके निमित्तकाभेदअयुक्तहै ॥ समाधान ॥ हे सिद्धांतिन् एकपदार्थकेवाचक शब्दोंकीप्रवृत्तिके निमित्तकाभेदभीसंभवताहै । तथाहि । जैसेएकहीदेवदत्तशरीरमें पितातथापुत्रशब्द प्रयुक्तव्यवहारकेअर्थ तिसमेंप्रवृत्तहुएजो पितापुत्रादिशब्दहैं। तिनकोपुत्रादिसापेक्षत्वरूपजोप्रवृत्तिकानिमित्त तिसकीअपेक्षादेखनेमेंआतीहै। अर्थात् पुत्रकीअपेक्षासेतिसमें पिताशब्दकीप्रवृत्तिहोतीहै ॥ औरपिताकी

अपेक्षासेतिसमेंपुत्रशब्दकीप्रवृत्तिहोतीहै। तैसेएकहीस्वरूपमेंप्रवृत्तिका
निमित्तजुदाहोनेसे स्वरूपशब्दतथाभेदशब्दकीप्रवृत्तिहोजायेगी। और
वहनिमित्तपूर्वकथनकरदियाहै॥शंका॥हेवादिन्स्वरूपशब्दकोइतरनिर्पे
क्षहुएभीभेदशब्दकोस्वरूपमेंप्रवृत्तिकेअर्थप्रतियोग्यादिकोंकीअपेक्षाअ
वश्यकहनेयोग्यहै। तैसेमानेहुए इतरसापेक्षताकेप्राप्तहोनेसेभेदशब्दकी
स्वरूपमेंप्रवृत्तिऔरइतरसापेक्षताकेनप्राप्तहुएभेदशब्दकीस्वरूपमेंअप्रवृत्ति
होतीहै। इसप्रकारकेप्राप्ताप्राप्तविवेकसेसापेक्षपदार्थहीभेदशब्दकावाच्य
सिद्धहोताहै। स्वरूपवाच्यनहींसिद्धहोता। क्योंकिवहस्वरूपइतर
निर्पेक्षहै॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन् तिससापेक्षपदार्थकाभीस्वरूपसे
भेदनहीं। किंतुजैसेकोईवस्त्रादिद्रव्यस्वरूपसे निर्पेक्षहुआभीहस्त तथा
वितस्तिआदिशब्दसेव्यवहारकाविषयहुआइतरसापेक्षवहीद्रव्यहोताहै।
कोईहस्तादिशब्दकावाच्य तिसद्रव्यसेभिन्नपदार्थनहींहोता। तैसेप्रकरण
मेंभीइतरप्रतियोग्यादिसापेक्षहुआस्वरूपहीभेदशब्दकावाच्यहै। भेदशब्द
सेव्यवहारकाविषयहुआकोईस्वरूपसेभिन्नपदार्थनहींहोजाता। यातेस्व
रूपहीभेदशब्दकावाच्यहै॥ शंका ॥ हेवादिन्स्वरूपसेभिन्नकोईपदार्थ
है अथवानहीं। प्रथमपक्षतोनोंसंभवता। क्योंकिस्वरूपसेजिसका
भेदहोगा तिसकोनिःस्वरूपताकीप्राप्तिसे अवस्तुपनाहोगा। औरयदि
स्वरूपसेभिन्न कोईपदार्थनहीं। यहद्वितीयपक्षकहो तोस्वरूपहीअखंड
सिद्धहुआभेदकोईपदार्थनहीं॥ औरहेवादिन्यदितुमएसेकहोकियद्यपि
स्वरूपप्रतियोगिकभेदनहीं। तथापिस्वरूपहीइतरसे भिन्नक्योंनहोतैसे
मानेहुए स्वरूपहीएकरसहै यहकैसेकहतेहो॥ सोयहकथनभीतुम्हारा
समीचीननहीं। क्योंकिस्वरूपभेदके प्रतियोगीको निःस्वरूपताहोनेसे

तत्प्रतियोगिक भेदकोभी निःस्वरूपताकीप्राप्तिहोगी । औरस्वरूपभेद काप्रतियोगीयदिस्वरूपकोहीमानो तोअपनेसेअपनाभेदप्राप्तहोगा ॥ सोअप्रसिद्धहै ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतित् स्वरूपसेभिन्नभीपदार्थहै । तिसकोनिःस्वरूपताकीप्राप्तिनहींहोती । क्योंकिजैसेएकघटसेभिन्न दूसरेघटको अघटपनादेखनेमेंनहींआता । तैसेस्वरूपसेभिन्नकोभीनिः स्वरूपतानहींहोती ॥ शंका ॥ एकघटसेदूसरेघटकाभेदमानेहुएभी तिसके अघटपनेके अदर्शनमें कौनकारणहै । क्या? घटसेभिन्नजो भेदांतरहै वहअघटपनेकेअदर्शनमेंप्रयोजकहै । अथवाघटस्वरूपभेदमेंभी प्रतियोगिताअवच्छेदककाभेदप्रयोजकहै । यहकहाचाहिये ॥ समाधान ॥ यद्यपि एकघटसेभिन्नदूसरेघटमेंकिंचित्बैधर्मरूपभेदांतरविद्यमानभी है परंतुपूर्वधर्मभेदकेनिराकरणमेंकथनकियेहुएदोषोंकीप्राप्तिसेतिसकोभेद पनास्वीकारनहीं । यातेप्रथमपक्षअसंगतहै ॥ औरवैधर्म्यकेहुएही स्वरूपभेदहोताहै । यदियहद्वितीयपक्षकहो तोइसमेंहमकोभी इष्टापति है । क्योंकिसर्वअनात्मस्वरूप वैधर्म्यअर्थात्तत्त्वव्यक्तित्वरूपअसाधारण धर्मकरव्याप्तहैं ॥ यातेअनात्मास्वरूपभेदमें तत्त्वव्यक्तित्वरूपवैधर्म्यही प्रतियोगिताकाअवच्छेदकहै ॥ तिसकेभेदसेही एकघटसेभिन्नद्वितीय घटस्वरूपको निःस्वरूपताकीप्राप्तिनहीं । तात्पर्ययहहै । किघटस्वरूप भेदमेंघटनिष्ठवैधर्म्यही प्रतियोगिताकाअवच्छेदकहै ॥ इसकारणसेघटस्व रूपजोभेदतिसकोनिःस्वरूपताकीप्राप्तिनहीं । क्योंकियदिस्वरूपत्वप्रतियो गिताकाअवच्छेदकहोतातोस्वरूपसेभिन्नकोनिःस्वरूपताकीप्राप्तिहोती परंतुस्वरूपत्वप्रतियोगिताकाअवच्छेदकनहीं । यातेपूर्वउक्तप्रकारसेअन्य घटकाघटसेभेदहुएभी अघटत्वकेअदर्शनमेंप्रतियोगिताअवच्छेदकभेदको

प्रयोजकत्वसंभवहोनेसे द्वितीयपक्षमें इष्टापत्ति है ॥ इति ॥

❀ अथ किसी वादी की रीति से भेद त्रय का निरूपण ❀

शंका ॥ क्या? स्वरूप ही भेद है अथवा इतर भी भेद है ॥ प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि इतर को भी भेद पाने में दोष का अभाव है ॥ तथा हि ॥ 'भिन्न धर्म विषयक भेद वर्तता है ॥ यह पूर्व स्वीकार किया है ॥ इस पक्ष में अन्योऽन्याश्रयादि दोषों की प्राप्ति नहीं होती ॥ क्योंकि स्वरूप भेद के भिन्न धर्मों में अन्य भेद की स्थिति संभवती है । और स्वरूप भेद को इतर की अपेक्षा नहीं । या तो केवल स्वरूप ही भेद है यह कथन अयुक्त है ॥ और यदि द्वितीय पक्ष कहो तो सर्व ही अन्योऽन्याभाव तथा वैधर्म्यादि रूप भेद यथायोग्य स्वीकार करने योग्य हैं । तिसयथायोग्यता को ही स्पष्ट करते हैं । अर्थात् घटादिकों में भेद त्रय को विवेक कर दिखलाते हैं ॥ घटादि द्रव्य तथा गुण और कर्म इन तीन पदार्थों में तो स्वरूप तथा अन्योऽन्याभाव और वैधर्म्य यह तीनों भेद वर्तमान हैं । क्योंकि द्रव्य गुण तथा कर्म स्वरूप से भिन्न भी हैं और तिनका परस्पर अन्योऽन्याभावरूप भेद भी तिनमें वर्तमान है । और द्रव्यत्व गुणत्व और कर्मत्व यह असाधारण धर्म रूप वैधर्म्य भेद भी तिनमें है । और सामान्य तथा समवाय इन दो पदार्थों में स्वरूप भेद तथा अन्योऽन्याभावरूप भेद यह दो भेद रहते हैं । और सामान्यादिकों में वैधर्म्य का अभाव होने से तृतीय भेद तिनमें नहीं है । क्योंकि प्रथम कार्य द्रव्य तथा गुण और कर्म यह तीन तो सामान्य तथा समवाय में वृत्ति नहीं । किंतु केवल द्रव्य मात्र वृत्ति है ॥ और सामान्य भी सामान्य में तथा समवाय में वृत्ति नहीं । क्यों कि वह दोनों निःसामान्य हैं ॥ और समवाय यद्यपि सामान्य में वृत्ति भी है तथापि तिसको उभय वृत्ति होने से वैधर्म्यता का अभाव है । इस कारण से

सामान्यादिकों में दोही भेद हैं । तीसरा भेद तिनमें नहीं रहता । और
 अभावको भावकी आश्रय तानहीं । याते तिसमें वैधर्म्यता का अभाव है । और
 तिसमें अन्योन्याभाव रूप भेद भी नहीं वर्तता । क्योंकि अभावमें अभावस्वी
 कारन नहीं है । तिसकारणसे अभावमें केवल स्वरूप ही भेद है । इतर दो भेद
 तिसमें नहीं । इस प्रकार सथा योग्य तीनों भेद स्वीकार करने योग्य हैं ॥ इति ॥

अथ दोनों भेदों के निराकरण पूर्वक स्वरूप भेद का स्थापन ।

समाधान ॥ पूर्वतीन भेदों का जो निरूपण किया सो नहीं संभवता ।
 क्योंकि सर्वपदार्थोंमें अनुगत होनेसे स्वरूप भेद तो अवश्य ही स्वीकार करने
 योग्य है ॥ यद्यपि भेद व्यवहार की साधकता वैधर्म्यादिकों में तुल्य ही है ।
 तिससे केवल स्वरूप भेद की आवश्यकता कहनी नहीं संभवती ॥ तथापि
 अन्योन्याभाव और वैधर्म्यको व्यभिचारी होनेसे भेद व्यवहार की अप्रयो
 जक रूपता होनेकर तिनका ब्रंगीकार व्यर्थ है ॥ शंका ॥ वह दोनों
 व्यभिचारी हुए भी भेद व्यवहार के साधक क्यों नहीं होते ॥
 समाधान ॥ एकाकार जो व्यवहार होता है । तिसको एकरूप विषयकर
 साध्यत्व का नियम है । जैसे “अयं घटः” “अयं घटः” इस एकाकार व्यवहारमें
 सर्वघटोंमें अनुगत घटत्व जाति ही प्रयोजक है । घटव्यक्ति इस व्यवहार का
 प्रयोजक नहीं । क्योंकि व्यक्ति अननुगत है । और यदि अननुगत व्यक्ति को ही
 एकाकार व्यवहारमें प्रयोजक माने तो जातिकी असिद्धि प्राप्त होगी ।
 याते अनुगत व्यवहारमें अनुगत विषय ही प्रयोजक है यह नियम है । इस
 प्रकार प्रकरणमें भी भेद व्यवहार का विषय जो अनुगत स्वरूप भेद है । तिस
 को अनुगत भेद व्यवहारमें प्रयोजकता के संभव हुए व्यभिचारी जो वैधर्म्या
 दितिनको भेद व्यवहार का प्रयोजक पनान नहीं संभवता ॥ शंका ॥

स्वरूपभेदकोभीभेदव्यवहारकी हेतुतानहींसंभवती । क्योंकिभेदस्वरूपअपनेस्वरूपमें भेदव्यवहार देखनेमेंनहींआता । यदिस्वरूपमेंभी भेदमानोगे तोअपनेसे अपनाभेदभीहुआचाहिये ॥ समाधान ॥ स्वरूपहीइतरसापेक्षहुआ भेदव्यवहारकाहेतुहै । यहपूर्ववहुतवारकह आएहैं । क्योंकिस्वरूपकाप्रतियोगिकोटिमें प्रवेशमानेहुए अन्यधर्मी काअभावहै । औरधर्मिकोटिमेंप्रवेशमानेहुए अन्यप्रतियोगीकाअभाव है । औरभेदकोधर्मातथाप्रतियोगीकरही घटितपनेकानियमहै ॥ यातेअपनेसेअपनाभेदप्रसंगभीनहींप्राप्तहोता॥शंका ॥हेवादिस्वरूप तथाभेदकाअभेदमानेहुएतिनकापरस्परअंतरभावहोनेकरएकशेषरहना चाहिये । सोक्या?स्वरूप भेदमेंप्रवेशकरताहै।अथवास्वरूपमेंभेदप्रवेश करताहै । इनमेंप्रथमपक्षतोनहींसंभवता । क्योंकिभेदहै । इतनाही व्यवहारहुआचाहिये स्वरूपव्यवहारनहोनाचाहिये । औरद्वितीयपक्ष भीअसंगतहै । क्योंकिस्वरूपमात्रकेशेपरहेहुए भेदाकाव्यवहारकालो पहोगा ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन्दोनोंकाअभेदमानेहुएएकशेष रहेगा ॥ यहआपकाकथनसत्यहै । परंतुभेदकोस्वरूपसेअभिन्नहोने सेस्वरूपहीशेषरहताहै । औरस्वरूपकोशेषमानेहुए भेदव्यवहारनहीं होगा । यहकथनभीनहींसंभवता । क्योंकिधर्मियादिकसापेक्षस्वरूपहीभेदव्यवहारकाहेतुहै । यहअर्थपूर्वअनेकवारकथनकियाहै ॥ इसीअर्थकोप्रकटकरनेकेलिये प्रतिवादीकेविकल्पको अनुवादपूर्वक निराकरणकरतेहैं । औरस्वरूपभेदक्या?भिन्नधर्मीमेंभेदव्यवहारकाहेतु है ।अथवाअभिन्नधर्मी में भेदव्यवहारकाहेतुहै॥ इसविकल्पकाभीया स्थानमेंअवकाशनहीं । क्योंकिइन्द्रियोसेउपस्थितहुए वस्तुमात्रमें

जबधर्मीतथाप्रतियोगिज्ञानकी अपेक्षाहोतीहै । तबभेदव्यवहारउत्पन्नहोताहै ॥ औरजबतिनकेज्ञानकी अपेक्षानहींहोती तबअभेदव्यवहारउत्पन्नहोताहै । यातेपूर्वकथनकियाअर्थनिर्दोषहै ॥ इति ॥ शंका ॥ हेवादिव् ॥

* जन्यत्वमेवजन्यस्य मायिकत्वसमर्पकम् *

इसकारिकामेंप्रपंचको मायाकाकार्यहोनेसे पूर्वमिथ्यापनानिरूपणकिया । तिसआविद्यकप्रपंचमेंप्रत्यक्षादिप्रमाणप्रवृत्तनहींहोसकते। क्योंकिमिथ्यापदार्थसाक्षिमात्रकरसिद्धहोताहै। तिसमेंप्रत्यक्षादिकोंकी अपेक्षानहीं। औरकल्पितवस्तुप्रतियोगिकभेदकोकल्पितहोनेकरतिसको भीप्रत्यक्षादिकविषयनहींकरसकते ॥ तिसकारणसेप्रत्यक्षादिकोंकेवल करब्रह्मात्माकेअभेदमेंभेदकीशंकातुमकैसेकरतेहो ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन्यदिअज्ञानकार्यत्वप्रपंचमेंहोता तोरजतकीन्याईतिसकोमिथ्यापनेकीसिद्धिहोती। परंतुअज्ञानकार्यत्वही प्रपंचनिष्ठनहींसिद्धहोसकता॥ क्योंकिबहुतश्रतियोंमेंतिसको ब्रह्मकार्यत्वहीश्रवणकियाहै॥ शंका ॥ हेवादिनप्रपंचमेंब्रह्मकार्यत्वको कथन करतीहुईश्रतियों का भी कार्य कारणभावकेप्रतिपादनमेंतात्पर्यनहीं॥ क्योंकिब्रह्मकोकारणमानेहुए ॥

❀ नतस्यकार्यकरणांचविद्यते । तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरं❀

अ० ॥ तिसब्रह्मकाकोईकार्यनहींहै तथाकोईकरणनहींहै॥ सो यहब्रह्मकारणसेरहितहै। तथाकार्यसेरहितहै॥ इत्यादिश्रुतियोंकाविरोध प्राप्तहोताहै ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिनप्रपंचकोब्रह्मकाकार्यपना कहनेवालीश्रुतियोंकास्वार्थमेंतात्पर्यहै ॥ क्योंकि ॥

❀ गतिसामान्यात् ॥ शा० अ० १ पा० १॥ सू० १० ❀

अ०॥ जैसे सर्वनेत्रोंकी एकरूपविषयक सामान्य गति है । अर्थात् सर्वकेनेत्ररूपविषयक एकज्ञानकोही उत्पन्न करते हैं । तैसे सकलवेदांत वाक्यब्रह्मविषयक एकप्रकारके ज्ञानकोही उत्पन्न करते हैं। इस न्यायसे और अभ्यासको तात्पर्यका ग्रहकलिंगहोनेसे स्वार्थमें तिन श्रुतियोंका तात्पर्य संभवता है । और वह अभ्यास यहां प्रकरणमें विद्यमान है । और पूर्वकथन किये जो श्रुतिरूप विरोधि वाच्य हैं । वह तो ईश्वरके स्थूलतथा सूक्ष्म इन दो शरीरोंके अभावको प्रतिपादन करते हैं। कार्यकारणके अभावको नहीं कहते या तै तिनका विरोध नहीं । अब अभ्यासरूपलिंगकोही स्पष्ट करते हैं ॥

❀ सदेव सोम्येदमग्र आसीत् । यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः । यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिगाः एवमेतस्मादात्मनः सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे एते आत्मानो व्युच्चरन्ति ❀

अ०॥ हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो यह दृश्यमान जगत् अपनी उत्पत्तिसे पूर्व स्थूल रूपको त्यागकर सत्ब्रह्मरूप ही था । और जिससे यह सर्वभूत उत्पन्न होते हैं सो ब्रह्म है । और तिसमंत्रतथा ब्राह्मण प्रतिपादित मायोपाधिक ब्रह्मसे आकाश उत्पन्न हुआ । और जैसे एक अग्निसे छोटे छोटे अग्निके अवयवरूप विस्फुलिंग नाना प्रकारके प्रकट होते हैं । तैसे इस विज्ञानमय आत्माका जाग्रत तथा स्वप्न अवस्थासे पूर्व जो अज्ञान उपाधिक स्वरूप है । तिससे प्राणादिकोंके अधिष्ठाता अग्नि आदिक सर्वदेवता और कर्मोंके फल उत्पन्न हुए । तथा अंतःकरणादि उपाधियुक्त चिदाभास उत्पन्न हुए । इत्यादिक श्रुतिवचनों से ब्रह्मका कार्यपना प्रपंचमें प्रतीत होता है ॥ और ब्रह्मको प्रपंच की कारणात्ताकेवल श्रुति प्रमाण कह ही सिद्ध नहीं किंतु युक्तिसे भी

सिद्ध है ॥ तथाहि ॥

(जन्माद्यस्ययतः । शा० अ० १। पा० १। २ ॥)

अ० ॥ प्रत्यक्षादिकोंकर उपस्थित इस जगत्का उत्पत्तिस्थिति भंगजिससर्वज्ञसर्वशक्तिवाले कारणसे होता है सो ब्रह्म है इस न्यायसे भी ब्रह्म को जगत्की कारणता सिद्ध है। यह अधिकरण सूत्र है। जिस सूत्रमें विषय तथा संशय और पूर्वपक्ष तथा सिद्धांत और प्रयोजन यह पांच अवयव हों तिसको अधिकरण कहते हैं। यहां यह अधिकरण की रचना है। 'यतो वा इमानि' इत्यादि श्रुति इसका विषय वाक्य है। सो क्या? ब्रह्मके लक्षणको बोधन नहीं करता अथवा करता है। एकपदार्थको उपादान तथा निमित्तरूप उभयविध कारणताके असंभव तथा संभवसे संशय होता है। इस प्रकार का संशय हुए पूर्वपक्ष प्राप्त हुआ श्रुतिको अनुमानके अनुसारी होनेसे वह स्वतंत्र उभय विध कारणताको बोधन नहीं कर सकती ॥ और एकपदार्थको दोनों प्रकारकी कारणतामें दृष्टांतका अभाव होनेसे अनुमान भी उभयविध कारणताके बोधनमें असमर्थ है ॥ और उपादानत्ववानिमित्तत्वरूप एक प्रकारकी हेतुताको ब्रह्मकालक्षण माने हुए वस्तुपरिच्छेद होनेसे लक्ष्यपदार्थमें अब्रह्मत्व प्राप्त होगा। यातेयह वाक्य ब्रह्मके लक्षणको नहीं बोधन करता। इस प्रकार पूर्वपक्षके प्राप्त हुए अवसिद्धांत निरूपण करते हैं। अनुमानको पुरुषकी बुद्धिसे उत्पन्न होनेकर तिसमें दोषकी संभावना हो सकती है। याते तिसको अपौरुषेय रूपतासे सर्वदोषोंसे रहित आगम प्रमाणका अनुग्राहक तर्करूपता संभवती है। इन्द्रियोंके अविषय भूत अर्थमें स्वतः तिसको प्रमाणता नहीं। आगम सिद्ध जो उभयविधकी कारणता तिसमें सुखादि दृष्टांतको लेकर अनुमान संभावना मात्र का हेतु है। अर्थ यह है जैसे सुखादिक

अभिन्ननिमित्तउपादानकहैं तैसेजगतभीअभिन्ननिमित्तउपादानक
संभवहोसकताहै । यातेवस्तुपस्छेदका अभावहोनेसे लक्ष्यपदार्थमें
ब्रह्मत्वकीसिद्धिहै । इसप्रकारस्मृष्टिवाक्य जगतका अभिन्ननिमित्त
उपादानसञ्चिदानंदस्वभावब्रह्महै । ऐसेलक्षणकोबोधनकरताहै ।
यहसिद्धांतहै । जिसअधिकरणमें लक्षणकानिरूपणहो तिसकाप्रयो
जनभिन्ननहींहोता। किंतुपूर्वअधिकरणकाप्रयोजनहीतिसकाप्रयोजन
जानना ॥ इति ॥ इसप्रकारश्रुतिश्रुतिसेब्रह्मकार्यत्वप्रपंचमेंसिद्धहै ।
औरब्रह्मकोसत्यस्वरूपहोनेकर तिसकेकार्य प्रपंचमेंभीसत्यत्वअवधित
है तैसेमानेहुएसत्यप्रतियोगिकभेदकोसत्यपनाहोनेसे प्रत्यक्षादिकोंकी
विषयतातिसमेंसंभवतीहै । यातेप्रपंचकाभेदआत्मामें अवश्यप्राप्त
होताहै ॥ इति ॥ शंका ॥ हेवादिन् जैसेप्रपंचकोब्रह्मकार्यत्वकथन
कनेवालेश्रुतिवचनहैं। तैसेअज्ञानकाकार्यप्रपंचहै। ऐसेकथनकनेवाले
श्रुति वचनभीबहुतहैं ॥ तथाहि ॥

* मृत्युर्नैवेदमावृत्तमासीत् * ६० उ० अ० (३) ब्रा२ (१)

तदेदंतर्ह्यव्याकृतमासीत् * ६० अ० (३) ब्रा० (७)

इंद्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते ॥ *

* मायांतु प्रकृतिं विद्यात् । नासदासीन्नोसदासी

त्तमआसीत् *

अ० ॥ यहदृश्यमानजगत्उत्पत्तिसेपूर्वसाभासअज्ञानकर
आच्छादितथा ॥ अर्थात्अज्ञानमेंविलीनथा ॥ और “तत्” इस
शब्दसेबीजावस्थापन्नजगत्कहाजाताहै ॥ औरऐतिह्यप्रयोगमें “ह”
गं होताहै ॥ और “इदं” यहशब्दव्याकृतअर्थात्स्पष्टनामरूपवाले

प्रपंचकावाचक है । इनदोनों पदों की समानाधिकरणता से परोक्ष अपरोक्ष इन दोनों अवस्थावाले जगत् का अभेद प्रतीत होता है ॥ इससे यह अर्थ सिद्ध हुआ । सोयं ह जगत् उत्पत्ति से पूर्व “अव्याकृतमासीत्” कहिये सा भास अज्ञान रूप ही था । और परमेश्वर मिथ्या अभिमानों से बहुरूप प्रतीत होता है । परमार्थ से बहवहुतरूप नहीं । शंका । मृत्यु अव्याकृतादि शब्द अज्ञान मात्र के वाचक नहीं किंतु अज्ञान उपाधिक आत्मा के वाचक हैं । याते अज्ञान का कार्य प्रपंच है यह अर्थ नहीं सिद्ध होता ॥ ऐसी आशंका के हुए अवमाया दिए दो कस्युक्त श्रुति वाक्यों को कथन करते हैं । मायारूप अज्ञान को जगत् का उपादान कारण जाने । क्योंकि कार्य तथा कारण की समानता होती है । और जगत् की उत्पत्ति से पूर्व स्थूल तथा सूक्ष्म यह दोनों प्रकार के पदार्थ नहीं थे किंतु तम ही था ॥ यहां तम शब्द आवरण शक्ति प्रधान अज्ञान का वाचक है ॥ इत्यादि कश्रुति वाक्य जगत् को अज्ञान कार्यत्व कथन करते हैं ॥ और इस पूर्व कथन किये हुए अर्थ में श्रुति अनुसारी युक्ति भी है ॥ तथा हि ॥

❀ मायामात्रं तु कात्स्न्येनानभिर्व्यक्तस्वरूपत्वात् ❀

अ० ॥ उत्तरीमांसा के तृतीय अध्याय गत द्वितीय पाद का यह तृतीय सूत्र है ॥ इसमें—

❀ सयत्र प्रस्वप्ति ॥ ४० उ० अ० ६ ब्रा० ३ । ६ ॥ ❀

अ० ॥ सो आत्मा जिस काल में शयन करता है । इस वाक्य से लेकर

❀ न तत्र रथान् रथयोगाः ॥ ४० उ० अ० ६ ब्रा० ३ । १० ॥ ❀

अ० ॥ तिस स्वप्न काल में जाग्रत् के रथ नहीं हैं । तथा तिन के योग्य अश्व नहीं हैं । इत्यादि विषय वाक्य है ॥ तिसमें यह संशय है ॥ क्या जाग्रत् अवस्था की न्याई स्वप्न अवस्था में भी व्यावहारिक अर्थ क्रिया में सामर्थ्य वाली

सृष्टि है अथवा प्रातिभासिक सृष्टि है ॥ इस प्रकार संशय के हुए पूर्वपक्ष प्राप्त हुआ
स्वप्न में जाग्रत की न्याय व्यावहारिक सत्ता वाली सृष्टि है ॥ क्योंकि—

अथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते ॥ ६० ३० अ० द। प्रा० ३। १० ।

अ० ॥ स्वप्न काल में रथों को तथा तिन के योग्य अश्वों को और मार्गों
को यह आत्मा उत्पन्न करता है । इस श्रुति प्रमाण से रथादिकों की उत्पत्ति
स्वप्न काल में प्रतीत होती है ॥ यातेति श्रुति प्रमाण से स्वप्न काल में व्यावहा-
रिक सत्ता युक्त ही सृष्टि है ॥ इस प्रकार पूर्वपक्ष के प्राप्त हुए सिद्धांत निरूपण
करते हैं ॥ सूत्र में जो “तु” शब्द है वह पूर्वपक्ष को निषेध करता है ॥ अर्थात्
स्वप्न काल में व्यावहारिक सृष्टि है । यह कथन पूर्वपक्ष की कानहीं संभवता ॥
यदि स्वप्न में व्यावहारिक सत्ता वाली सृष्टि नहीं तो स्वप्न में कैसी सृष्टि है।
ऐसी आकांक्षा के हुए कहते हैं । (मायामात्रं) माया कहिये मिथ्या
रूप ही स्वप्न में सृष्टि है व्यावहारिक सत्ता युक्त सृष्टि का वह गंध भी नहीं है।
इसमें हेतु कहते हैं ।

✽ कात्स्न्येना न भिव्यक्त स्वरूपत्वात् ✽

अ० ॥ व्यावहारिक वस्तु के धर्म कर स्वप्न को अथ प्रकट स्वरूप होने से
अर्थात् व्यावहारिक पदार्थों के उचित देश कालादि सामग्री पूर्वक स्वप्न
पदार्थों की अभिव्यक्ति नहीं होती । इसी कारण से स्वप्न में सृष्टि कथन
करने वाली श्रुति व्यावहारिक सृष्टि को नहीं कथन करती । और
(नतत्र रथान् रथयोगाः) इत्यादि श्रुति ने सृष्टि प्रणिपादक श्रुति
के विषय भूत रथादिकों का निषेध किया है । इसलिये स्वप्न सृष्टि व्यावहारि-
क सत्ता वाली नहीं किंतु अविद्योपादान के होने से प्रातिभासिक सत्ता
वाली है । इस न्याय से भी अज्ञान कार्यत्व प्रपञ्च सिद्ध होता है । इस प्रकार

पूर्वपक्षीतथासिद्धांतीकरके ब्रह्मकोकारणतातथाअज्ञानकोकारणताके निरूपणहुएएकतटस्थवादी आशंकाकरताहै ।

❀ अथतटस्थकी शंकाकेसमाधानपूर्वक पूर्वपक्षका उपसंहार ❀

शंका ॥ इसपूर्वउक्तप्रकारसेश्रुतियोंकापरस्परविरोधहोनेकरजब दोनोंहीकारणनहीं हैं तोजगत्का अन्य कोईकारणकहाचाहिये ॥ क्योंकिकारणसेविनाकार्यकीअनुपपत्तिहै ॥ समाधान ॥ कारणांतर केविद्यमानहोनेसेजगत् रूपकार्यकारणसेशून्यनहींक्योंकिअपनेअपने सिद्धांतमेंजैसाकारणहोनेकेयोग्यहै। तैसापरमाणुआदिकारणविद्यमान ही है॥ तिनकारणों मेंप्रथमपरमाणुकीसिद्धिकरते हैं।

त्रिसरेणुस्तावदारब्धः महत्वे सतिद्रव्योपादान त्वात् “कपालादिवत्” ।

अ०—प्रथमत्रिसरेणुआरब्धअर्थात्कार्यहै । महत्परिमाणवाला हुआद्रव्योपादानकहोनेसे । जोजो महत् परिमाणवालाहूआद्रव्योपादानकहोताहै ॥ सोसोकिसीकरआरब्धहोता है ॥ जैसेकपालादि कार्य है ॥ इति ॥ इमअनुमानसेत्रिसरेणुकोकार्यतासिद्ध है ॥ इस प्रकारत्रिसरेणुकेअवयवरूपद्रव्यगुणोंमेंभीकार्यताअनुमानसेसिद्धकरनी सो अनुमान यह है ॥

❀ विवादाध्यासितंकार्यद्रव्यं त्रिसरेणववयवारब्धं स्वपरिमाणादणुतरपरिमाणारब्धं कार्यद्रव्य त्वात् । संमतवत् ॥ ❀

अ० ॥ विवादकाविषयजोकार्यद्रव्यत्रिसरेणुका अवयवरूपद्रव्य

एकसंज्ञकहैवहअपने परिमाणसेअणुतरपरिमाणवाले द्रव्यकरआरब्ध है ॥ कार्यद्रव्यहोनेसे।जोजोकार्यद्रव्यहोताहै । सोसोअपनेपरिमाणसे अल्पपरिमाणवाले द्रव्यकरहीआरब्धहोताहै ॥ जैसेत्रिसरेणुकार्यद्रव्य होनेसेअपनेपरिमाणसे न्यूनपरिमाणवालेद्रव्यणुकोंसेआरब्धहै।इति। इसप्रकार जोद्रव्यणुक परिमाणकी अपेक्षासे न्यूनपरिमाणवाला द्रव्यद्रव्यणुकका आरम्भकहै वहीपरिमाणुजगतका मूलकारणहै ॥ इसप्रकारवैशेषिकादिकमानतेहैं ॥ औरऐसेहीसांख्यादिमतवालेप्रधानादिकोंकोजगतकामूलकारणकहतेहैं ॥ इसप्रकारजगतकोपरमाणु आदिजन्यमानेहुए प्रकरणमेंतिसकथनकाउपयोगकहतेहैं ॥ जिस कारणसेसत्यउपादानकार्यकोसत्यताकानियमहै ॥ जैसेपृथिवीउपादानकपदार्थकोपृथिवीरूपताहै ॥ औरपरमाणुआदिकभीसत्यहैं।तिस कारणसे तत्तुपादानकजगत्भीसत्यरूपहै ॥ तिसीकारणसेप्रत्यक्षादि प्रमाणसिद्धअनात्मप्रतियोगिकभेदकेविद्यमानहुए सर्वहीअद्वैतहै ॥ यहअर्थकिसप्रकारसिद्धहोसकताहै किंतुनहींसिद्धहोसकता ॥ इस पूर्वपक्षकेसंग्रहकाश्लोक ॥

❀ आत्माऽभेदप्रमित्यापिनाद्वैतंतेप्रसिद्धयति ।

अनात्मभेदसंसिद्धेःप्रत्यक्षादेः प्रमाणतः॥१॥❀

दो०—अभेदात्मविज्ञानते नहितवअद्वयसिद्ध ।

यतोअक्षादिमानते नात्मभेद प्रसिद्ध ॥ १ ॥

❀ अथसिद्धांत।तत्त्वंपदार्थकेशोधनपूर्वक

वाक्यार्थनिरूपणा ❀

हेवादिन्जोतुमने पूर्वकथनकियासो नहींसंभवता ॥ क्योंकि

श्रुतिकेतात्पर्यका तुमको ज्ञान नहीं है ॥ शंका ॥ हेमिच्छांति श्रुतिके
तात्पर्यका ज्ञान मुझे कैसे नहीं ॥ क्योंकि संसार धर्मों से निष्कृष्ट का अर्थ
भिन्न किये हुए साक्षि चेतन का संसार कर्तृत्वादि धर्मों से निष्कृष्ट के साथ
अर्थात् भिन्न किये हुए परमात्मा के साथ अभेद है ॥ इस पूर्व कथन में श्रुति
का तात्पर्य जानने वाले तुमने ही संसार धर्मादिकों की भिन्न स्थिति कथन
की है ॥ समाधान ॥ हेवादि नूतनत्वमस्यादि श्रुति ने अनात्मा को पृथक्
स्थापन करके शोधित तत्त्व पदार्थों का अभेद बोधन किया है यह तिसका
अभिप्राय नहीं ॥ यदि अनात्मा का पृथक् स्थापन नहीं तो तिनका अभेद
कैसे श्रुति बोधन करती है ॥ ऐसी जिज्ञासा के हुए प्रथम जिज्ञासा के विषय
भूतस्वरूप को कथन करते हैं ॥ प्रत्यगात्मा का ब्रह्म के साथ अभेद है। इस
अर्थ की सिद्धि के लिये अधिकारी ऐसा निश्चय करता है ॥ सोई दिख
लाते हैं ॥ तहां प्रथम वाक्य में योग्यता की प्राप्ति के अर्थ
“काकार्य ज्ञान पदार्थ ज्ञान पूर्वक होता है” इस न्याय को या श्रयण करता
हुआ सिद्धांती त्वं पदार्थ की शुद्धि का प्रकार प्रथम निरूपण करता है। प्रत्यक्
तथा कूटस्थ चेतन रूप अधिष्ठान में जाग्रतादि तीनों अवस्थाओं और कर्तृत्वादि
अनर्थ समुदाय जो सर्वव्यभिचारी प्रतीत होता है। वह सर्व ही तिस अनुगत
साक्षि रूप अधिष्ठान चेतन मे कल्पित है ॥ जिस कारण से वह सर्व ग्रह्यस्त
है इस कारण से तिस अधिष्ठान चेतन से भिन्न स्वतंत्र रूपता करतिस ग्रह्यस्त
पदार्थ का स्वरूप नहीं ॥ यह वार्त्ता अन्वयव्यतिरेक से जानकर अधिकारी
पुरुष निर्णय करता है ॥ यहां “प्रत्यक्” इस विशेषण से साक्षी तथा साक्ष्य
का अन्वयव्यतिरेक सूत्रन किया ॥ सर्व अवस्थामें साक्षी को अनुगत
होने से तिसका अन्वय है और देहादिरूप साक्ष्य को परस्परव्यभिचारी होने

से तिसकाव्यतिरेक है ॥ और अथवास्थादिकोंको अध्यस्तपनासूचन करनेकेलिये अधिकरणका “कूटस्थ” यह विशेषण कथन किया है । तिस विशेषणसे वास्तवविकारका अभाव होनेसे अज्ञानके वशसे ही अधिष्ठान में अन्याकारताकी प्रतीति है । यह लाभ है । और इसी विशेषणसे कार्यकारणका अन्वयव्यतिरेक भी सूचन किया । सो इस प्रकार जानना । देहादिविवर्त्तरूपकार्योंका परस्परव्यभिचार होनेसे तिसकाव्यतिरेक है । और विवर्त्ताधिष्ठानरूपकारणको सर्वत्र अनुगत होनेसे तिसका अन्वय है । और “अनर्थसमुदाय” यह जो पूर्वदेहादि अनात्मवर्गका विशेषण कहा है । सो दुःखित्व तथा परमप्रेमाऽस्पदत्वके अन्वयव्यतिरेकको सूचन करता है । सो ऐसे है । दुःखको व्यभिचारी होनेसे तिसकाव्यतिरेक है । और परमप्रेमाऽस्पदत्वको सर्वत्र अनुगत होनेसे तिसका अन्वय है । और व्यभिचारी तथा अनुगतका अन्वयव्यतिरेक सूचन करनेकेलिये अनात्मपदार्थोंका “व्यभिचारी” यह विशेषण पूर्व कहा है । और तिस कूटस्थमें अधिष्ठात्वकी योग्यताकेलिये “अनुगत” विशेषण है । और स्वसत्ताप्रदमें स्फूर्तिप्रदत्व कथन करनेकेलिये “साक्षि” विशेषण है और अनुगत तथा साक्षी यह दोनों अधिष्ठानके विशेषण अन्वयव्यतिरेकके कथनमें भी उपयोगी हैं और परमप्रेमाऽस्पदत्वके भी यह उपलक्षक हैं ॥ इस प्रकार चार प्रकारके अन्वयव्यतिरेकसे अधिष्ठानसे भिन्न अध्यस्तकी सत्तानहीं यह वार्त्ता अधिकारीनिश्चय करता है । तिस निर्णयका फल कहते हैं । इसरीतिसे निर्णयकरके शोधन किये हुए शुद्ध प्रत्यगात्माके साथ ब्रह्मका अभेद सिद्ध करनेकेलिये तत्पदार्थ को भी अधिकारी शोधन करता है ॥ तथा हि ॥ तत्पदार्थमें भी जगत्कर्तृत्व औरोत्तत्वादि धर्म तथा आकाशादिरूपसर्वजगतजो व्यभिचारी

प्रतीत होता है । वह सर्वतिस अनुगत सत् चित् आनन्द स्वरूप ब्रह्म में अध्यस्त है । और तिस ब्रह्म से भिन्न किया हुआ असत् है । और किसी प्रमाण के सिद्ध नहीं कि तु केवल भ्रांति रूप ही सिद्ध है । या ते वास्तव से असत् है । यह अथ चार प्रकार के अन्वय व्यतिरेक से अधिकारी मुमुक्षु निश्चय करता है यहां पर “व्यभिचारी” यह जो जगत् का विशेषण पूर्व कहा है और “अनुगत” यह जो अधिष्ठान का विशेषण कहा है । सो पूर्व उक्त चार प्रकार के अन्वय व्यतिरेक का सूत्रक जानना । और शून्य ही अधिष्ठान है । इस बोध मत के निषेध करने के लिये अधिष्ठान का “सत्” यह विशेषण कहा है और सर्वत्र स्फूर्ति स्वरूपता अधिष्ठान की दिखलाने के अर्थ “चित्” यह विशेषण कहा है ॥ शंका ॥ अन्वय व्यतिरेक को तर्करूपता होने के संभावना मात्र की हेतुता हुआ भी प्रमाण तान नहीं इसी से तिन को अवधारण की हेतुता नहीं संभवती ॥ क्योंकि निश्चय का हेतु प्रमाण ही होता है । तर्क नहीं ॥ समाधान ॥ (नेति नेति) इस निषेधक श्रुति रूप प्रमाण से कर्तृत्वादि रूप प्रपञ्च का अभाव अधिष्ठान में यह अधिकारी निश्चय करता है ॥ या ते अधिकारी का निश्चय प्रमाण जन्य है केवल तर्क जन्य नहीं । यद्यपि निषेध प्राप्ति पूर्वक होता है । प्राप्ति के अभाव हुआ वह निषेध कैसे होगा । तथापि सृष्टि वाक्य से तिस प्रपञ्च की अधिष्ठान में प्राप्ति से अनन्तर निषेध वाक्य प्रवृत्त होता है या ते निषेध प्राप्ति पूर्वक ही है । और यदि ऐसा हो कि प्रपञ्च को सृष्टि वाक्य रूप श्रुति प्रमाण से सिद्ध होने के तिस का निषेध नहीं संभवगा । सो यह कथन भी असमीचीन है क्योंकि अविद्या से उपस्थित हुआ जगत् का श्रुति अनुवाद करती है ॥ शंका श्रुति को अनुवाद करने हुआ एक सलिये वह अनुवाद करती है ॥ समाधान हेवादि बोध का हेतु जो अथारोप अपवाद न्याय तिस को आश्रयण करके बोध

कथं यथातिथनुवादकस्तीह । यातिथप्रमाणकरयहजगतप्राप्तनहीं
किंतुप्रातिसेप्राप्तहै । तिसकानिषेधसभवताहै । इसप्रकारजाग्रतादिक

आधिकारमुमुक्षुगुरुकीशरणकोप्राप्तहोताहै ॥ शंका ॥ गुरुकीशरण
कोप्राप्तहोनानिश्चयकथथहै । यदिवहनिश्चयपूर्वउत्तरीतिसेअधिकारी

आधिकारभेदमहप्रमाण

आपिप्रत्यक्षादिकाको

वहसमर्थनहीहै ॥

॥ शंका ॥ पूर्वउक्तअन्वयव्यतिरेकरूपयुक्तिसेहीभेदकरनेवालाअनात्मा
केसंबंधकोकल्पितनिश्चयहोनेकरआत्मामेतिसकाअभावहै । याते
ब्रह्मात्माकाअभेदअधिकारीकोनिश्चितहोजायेगा ॥ समाधान ॥ हे
वादिन् युक्तिकोतर्करूपताहोनेकर स्वतंत्रकीसीअर्थमेतिसको प्रमाण
तानहींहै । इसीकारणसेअभेदको निश्चयकेयुक्तिनहीं ॥ शंका ॥
अधिकारीको अभेदमे प्रमाण काअभाव कहना नहीं संभवता ।
क्योंकिअधीतवदही अधिकारी होताहै । याते अतिप्रमाणसे
तिसको अभेद निश्चय उत्पन्नहोजायेगा ॥ समाधान ॥ यद्यपि

जिसने पदपदार्थकी संगतिग्रहणकी है। तिसको सुनाहुआ शब्द अर्थ का बोधक हो जाता है । तथापि असंभावना कर विषय को प्रस्त होने से तिसमें शब्दजन्य ज्ञान प्रतिष्ठा को नहीं प्राप्त होता । इस कारण से ही असंभावना प्रस्त विषय में वह शब्द प्रमाण रूपता से व्यवहार नहीं किया जाता । याते अधिकारी अभेद में संशय युक्त होता है “संशय युक्त” इस विशेषण से “नित्यानित्यवस्तु का विवेक” यह जो अधिकारी का विशेषण सो अर्थ से निरूपण किया । अब अधिकारी का और विशेषण जो वैराग्य है तिसको निरूपण करते हैं । संसार रूप एकरोग राज है तिसके अनुचर गर्भ वासादि अनेक रोग हैं । तिन से उत्पन्न हुआ जो दुःखों का समूह तिसके अनुभव से जिस पुरुष को वैराग्य उत्पन्न हुआ है । तिसी से ब्रह्म लोक में उत्पन्न हुए सुख को भी विषकी न्याई मानता है ॥ शंका ॥ अधिकारी में वैराग्यादि साधन संपत्तिके हुए भी गुरु के समीप गमन नहीं संभवता ॥ क्योंकि गुरु के समीप गमन कोई संसार की निवृत्ति का कारण नहीं । और यदि ऐसा कहो (आचार्याद्वैवविद्या ।) अ० ॥ श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरु से ही आत्मज्ञान प्राप्त होता है । इत्यादि श्रुति से संसार दुःख के निवर्त्तक आत्मज्ञान की हेतुता गुरु के समीप गमन को प्रतीत होती है । याते आत्मज्ञान के अर्थ गुरु के समीप गमन संभवता है । सो यह कह्यन भी समीचीन नहीं । क्योंकि यदि आत्मज्ञान संसार का निवर्त्तक हो तो गुरु के समीप गमन संभवे परन्तु आत्मज्ञान को संसार के निवर्त्तक पने में कोई प्रमाण नहीं । याते तिसके अर्थ गुरु के समीप गमन नहीं संभवता ॥ समाधान ॥ हेवादिन् आत्म ज्ञान को सकल संसार की निवर्त्तकता (तरति शोकमात्मवित्) अ० ॥ आत्मा के जानने वाला शोक उपलक्षित समूल संसार को नाश करता

है । इस श्रुतिप्रमाणकरसिद्ध है । याते संसाररूपदावानलसे प्रकट हुआ जो संताप तिसके शांत करने का साधन अमृत का समुद्र आत्मविद्या है । ऐसे जानता हुआ यह अधिकारी तिस विद्या की प्राप्तिके अर्थ उसके समीप गमन करता है ॥ शंका ॥ स्वर्ग का साधन याग है ऐसे जानते हुए सर्व ही वैदिक जन याग में प्रवृत्त होते ही हैं यह कहीं नहीं संभवता । समाधान ॥ जिसको फल की इच्छा होती है वही तिसके साधनानुष्ठान में प्रवृत्त होता है अन्य नहीं प्रवृत्त होता । याते परिपूर्ण ब्रह्मात्मा के अभेद विषयक अपरोक्ष ज्ञान की इच्छा वाला पुरुष श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ तथा परम कृपालु सद्गुरु की शरणा को शास्त्रोक्त विधि से अर्थात् समिदादिकिंचित् उपहार को हस्त में ग्रहण करके प्राप्त होता है तब परम कृपालु श्री गुरु ने शरणागत अधिकारी को नित्य तथा निर्दोष तत्त्वमस्यादिरूपशब्दप्रमाण से शोधन किये हुए तत्त्वपदार्थों का अभेद बोधन किया । तिससे अनंतर अधिकारी अपनी निर्मल बुद्धि की सहायता से अद्वैतवस्तु के साक्षात्कार को प्राप्त होकर आनंद अंश के आवरक अज्ञानतत्कार्य को बाध करके स्वरूपानंद से तृप्त हुआ आत्माराम अर्थात् स्वस्वरूप में ही रमण करने वाला होता है । यद्यपि आपके मत में वेद को भी कल्पित होने से तिसको नित्य कहना नहीं संभवता । तथापि वेद रचना को बुद्धिपूर्वक न होने से तथा प्रयत्न से अजन्य होने से नित्यत्व का तिसमें उपचार है । इस प्रकार तत्त्वज्ञान से सकल भेद का विनाश होने कर सर्व अद्वैत ही है यह तत्त्वमस्यादि महावाक्य से जानने योग्य है । यह अभिप्राय सिद्ध हुआ । इसी हेतु से श्रुतिके तात्पर्य को न जान कर ही वादी ने पूर्वव्यहकहा है जो अनात्मभेद से अद्वैत की हानि होती है ॥ इति ॥

* अथस्वरूपभेदकारखंडन *

और जो पूर्ववादीने यह कहा था । कि स्वरूपभेद प्रत्यक्षादिप्रमाण
 का विषय है तिसको विरोध हु ए अर्थ से वेदांत ग्रंथैतमें प्रमाण नहीं । । सो
 कथन भी अत्यंत अयुक्त है ॥ क्योंकि ॥ (परां चिखानि) इस श्रुति
 से प्रत्यक्षादि अनात्मा को विषय करते हैं । यातेति न को स्वरूप विषय कत्व
 कहना नहीं संभवता । भाव यह स्वरूप को सत् रूप होने का अतिमंत है । इसी
 से आत्मस्वरूपभेदमें प्रत्यक्षादिकों की प्रवृत्ति युक्त नहीं ॥ शंका ॥ सर्व
 प्रत्ययों का विषय स्वरूप है यह आपका मत है । तिसकारण से प्रत्यक्षादिकों
 को अविषय स्वरूप को आप कैसे कहते हो ॥ समाधान ॥ हेवादि न स्वरूप
 को भेद पाने की अनुपपत्ति है । जिस हेतु से स्वरूपमें भेद पाना नहीं संभवता सो
 तुम श्रवण करो । क्यों उपाधिके संबंध से रहित शुद्धात्मा सर्वधर्मों से रहित
 वह स्वरूपभेद है । अथवा उपाधिके संबंध वाला विशिष्ट आत्मा वह स्वरूप
 भेद है । तहां शुद्ध ही स्वरूपभेद है इस प्रथम पक्ष में तिस स्वरूपभेद को किसी
 व्यवहार की हेतुता भी नहीं होगी । यह कथन करने योग्य है । अर्थ यह ॥
 प्रथम ब्रह्म में स्वाभाविक धर्म तो है नहीं क्योंकि वह अविकारि स्वभाव है ॥
 और औपाधिक धर्म भी उपाधिके संबंध से रहित ब्रह्म में नहीं संभेता । याते
 शुद्ध पद के महात्म से तिसको निर्धर्म कहना ही उचित है । यह प्राप्त हुआ
 और तैसे ही व्यवहार की विषयता भी निसमें नहीं है । यह कहना उचित है ॥
 तथाहि ॥ यहां कथन का नाम व्यवहार है । अथवा ज्ञान का नाम व्यवहार है
 यह विचारणीय है ॥ इनमें प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि किसी
 धर्म को ग्रहण करके ही शब्द की प्रवृत्ति होती है ॥ तिस धर्म के अभाव हु ए
 शब्द की प्रवृत्ति कैसे होगी । और ब्रह्म को स्वप्रकाश होने से तिसमें ज्ञान की

विषयताभीनहींसंभवती । यातेद्वितीयपक्षभीअसंगतहै ॥ शंका ॥
निर्धर्मकतथास्वप्रकाशहोनेसेब्रह्ममेंसर्वव्यवहारकीअविषयताहोतिससे
क्यासिद्धहुआ ॥ समाधान ॥ तैसेमानेहुए सर्वव्यवहारकाअविषय
औरसर्वधर्मोंसेरहित “अस्थूलमनणु” इत्यादिश्रुतिकरसिद्धसत्तत्त्व
ब्रह्महीनामांतरसे प्रत्यक्षादिकोंकाविषय तुम्हारेकथनसेसिद्धहोताहै ॥
शंका ॥ “अस्थूल” इसश्रुतिमें “तत्र”कोनिषेधार्थकहोनेसेस्थूलता
काअभावब्रह्महै ग्रहार्थसिद्धहोगा ॥ समाधान ॥ हेवादिनकल्पितजो
स्थूलतादिकहैं तिनकोअधिष्ठानसेभिन्नकियेहुएअसत्पनाहोताहै और
असत्काअभावभावरूपहीहोताहै। यातेसत्तत्त्वहीब्रह्महै अभावरूपनहीं।
इसप्रकारभेदप्रत्यक्षादिप्रमाणकाविषयहैऐसेकथनकरनेवालेवादीनेभेद
कोपूर्वउक्तब्रह्मसेअभिन्नहोनेकर ब्रह्महीभेदहैइसनामांतरसे ब्रह्मकोही
प्रत्यक्षादिकोंकीविषयताकथनकीहै। तैसेमानेहुएहमारेमतमेंअनिष्टकी
प्राप्तिनहींहोती ॥ शंका ॥ ब्रह्मस्वरूपमानकरभी यदिप्रपंचभेदप्रमाणासिद्ध
होजाय तोभीहमारे इष्टकीसिद्धिहोजायेगी ॥ समाधान ॥ हेवादित्र
प्रथमअतिरिक्तभेदअर्थात् धर्मोंसेभिन्नभेदतोलुमनेही स्वीकारनहीं
किया । औरस्वरूपभेदको ब्रह्मस्वरूपताकेहुए स्वप्रकाशहोनेसेऔर
प्रत्यक्षादिप्रमाणकी विषयताकानिषेधहोनेसे भेदकोब्रह्मरूपहोनेकरभी
प्रमाणगम्यतानहींसंभवती । औरभेदकोब्रह्मस्वरूपमानकर प्रत्यक्षादि
कोंकीविषयतामानेतो ।

❀ नचक्षुषागृह्यतेनैववाचानान्यैर्देवैस्तपसा

कर्मणावा । (सु) उ० ३। (ब्र० १।५) ❀

अ० ॥ सोब्रह्मनेत्रइन्द्रियकरग्रहणनहींहोता ॥ औरवाकइन्द्रिय

करकहानहींजाता । औरअन्यइन्द्रियोंकरभी ग्रहणनहींहोता । और
 कृच्छ्रादितपसे तथायागादिरूपकर्मसेभीनहीं जानाजाता । इत्यादि
 श्रुतिकाविरोधप्राप्तहोगा।यातेब्रह्मस्वरूपमानकरभी भेदकोप्रामाणिकता
 नहींहोसकती ॥ औरसर्वप्रत्ययवेद्यत्व उपहितस्वरूपमेंहै शुद्धमेंनहीं ।
 शंका ॥ यदिपूर्वउक्तदोषसेशुद्धस्वरूपको भेदपनानहींसंभवता । तो
 विशिष्टस्वरूपहीभेदहो । तिसविशिष्टस्वरूपभेदमें पूर्वकथनकिये
 दोषोंकीप्राप्तिनहींहोती ॥ समाधान ॥ हेवादिन्विशिष्टस्वरूपभेदहै
 इसपक्षमेंभीयहविचार करनेयोग्यहै। विशेषणतथाविशेष्यकाभेदमाने
 हुए विशेषणादिभेदसेभिन्नही कोईविशिष्टस्वरूपभेदहै। यहकथनकर
 नेयोग्यहैअथवाविशेषणादिकोंके भेदकाअभावहीविशिष्टस्वरूपभेदहै
 यहकथनकरनेयोग्यहै।विशेषणतथाविशेष्यकाभेदमानकरविशिष्टस्वरूप
 भेदतिससेभिन्नहै।यदियहप्रथमपक्षमानो तोदुःखपूर्वकहैपरिहारजिस
 का ऐसेअनवस्थादोषकीप्राप्तिहोगी। सोदिखलातेहैं॥ विशिष्टस्वरूप
 भेदकाउपपादकजोविशेषणविशेष्यकाभेदहै।वहक्याविशिष्टस्वरूपभेद
 हीहै।अथवाकोईअन्यभेदहै।प्रथमपक्षमानेहुएआपकोहीअपनाउपपा
 दकहोनेसेआत्माश्रयदोषकीप्राप्तिहोगी।औरद्वितीयपक्षमानेहुएअन्योन्या
 ऽश्रयदोषहोगा।क्योंकिविशिष्टस्वरूपभेदको अपनेउपपादकभेदांतरकी
 अपेक्षाहै।औरभेदांतरकोअपनीमिद्धिकेअर्थविशिष्टस्वरूपभेदकीअपेक्षा
 है।औरयदिअन्योऽन्याश्रयदोषकेपरिहारकरनेकेलियेविशेषणविशेष्यके
 भेदकाउपपादकतृतीयविशिष्टस्वरूपभेदमाने तोचक्रकादोषकीप्राप्ति
 होगी॥औरचक्रकादोषकेपरिहारकरनेकेलिये यदिचतुर्यस्वरूपभेदमाने
 तोअनवस्थादोषप्राप्तहोगा।औरविशेषणतथाविशेष्यकेभेदकाअभावही

विशिष्टस्वरूप भेद है। इस द्वितीय पक्ष में विशिष्टस्वरूप की असिद्धि है। क्यों कि विशेषण तथा विशेष्य का अर्थ भेद माने हुए दोनों में एक शेष रहेगा। याते विशिष्टस्वरूप की ही असिद्धि होगी। क्योंकि एक विशेषण वा विशेष्य में विशिष्टव्यवहार नहीं होता। और विशिष्टस्वरूपता भेद को माने हुए प्रमाण की विषयता भी नहीं हो सकती। क्योंकि विशिष्ट को भी शुद्ध वस्तु के स्वरूप की न्याय निर्धर्मकता है। जिस कारण से रूपादि विशिष्ट पदार्थ में अन्य रूपादिक नहीं स्थित हो सकते। याते विशिष्टस्वरूप भेद को निर्धर्मक होने से तिसमें प्रत्यक्षादि प्रमाण की विषयता नहीं संभवती ॥ किंवा ॥ विशिष्टस्वरूप को निश्चय कर तुम भेद कहते हो, तहां सो विशिष्टस्वरूप क्या? विशेषण तथा विशेष्य और संबंध इन तीनों से भिन्न है। अथवा अभिन्न है। प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि विशिष्ट नामवाला स्वतंत्र को ई पदार्थ नहीं। विशेषण और विशेष्य तथा तिनके संबंध से भिन्न तिस विशिष्ट पदार्थ का अनुभवन नहीं होता। और द्वितीय पक्ष में भी यह विचार करने योग्य है। विशेषण तथा विशेष्य और तिनके संबंध से विशिष्ट को अभिन्न माने हुए क्या? एक एक में विशिष्ट व्यवहार होता है। अथवा तीनों के समुदाय में विशिष्ट व्यवहार होता है। इनमें प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि प्रत्येक में विशिष्ट व्यवहार माने हुए केवल दंड में भी “दंडी पुरुषः” ऐसा विशिष्ट व्यवहार हुआ चाहिये। और ऐसा व्यवहार होता नहीं। क्योंकि केवल दंड को तिस विशिष्ट व्यवहार की जनकता नहीं है ॥ ऐसे ही केवल विशेष्य और केवल संबंध में भी विशिष्ट व्यवहार नहीं होता। और समुदाय में विशिष्ट व्यवहार होता है। इस द्वितीय पक्ष में भी यह विचार कर्तव्य है। क्या? वह समुदाय इन विशेषण आदि तीनों से भिन्न है। अथवा अभिन्न है। प्रथम पक्ष में तो दूषण पूर्व कथन कर ही दिया है। अर्थात् विशेषण आदिकों से

भिन्नसमुदायपदार्थका अनुभवनहीं होता। और द्वितीयपक्षमें भी विशेषणादि प्रत्येकमें समुदायव्यवहार हुआ चाहिये। और वह देखनेमें नहीं आता। याते द्वितीयपक्ष भी असंगत है । और यदि पूर्व उक्त दोषों के दूर करने के लिये विशेषण तथा विशेष्य के संबंध कानाम ही विशिष्टपदार्थ है। ऐसे वादी कहें तो यह भी नहीं संभवता । क्योंकि विशेषणादिकों से भिन्न हुआ संबंध विशिष्ट स्वरूप है। अथवा विशेषणादिकों के उपलक्षित हुआ संबंध विशिष्ट स्वरूप है इनमें प्रथम पक्ष नहीं संभवता। क्योंकि “विशेषण तथा विशेष्य और तिनका संबंध है” इस समूहालं चन ज्ञानमें संबंधमें भी विशेषणादिकों की न्याई विशिष्ट व्यवहार देखनेमें नहीं आता। और द्वितीयपक्ष भी असंगत है। क्योंकि देवदत्त के गृह प्रयुक्त जो व्यवहार है । सो गृह के उपलक्षण रूप का कमें नहीं देखा तैसे संबंध के उपलक्षण भूत विशेषण तथा विशेष्यमें विशिष्ट प्रयुक्त व्यवहार का अभाव प्रसंग होगा। याते विशिष्ट स्वरूपता भी भेद को नहीं संभवती ॥ किंवा ॥ वस्तु का स्वरूप ही भेद है ॥ ऐसे कथन करनेवाले वादी से यह प्रश्न व्यर्थ है क्या? निःस्वरूप प्रतियोगिक वह भेद है। अथवा स्वरूप प्रतियोगिक भेद है । प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि निःस्वरूप को तुच्छ होने के तत्प्रति योगिक भेद को भी तुच्छता की प्राप्ति होगी ॥ और स्वरूप प्रतियोगिक भेद है इस द्वितीयपक्षमें भी यह विचार करने योग्य है ॥ क्या? स्वरूप प्रतियोगिक भेद प्रतियोगी का स्वरूप है । अथवा धर्मी का स्वरूप है ॥ इनमें प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि नाश और तिसके प्रतियोगी का अभाव नहीं संभवता ॥ और (भिदिरविदारणो) अ० ॥ भिदि र्धातु विदारण अर्थात् नाश अर्थमें है। इस पाणिनि मुनिके वचन से विदारण रूप तिस भेद को वस्तु के स्वरूप की नाश रूपता सिद्ध होती है । इसी अर्थ को दृष्टांत

द्वारास्पष्टकरतेहैं ॥ जैसेपटकाविदारणार्थार्तनाशवहपटकास्वरूप नहींहोता तैसेवस्तुके स्वरूपकाविदारणरूपभेदभी प्रतियोगीस्वरूप नहींहोता । औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिस्वरूपत्वको प्रतियोगिताका अवच्छेदक मानेहुए स्वरूपत्वकाजो अनधिकरणहै तिसकोधर्मिपनाकहनाहोगा ॥ औरतिसकोनिःस्वरूपहोनेकरभेदकी आधारताहीनहींसंभवेगी । औरयदिऐसेकहोकिस्वरूपभेदमेंस्वरूपत्व प्रतियोगिताकाअवच्छेदकनहीं किंतुकोईएकवैधर्म्य प्रतियोगिताका अवच्छेदकहै । औरस्वरूपभेदसर्वत्रही वैधर्म्यकरव्याप्तहै ॥ यातेपूर्व उक्तदोषका अवकाशनहीं । सोयहकथनभीअसंगतहै । क्योंकिएक पदार्थमेंवृत्तिहुआ तिससे इतरमेंजोनवृत्तिहो तिसको वैधर्म्यकहतेहैं ॥ जैसेघटत्वघटमात्रमेंवृत्तिहुआ घटसेइतरपटादिकोंमेंवृत्तिनहीं।यातेघटत्व वैधर्म्यहै।सोवैधर्म्यइतरशब्दकाअर्थजोभेदतिसकेज्ञानकेआधीनज्ञानका विषयहै॥ औरप्रतियोगिताअवच्छेदक वैधर्म्यज्ञानकेआधीनभेदकाज्ञान है । तैसेमानेहुए अन्योज्ञ्याश्रय दोषकीप्राप्तिस्पष्टहीहै । औरयदि इसदोषकेदूरकरनेकेलिये वैधर्म्यकाउपपादक कोईकधर्मभेदस्वरूप भेदसेअन्यही स्वीकारकरो तोतिसमेंभी यहकथनकरनेयोग्यहै । वह धर्मभेदक्या?भिन्नआश्रयमें वर्तताहै।अथवाअभिन्नआश्रयमेंवर्तताहै। प्रथमपक्षतो नहीसंभवता।क्योंकिस्वरूपभेदसेअन्य यदिधर्मभेदमानेतो वहनिःस्वरूपहोगा । औरभिन्नकहिये द्विविभागकोप्राप्तहुएपदार्थको आश्रयपनामीनहींसंभवता॥यातेनिराश्रयहुआसोभेद निरूपणपथके योग्यनहीं।औरयदिभेदनहुएपदार्थकोभीआश्रयमानेंलें।तोचस्तहुआ घटमीजलकाआधारहुआचाहिये ॥ औरवहधर्मभेदअभिन्नआश्रयमें

वर्तता है। यह द्वितीयपक्ष भी नहीं संभवता॥ क्योंकि अभिन्न आश्रय में विरोध होने से ही भेद उसमें नहीं वर्तता । किंवा॥ पटप्रतियोगिक भेद घटस्वरूप है। अथवा घटका धर्म है। प्रथमपक्ष में तो पटरूप प्रतियोगी के सहित भेद को घटरूप माने हुए घट को अद्वैत प्रसंग होगा॥ और घटका धर्म वह भेद है इस द्वितीयपक्ष में पट भी घटका धर्म हुआ चाहिये। क्योंकि पटस्वरूप ही भेद तुमने माना है ॥ किंवा ॥ वस्तुका स्वरूप ही भेद है। ऐसे माने हुए संशय तथा भ्रम ज्ञानका भी संसार से उच्छेद प्राप्त होगा॥ क्योंकि स्थाणु तथा शुक्त आदिक वस्तु के ग्रहण से भेद का ग्रहण भी आवश्यक हो जायेगा ॥ पुनः पुरुष तथा रजतादिकों का संशय और भ्रम कैसे पुरुष को संभवेगा। किंतु नहीं संभवेगा इस प्रकार भेद में अनेक दूषण हैं। या तो इस बहुत अनात्म विचार से क्या प्रयोजन है इस विचार का समाप्त करना ही उचित है॥ सर्वप्रकार से अर्थात् स्वरूप भेद पक्ष में अथवा धर्म भेद पक्ष में प्रत्यक्षादिक प्रमाण आत्मा तथा अनात्मा के भेद को विषय नहीं करते यह अर्थ सिद्ध हुआ। इस प्रकार साक्षि मात्र कर सिद्ध जो आविद्यक प्रपंच है तिसको प्रमाण की विषयता के अयोग्य होने से तत्प्रति योगिक भेद को कल्पित होने कर पारमार्थिक अद्वैत की किंचित् भी क्षति नहीं। इति ॥३७॥

❀ अथ अज्ञानकारणात्वादनी तथा ब्रह्मकारणात्वादनी श्रुतियों के विरोध का परिहार निरूपण ❀

और मिथ्या प्रपंच ब्रह्म उपादान क नहीं। किंतु अविद्योपादान कहै यदि अविद्या को उपादान तान नहीं माने। तो अविद्या को उपादानता कहने वाले श्रुति वचनों का विरोध प्राप्त होगा । यद्यपि ब्रह्म को कारणता कथन करने वाले श्रुति वचनों का विरोध होने से अज्ञान तथा ब्रह्म इन दोनों

कोही कारणतानहीं संभवैगी । यहपूर्वकथनकियाहै तथापिसोनहीं
संभवता । क्योंकि ॥

❀ मू० ब्रह्माज्ञानाज्जगज्जन्मब्रह्मणोऽकारणत्वतः ॥

अधिष्ठानत्वमात्रेणकारणवृत्तगीयते ॥३८॥❀

शिखरणी० ॥ जनीताभापोजीपरमतमसातेजगतकी ।

यतोभापीनाहीजनकपनतातामहतकी ।

श्रुतीगावेजोईजनकपनतातापरमको ।

अधिष्ठातामात्रेणलपमनमेंतापरमको ॥३५॥

- टी० ॥ ब्रह्मकेअज्ञानसेहीजगतकीउत्पत्तिहोतीहै । यातेअज्ञान
हीजगत्काकारणहै ॥ शंका ॥ ब्रह्मतथाअज्ञानइनदोनोंकोकारणता
केप्रतिपादकवाक्योंकोविद्यमानहोनेकर अज्ञानहीजगत्काकारणहै यह
नियमचापकैसेकरतेहो ॥ समाधान ॥ ब्रह्मकोअसंगतथाविकारशून्य
होनेकरजगत्कीकारणतानहींसंभवती । और-

❀ सदेवसोम्येदमग्रआसीत् ❀

इत्यादिब्रह्मकी कारणताकेप्रतिपादक श्रुतिवाक्यतोजगतकेउपा
दानअज्ञानकीअधिष्ठानतामात्रसे तिसकोकारणताकाप्रतिपादनकरतेहैं
यातेश्रुतियोंकापरस्परविरोधनहीं । अबइसीअर्थकोविस्तारसेनिरूपण
करतेहैं ॥ जगत्काअविद्याहीकारणहै ॥ यद्यपिअविद्यानामविद्याके
अभावकाहै।सो अभावजगत्काकारण नहींसंभवता ॥ क्योंकि तिस
कार्यरूपजगत्कोभावरूपताहै । तथापिवहअविद्यासत्तथाअसत्से
विलक्षणअनिर्वचनीयभावरूपतथा अनादिहै।यातेजगत्कीउपादानता
तिसमेंसंभवेहै॥शंका॥अविद्याकोअनादिमानेहुएभीयहजगत्सत्वरूपता

सेप्रतीतहोताहै। यातेसत्सेविलक्षणअविद्याकोकैसे तिसजगत्कीउपादानताहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्द्रश्यत्वादित्थनुमानसेजगत्कीअनिर्वचनीयतासिद्धहै तहांअनुमान ॥

❀विमतंसतविविक्तं दृश्यत्वात्परिच्छिन्नत्वात्
शुक्तिरजतवत्❀

अ० ॥ विवादकाविषययहजगत्सत्सेविलक्षणहै । दृश्यतथापरिच्छिन्नहोनेसेजोजोदृश्यतथापरिच्छिन्नहोताहै। सोसोसत्सेविलक्षणहोताहै । जैसेशुक्तिरजतहै ॥ इति ॥ औरअपरोक्षप्रतीतहोनेसे यहजगत्असत्भीनहीं। तिसीकारणसे यहजगत् सत्असत्से विलक्षणअनिर्वचनीयहै । तैसेमानेहुएअनिर्वचनीयजगत्काअनिर्वचनीयअविद्याही उपादानकारण कथनकरनेयोग्यहै ॥ क्योंकिकार्यतथाकारणकासमानहीरूपहोताहै। विलक्षणनहीं ॥ औरब्रह्मतिसजगत्काकारणनहींसंभवता॥ क्योंकिविकासेरहितसोब्रह्मकार्यतथाकारणभावसेविलक्षणहै॥ शंका ॥यदिश्रुतिहीतिसकोकारणताबोधनकरतीहै तोआपतिसकोकारणतासेविलक्षणकैसेकथनकरतेहो ॥ समाधान हेवादिन् श्रुतिहीतिसब्रह्मकोकार्य तथाकारणभावसे विलक्षणबोधनकरतीहै । तहांश्रुति ॥

❀तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनंतरमबाह्यमयमात्मावृक्ष
सर्वानुभूरिति । ६० उ० ब्रा० ५ अ० ४ कं १६ ॥

अ० ॥ “तदेतद्” कहियेअज्ञानादिविषयरूपजगत्ब्रह्मरूपहीहै । इसजगत्काऔरकोईरूपनहीं। क्योंकिअध्यस्तपदार्थ अधिष्ठानस्वरूपहीहोताहै । सोब्रह्म (अपूर्व) अकार्यहै ॥ तथा (अनपरं) अका

रणहै॥ और (अनन्तरं) सामान्यसेरहितहै। और (अवाहं) व्यक्ति सेरहितहै। अर्थात्जातितथाव्यक्तिसेविलक्षणहै। औरवहपरोक्षनहीं किंतु (अयमात्मा) नित्यअपरोक्षआत्मस्वरूपहै ॥ औरवहीब्रह्महै ॥ और (सर्वानुभूः)चिदात्माहोनेसेवहीसर्वकाप्रकाशकहै। (इति) तिस पूर्वउक्तब्रह्मात्माकाज्ञान मुमुक्षुकोसंपादनकरनेयोग्यहै। यहवेदकी आज्ञाहै ॥ तिसआज्ञाकेउल्लंघनकरनेसेसंसाररूपमहान् अनर्थकी प्राप्तिहोतीहै॥ औरतिसआज्ञाके पालनकरनेसेअपनीकृतार्थताहोतीहै ॥ इति ॥ इसश्रुतिवचनसेब्रह्मनिष्ठकारणताकानिषेधहोनेसे तथाब्रह्म कोनिर्विकारहोनेसे कारणताकातिसमेंसंभवनहीं। यद्यपिब्रह्मकोजगत् कीकारणताश्रुतिमेंप्रसिद्धहै ॥ तिसकाविरोधप्राप्तहोगा। तथापि जगत्केउपादानभूतअज्ञानका ब्रह्मको अधिष्ठानहोनेकर औपचारिक कारणताकेकथनसेभीश्रुतिकीसफलताहोसकतीहै। तिसश्रुतिकाविरोध नहींप्राप्तहोता॥ यातेब्रह्मकारणनहीं किंतुअज्ञानहीकारणहै ॥शंका औपचारिककारणताकोश्रुतिक्योंनिरूपणकरतीहैक्योंकितिसकेकथन काकोई फलनहीं॥और निष्फलार्थकेकथनसे श्रुतिकोअप्रमाणता होगी ॥ समाधान ॥ हेवादिन् ब्रह्मकोकारणताकहनेवालीश्रुति स्वार्थमें तात्पर्यवालीनहीं ॥ किंतु अन्यार्थपरहै तथाहि ॥ “एक मेवाद्वितीयम्” इसश्रुतिसे प्रथमब्रह्मका अद्वितीयपनासिद्धहै। वहकिसप्रकारसंभावनाकरनेयोग्यहो। ऐसीआकांक्षाकेहुएकहतेहैं। प्रथमकार्यतथाकारणकाअभेद लोकमेंप्रसिद्धहै। क्योंकिमृत्तिकातंतु आदिककारणोंसे घटपटादिकार्यभिन्ननहीं प्रतीतहोते ॥ यातेमृदा दिकारणहीअद्वितीयहै। तैसेब्रह्मभीजगत्काकारणहै तिससेभिन्न

जगत्स्वरूपकार्यनहीं । यातेब्रह्महीअद्वितीयहै । तिसमेंअसंभावनाकैसे हो ॥ इसप्रकारकारणताकहनेवालीश्रुतिअद्वैतमें संभावना बुद्धिमात्र कीउत्पादकतासे सफलहोनेकर अप्रमाणनहीं ॥ शंका ॥सर्ववेदांतों काब्रह्ममेंतात्पर्यहै । यहउत्तरमीमांसाके समन्वयअध्यायकाअर्थहै ॥ तिनमेंवेदांतकाएकदेशरूप कितनेश्रुतिवचनोंकाअज्ञानकीकारणतामें तात्पर्यमानेहुएकैसेअपसिद्धांतनहींहोगाकिंतुसिद्धान्तकीहानिअवश्य होगी॥समाधान॥ हेवादिअज्ञानमेंभीजगत्कीकारणताश्रुतिविवक्षा नहींकरती । किंतुअखंडतथाआनन्दस्वरूपचिदात्माकानानाप्रकारसे दुःखित्वतथादृश्यत्वादिरूपतासेजोप्रतिभासअर्थात्प्रतीतिहैइसीकोभ्रम कहतेहैं । तिसभ्रमकानिमित्तमात्रहोनेकरअज्ञानकोकारणताश्रुतिकथन करतीहै । तिसमेंतात्पर्यकाअभावहोनेसेसिद्धांतकीहानिनहीं । अज्ञान कोभ्रमकीनिमित्तमात्रताश्रीसर्वज्ञात्म महामुनिजीनेभीकथनकीहै ।

❀ विषयकरणादोपान्नभ्रमः संविदिस्यादपतु
भवतिमोहात् केवलादेवमेव । भगवतिपर
मात्मन्यद्वितीये विचित्राद्वयमति रियमस्ति
भ्रांतिरज्ञानहेतुः ॥ सं० शा०अ०१। श्लो० ३०॥ ❀

अ०—जैसेस्वप्रकाशस्वरूपज्ञानमें वेद्यत्वकाभ्रमवादियोंकोविषय तथाकरणादोपसेनहींहोता ॥ किंतुकेवलअज्ञानरूपनिमित्तसेहीहोता है ॥ तैसेहीअद्वितीयस्वरूपभगवान्परमात्मदेवमें यहविचित्रनाना प्रकारकाद्वैतबुद्धिरूपभ्रमकेवलअज्ञाननिमित्तकहै ॥ इति ॥ शंका ॥ श्रुतिकोमुख्यउपादानताकेकथनसे उठाकरकिसलियेअज्ञानकीनिमित्तमात्रपरता कल्पनाकरतेहो॥ समाधान ॥ हेवादिअज्ञानकोतथाअस

तत्कार्यपनानहींसंभवता ॥ यहअर्थपूर्वनिरूपणकराएहैं ॥ याते
 कार्यकेअसंभवसे कार्यतानिरूपितकारणताभी नहींसंभवती॥ किंवा॥
 व्यापारवालाहीकारणहोताहै । तिसमेंयहविचारणीयहै । वहव्यापार
 क्या? अकार्यहै । अथवाकार्यहै । प्रथमपक्षमाने तोसदाहीकार्यहुआ
 चाहिये । क्योंकिकारणमें सदाव्यापारकेहुएकार्यसेवहकभीभीउपरत
 नहींहोगा । औरद्वितीयपक्षमें अनवस्थादोषप्राप्तहोताहै । क्योंकितिस
 व्यापारके उत्पन्नकरनेकेअर्थ अन्यव्यापारस्माननाहोगा । ऐसेअन्य
 अन्यव्यापारकेमाननेसे अनवस्थादोषस्पष्टहीहै । इसप्रकारव्यापारको
 निरूपणनहोनेकरभी कारणनहींसंभवता ॥ औरकार्यकारणभावको
 कल्पितहोनेकरप्रमाणकीअयोग्यताहै । अर्थात्वहप्रमाणसिद्धनहीं । और
 यदिकार्यकारणभावकोप्रमाणसिद्धमानोगेतोद्वेनापत्तिहोगी । इसकारण
 से कार्यकारणवादवेदांतवादसे बहिर्भूतहै । अथवा कार्यकारणभाव
 कथनसे आरंभवादतथापरिणामवादकीमाप्तिहोतीहै । सोअनिष्टहै ॥
 क्योंकिब्रह्मकोएकहोनेसे आरंभवादभीनहींसंभवता । औरब्रह्मकोनिर
 वयवहोनेसे परिणामवादाभीनहींसंभवता । यातेयहदोनोंवादवेदांतसे
 नहिर्भूतहैं अर्थात्वेदांतसिद्धांतमेंस्वीकारनहीं ॥ शंकर ॥ यदिदोनों
 प्रकारकावाद वेदांतसिद्धांतमेंस्वीकारनहीं तोवेदांतमतमेंकौनवादहै ॥
 समाधान ॥ हेवादित्ववेदांतमतमेंविवर्तवादहीस्वीकारहै । तहांएकही
 सत्त्वस्तुकी अपनेवास्तवस्वरूपकोनत्यागकर पूर्वरूपसेविपरीतअसत्
 तथाअनेकरूपतासेजोप्रतीतिहै । तिसकोविवर्तकहतेहैं । यातेइस
 विवर्तकानिमित्तमात्रअज्ञानहै ॥ शंकर ॥ अज्ञानकोप्रपंचरूपकार्यका
 निमित्तमात्रकल्पनाकरनेसे (मायांतुप्रकृतिविद्यात्) इसश्रुति

में कथन किये हुए प्रकृतिशब्द का विरोध होगा। क्योंकि इस शब्द से अज्ञान को उपादानता प्रतीत होती है। समाधान॥ हेवादि न्यहं मायारूप अज्ञान को उपादान कहने वाले श्रुतिवाक्य का अन्य ही अभिप्राय है। तथा हि॥ किसीने प्रश्न किया जगत का कौन कारण है। तब श्रुति द्वारा आचार्य ने उत्तर दिया कि अज्ञान ही जगत का कारण है। यदि प्रश्न के हुए उत्तर स्फुरण हो तिसको अप्रतिभारूप निग्रहस्थान नैयायिकों ने कहा है। तिस अप्रतिभा की निवृत्ति मात्र ही श्रुति में कारण कथन का प्रयोजन है अन्य प्रयोजन नहीं ॥ इति ॥ ३८ ॥

❀ अथ अज्ञान की असिद्धि का निरूपण। पूर्वपक्ष। ❀

हे सिद्धांतिन् यदि अज्ञान निरूपण हो सके तो उसको उपादान कारणता अथवा निमित्त कारणता सिद्ध हो। परंतु वक्ष्यमाण युक्ति से तिस अज्ञान का निरूपण ही नहीं संभवता। तथा हि॥ यह अज्ञान कार्य है। अथवा अकार्य है। प्रथम पक्ष कहो तो इसका कौन कारण है। अर्थ यह क्या? अज्ञान कारण है अथवा ब्रह्म कारण है। यह विचारणीय है। प्रथम पक्ष में तो आत्मा श्रयदोष की प्राप्ति होगी। क्योंकि अज्ञान को अपनी उत्पत्ति में इतर के व्यवधान रहित अपनी अपेक्षा है। और यदि अत्मा श्रयदोष के दूर करने के अर्थ कार्यरूप अज्ञान से भिन्न द्वितीय अज्ञान को कारण मानेंगे तो वह अज्ञान भी कार्य ही कहना होगा ॥ तिसको यदि अपनी उत्पत्ति के अर्थ प्रथम अज्ञान की अपेक्षामाने तो अन्योऽन्या श्रयदोष प्राप्त होगा। और तिस दोष के परिहार करने के लिये तृतीय अज्ञान और मानें तो तिसको भी कार्य ही कहना होगा। और कारणरूपता से प्रथम अज्ञान की पुनः तिसको अपेक्षा माने हुए चक्र का दोष होगा। और तिस तृतीय को चतुर्थ की अपेक्षामाने

हुए अनवस्थादोषप्राप्तहोगा॥ किंवा अनंतयज्ञानोंकीधारामानभीलें
 यदिकोईज्ञान तिसअनंतयज्ञानधाराको विषयकरनेवालाउदयहो। सो
 ऐसाज्ञानतोउदयहोतानहीं । क्योंकिप्रमाणकाअभावहै । याते
 यज्ञानकाकारणयज्ञानहै । यहप्रथमपक्षअसंगतहै । औरब्रह्मयज्ञान
 काकारणहै । यहद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिअन्योपाधि
 उपहितहुआब्रह्म यज्ञानकाकारणहै।अथवाउपाधिरहितशुद्धहीकारण
 है ॥ यहविचारकर्तव्यहै । इनमेंप्रथमपक्षतोनोंसंभवता । क्योंकि
 यज्ञानसेप्रथमयज्ञानअथवा उसकाकार्यरूपउपाधिकातोअभावहै ।
 औरअन्यकोईसत्यउपाधिभी निरूपणनहींहोसकता। क्योंकितिससत्य
 उपाधिकेमाननेसे द्वैतापत्तिहोगी । औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ।
 क्योंकिशुद्धब्रह्मकोनिर्विकारहोनेसे कारणताकाअभावहै । औरयदि
 शुद्धब्रह्मकोकारणमानलें तोमुक्तपुरुषकोभी पुनःसंसारकीप्राप्तिहोगी।
 क्योंकिसंसारकेहेतुभूतयज्ञानकीकारणसामग्रीरूपशुद्धब्रह्मकोविद्यमान
 होनेकर तिसयज्ञानकी अवश्यउत्पत्तिहोगी ॥ यातेयज्ञानकोकार्य
 रूपताकासंभवनहीं ॥ औरवहयज्ञानअनादिहै ॥ यदियहद्वितीय
 पक्षमानोतोजैसेअनादिभावरूपब्रह्मकीनिवृत्तिनहींहोती। तैसेअनादि
 भावरूपयज्ञानकीभीनिवृत्तिनहींहोगी॥ यहाँयह अनुमानभीजानना॥

❀ विमतमज्ञानं ननिवर्त्तते अनादित्वे सतिभाव
 त्वात् ॥ ब्रह्मवत् ॥ ❀

अ० ॥ विवादकाविषयजो यज्ञानहै वहनिवृत्तनहींहोता ॥
 अनादिहुआभावरूपहोनेसे।जोअनादिभावहोताहै । सोसोनिवृत्त
 नहींहोता ॥ जैसेब्रह्महै ॥ इति ॥ यहाँघटादिकोंमेंहेतुकाव्यभिचार

दूरकरनेकेलिये “अनादि” यहहेतुकविशेषणकहाहै । औरप्रागभाव मेंव्यभिचारदूरकरनेकेलिये “भावत्व” यहविशेष्यदलकहाहै ॥शंका॥ हेवादिन् कल्पिततथाअकल्पितरूपताकर ब्रह्मऔरअज्ञानकीविलक्षण ताहै ॥ यातेइसपूर्वउक्तअनुमानमें “अमिथ्यात्व” उपाधिहै । सो इसप्रकारहै ॥ जहांजहांअनिवृत्तित्वहै ॥ तहांतहांअमिथ्यात्वहै । जैसे ब्रह्ममेंहै ॥ यातेउपाधिसाध्यकेसाथव्यापकहै । औरजहांजहांअनादि भावत्वहै । तहांतहां अमिथ्यात्वनहीं जैसे अज्ञानमें है । यातेउपाधि साधनकेसाथअव्यापकहै । इसप्रकार सोपाधिक हेत्वाभासहोनेसे पूर्वउक्तअनुमानदुष्टहै ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन्अज्ञानकोकल्पितपनानहींसंभवता । क्योंकिकल्पितपनेकी सामग्रीकाअभावहै । तथाहि ॥ सादृश्यऔरपूर्वसंस्कारतथादोषयहतीनोंकल्पनाकीसामग्री है । सोअज्ञानकीकल्पनामेंतीनोंका अभावहै । क्योंकिअज्ञानकोयदि कल्पितकहेंगेतोआत्मामेंही कल्पितकहनाहोगा । यातेआत्मातिसका अधिष्ठानहै । औरआत्मातथाअज्ञानकासादृश्यभीसंभवतानहीं । क्योंकि आत्मानिरवयवहै ॥ औरपूर्वसंस्कारऔरदोष यहदोनोंभीनहींसंभवते । क्योंकितिनदोनोंको अज्ञानपूर्वकहोनेकरअज्ञानसेपूर्वतिनकीअसिद्धि है । इसप्रकारअज्ञानकोकल्पितपनेके असंभवसेअमिथ्यात्वकोसाधनके साथव्यापकहोनेकर उपाधिरूपताकाअसंभवहै ॥शंका॥ हेवादिन्सादि अध्यासप्रथमनहोकरपुनःहोताहै । इसहेतुसेवहकार्यहै । तिसमेंसामग्री कीअपेक्षाअवश्यहोतीहै । परन्तुअज्ञानाध्यासतोआनादिहैतिसमेंसाम ग्रीकीकिंचित्भीअपेक्षानहीं ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन्अज्ञानाध्यास अनादिहै । यहकथननहींसंभवता । क्योंकिएकबाधकरहीअध्यस्तपनाऊहा

करनेयोग्यहै। और यज्ञानका बाधक कोई प्रतीत होता नहीं याते यज्ञानमें
अध्यस्तपनेकी यत्ति सिद्धि है ॥ शंका ॥ हेवादिन् विद्यातिस यज्ञानका
बाधक है । याते अध्यस्तपना तिसमें सिद्धि है ॥ समाधान ॥ हेमिद्धां
तिन् क्या? विद्यासे निवृत्तिके योग्य को बाध्यत्व है। यथवा कल्पित हुआ जो
विद्याकर निवृत्तिके योग्य हो तिसको बाध्यपना है। प्रथम पक्ष कहो तो उत्तर
ज्ञानसे निवृत्तिके योग्य जो पूर्वज्ञान है तिसमें भी बाध्यव्यवहार हुआ चाहिये
और उसमें बाध्यव्यवहार नहीं होता ॥ याते प्रथम पक्ष असंगत है ॥ और
द्वितीय पक्षमें अन्योऽन्याश्रय दोष की प्राप्ति है । क्योंकि यज्ञानमें प्रथम
कल्पतत्त्व की सिद्धि हो तो ज्ञान बाध्यत्व तिसमें सिद्ध हो ॥ और ज्ञान बाध्य
त्व प्रथम यज्ञानमें सिद्ध हो तो कल्पितत्व की तिसमें सिद्धि हो इस प्रकार अपनी
सिद्धि में परस्पर अपेक्षा होने से अन्योऽन्याश्रय दोष है ॥ शंका ॥ हेवादिन् यह
पूर्व उक्त दोष क्या? यज्ञान के स्वरूप का लोप करते हैं। यथवा यज्ञान में वस्तु
का लोप करते हैं । प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि “अज्ञो हम्” इस
प्रतीति से सिद्ध जो यज्ञान का स्वरूप तिसका “अपलाप” अर्थात् लोप
युक्त नहीं ॥ और द्वितीय पक्षमें तो हमारे ही इष्ट की सिद्धि है ॥ क्योंकि यह
दोष वस्तु के वास्तवपने को दूर करते हैं। और यज्ञान में तो स्वभाव से ही वस्तु
पना नहीं । याते कल्पित को दोष और क्या करेंगे। इसी कारण से यह कहना
है ॥ कि युक्ति तथा प्रमाण से जो यज्ञान की दुर्घटता है यह हमको भ्रूषण रूप
है ॥ क्योंकि युक्ति तथा प्रमाण से जिसका निरूपण सुघट हो तिसमें कल्पित
पना ही दुर्घट है । याते पूर्व उक्त दोष भी तिस यज्ञान में कल्पितपने को ही
संपादन करते हैं ॥ वह हमको इष्ट है ॥ समाधान ॥ हेमिद्धांतिन्
यज्ञान में कल्पितपना असिद्ध है । याते तिसमें इष्टापति कैसे कहते हो ॥

यद्यपि पूर्व उक्त दोष ही अविद्या में कल्पित पना सिद्ध कर देंगे ॥ तथापि प्रथम अज्ञान रूप धर्मी सिद्ध हो तो दोष तिसमें कल्पित त्व धर्म को सिद्ध करें परन्तु वह अज्ञान रूप धर्मी तो अवपर्य्यत भी सिद्ध नहीं हुआ ॥ और यदि “अज्ञो हम्” इस प्रतीति से अज्ञान की सिद्धि मानो तो यह भी नहीं संभवती। क्योंकि यह प्रतीति ज्ञानाऽभाव को विषय करती है । या तो अज्ञान रूप धर्मी को सिद्ध होने कर तिसमें कल्पित त्व को दोष कैसे संपादन करेंगे किंतु नहीं कर सकते ॥ शंका ॥ हेवादिन् अज्ञान की जो असिद्धि तुमने कथन की तिस अ सिद्धि शब्द के अर्थ का ज्ञान अपने प्रतियोगि रूप सिद्धि के ज्ञान के अधीन है। क्योंकि अभाव ज्ञान प्रतियोगि ज्ञान पूर्व कही होता है ॥ इस कारण से सिद्धि शब्द का अर्थ विचारणीय है ॥ तथा हि। क्या? उत्पत्तिकानाम सिद्धि है प्रथम अथवा ज्ञप्ति अर्थात् ज्ञान कानाम सिद्धि है। इनमें प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि अनादिकी उत्पत्तिका अभाव अंगीकार है ॥ और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता। क्योंकि साक्षी कर अज्ञान की सिद्धि होने से तिसकी अ सिद्धि का ही अभाव है ॥ यहां पर यह अर्थ ज्ञात व्य है। “अहमज्ञः” यह प्रतीति वादी तथा प्रतिवादी को स्वीकार है। वह प्रतीति क्या? अज्ञान की स्वप्रकाशता से है। अथवा अनुमानादिकों से है वा प्रत्यक्ष से है। प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि अज्ञान को जड स्वभाव होने से स्वप्रकाशता का अभाव है । और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता। क्योंकि लिंगादिकों के स्मरण से विना ही इस प्रतीति को उत्पन्न होने कर अनुमानादिकों का अभाव है ॥ और तृतीय पक्ष में यह विचार कर्तव्य है । क्या? बाह्य नेत्रादिक इन्द्रिय तिस प्रतीति के उत्पादक हैं । अथवा मन तिसका उत्पादक है । इनमें प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि बाह्य इन्द्रियों की अन्तर प्रवृत्ति नहीं हो सकती । और द्वितीय

पक्षभी असंगत है ॥ क्योंकि केवल अज्ञान मात्र ही तिस प्रतीति में स्फुरण नहीं होता किंतु अहमाञ्छिन्न अज्ञान का स्फुरण होता है। तहां “अहं” यह जो अज्ञान का विशेषण है। सो क्या शुद्धात्मा है। अथवा अहंकार विशिष्ट आत्मा है। अथवा अहंकार उपहित आत्मा है। इनमें प्रथम पक्ष नहीं संभवता। क्योंकि तिस शुद्धात्मा को स्वप्रकाश होने के मन की विषयता का अभाव है। और द्वितीय पक्ष भी असंगत है। क्योंकि “विशिष्टवृत्ति धर्म को विशेषण में वर्तने का नियम है” इस न्याय से अहंकार रूप मन विविष्ट आत्मा में मन की विषयता माने हुए आत्मा श्रय दोष प्राप्त होगा। क्योंकि स्व विषयता में स्वकी अपेक्षा है। और मन को मन का विषय माने हुए अतीन्द्रियत्व की भी तिसमें क्षति होगी। और तृतीय पक्ष में अहंकार का स्फुरण तिस प्रतीति में नहीं संभवेगा। क्योंकि उपाधिको तटस्थ होने के विषय कोटि में तिस का प्रवेश नहीं। और विषय कोटि में अप्रविष्ट हुए को भी यदि ज्ञान की विषयता माने तो विज्ञानवादी के मत की प्राप्ति होगी। क्योंकि वह निर्विषय ज्ञान मानता है। और सुषुप्ति अवस्थामें मन के विलय हुए भी अज्ञान की प्रतीति होती है। इस कारण से भी अज्ञान की प्रतीति में मन को करणता नहीं संभवती। तिस कारण से परिशेष से साक्षि भास्य ही अज्ञान है। इस प्रकार अज्ञान रूप धर्म की सिद्धि होने से तिस की असिद्धि ही असिद्ध है। समाधान ॥ हे सिद्धांत अज्ञान की सिद्धि साक्षी से नहीं संभवती ॥ तथा हि ॥ साक्षी स्वसंबन्ध को प्रकाश करता है। अथवा स्वसंबन्ध को भी प्रकाश करता है ॥ यह विचार कर्तव्य है ॥ तहां प्रथम पक्ष में तो सिद्धांत की हानि होगी। क्योंकि अज्ञान की सिद्धि साक्षी के आधीन मानने से साक्षी के साथ तिस का संबंध कहना होगा। तिस से असंगतता की हानि होने से

अपसिद्धांतप्राप्तहोगा ॥ और—

❀ असंगोनाहिसज्जते । (वृ० उ० अ० (६ ब्रा०(२) कं ४)

अ० ॥ जिसकारणसे आत्माअसंगहै । इसीसेकिसीपदार्थके साथसंबंधवालानहींहोता । इसश्रुतिकाविरोधभी प्राप्तहोगा । और द्वितीयपक्षभी नहींसंभवता ॥ क्योंकिसंबन्धसेविना प्रकाशकता काअसंभव है । औरप्रदीपादि स्वसंबन्धकेही प्रकाशकदेखे हैं ॥ इससेभी असंगकोप्रकाशकतानहींसंभवती ॥शंका॥ हेवादिन्अज्ञान केसाथजोसाक्षीकासंबंध अन्येषणकियाजाताहै।सोक्या?वास्तवसंबंध है। अथवाकल्पितसंबंधहै॥ प्रथमपक्षतोनहींसंभवता। क्योंकिवास्तव यहजोसंबंधकाविशेषण सोअसमर्थहै अर्थात्त्वयर्थहै ॥ जैसेकल्पित सर्पकोदीपकनहींप्रकाशकरता औरदीपकका तिससर्पकेसाथ वास्तव संबन्धभीनहींसंभवता। तैसेदार्ष्टान्तमेंभीजानना ॥ औरयदिसंबन्धमात्र हीअपेक्षितहो।तोवास्तवसंबन्धकेअभावहुएभीकल्पितसंबन्धसाक्षी और अज्ञानकाविद्यमानहीहै ॥ यातेद्वितीयपक्षमें हमकोभीइष्टापत्तिहै ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन् साक्षीऔरअज्ञानका कल्पितसंबन्धभीनहीं संभवता ॥ क्योंकिसंबन्धकल्पनासादिहै। अथवाअनादिहै। यहविचार कर्तव्यहै॥प्रथमपक्षमेंसंबन्धकाकल्पककौनहै। यहविचारपुनःकर्तव्यहै । क्या?संबन्धऔरसंबन्धियोंसेभिन्नकोईकल्पकहै।अथवासंबन्धादिकहीकल्पक हैंप्रथमपक्षतोनहींसंभवता॥क्योंकिसंयोगसंबन्धमेंसंबन्धियोंसेभिन्नपदार्थ मेंसंबन्धकीउपादानतादेखनेमेंनहींआती॥ औरद्वितीयपक्षमेंयहविचार गीयहै।क्या?संबन्धआपहीअपनाकल्पकहै। अथवादोनोंसंबन्धी तिसके कल्पकहैं।प्रथमपक्षमेंतोआत्माअयदोपस्पष्टहीहैऔरद्वितीयपक्षमेंदोनो

संबंधियोंकेमध्यक्या? अज्ञानकल्पकहै। अथवासाक्षीकल्पकहै॥ प्रथमपक्ष
तो नहीं संभवता क्योंकि अन्योऽन्याश्रयदोपप्राप्तहोताहै॥ तथाहि॥ अज्ञान
स्वरूपलाभकोप्राप्तहोकरही संबंधकोउत्पन्नकरेगा॥ औरसंबंधकेउत्पन्न
हुए अज्ञानलब्धसत्ताक अर्थात्स्वरूपकेलाभवालाहोगा॥ इसप्रकारदोनों
कोपरस्परअपेक्षाहोनेसे अन्योऽन्याश्रयदोषहै ॥ औरद्वितीयपक्षभी
नहीं संभवता ॥ क्योंकि ॥

❀ उपयन्नपयन्धर्मो विकरोति हि धर्मिणाम् *

अ०—उत्पत्तितथाविनाशकोप्राप्तहोताहुआधर्मअपनेधर्मीकोविकारी
करदेताहै॥ इसन्यायसेउत्पत्तितथाविनाशकोप्राप्तहोताहुआसोसंबंधस्व
धर्मीसाक्षीकेकूटस्थपनेकीहानिकरेगा ॥ यातेसाक्षीसंबंधकाकल्पक
नहीं॥ औरयदिइसदोषकेदूरकरनेकेलियेउपाधियुक्तहुआसाक्षीअज्ञान
केसंबंधकाकल्पकहै तोअसंगताकीहानिहोगी॥ क्योंकिअज्ञानसाक्षी
केसाथसंबंधसेबिनास्वरूपकोनहींप्राप्तहोता औरस्वरूपलाभसेबिनावह
अज्ञानउपाधिको कैसेउत्पन्नकरेगा । किंतुनहींउत्पन्नकरसकता॥
इसकारणसेजिसउपाधिउपहितहुआसाक्षीअज्ञानकेसंबंधकाकल्पकहै
वहउपाधिपारमार्थिकहीकहनाहोगा॥ तिसकेसाथसाक्षीकासंबंधहुए
असंगताकीहानिअवश्यहोगी औरअनिर्मुक्तप्रसंग अर्थात्किसीको
भीमोक्षनहींप्राप्तहोगा॥ क्योंकितत्त्वसाक्षात्कारसे अज्ञानतत्कार्यका
ही विरोधहोनेसे नाश होताहै। अन्य पदार्थका नाशनहींहोता॥
तैसेमानेहुए जिसउपाधिकरउपहितसाक्षीहै वहसत्यहै। तिसउपाधिको
पूर्वउक्तरीतिसेपारमार्थिकहोनेकर तिसकी निवृत्तिनहींहोगी। यातेज्ञान
कालमेंभीतादृश अज्ञानकेसंबंधकाहेतु उपाधिकेसद्भावसे संसारका

उच्छेदकभी नहींहोगा ॥ इसप्रकार अनिमोक्षप्रसंगहोनेसे मोक्ष
शास्त्रभीनिष्फलहोगा ॥ औरयदिआत्माश्रयादिदोष दूरकरनेकेलिये
अज्ञानकेसंबंधका ग्रन्थासअनादिहै यहआद्यद्वितीयपक्ष स्वीकारकरो
तोआत्माकीन्याई अनादिभावरूप होनेकर तिससंबंधकी निवृत्तिनहीं
होगी । यहांयहअनुमानजानना ॥

❀ विमतोऽज्ञान संबंधो न निवर्तते ।

अनादिभावत्वात् । आत्मवत् ॥ ❀

अ० ॥ विवादकाविषयजो अज्ञानकासंबंधहै । वहनिवृत्तनहीं
होता । अनादिभावरूपहोनेसे ॥ जोजोअनादिभावहोताहै । सोसो
निवृत्तनहींहोता । जैसेआत्माहै । इति ॥ शंका ॥ हेवादिनिवृत्त्या
भावमेंअनादिभावत्व प्रयोजकनहीं । किंतुअविद्याकीतंत्रताकाजो
अनधिकरणत्व सोनिवृत्त्याभावमेंप्रयोजकहै ॥ औरसंबंधकोतो
अविद्याकेआधीनहोनेसे अविद्याकी निवृत्तिहुए तिसकी निवृत्तिहो
जाएगी । यातेपूर्वउक्तअनुमानमें “अविद्यातंत्रत्वादनधिकरणत्व”
उपाधिहै । सोइसप्रकारहै ॥ जहांजहांनिवृत्त्याभावहै । तहांतहां
“अविद्यातंत्रत्वानधिकरणत्व” है । जैसेआत्मामेंहै । औरजहांजहां
अनादिभावत्वहै । तहांतहां अविद्यातंत्रत्वानधिकरणत्वकाअभावहै ॥
जैसेसंबंधमेंहै । यातेसोपाधिकहेतुहोनेसेअनुमानदुष्टहै । इसप्रकार
संबन्धाध्यासको अविद्याध्यासकीन्याई अनादिभावत्वके मानहुए
भीअविद्याकेआधीनहोनेकर अविद्याकीनिवृत्तिसे तिसकीनिवृत्ति
संभवतीहै ॥ समाधान ॥ उपाधिकोसाधनकेसाथ व्यापकहोनेसे
पूर्वउक्तअनुमानदुष्टनहीं ॥ तथार्हि यह “अविद्यातंत्रत्व” अर्थात्

अविद्याऽधीनत्वक्याहै । अर्थयह । क्या? अज्ञानजन्यत्वकानाम
 “अज्ञान तंत्रत्व” है । अथवा अज्ञानभास्यत्वरूप तंत्रतासंबंधमें है
 अथवा - अज्ञानके आधीनस्थितिवत्तारूप तंत्रता है । इनमें
 प्रथमपक्षनहींसंभवता । क्योंकिसंबंधकोअनादिहोनेसे स्वउत्पत्तिअर्थ
 अज्ञानकीअपेक्षानहीं ॥ औरद्वितीयपक्षभी नहींसंभवता ॥ क्योंकि
 सम्बन्धकाज्ञानसाक्षीकेआधीनहै । औरअज्ञानकोजड़होनेसे संबंधकी
 प्रकाशकताकाअसम्भवहै । यदियहकहो किबंधीके ज्ञानकेआधीन
 संबंधकाज्ञान लोकमेंदेखाहै । यातेसम्बन्धकाविशेषणरूप जोबंधी
 तिसकोभीसंबंधज्ञानकी हेतुताहोनेसे संबंधमेंअज्ञानतंत्रताकासंभवहै ।
 सोयहकथनभीसमीचीननहीं । क्योंकिप्रत्यक्षादिप्रमाणसिबलौकिक
 संबंधका संबंधीकेआधीनज्ञानहुएभी अज्ञानतथासाक्षीके संबंधमें
 उससे विलक्षणताहै । जिसकारणसे साक्षीके संबंधके आधीन
 अज्ञानरूपसंबंधीकीस्फूर्ति है ॥ यातेपूर्वउक्ततंत्रतानहींसंभवती ॥
 औरसंबंध अपनीस्थितिकेअर्थ संबंधीकी अपेक्षा करता है ॥
 यहतृतीयपक्षभीनहीं संभवता ॥ तथाहि ॥ क्या? वहसंबंधस्वरूपलाभसे
 विनाहीस्थितिमात्रकेअर्थसंबंधीकीअपेक्षाकरताहै । अथवास्वरूपलाभ
 युक्तहुआसंबंधीकीअपेक्षाकरताहै ॥ प्रथमपक्षतोनहींसंभवता । क्योंकि
 लब्धसत्ताकपदार्थही स्थितिकीअपेक्षावालाहोताहै । निःस्वरूपको
 स्थितिकीअपेक्षाहीनहीं ॥ औरद्वितीयपक्षमेंभीयहविचारकर्तव्यहै
 संबंधकोस्वरूपकालाभकिसीकारणसेहै । अथवाकारण विनाहीस्वरूप
 कालाभहै? ॥ प्रथमपक्षमानो तोअनादित्वकीहानिहोगी । औरयदि
 द्वितीयपक्षकहो । तोकारणकीअपेक्षाकाअभावहुएस्थितिकेअर्थभीतिस

कोइतरपदार्थकीअपेक्षानहींहोगी ॥ जैसेस्वतःलब्धसत्ताकयात्माको
 स्वस्थितिकेअर्थ इतरकीअपेक्षानहींहोती॥ इसप्रकारसंबंधकोअज्ञान
 कीआधीनतानहोनेसे पूर्वउक्तउपाधिसाधनकेसाथ अव्यापकनहीं॥
 किंतुव्यापकहै । यातेपूर्वकथनकियाअनुमाननिर्दोषहै ॥ शंका ॥
 हेवादिन् अज्ञाननामज्ञानकेप्रागभावकाहै।औरवहज्ञानकीअनुपलब्धि
 सेग्रहणहोताहै।तिसकीअसिद्धितुमकैसेकहतेहो ॥ समाधान ॥ यह
 तुम्हाराकथनभीअसमीचीनहै।क्योंकिग्रहणशब्दसेवृत्तिज्ञानका ग्रहण
 है।अथवास्वरूपचेतनकाग्रहणहै। प्रथमपक्षतोनहींसंभवता॥ क्योंकि
 वृत्तिकोजडहोनेकरमुख्यज्ञानरूपताकीअनुपपत्तिहै ॥ औरद्वितीयपक्ष
 भीनहींसंभवता ॥ क्योंकिनित्यउपलंभ अर्थात्ज्ञानस्वरूपआत्माकी
 अनुपलब्धिनहींसंभवती॥ औरभावरूपजगतका उपादानजोअज्ञान
 तुममानतेहो तिसकोअभावरूपताकीभी अनुपपत्तिहै ॥ यातेपूर्वउक्त
 प्रकारसेअज्ञानहीनहींहै तोतिसकोजगतकीकारणता तुमकैसेकथन
 करतेहो ॥ इतिपूर्वपक्ष ॥



❀अथसिद्धांताज्ञानकीसिद्धिकाप्रकारनिरूपण❀

मृ० प्रश्नस्यज्ञानपूर्वत्वादाक्षेपेप्रतियोगिधीः।

अवश्यंभाविनीपूर्वाविरोधःस्यादितोन्यथा।३६।

चौबोलाछंद ॥ ज्ञानपूर्वकंप्रश्नपठ्यानोआक्षेपेप्रतियोगिधी ॥

अवश्यंहोतीइससेअन्यथाहोतविरोधलखोसोजी।३७।

टी०॥हेवादिन् जोप्रश्नहोताहैवहज्ञानपूर्वकहीहोताहै। औरनिषे
 धमेंभीप्रतियोगीकाज्ञानअवश्यपूर्वहोताहै।यातेअज्ञानकेस्वरूपविषयक

प्रश्नतथातिसकेनिषेधसे “अन्यथा” कहियेस्वरूपविषयकप्रमाण का प्रश्न कियेहुए विरोध प्राप्त होगा। अर्थ यह अज्ञानको प्रमाण कर निवृत्तिके योग्य होने से तिसमें प्रमाण का प्रश्न विरुद्ध है ॥ अब इसी अर्थको विस्तार पूर्वक निरूपण करते हैं। अज्ञान अंगीकार करने वालों की प्रति जो पूर्वपक्षी ने यह कथन किया है। कि अज्ञान की सिद्धि कैसे हो सकती है। ऐसे कथन करने वाले वादी से हम यह पूछते हैं। या यह तुम्हारा प्रश्न अज्ञान के स्वरूप विषयक है। अथवा तिसके स्वरूप का निषेध है ॥ अथवा तिसके स्वरूप बोधक प्रमाण विषयक प्रश्न है ॥ प्रथम पक्ष कहो तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि अज्ञात स्वरूप विषयक प्रश्न की अनुपपत्ति है ॥ अर्थ यह प्रश्न वाणी का एक विशेष व्यवहार है। और वह व्यवहार व्यवहर्तव्य वस्तु के ज्ञान के आधीन है और यहां प्रकरण में कथनात्मक व्यवहार के योग्य अज्ञान का स्वरूप है ॥ तिसका ज्ञान प्रश्नकर्ता को प्रथम अवश्य होना चाहिये इसलिये अज्ञान का स्वरूप तुम्हको प्रथम ही सिद्ध है ॥ या तो अज्ञान के स्वरूप की सिद्धि अर्थ प्रश्न करना व्यर्थ है ॥ शंका ॥ हे सिद्धांतिन् यदि यह प्रश्न अज्ञान के सामान्य स्वरूप की जिज्ञासा से होता। तो यह उपालंभ आपका होता। परन्तु ऐसे तो नहीं किंतु अज्ञान के विशेष स्वरूप की जिज्ञासा से प्रश्न संभवता है ॥ समाधान ॥ हे वादिन् इस कथन से भी पूर्व उक्त दोष ही प्राप्त होता है। अर्थ यह कि प्रश्न व्यर्थ है। क्योंकि अज्ञान के स्वरूप की सिद्धि ही अन्वेषण की जाती है वह यदि सामान्य रूपता से सिद्ध है। तो पुनः विशेष ज्ञान का क्या प्रयोजन है किंतु कोई प्रयोजन नहीं। अथवा सामान्य प्रतीति विशेष प्रतीति से विना पर्यवसानता को न प्राप्त हुई विशेष को भी वह बोधन कर देती है ॥ या तो विशेष स्वरूप की जिज्ञासा से भी प्रश्न करना निष्फल है ॥ और द्वितीय पक्ष

भीनहींसंभवता ॥ क्योंकिअज्ञानकाअभाव बोधनकरनेका नामही
 आक्षेपहै।औरवहअभावशब्दसेही बोधनकरनेयोग्यहै। औरशब्दका
 उच्चारणभी ज्ञानपूर्वकहीहोताहै।औरअभावकाज्ञानभीप्रतियोगिज्ञान
 केआधीनहीहोताहै ॥ इसप्रकारअज्ञानकास्वरूपनिषेधकरनेवालेवादी
 केप्रति प्रतियोगिरूपअज्ञानकीसिद्धिप्राप्तहुई तिसकालोपकरनावादी
 कोउचितनहीं ॥ शंका ॥ जोवस्तुप्रमाणसिद्धहो तिसकानिषेधकरना
 योग्यनहीं परन्तुअज्ञान तोभ्रमसिद्धहै। यातेवहकैसेनिषेधकरनेयोग्य
 नहीं किंतुनिषेधकेयोग्यहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन् जोभ्रमज्ञानहोता
 है वहकरणतथाविषयकेआधीनहोताहै॥ यातेअज्ञानकेभ्रममेंवहदोनों
 तुमनेकहेचाहिये ॥ अबसिद्धांतीआपहीवादीकोसंमतिदेताहै ॥
 जिसकारणसेजबकोईऐसेपूछेकिससाधनकरभ्रमहुआऔरकिसविषयक
 भ्रमहुआ तबयहीउत्तरकहनेयोग्यहै। परोक्तशब्दाभासकरभ्रमहुआ
 औरअज्ञानविषयकहुआ।यातेशब्दाभासही भ्रममेंकरणहै। औरअज्ञान
 तिसभ्रमकाविषयहै। यहांशब्दमें आभासत्वद्योतनकरनेकेलियेपरोक्त
 यहशब्दकाविशेषणकहाहै ॥ इसप्रकारसिद्धांती आपहीवादीकेप्रति
 ऐसीसंमतिदेकर अबतिसकोदूषितकरताहै ॥ हेवादिन् जबऐसेमाना
 तोभ्रमकोस्वसमानविषयकअज्ञानका उपपादकहोनेसे अज्ञानविषयक
 और अज्ञानस्वीकारकरनेकर अनवस्थादोषका परिहारकरना कठिन
 होगा॥अर्थयहहै।किअज्ञानकेभ्रममेंकोईउपादानकहाचाहिये सोक्या?
 अज्ञानउपादानहै ॥ अथवा कोईअन्य पदार्थहै ॥ अन्त्य पक्ष तो
 नहींसंभवता ॥ क्योंकि अज्ञानकोही उपादानता स्वीकार है ॥
 औरप्रथमपक्षमें वहअज्ञानकौनहै।क्या?निरूपणीयरूपताकर प्रकरण

में जो प्राप्त है वही अज्ञान है। अथवा उससे भिन्न है ॥ प्रथम पक्ष में तो आत्मा अथवा दोष स्पष्ट ही है। क्योंकि अज्ञान को अपने भ्रम में अपनी अपेक्षा है। और द्वितीय पक्ष में अन्योन्याश्रयचक्रका अनवस्थादि दोषों का समूह प्राप्त होता है। और यदि अनेक अज्ञानों की धारा स्वीकार करो तो यह अत्यंत आश्चर्य है जो तुम एक अज्ञान को न सहन कर तिसके निषेधका प्रयोग करते थे अथवा अनेक अज्ञान धारा को स्वीकार करने से मदसे उन्मत्त हुए तुम्हको स्वप्न की हानि और गौरव दोष तथा व्यर्थतादि अनेक दोष प्रतीत नहीं होते। याते स्वप्नका निर्वाह भी दूर हुआ। अर्थ यह जब अज्ञान तुमने मान लिया तो स्वप्न की हानि हुई क्योंकि तुम अज्ञानका निषेध करते हो। और एक अज्ञान से ही स्वाकार तथा अन्यकार भ्रम के सिद्ध हुए अनेक अज्ञान मानने में गौरव है किंवा। अज्ञान को जड स्वरूप होने पर स्वभाव से ही वह आवृत्त स्वरूप है। तिसमें आवरण के प्रयोजन का भाव होने से अज्ञान विषयक और अज्ञान स्वीकार करना व्यर्थ है। और ऐसे भी अज्ञान धारा मान लें यदि अज्ञान परंपरा को ग्रहण करने वाला कोई ज्ञान उदय हो सो ऐसा ज्ञान तो कोई उदय नहीं होता याते प्रमाणाभाव से अज्ञान परम्परा की सिद्धि भी नहीं हो सकती ॥ शंका ॥ किसी विषय में आपको भी प्रश्न तथा आक्षेप के विद्यमान होने से पूर्व उक्त प्रश्न आपके प्रति भी तुल्य ही है। क्योंकि—

यत्रोभयोः समो दोषः परिहारो पितत्समः ।

नैकस्तत्र नियोक्तव्यं स्तादृगर्थविचारणो ॥ १ ॥

अ० ॥ जहां दोनों पक्षों में समान दोष हो तहां तिसका परिहार भी दोनों पक्षों में समान ही होता है। तैसे अर्थ के विचार करने में एक ही वादी वा

प्रतिवादीतहांपर्यनुयोगकाविषयनहींहोता।किंतुदोनोसमानहीतिसका
 विषयहोतेहैं(१)इसन्यायसे किसीविषयमेंआपभीइसीप्रश्नकाविषयहो॥
 समाधान॥ हेवादिन्हमारेपक्षमेंपरिहारकीतुल्यतानहीं॥क्योंकिअज्ञात
 रूपताकरसाक्षिसिद्धअज्ञानकीनिवृत्ति अर्थप्रमाणकाप्रशस्तेनहीसंभ
 वताहै।औरअज्ञानमेंप्रमाणकेनदेखनेसेस्वरूपकातिस्काररूपनिषेधभी
 करनेकोसुखेनहीहै ॥ अवपरिहारकी समानताग्रहणकरकेवादीतृतीय
 पक्षकोउठाताहै ॥ शंका ॥ हेसिद्धांतिन् तोसाक्षिसिद्धअज्ञानके
 वरूपविषयक्रमेणभी प्रमाणकाप्रश्नसमीचीनहै ॥ समाधान ॥
 हेवादिन् पूर्वउत्तरीतिसे अज्ञानकोसाक्षिसिद्धमानेहुए अज्ञानतथा
 साक्षीकासंबंधभीकहनायोग्यहै।क्योंकिसंबंधसेबिनासाक्षीकोअज्ञान
 कीसाधकतानहींसंभवेगी।तैसेअज्ञानतथासाक्षीके संबंधकोअनादि
 त्वभीकहनाचाहिये।नहींतोपूर्वमुक्तहुएपुरुषोंको पुनःसंसारकीप्रती
 तिहोगी।तात्पर्ययहहै ॥ साक्षीतथा अज्ञानके संबंधकोसादि
 मानेहुए तिसकाआदिकारण क्या?आत्माहै।अथवाअज्ञानहै।प्रथम
 पक्षतोनहींसंभवता।क्योंकिमुक्तपुरुषोंकोपुनः संसारप्राप्तहोगा ॥
 जिसकारणसे मुक्तिकालमेंभी संबंधकाकारणआत्माविद्यमानहै ॥
 सामग्रीकेहुए कार्यअवश्यहोताहै॥औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ॥
 क्योंकिवहसंबंधकाकारणरूपअज्ञानक्या?संबंधिरूपहै।अथवाअसंबंधि
 रूपहै यहविचारकर्तव्यहै ॥ इनमेंअंत्यपक्षतोनहींसंभवता ॥ क्योंकि
 स्वतंत्रअज्ञानस्वीकारनहींहै ॥ औरसाक्षीकेसाथसंबंधवालाअज्ञान
 कारणहै यहप्रथमपक्षभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिसंबंधतोअवपर्यंतभी
 सिद्धनहींहुआ ॥ औरस्यदितुऐसेकहो किप्रथमअज्ञानसेयहअज्ञान

भिन्न है ॥ तो इसमें भी यह विचार करने योग्य है ॥ क्या? वह अज्ञानांतर भी साक्षी के साथ संबंध वाला है वानहीं। अन्त्यपक्षमें तो अज्ञान को स्वतंत्रता प्राप्त होगी। सो स्वीकार नहीं। और प्रथम पक्षमें अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी तथाहि ॥ द्वितीय अज्ञान का साक्षी के साथ जो संबंध है। तिसका उसी अज्ञान को यदि कारण माने तो आत्मा श्रय दोष होता है। और प्रथम अज्ञान को द्वितीय अज्ञान के संबंध का कारण मानने में अन्योऽन्या श्रय दोष है ॥ और तृतीय अज्ञान को द्वितीय अज्ञान के संबंध का कारण मानने से चक्र का दोष होता है ॥ और चतुर्थ अज्ञान को संबंध का कारण मानने से अनवस्था दोष की प्राप्ति स्पष्ट ही है ॥ शंका ॥ यह अनवस्था दोष के अर्थ नहीं ॥ क्योंकि अज्ञान परम्परा अनादि है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् अज्ञानों की परम्परालुप्त कसलिये मानते हो। यदि आवरण के अर्थ कहो तो वह एक अज्ञान से ही संभव हो सकता है ॥ अन्त अज्ञानों की धारा माननी निष्फल है। और यदि आत्मा के साथ अज्ञान का संबंध सिद्ध करने के अर्थ अज्ञानों की धारा मानो तो अपने कर ही अपना संबंध सिद्ध हो जायेगा ॥ जैसे “रूपी घटः” इस प्रतीति में गुण गुणी का समवाय भासता है ॥ और समवाय का भी अपने संबंधियों में संबंध भासता है ॥ वहां अपने संबंधियों के साथ स्वसंबंध का उपपादक आप ही वह समवाय है ॥ अपने से भिन्न स्व तथा घट के संबंध का उपपादक कोई अन्य समवाय नहीं माना ॥ क्योंकि अनेक समवाय मानने में गौरव है। तैसे अज्ञान तथा साक्षी के संबंध का उपपादक लाघवता से एक ही अज्ञान स्वीकारना युक्त है। अनेक अज्ञानों की परम्परा मानने में गौरव दोष है। या तो जिस धर्म से बिना जो नही संभवता तिस सर्व का आप ही अज्ञान कल्पक है। तथाहि ॥ साक्षी के साथ स्वसंबंध का तथा

अनादित्वकाकल्पकहै । औरअज्ञानकोसत्मानेहुए द्वैतकीप्राप्ति होगी । औरअसत्मानेहुए “अज्ञोहम्” यहतिसकीअपरोक्षप्रतीति नहींहोगी । यातेसत्अमत्सेविलक्षणअनिर्वचनीयत्वकाभीअपने विषयककल्पकहै । औरअज्ञानकोअभावरूपमानेहुए प्रपञ्चकीउपादानतानहींसंभवेगी । क्योंकियदिअभावकोभी उपादानतामानें तोकार्य मेंसत्बुद्धिनहींहोगी ॥ और“सन्घटःसन्पटः” ऐसेकार्यमेंभावरूपता प्रतीतहोतीहै । यातेउपादानताकीसिद्धिअर्थअपनेमेंभावत्वकाभीकल्पक है ॥ औरएकपदार्थमें विचित्रकार्यकेउत्पन्नकरनेकीसामर्थ्यकेअसंभवसे अपनेमें विचित्रशक्तित्वकाभीकल्पकहै ॥ “औरधर्मीकेभेदकल्पनासे धर्मकल्पनाश्रेष्ठहै । इसन्यायसेस्वविषयक एकत्वकाभी कल्पकहै ॥ औरअनादिहोनेपरभीतिसकीनिवृत्तिअर्थ ज्ञानकर निवृत्तियोग्यत्वका भीस्वमेंकल्पकहै । इसप्रकारपूर्वपक्षीद्वारा अज्ञानऔरतिसकास्वरूप कथनकरके अवसिद्धांती अज्ञानकेसाधकप्रमाणविषयक जोवादीका प्रश्नपक्षथा तिसकोनिरासकरताहै । हेवादिन् यदिपूर्वउक्तअज्ञानका स्वरूपसाक्षीकरसिद्धहुआ तोपुनःप्रमाणतिसमेंक्याकरेगा । क्योंकि सिद्धपदार्थमेंसाधनकी व्यर्थताहोतीहै । यातेअज्ञानकेस्वरूपविषयक प्रमाणप्रश्नव्यर्थहै ॥ शंका ॥ हेसिद्धांतिन् अज्ञानकास्वरूपसिद्ध करनेकेलियेहमप्रमाणकाप्रश्ननहींकरतेकिंतुअज्ञानविषयकअज्ञानकी निवृत्तिअर्थप्रमाणकाप्रश्नहै ॥ औरअज्ञानविषयक अज्ञानकीनिवृत्ति साक्षीसेकहो तोनहींसंभवती ॥ क्योंकिसाक्षीको तिसअज्ञानका साधकमानाहै । यातेप्रमाणप्रश्नसंभवताहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन् यदिअज्ञानविषयकअज्ञानहो तोतिसकीनिवृत्तिकेलिये प्रमाणकाप्रश्न

भीसंभवै परंतु अज्ञानविषयक अपरअज्ञानका अभाव है। अज्ञानको जड़ होनेसे स्वभावसे ही आवृत्त एकरूप है ॥ तिसमें द्वितीय अज्ञानका स्वीकार स्वर्थ है ॥ शंका ॥ जैसे लोकदृष्टिसे जड़घटमें भी प्रमाण की प्रवृत्ति होती है ॥ तैसे अज्ञानमें भी प्रमाण प्रवृत्त हो जायेगा ॥ समाधान ॥ हेवादि नष्ट की प्रमाणसे निवृत्ति नहीं होती ॥ इस कारणसे प्रमाणकर तिसका ज्ञान लोकदृष्टिसे हो। क्योंकि तिनका विरोध नहीं ॥ और अज्ञान का तो प्रमाणके साथ निवृत्त्यनिवर्त्तकलक्षण विरोध है। इसलिये प्रमाण की विषयता अज्ञानमें युक्त नहीं ॥ पूर्व उक्त प्रमाण तथा अज्ञानके विरोधको तमोदीपन्यायसे स्पष्ट करते हैं ।

❀ अज्ञानं ज्ञातुमिच्छेद्यो मानेनात्यंतमूढधीः ।

सतुनूनं तमः पश्येद्दीपेनोत्तमतेजसा ॥ १ ॥ ❀

अ० ॥ जो अति मूढ़ बुद्धिपुरुष प्रमाणसे अज्ञानको जानने की इच्छा करता है। वह मूढ़ निश्चयकर दीपकसे अन्धकारको देखने की इच्छा करता है । यद्यपि दीपक तथा तमका भी निवृत्त्यनिवर्त्तकभाव विरोध नहीं संभवता । क्योंकि मंद प्रकाशवाले दीपक युक्त मंदरमें प्रकाश तथा तम इन दोनों की एक ही प्रतीति होती है। तथापि उत्तम प्रकाशवाले दीपक युक्त मंदरमें अन्धकार नहीं स्थित हो सकता ॥ इसीको तमोदीपन्याय कहते हैं। याते अज्ञानके स्वरूपविषयक प्रमाण प्रश्न व्यर्थ है ॥ और अज्ञानके प्रश्न की अन्यथा अनुपपत्तिसे सिद्ध जो अज्ञान तिसमें “कथंता” अर्थ यह वह अज्ञान कैसे सिद्ध है यह कथन नहीं संभवता ॥ क्योंकि स्वअनुभव सिद्ध पदार्थमें कथंता नहीं संभवती ॥ शंका ॥ हे सिद्धांतिन् वही पदार्थ स्वीकार करने योग्य होता है जो अपने प्रयोजनका विरोधी न हो । और

अज्ञानको तो कर्तृत्वादि सर्वअनर्थकाहेतु होनेसे मुक्तिरूपप्रयोजनका विरोधिपना है । याते वह कैसे स्वीकार करने योग्य है ॥ और यदि ऐसे कहो कि वेदांतवाक्यजन्यज्ञानसे तिसकी निवृत्ति हो जायेगी । सो यह कथन भी नहीं संभवता । क्योंकि जिन पुरुषों ने वेदांतवाक्य श्रवण किये हैं तिनको भी पूर्वकी न्याई ही संसारकी प्रतीति देखने में आती है । याते स्वप्रयोजनका विरोधी अज्ञान स्वीकार करने योग्य नहीं ॥ समाधान । ' हे वादिन् कर्तृत्वादिसमूह अनर्थकी उत्पत्तिकाहेतु जो आत्माका अज्ञान है तिसको स्वअनुभवसे सिद्ध होनेकर तिसका स्वीकार तो अवश्य करने योग्य है । परन्तु तिसके स्वीकार करनेसे मुक्तिकी अनुपपत्ति नहीं होती । क्योंकि तत्त्वमस्यादि वाक्यजन्य अथ परोक्ष ब्रह्मात्माके साक्षात्कारसे अज्ञानके बाध हुए मुक्तिकी उपपत्ति है । यह तुम निश्चय करो ॥ इति ॥ ३१ ॥

❀ अथ पूर्वपक्षजिज्ञासा पूर्वक बाधशब्दका अर्थानिरूपण करनेके लिये अन्यमतोंकी रीतिसे बाधका स्वरूप तथा तिसके निराकरणका प्रकार ❀

बाधका क्या ? स्वरूप है । ऐसी जिज्ञासा के हुए नैयायिकमतके अनुसार बाधका स्वरूप प्रथम पूर्वपक्षी कथन करके तिसको दूषित करता है । तहां पूर्वप्रत्ययमें व्यधिकरणप्रकारकत्वका जो निश्चय है तिसको नैयायिक बाध कहते हैं । यहां "इदं रजतम्" यह पूर्वप्रत्यय पुरोवर्ति शुक्तिविषय कहै । तथा रजतत्वप्रकार कहै । तिसप्रत्ययके प्रकारका इदंताके साथ व्यधिकरण है । अर्थ यह कि इदंताके अधिकरणसे भिन्न अधिकरणवाला प्रकार इसप्रत्यय निष्ठ है । तिसविषयक जो निश्चय किये इसी प्रकार है तिसको बाध कहते हैं । तात्पर्य यह "इदं रजतम्" इस प्रथमज्ञाननिष्ठ भ्रमत्वनिश्चयको बाध कहते हैं । ऐसा

बाधकास्वरूपयदिसिद्धांतीमाने । तोअपसिद्धांतहोगा। क्योंकिभ्रमस्थ
लमेंसिद्धांती नेअन्यथाख्यातिनहींमानी। जिसकारणसेअन्यथाख्याति
वादीकेमतमेंपुरोवर्तिशुक्तिमेंरजतहैनहीं। किंतुसादृश्यादिदोषसेउद्बुद्ध
संस्कारसेउपस्थितहुएरजतरूपकरपुरोवर्तिशुक्तिकाहीमानहोताहै। याते
“इंदरजतम्” यहजोपूर्वज्ञानहै। तिसकोभ्रमपनायुक्तहै। क्योंकिविषयरूप
रजतकाशुक्तिदेशमेंअभावहै। तिसकारणसेतिसज्ञानविषयक भ्रमत्वका
जोनिश्चयसोबाधहै। परन्तुयहबाधकास्वरूप नेयायिकोंके मतमेंही
संभवताहै । वेदांतमतमेंनहीं । क्योंकिआपकेमतमें तोपुरोवर्तिशुक्ति
मेंमिथ्यारजतकीउत्पत्तिहोनेकर इदंताकेसाथ प्रकारकीव्यधिकरणता
नहींहै। अर्थात्इदंताकाअधिकरणही रजतत्वकाअधिकरणहै । याते
पूर्वउक्तबाधकास्वरूपमानेहुएअपसिद्धांतहोगा ॥ किंवा ॥ पूर्वज्ञानमें
भ्रमत्वकाजोनिश्चयहै। वहअधिष्ठानकेअज्ञानकोबाधकरताहै। वानहीं ।
प्रथमपक्षतोनोंसंभवता। क्योंकिदोनोंकाविषय भिन्नभिन्नहै। अर्थात्
अज्ञानतोशुक्तिविषयकहै। औरबाधपूर्वज्ञाननिष्ठ भ्रमपनेकोविषयकरता
है। औरभिन्नभिन्नविषयविषयक ज्ञानतथाअज्ञानकानिवृत्त्यनिवर्तकभाव
नहींसंभवता ॥ अन्यथाअतिप्रसंगहोगा । अर्थात्घटके ज्ञानसेपट
काअज्ञानभीनिवृत्त हुआचाहिये ॥ औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता ।
क्योंकिसंसारकेमूलभूतअज्ञानका बाधनहोनेसेतिसकीव्यर्थताहै। अब
विवरणकारकीरीतिसेबाधकास्वरूपआगेकहकरतिसकोवादीदूषितकरता
हैऔरकोईएकवेदांती कार्यसहितअज्ञानकीनिवृत्तिकानामबाधकहतेहैं
सोभीसमीचीननहीं । क्योंकिकार्यकीनिवृत्तिका नामबाधहै। अथवा
कारणरूपअज्ञानकी निवृत्तिकानामबाधहै ॥ अथवादोनोंकीनिवृत्ति

कानामबाधहै । यहविचारकर्तव्यहै । इनमेंप्रथमऔरद्वितीयहदोनों पक्षतोअव्याप्तिदोषकी प्राप्तिहोनेसे नहींसंभवते । क्योंकिकार्यनिवृत्ति मेंसविलासअज्ञानकीनिवृत्तिरूप बाधकालक्षणनहींप्राप्तहोता । तैसे अज्ञानकीनिवृत्तिमात्रमेंभी पूर्वउक्तबाधकेलक्षणकीप्राप्तिनहीं । और अव्याप्तिदोषकीप्राप्तिसेही तृतीयपक्षभीअसंगतहै॥ क्योंकिएकएक कीनिवृत्तिमें उभयनिवृत्तिरूपताका अभावहै॥ प्रतियोगीकेभेदसेही अभावकाभेदहोताहै । यातैउभयनिवृत्तिकोभी बाधरूपतानहीं संभवती ॥ शंका ॥ कार्याकारपरिणामकोप्राप्तहुए अज्ञानकी निवृत्तिकानामहीबाधहै।ऐसेमानेहुए अव्याप्तिदोषनहीं प्राप्तहोता । क्योंकियहलक्षणसर्वत्र अनुगतहै ॥ समाधान ॥ तैसेमानेहुएभी यहविचारकरनेयोग्यहै। निवृत्तिमेंप्रतियोगिरूप कार्याकारपरिणामको प्राप्तहुआजोअज्ञानहै सोनिवृत्तिकाविशेषणहै। अथवाउपलक्षणहै । प्रथमपक्षतोनोंसंभवता ॥ क्योंकिविशिष्टवृत्तिधर्मकोविशेषणमें वर्तनेकानियमहै। इमन्यासेविशेषणरूप अज्ञानमेंभी बाधपनेकीप्राप्ति होगी।औरयदिद्वितीयपक्षकहो तोअभावमेंउपलक्षणरूप अज्ञानका कियाहुआकोईनिश्चयाकर्धर्म नहींप्रतीतहोता । यातेनिवृत्तिमात्र कानामबाधहोगा । तिसमेंभीयहविचारणीयहै । क्या?यहनिवृत्तिरूप बाधध्वंसप्राप्तकानामहै।अथवाज्ञानसाध्यध्वंसकानामबाधहै । अथवा पदार्थांतरकानामहै । अर्थयह वहनिवृत्तिरूपबाधसत्स्वरूपनहीं तथा असत्स्वरूपभीनहीं।औरसत् असत्उभयरूपभीनहीं । औरअनिर्वचनीय रूपभीनहीं । किंतुपंचमप्रकाररूप पदार्थांतरहै । अथवाअत्मस्वरूप हीनिवृत्तिहै । इनमेंप्रथमपक्षनहींसंभवता ॥ क्योंकिमुद्रादिकोंके

परिहारसे उत्पन्नहुआ जोघटादिध्वंस तिसमेंबाधव्यवहार नहींहोता॥
 औरद्वितीयपक्षभी असंगतहै। क्योंकिउत्तरज्ञानसे सिद्धहोनेयोग्यजो
 पूर्वज्ञानकाध्वंसहै तिसमेंभीबाधव्यवहार हुआचाहिये। जिसकारणसे
 वहध्वंसज्ञानसाध्यहै ॥शंका ॥ पूर्वज्ञानकेध्वंसप्रति उत्तरज्ञानकोज्ञान
 त्वरूपतासे कारणतानहीं। किंतुक्षणिकविशेषगुणत्वरूपतासे कारण
 ताहै। यातेतिसमेंबाधकेलक्षणकी अतिव्याप्तिनहींहोती ॥ समाधान॥
 यद्यपिपूर्वउक्तरीतिसेउत्तरज्ञानसाध्य पूर्वज्ञानकेध्वंसमेंबाधकेलक्षणकी
 अतिव्याप्तिनहींहै। तथापिज्ञानमात्रकेध्वंसमेंतोअतिव्याप्तिनिवारणकरनी
 कठिनहै। क्योंकिज्ञानकाध्वंसज्ञानमात्रकरसाध्यहै। औरतृतीयमक्षभीनहीं
 संभवता। क्योंकिवहपदार्थांतरनिवृत्तहोताहै। वानहीं। यहविचारणीयहै
 प्रथमपक्षतोनोंसंभवता। क्योंकिवहपदार्थांतरध्वंसकरव्याप्तनहीं। और
 द्वितीयपक्षभीअसंगतहै। क्योंकिपदार्थांतरके अनिवृत्तहुएअद्वैतकी
 हानिहोगी ॥ शंका ॥ अद्वैतकीहानितबहो जबपदार्थांतरसतहो
 यातेद्वितीयसत्कायभावहोनेसेअद्वैतकीहानिनहींहोती ॥समाधान॥
 तिसपदार्थांतरकोअनिर्वचनीयसे विलक्षणहोनेकरतथाअसत्से विल
 क्षणहोनेकरआत्माकीन्याईसत्स्वरूपताकासंभवहै। तिससेपदार्थांतर
 केस्थितहुए कैसेअद्वैतकीहानिनहींहोगी किंतुअवश्यहोगी। याते
 तृतीयपक्षभीअसंगतहै। औरचतुर्थपक्षभी नहींसंभवता। क्योंकि
 तिसआत्मस्वरूपनिवृत्तिकोनित्यसिद्धहोनेकर ज्ञानकोव्यर्थताकीप्राप्ति
 होगी ॥ शंका ॥ आत्माकास्वरूपमात्रही निवृत्तिनहीं किंतुवृत्तिउप
 लक्षितआत्मानिवृत्तिरूपहै। यातेज्ञानकोव्यर्थतानहीं ॥समाधान ॥
 जैसेगृहमेंकाकरूपउपलक्षणजन्यउत्पत्त्यादिरूपधर्मगृहकानिश्चायक

है। तैसे वृत्तिरूप उपलक्षणजन्य आत्मा के निश्चायक धर्म का आत्मा में अभाव है इसीसे वृत्तिको उपलक्षण पनाना नहीं संभवता ॥ पूर्व कथन का प्रकरण में उप योग कथन करता हुआ वादी बाध के निराकरण को समाप्त करता है । पूर्व उक्त प्रकार से बाध का स्वरूप कथन करने को अयोग्य है ॥ याते अज्ञान तत्कार्य के बाध से मोक्ष सिद्ध होता है । यह कथन नहीं संभवता ॥ इति ॥

✽ अथ सिद्धांतरीति से बाध का स्वरूप निरूपण ॥ ✽

भ्रम से प्रसिद्ध पदार्थ के अधिष्ठान में अध्यस्त पदार्थ तीन काल में नहीं इस प्रकार का बोध जो अधिष्ठान के साक्षात्कार से अनन्तर होता है । तिसको बाध कहते हैं ॥ इस प्रकार का उत्तर सिद्धांती निरूपण करता है ॥ समाधान ॥

✽ मू० ॥ साक्षात्कृते त्वधिष्ठाने समनन्तर निश्चितिः । अध्यस्यमानं नास्तीति बाध इत्युच्यते बुधैः ॥ ४० ॥ ✽
मोहन का छंद—साक्षात् आधार भणज वही । पाछे हुई जो निश्चोस वही ॥ मिथ्यानहि तीनहु काल अहं । धीमान सवीतहि बाध कहे ॥ ३५ ॥

टी० ॥ अधिष्ठान के साक्षात्कार हुए तदनंतर जो यह निश्चय उत्पन्न होता है कि अध्यस्त पदार्थ तीनों काल में अधिष्ठान में नहीं । इस त्रैकालिक अत्यंता अभाव के निश्चय को ही बुद्धिमानों ने बाध कहा है । अब इसी अर्थ को विस्तार पूर्वक निरूपण करते हैं ॥ जैसे शुद्ध शक्ति तथा रज्जु रूप अधिष्ठान में रजत तथा सर्प रूप विपरीत अर्थ को कल्पना करके प्रवृत्त हुए पुरुष को तथा निवृत्त हुए पुरुष को जो अधिष्ठान को विषय करने वाला ज्ञान बाध का जनक परोक्ष रूप अथवा अपरोक्ष रूप उत्पन्न होता है । यहां यह अर्थ जान लेना । जहां परोक्ष भ्रम होत हां परोक्ष अधिष्ठान का ज्ञान

उत्पन्नहोताहै। औरजहांअपरोक्षभ्रमहोतहांअपरोक्षअधिष्ठानकाज्ञान
उत्पन्नहोताहै।तिसअधिष्ठानकेसाक्षात्कारसेअनन्तस्यहअध्यस्तरजतादि
इसशुक्त्यादिरूप अधिष्ठानमें कालत्रयमेंभी नहींहैं इसप्रकारका जो
निश्चय वहीबाधकहाजाताहै। यहसर्वलोकोमें प्रसिद्धहै। तैसे
अधिकारिपुरुषको "मैब्रह्महूं"इसप्रकारकाअधिष्ठानकासाक्षात्कारहोने
सेअनन्तर अज्ञानतत्कार्यरूप अध्यस्तपदार्थ मुक्त्रह्यात्मामेंतीनकाल
मेंभीनहीं हैं। इसीनिश्चयको बुद्धिमानबाधकहतेहैं। यहविद्वानोंके
अनुभवसिद्धहै। यातेअज्ञानतत्कार्यका बाधसंभवताहै ॥ शंका ॥
हेसिद्धांतिन् बाधकाविषयजोवाध्य वहअनिर्वचनीयहै यहआपका
मतहै ॥ सोयहबाधकीविषयतापूर्वउक्त अन्यथाख्यातिवादीके
मतमेंकांताकरादिगत सत्यरजतमेंभीप्राप्तहै। जिसकारणसेवहरजत
भीकालत्रयमें पुरोवर्त्तिशुक्तिके खंडमेंनहीं। इसप्रकारके निश्चयका
विषयहै ॥ यातेपूर्वउक्तबाधकालक्षणदुष्टहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्
अन्यथाख्यातिवादीकेमतमें भ्रमकाविषयजोरजतादिहैं वहकांता
करादिस्थलमेंसत्यहैं। औरहमारेमतमें तोजिसअधिष्ठानमें वहरजता
दियध्यस्तहैंतहांही वहअधिष्ठानरूपताकरसतहैं स्वतंत्ररूपताकर
कहींभीसत्नहीं यातेअधिष्ठानसेभिन्नरूपताकर त्रैकालिक तिनका
अभावहै। यहविलक्षणताउनकेमतसे हमारेमतमेंहै। यातेपूर्वउक्त
बाधकालक्षणनिर्दोषहै ॥ औरअध्यस्तपदार्थका त्रैकालिकअभावहै
इसनिश्चयकोबाधरूपता मानेहुए ॥

❀ प्रतिपन्नोपाधौ त्रैकालिक निषेधप्रतियोगित्वं
अनिर्वचनीयत्वम् ।❀

अ०॥ भ्रमसिद्धपदार्थके अधिष्ठानमें अध्यस्तको त्रैकालिकनिषेध की जो प्रतियोगिता है । यही अनिर्वचनीयता है ॥ ऐसा अनिर्वचनीय कालक्षण जो संप्रदायके जानने वालों ने कहा है ॥ वह भी समीचीनता को प्राप्त होता है ॥ शंका ॥ अध्यस्तपदार्थको अधिष्ठानके साक्षात्कार से अनंतर निषेधका प्रतियोगी हुआ भी वर्तमानकालमें औभूतकालमें विद्यमान होनेसे त्रैकालिकनिषेधप्रतियोगित्वको अनिर्वचनीयत्व है यह अनिर्वचनीय कालक्षण असंभवदोषवाला है क्योंकि लक्ष्यमात्रमें वृत्ति नहीं ॥ समाधान ॥ हेवादिन् अध्यस्तपदार्थ जैसे बाधसे उत्तर कालमें असत् है । तैसे बाधसे पूर्वभी वह असत् है ॥ याते लक्षण असंभवदोषवाला नहीं इसवास्ते तुमको अनिर्वचनीय का ज्ञान नहीं है । क्योंकि कदाचित्क होनेवाले पदार्थको अनिर्वचनीय नहीं कहते जिस कारणसे यह लक्षण अतिव्याप्तिदोषवाला है । यद्यपि वेदांतसिद्धांतमें घटादिपदार्थभी अनिर्वचनीय ही हैं । यातेतिनमें अतिव्याप्ति नहीं । तथापि अन्यवादियोंका इस अर्थमें विवाद होनेकर प्रतिवादियोंको अभिमतमतघटादिकोंमें पूर्वउक्तलक्षणकी अतिव्याप्ति है ॥ औस्यदिघटादिकोंकी व्यावृत्तिअर्थ ऐसा लक्षण करो कि

आविद्यकत्वे सति कादाचित्कत्वं अनिर्वचनीयत्वं ।

अ० ॥ आविद्यक हुआ जो कादाचित्क सत्तावाला हो वह अनिर्वचनीय है । सो यह लक्षण भी नहीं संभवता ॥ तथाहि ॥ शुक्तिरजतमें आविद्यकत्व क्या है ? यह विचारकर्तव्य है । तहां कारणमात्रसे जो उत्पन्न हो तिसको आविद्यक कहते हो । अथवा ज्ञानकर बाधके योग्यको आविद्यक कहते हो । प्रथमपक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि अविद्याशब्द

सेकारणकाग्रहणकियाहै। तैसेमानेहुएजोकारणसेजन्यहुआकादाचित्क हो वहअनिर्वचनीयहै। यहलक्षणकाअर्थसिद्धहोगा। तिसकारणसे पुनःघटादिकोंमें। अतिव्याप्तिपूर्वकीन्याईहीस्थितहै। क्योंकिघटादिभी कारणजन्यहुए कादाचित्कहैं। परन्तुवहअनिर्वचनीयनहीं। और द्वितीयपक्षभीनहींसंभवता। क्योंकिसत्पदार्थमेंनास्तित्वकाज्ञान असंभवहै। तात्पर्ययहज्ञानकरनिवृत्तिकेयोग्यकोहीज्ञानकरवाध्यताहै। सोसत् पदार्थमेंनहींसंभवती। अन्यथासत्आत्माकीभी ज्ञानकरनिवृत्तिहुईचा हिये। तिसीकारणसे ज्ञानवाध्यत्वकीअन्यथाऽनुपपत्तिसे वर्तमानतथा अतीतकालमेंभी अध्यस्तपदार्थस्वरूपसेहीअसत्है। इसप्रकारअधिष्ठानमेंत्रैकालिकनिषेधकाजोप्रतियोगिपनाहै यहीअनिर्वचनीयपनाहै यहलक्षणनिर्दोषहै ॥ इति ॥ शंका ॥ बाधरूपनिश्चयक्या? आत्म स्वरूपहै अथवाआत्मासेभिन्नहै। प्रथमपक्षमानो तोकिसीकोभीसंसार कादर्शननहींहोगा। क्योंकिआत्मस्वरूपबाधकोस्वतःसिद्धहोनेकरभ्रम सिद्धपदार्थकाकिसीकोभी भाननहींसंभवेगा। औरद्वितीयपक्षमेंभी यहविचारकर्तव्यहै। क्या? वहबाध आत्मासेभिन्न बाधकेयोग्यहै अथवा आत्माकीन्याईसत्वरूपहै ॥ यदि प्रथमपक्षकहो तोतिसमेंभी यह विचारकर्तव्य है अपनाबाधआपही है अथवावांतरहै। प्रथम पक्षमें तोआत्माश्रयदोषस्पष्टहै। औरद्वितीयपक्षमेंअन्योऽन्याश्रयादि दोषोंकीप्राप्तिहोगी। यातेआत्मासेभिन्नवहबाध बाधकेयोग्यहै। यह प्रथमपक्षनहींसंभवता। औरआत्मासेभिन्न वहबाधसत्है। यदियह द्वितीयपक्षकहो तोअद्वैतसिद्धांतकी हानिहोगी। इसलिये “सकल कार्यकारणरूपजगत्ब्रह्मात्मामेंनहींहै” इत्याकारकबाधरूपनिश्चयका

कोईअन्यबाधअवश्य अन्वेषणकरनेयोग्यहै॥तैसेमानेहुए अनवस्था
दि दोषप्राप्तहोंगे।यातेपूर्वउक्तबाधकास्वरूप नहींसंभवता॥ समाधान॥
हेवादिब्रह्मसे भिन्नसकलअनात्माका जोबाधरूपनिश्चयहै।तिसको
अपनेअन्तर्भावरूपताकरहीबाधपनाहै अर्थयहब्रह्ममेंकल्पितसर्वअज्ञान
तत्कार्य तीनोंकालमेंनहींहै इसनिश्चयकेदोरूपहैं ॥ एकबाधरूपहै
औरदूसराकल्पितरूपहै॥इसप्रकारअध्यस्तरूपतासे तिसकोस्वविषयत्व
है।औरबाधरूपतासेतिसकोविषयिपनाहै ॥ यातेआत्माश्रयदोषकी
प्राप्तिनहींहोती॥औरतैसेमानेहुए अद्वैतकीभीहानिनहींहोती॥क्योंकि
आत्मासेभिन्नकोईवस्तुनहीं ॥ यातेपूर्वउक्तबाधकास्वरूपसंभवताहै ॥
इति ॥ शंका ॥ बाधकेयोग्यजोप्रपंचहै वहब्रह्मसेभिन्नसत्है। अथवा
असत्है ॥ प्रथमपक्षकहो तोआत्माकीन्याईतिसकीनिवृत्तिनहींहोगी
क्योंकिसत्पदार्थकाअभावसकलप्रमाणसेविरुद्धहै ॥ औरद्वितीयपक्ष
कहो तोतिसअसत्जगत्केअभावका उद्देशकरके ज्ञानादिकसाधनों में
कोईभीपुरुषप्रवृत्तनहींहोगा॥क्योंकिअसत्काअभावस्वतःसिद्धहै और

❀ परस्परविरोधेनप्रकारांतरस्थितिः ❀

इसन्यायसेसत्असत्सेविलक्षणकोईअन्यप्रकारभीनहींसंभवता
॥ समाधान ॥ हेवादिन्द्नविकल्पोकायहांअवकाशनहीं ॥ क्योंकि
(सतोपिजनिर्नच) इत्यादिकारिकेव्याख्यानमें इनविकल्पोका
परिहारअनेकवारकरआएहैं। भावयह कियहदृश्यमानजगत्प्रथमसत्
रूपतोहैनहीं।क्योंकि “नेतिनेति” इत्यादिश्रुतियोंने तिसकाबाधकहा
है। औरयहजगत्असत्भीनहीं क्योंकिअपरोक्षभानहोताहै॥ तिसी
कारणसेप्रतीतिऔरबाधकीअन्यप्रकारसेअनुपपत्तिहोनेकरब्रह्मसेभिन्न

सकल अनात्मप्रपंचसत्त्वसत्त्वसेविलक्षण अनिर्वचनीयस्वरूप है ॥ और श्रुतिका विरोध होने पर पूर्व उक्त न्याय को आभासरूपता है ॥ याते पूर्व उक्त तुम्हारे विकल्प यहां नहीं प्राप्त हो सकते ॥ इति ॥

❀ अथ पूर्वपक्ष ॥ संक्षेप से अन्य ख्यातियों के स्वरूप प्रदर्शन पूर्वक अनिर्वचनीय ख्यातिका खंडन ❀

हे सिद्धांतिन्य भेदव्यवहार का संपादक तथा स्मृतिज्ञान से जिसका भेद ग्रहण नहीं हुआ ऐसा जो “इंदरजतम्” यह सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान है। वही भ्रमरूपता से कथन किया जाता है ॥ तिस भ्रम का विषय रजत अनिर्वचनीय नहीं। क्योंकि सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय पुरोवर्तिशुक्तिका जो इदमंश है वह सत् है। तथा स्मृतिज्ञान का विषय जो देशांतर में स्थित रजत वह भी सत् है ॥ और तैसे ही “नेदंरजतम्” यह बाधज्ञान भी अभेदव्यवहार मात्र का ही बाध करता है ॥ कोई भ्रम के विषय का त्रैकालिक अभाव नहीं बोधन करता ॥ इस प्रकार अख्यातिवादी मानते हैं ॥ याते अनिर्वचनीय का बाध होता है यह आपकैसे कथन करते हो ॥ और आत्मख्यातिवादी भी रजत को अनिर्वचनीय नहीं कहते। किंतु इंद्रिय के संबंध से विनारजत का प्रत्यक्ष होता है। याते बुद्धिरूपता कर अंतरस्थित जो रजत है तिसकी बाह्य रूपता से जो प्रतीति है इसी को भ्रम कहते हैं। और “नेदंरजतम्” यह बाधज्ञान भी रजत के अस्तित्व को नहीं बोधन करता ॥ किंतु तिस बुद्धिरूप रजत में इदंता का दूसरा नाम जो बाह्यपना है तिसका निषेध करता है। क्योंकि रजतरूप धर्म के निषेध की अपेक्षा से बाह्यता रूप धर्म मात्र के निषेध में लाघव है। इस प्रकार आत्मख्यातिवादी बाध कहते हैं ॥ और अनादि वासना से भ्रमकाल में अस्तु रजत भासता है ऐसे कथन करने वाले अस्त

ख्यातिवादी भी अनिर्वचनीय रजत नहीं मानते। किंतु निःस्वरूप असत् ही रजत असत् प्रकाश की सामर्थ्य वाले ज्ञान से भासता है। और इसी कारण से “नेदं रजतम्” यह वाध भी रजत के असत्त्व को ही बोधन करता है। इस प्रकार पूर्वोक्तरीति से ब्रह्म से भिन्न सर्व जगत् अनिर्वचनीय है। यह सिद्धांती का कथन ही अनिर्वचनीय है अर्थात् नहीं संभवता ॥ इति ॥

✽ अख्यातिवादादिकों के खंडन पूर्वक अनिर्वचनीय

ख्यातिका स्थापन तथा वाध का उपसंहार । ✽

समाधान ॥ हेवादिन् अख्यातिवादादिक तीन मतों में भ्रम तथा वाध की व्यवस्था नहीं संभवती यह अन्यथा ख्यातिवादी ने पूर्व निरूपण किया है। इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं ॥ अख्यातिवाद में प्रथम सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान ही स्मृति से अग्रहीत भेदवाला हुआ वाध के योग्य अभेद व्यवहार का संपादक होने पर भ्रम कहा जाता है। सो नहीं संभवता क्योंकि सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान तथा स्मृति ज्ञान यह दोनों भान होते हैं वानहीं। यदि अन्त्य पक्ष कहो तो दोनों नहीं होंगे। क्योंकि तुम्हारे मत में ज्ञान को स्वप्रकाश होने पर अमानकाल में स्वरूप भाव का नियम है। अर्थात् जब वह भान नहीं होते तो वह स्वरूप से भी नहीं होंगे ॥ और यदि प्रथम पक्ष कहो तो तिनके भेद का अग्रहण कैसे होगा। क्योंकि भेद तो तिनका स्वरूप ही है। स्वरूप भानकाल में तिनका भेद अवश्य ही ग्रहण हो जायेगा। इसी कारण से तिस ज्ञान को अभेद व्यवहार का आपादक पना नहीं संभवता तिसी से तिस ज्ञान में भ्रमरूपता का स्थापन भी नहीं संभवता। और तैसे ही जो पूर्व वाध की व्यवस्था की थी वह भी नहीं संभवती। क्योंकि जहां वीतराग पुरुष को व्यवहार ही नहीं उदय होता तहां “नेदं रजतम्”

इसज्ञानकोबाधकपनाही नहींहोगा । यातेअख्यातिवादमें भ्रमतथा
 बाधकीव्यवस्थाकाअसंभवहै । औरआत्मख्यातिवादमेंभी यहविचार
 कर्तव्यहै॥क्या?ज्ञानाकारताबाह्यपदार्थमेंअध्यस्तहै।अथवाज्ञानस्वरूप
 रजतमें बाह्यताअध्यस्तहै ॥ प्रथमपक्षतोनहींसंभवता क्योंकिक्षणिक
 विज्ञानवादी बाधकेमतमें बाह्यपदार्थअस्तीकहै । तिसकोअसत्
 होनेकर अधिष्ठानताकाअसंभवहै । औरयदिअसत्कोहीअधिष्ठान
 मानलेंतो “इदंरजतमसत्” यहभ्रमकाआकारहुआचाहिये क्योंकि
 अध्यस्तपदार्थअधिष्ठानसे अन्वितहीप्रतीतहोताहै ॥ शंका ॥ सत्
 रजतहै ऐसीप्रतीतिका अभावहोनेसे असत्हीरजत क्योंनहो ॥
 समाधान॥ हेवादिनृजवतुमरजतको असत्मानोगे तोरजतार्थीपुरुष
 कीप्रवृत्तिनहींहोगी । क्योंकिवहरजतनिःस्वरूपहै ॥ औरयदिरजत
 में बाह्यताकाआरोपहै । यहद्वितीयपक्षकहो तोयहभीनहींसंभवता ॥
 क्योंकितिसबाह्यताकोभी असत्होनेकर तिसकोविषय करनेवालेज्ञान
 निष्ठअपरोक्षता नहींहोगी ॥ औरअसत्ख्यातिवादभी तुम्हारेमत
 मेंप्राप्तहोगा । औररजतअन्तरविज्ञानस्वरूपहै इसमें प्रमाणकाभी
 अभावहै । औरयदिऐसेकहोकि “नेदंरजतम्” यहबाधरूपप्रत्ययही
 लाघवसहकृतहुआ रजतकीबाह्यताका निषेधकरके अर्थसेतिसकी
 अन्तररूपताअर्थात् विज्ञानरूपताकोबोधनकरताहै ॥ यातेरजतकी
 बुद्धिरूपतामें यहबाधप्रत्ययही प्रमाणहै । सोयहकथन भीसमी
 चीननहीं । क्योंकि “इदंता” नामसमीपताकाहै ॥ वहजवरजत
 मेंनिषेधकीगई तोरजतमें असमीपताही प्राप्तहोगी । तिस
 असन्निहित रजतको अतिसन्निहित विज्ञानरूपतातो कबहो

सकती है ॥ और इन्द्रिय संबंधसे विनाही तिस रजतको प्रत्यक्ष होनेकर तिसको विज्ञानरूपता है । यह कथन भी नहीं संभवता । क्योंकि दोषके वशसे देशांतरवर्ति रजतका ही इंद्रियके साथ संबंध संभवता है । याते “इंद्रिय संबंधसे विना” यह प्रत्यक्षका विशेषण असिद्ध है । और यह जो आत्म ख्यातिवादीने कहा था कि “नेदं रजतम्” यह बाध प्रत्ययरजतमें बाध तारूप इदंताको निषेध करता है रजतको निषेध नहीं करता ॥ सो यह तिसका कथन भी समीचीन नहीं । क्योंकि बाध प्रत्यय इदंतातथारजत इन दोनों को नहीं निषेध करता किंतु इदंता और रजतके तादात्म्यको निषेध करता है तिस तादात्म्यके निषेध किये हुए इदंताको तो पुरोवर्तिमें वह बाध प्रत्यय स्थापन करता है । और रजतको अथवा रजतत्वको देशांतरमें अथवा रजतमें स्थापन करता है याने आत्म ख्यातिवादीके मतमें अमत्तथा बाधकी व्यवस्थानहीं संभवती । और असत् ख्यातिवादमें जो यह कहा था कि असत्के प्रकाशनमें समर्थ ज्ञान असत् रजतको ही प्रकाश करता है सो यह कथन भी नहीं संभवता । क्योंकि असत्की अपरोक्ष प्रतीति नहीं संभवती । और ज्ञान किस अर्थके प्रकाशनमें समर्थ है ऐसा प्रश्न करनेसे सामर्थ्यको विषय की अपेक्षा है ॥ और वह असत् विषय कार्य है अथवा ज्ञाप्य है ऐसे विकल्पों को नहीं सहन करता । तात्पर्य यह असत् विषयको यदि ज्ञानका कार्य मानें तो असत् वंध्यापुत्रकी भी ज्ञानसे उत्पत्ति हुई चाहिये क्योंकि ज्ञानमें असत् वस्तुके उत्पादनका सामर्थ्य है । और यदि असत् विषयको ज्ञाप्य मानें तो असत् वंध्यापुत्रका भी ज्ञानसे प्रकाश हुआ चाहिये । इत्यादि विकल्पोंके न सहन करनेसे असत् ख्यातिवाद भी असंगत है । यद्यपि “नेदं रजतम्” यह बाध प्रत्ययरजतके असत्पनेको ही बोधन करता है तथापि पूर्व आत्म

ख्यातिवादके निराकरणमें अन्यथाख्यातिवादीके मतानुसारतिसबाधप्रत्ययका परिहारकराएँ हैं। अर्थात् बाधज्ञान इदंतातथारजतके तादात्म्यको निषेध करता है, रजतके असत्त्वको वहनहीं बोधन करता। तिसकारणसे भ्रमस्थलमें और कोई ख्याति नहीं संभवती। याते ब्रह्मसे भिन्न सकल जगत् अनिर्वचनीय है ॥ यह अर्थ सिद्ध हुआ ॥ शंका ॥ यदि अन्यथाख्यातिवादीने अन्यख्यातियोंका निराकरण किया तिसमें आपको क्या लाभ होगा उलटा अन्यथाख्यातिवादलुमने स्वीकार कर लिया ॥ समाधान ॥ हेवादिन् अन्यथाख्यातिवादीकी रीतिसे इतरख्यातियोंका निराकरण सिद्ध होनेकर पुनः तिनका निराकरण करना युक्त नहीं। और साक्षात् आत्मविचारका भी तिनके निराकरणमें अभाव होनेकर तिनके निषेधमें यत्न नहीं किया। और अन्यथाख्यातिवादका भी स्वीकार नहीं किया। क्योंकि पूर्व तिसका भी निषेध कर आएँ हैं। इस प्रकार अधिष्ठानके साक्षात्कारसे अनंतर अनिर्वचनीयपदार्थका त्रैकालिक अत्यन्ताभाव निश्चय बाध है। यह अर्थ सर्वदोषरहित सिद्ध हुआ ॥ इसी अर्थको सुरेश्वराचार्यों के वचनसे दृढ़ करते हैं ॥

❀ तत्त्वमस्यादि वाक्योत्थसम्यग्धीजन्ममात्रतः ।

अविद्यासहकार्येण नासीदस्ति भविष्यति ॥१॥❀

अ० ॥ तत्त्वमस्यादि महावाक्यसे उत्पन्न हुआ जो हृद् अपरोक्ष बोध है तिसकी उत्पत्ति मात्रसे ही कार्यके सहित अविद्या न पूर्वधी और न अब है और न आगे होगी। इस श्लोकमें “नासीत्” इस कथनसे अधिष्ठानके साक्षात्कारसे अनंतर जगत्का त्रैकालिक अत्यन्ताभाव ही प्रतीत होता है। याते त्रैकालिक अत्यन्ताभावकी प्रतीति ही बाध है। अविद्या

कीनिवृत्तिबाधनहीं ॥ इति ॥ (४०) अबइसीअर्थको दृढकरनेकेलिये पूर्वपक्षनिरूपण करतेहैं ॥

✽ अथपूर्वपक्ष ✽ विद्याऔअविद्याके विरोध
का असंभवनिरूपण ॥ ✽

हेसिद्धांतिन् अधिष्ठानके साक्षात्कारकोअविद्याकाबाधकपना आपकैसेकहतेहो। औरयदि तिनकाविरोधहोनेसे विद्याकोअविद्याकी बाधकताआपकहोतोचहकौनविरोधहेतिसकोआपनिरूपणकरो। इसी अर्थकोपूर्वपक्षीविकल्पोंद्वारा स्पष्टकरताहै। क्याविद्यातथाअविद्या काजोएककालमें अनवस्थितपनाहै यहही तिनका परस्परविरोधहै। अथवाएकदेशमें अनवस्थितपनारूपविरोधहै। अथवाव्यघातक भावविरोधहै अथवाभावाभावरूपविरोधहै। इनमेंप्रथमपक्षतोनोंहीं संभवता। क्योंकिपूर्वकालमें होनेवालीअविद्याकेसाथ विद्याकी एक कालमें अवस्थिति है ॥ शंका ॥ “ पूर्वभावित्व ” यह विशेषण पदार्थोंके एककालमें अवस्थानका साधकनहीं। क्योंकि घटसेपूर्वकालमें होनेवालाजोघटप्रागभावहै तिसकेसाथएककालमें घटकीअवस्थितिनहींहै ॥ समाधान ॥ घटकोप्रागभावकीनिवृत्ति रूपताहोनेसेतिनकीएककालमेंस्थितिनहींसंभवती। क्योंकिप्रतियोगीऔ तिसका प्रागभाव एककालमेंनहीं रहसकते॥ औरअविद्याकीनिवृत्ति तोविद्याजन्यहै यातेअविद्याकीनिवृत्तिकोविद्यासे उत्तरकालमेंहोनेकर विद्यातथाअविद्याकी एककालमें अवस्थिति यहिहारकरनेयोग्यही नहीं ॥ शंका ॥ विद्या अविद्याकोक्योंनिवृत्तकरेगी क्योंकितिसको प्रमेयकाप्रकाशकहोनेकर अविद्याकीनिवृत्तिसे विनाहीतिसकीसफल

ताहै॥ समाधान ॥ विद्यासे यदिअविद्याकीनिवृत्तिनहीं मानेगे तो विद्याकोव्यर्थापत्तिहोगी।क्योंकिप्रमेयकोस्वप्रकाशहोनेकरतिसकाप्रकाश विद्यासेनहींसंभवता।यातेविद्यातथाअविद्याकाएक कालमेंसहअन वस्थानरूपविरोधनहींसंभवता।औरद्वितीयपक्षभीअसंगतहै।क्योंकिभिन्न भिन्नअधिकरणमें स्थितविद्यातथाअविद्याके विरोधकाअभावहै॥ तिनकाविरोधसिद्धकरनेकेलिये तिनकीएकअधिकरणता अवश्य कहनेयोग्यहै।यातेएकदेशमें अनवस्थितपनारूप विरोधभीनहीं संभवता॥ औरतृतीयपक्षमें यहविचारकरनेयोग्यहै।किवहवध्य रूपअविद्याकाघातक्याहै।जिसकाकर्त्ताहोनेसे विद्याकोघातकपना कहतेहो।यदिऐसेकहोअसकानामघातहै तिसकेकर्त्ताकोघातककहतेहैं तोइसमेंभीयहविचारणीयहै।क्यावहअसव्यरूपअविद्यासेभिन्नकोईस्व तंत्रपदार्थहै।इसीपक्षकोस्पष्टकरतेहैं।प्रथमयहअसव्यरूपअविद्यासेजन्य तोहैनहीं।क्योंकिवहतिससेभिन्नहैऔरभिन्नपदार्थोंकाकार्यकारणभावनहीं संभवतायद्यपिजैसेघटसेभिन्ननिमित्तकारणदंडादिकघटेकेजनकहैं।तैसे भिन्नअसकोभीप्रतियोगिरूपतासेवध्यउत्पन्नकरदेगा।तथापि कल्पित प्रतियोगिकअसकोभी कल्पितहोनेका मुक्तिकोभीकल्पितपनाहोगा। क्योंकि अविद्याकेअसकानामहीमुक्तिहै।औरयदितिसअसकोअक ल्पितमाने तोद्वैतापत्तिहोगी॥औरअविद्याकेज्ञानाधीन तिसअसका ज्ञानहोताहै यहभीनहींसंभवता॥ क्योंकिअविद्याकीनिवृत्तिकालमें प्रमातृत्वादिकोंकाअभावहोनेसे तिसविषयकजन्यज्ञानही असिद्धहै॥ तिसकारणसेसर्व प्रकारअविद्यासे संबंधकाअभावहोनेका अंतस्वतंत्र हीकोईपदार्थहै॥ अथवाभिन्नहुआभी स्वतंत्रनहीं किंतुतिसव्यका

धर्महै ॥ अथवातिसवध्यकास्वरूपहै ॥ प्रथमस्वतंत्रपक्षमाने तोवध्य रूपअविद्याकाध्वंसनहींहोगा ॥ क्योंकिहिमगिरि तथाविंध्यगिरिकी न्याईपरस्पर तिनकाअसंबंधहै । यातेवहध्वंसअविद्याकानहींहोगा । औरद्वितीयपक्षकहो तोधर्मस्वस्थितिकेअर्थ अपनेधर्माकीदीर्घआयु कीवांछाकरताहै । अन्यथा निराश्रयहुआधर्म कहां स्थितहोगा । यातेद्वितीयपक्षभीअसंगतहै । औरतृतीयपक्षमेंतो विद्याअविद्याका उत्पादकहीहोजायेगी विरोधतिनकाकिमहेतुसेहोगा । यातेतृतीय पक्षभीनहींसंभवता । और चतुर्थपक्षभीअयुक्तहै । क्योंकिविद्या तथाअविद्यायहदोनों भावरूपहैं । औरअविद्याकीप्रागभावरूपतापूर्व निषेधकरआएहैं । अन्यथातिनकीएककालमें सहस्थितिनहींहोगी । इसप्रकारविद्यातथाअविद्याका विरोधकथनकरनेकेअयोग्यहै । इसी सेविद्याअविद्याकाबाधकहै यहकथननहींसंभवता ॥किंवा विद्या तथा अवि केविरोधकीतुल्यताहोनेसेविपरीतहीक्योंनहोअर्थात्विद्याहीबाध केयोग्यहो क्योंकिविद्याबाधकहीहैइमनियममेंप्रमाणकाअभावहै । इति

* अथसिद्धांत॥ विद्यातथाअविद्याका उपमर्द्य

उपमर्दकभावलक्षणा विरोधनिरूपणा ❀

विद्यातथाअविद्याका कौनविरोधहै । इसप्रकारकाप्रश्नहुएविरोध कोनिरूपणकरनेके लियेप्रथमसिद्धांतीविरोधकेकार्यको कथनकरताहै ।

❀ मू०॥उपमर्द्यस्वभावत्वमविद्यायाविरोधिता ।

तत्कर्तृत्वंतुविद्यायायाः प्रकाशतमसोरिव॥४१॥❀

रोलाब्द ॥ उपमर्द्यस्वभाव कह्योताकोसुनभाई ।

अविद्यामाहि विरोधिपनो यहहैअनुमाई ॥

तत्कर्तृत्वविरोधि पनोविधामें आई ।

तमप्रकाशविरोध यथासबजनजगआई ॥ ३६ ॥

टी० ॥ यद्यपिविधातथाअविधाकाकोई अन्यप्रकारकाविरोध

यहांनिरूपणनहींहोसकता। तथापिउपमर्धउपमर्दकभावलक्षणविरोध

तिनदोनोंकानिरूपणहोसकताहै। अर्थयहउपमर्धउपमर्दकभावविरोधका

कार्यहैतिसकरकारणरूपविरोधकाअनुमानकियाजाताहैक्योंकिकार्यसे

कारणकाअनुमानहोताहै॥ औरअविधाउपमर्दनकरनेके योग्यहीहै ॥

क्योंकिअविधाकाउपमर्दकत्वरूप जोविधाकास्वभावहैवहअन्वयव्यति

रेकसेलोकमेंप्रसिद्धहै ॥ अर्थात्विधाकेहुएअविद्यानहींरहती॥ जैसे

“यहशुक्तिहै” इसप्रकारकीशुक्तिविधाकेहुए अविधाकाबाधहोताहै ॥

अर्थात्इसशुक्तिमेंअविद्या औरतिसकाकार्यरजततीनकालमेंनहींथे ॥

औरशुक्तिविधाकेअभावहुए शुक्तिविषयकआवरण तथाअन्यप्रकारसे

अर्थात्रजतरूपताकरप्रतीतिप्रसिद्धहै ॥ इसप्रकारकेअन्वयव्यतिरेकसे

अविद्याहीउपमर्धस्वभाववालीहै॥ यहलोकप्रसिद्धिसेकल्पनाकीजाती

है ॥ यहांयहअनुमानभीजानना ॥

❀ विमताविद्योपमर्द्याअविद्यात्वात्शुक्त्याविद्यावन्त ❀

अ० ॥ विवादकाविषयजोअविद्याहै सोउपमर्धस्वभाववाली

है ॥ अविद्यारूपहोनेसे जोजोअविद्याहोतीहै॥ सोसोउपमर्धस्वभाव

वालीहोतीहै जैसेशुक्तिविषयकअविद्याहै ॥ इति ॥ इसअनुमानमें

अविधाउपमर्धस्वभाववालीहै यहसाध्यहै । तिसकाअभावरूपविपक्ष

अर्थात्अविधाउपमर्धस्वभाववालीनहीं ऐसाविपक्षमाननेमेंबाधकके

कथनद्वाराअन्वयव्यतिरेकसिद्धतिनदोनोंकेउपमर्धउपमर्दकस्वभावको

दृढकरनेकेलियेविपरीतपनेकीप्राप्तिरूपपूर्णपक्षको अनुवादकरकेसिद्धां
तीनिराकरणकरताहै ॥ औरपूर्वपक्षीनेजोपूर्वयहकहाथा॥ किंविरोधि
पनातुल्यहोनेसे अविषाहीविषाका उपमर्दकर्मयोंनहो सोयहकथनभी
नहींसंभवता ॥ क्योंकिअविषाकोविषाकाउपमर्दकमानेहुएविषाकी
उत्पत्तिहीनहींहोगी ॥ क्योंकिउपमर्दकरूपअविषाप्रथमहीस्थितहै ॥
यातेविषाकीउत्पत्तिनहोनी यहीविपक्षमाननेमेंबाधकहै ॥ विषाही
अविषाकाउपमर्दकहै इसीअर्थमें औरहेतुकहतेहैं ॥ प्रतिनियतस्व
भाववालेपदार्थोंमें (पर्यनुयोग) यहविपरीतहीक्योंनहो ऐसाकथन
नहींकरसकते ॥ जैसेप्रकाशतथातमकाजोप्रतिनियतस्वभावहै उसमें
विपरीतस्वभावकीआशंकासंभवतीहीनहीं क्योंकिदृष्टविरोधप्राप्तहोता
है । यातेविषाहीअविषाकाउपमर्दकहै यहअर्थसिद्धहुआ ॥ इति ॥
शंका ॥ उपमर्दअविषासेभिन्नस्वतंत्रपदार्थहै अथवातिसकाधर्म है ।
इत्यादिविकल्पोंकीप्राप्तिअव्यधातकपक्षकीन्याई इसपक्षमेंभीतुल्यहीहो
गी॥ समाधान ॥ हेवादिन्वध्यधातकपक्षमेंकथनकीए हुएदोषोंकी
प्राप्ति इसपक्षमेंनहींहोसकती॥ क्योंकि ॥

❀ ब्रह्मात्मनिसाविलासाऽविद्याकालत्रयेऽपि नास्ति ❀

अ० ॥ ब्रह्मात्मा मेकार्यसहितअविषाकालत्रयमेंभीनहींहै ।
इसनिश्चयकानामबाधका अपरपर्यायउपमर्दहै । तिसकोस्वविषयके
अबाधितपनेकरप्रभारूपताहै ॥ शंका ॥ यदिअविद्यानहींनिवृत्त
होतीतोब्रह्मात्माकासाक्षात्कारनिष्फलहोगा।क्योंकिअविषाकीनिवृत्ति
सेविनाअन्यतिसकाफलकोईप्रतीतनहींहोता॥ समाधान ॥ हेवादिन्
ब्रह्मसाक्षात्कारकाबाधरूप उपमर्दहीफलहै। अविषाकीनिवृत्तितिसका

फलनहीं॥ क्योंकि अधिष्ठानसे भिन्न करने के अविषय तत्कार्य को असत् होने करतिसकी निवृत्तिकरने के अयोग्य है। याते विषयसे उत्तरकालमें उत्पन्न होनेसे बाधहीतिसका फल है ॥ इस कारणसे विधाकी निष्फलतानहीं॥ शंका ॥ हेसिद्धान्तिन् उपमर्दको ज्ञानरूपमानेहुए तिसज्ञानरूपबाध का कौन विषय है । क्योंकि विषयसे विना कोई ज्ञान नहीं होता। और यदि अविधादिकों का त्रैकालिक अत्यन्ताभावहीतिसबाधका विषय आपक हो तो तिसमें यह विचार कर्तव्य है क्या वह अत्यन्ताभाव असत् है। अथ वास्तव है प्रथम पक्ष कहो तो तिस अत्यन्ताभाव के प्रतियोगिरूप अज्ञानादिकों को सत्पनेकी प्राप्ति होगी । और द्वितीय पक्षमें भी यह विचारणीय है क्या वह सत् रूप अत्यन्ताभाव आत्मासे भिन्न है । अथ वा अभिन्न है । प्रथम पक्षमें तो द्वैतकी प्राप्ति होनेसे अद्वैतश्रुतिका विरोध प्राप्त होगा । और द्वितीय पक्षमें वह बाध अधिष्ठानका साक्षात्कार ही है । उससे भिन्न नहीं याते बाध और विषय का जन्यजनकभाव नहीं संभवेगा । इस प्रकार बाध का विषय कोई नहीं संभवता ॥ समाधान ॥ हेवादिन् वृत्तिरूप साक्षात्कार उपाधि उपहित आत्मा का स्वरूप ही त्रैकालिक अत्यन्ताभावरूप है और तिस साक्षात्कार रूप शुद्ध उपाधिसे कार्य सहित अविषय ब्रह्मात्मामें कालत्रयमें भी नहीं । इस प्रकार का ज्ञान आत्मा विषयक उत्पन्न होता है। याते पूर्व उक्त बाध का विषय संभवता है । इसमें कोई दोष नहीं । और यदि ऐसे कहो कि यह पक्ष संप्रदाय के जानने वालोंमें से किसीने भी स्वीकार नहीं किया सो यह कहन भी नहीं संभवता । क्योंकि वार्तिककारों की संपत्ति पूर्वक यन कर आए हैं । और विवर्णाचार्यों ने भी यही पक्ष दिखलाया है । तथाहि उन्होंने यह कहा है । “प्रसिद्ध अधिष्ठानशुक्त्यादिकोंमें रजतादिकों

के अभावको बाधबोधन करता है। इस प्रकार प्रसिद्ध अधिष्ठान में अभावप्रति योगित्वही मिथ्यात्व है। इस कथन से यही पक्ष तिन्होने स्वीकार किया है। यदि विवर्णाचार्यों को यह पक्ष स्वीकार न होता। तो रजत के अभावको बाधबोधन करता है। यह कैसे कथन करते। और तत्त्वदीपनाचार्य तिस अभावपदको त्रैकालिक अभावपरता करके से व्याख्यान करते। तिस कारण से संप्रदाय के जानने वालों ने यह पक्ष अवश्य स्वीकार किया है। याते यह पक्ष असांप्रदायिक नहीं। यह सिद्ध हुआ इति ॥ ४१ ॥

*** अथ पूर्वपक्ष ॥ जीवन्मुक्तिके अभावप्रतिपादन द्वारा संप्रदायकालोपनि रूपण । ❀**

शंका ॥ हे सिद्धांतिन् विषाको अविषाका उपमर्दक पनायुक्त नहीं। क्योंकि जीवन्मुक्तिका अभाव प्राप्त होता है। तथाहि ॥ यदि विषाको अविषाका उपमर्दक माने तो विद्वान्को विषाकी उत्पत्ति से अनंतर कार्यसहित अविषासमूल विनाशको प्राप्त होगी। तिससे तिसी काल में विदेह केवल्यकी प्राप्ति हुए तात्कालिक ही विद्वान्के देह का पात होगा ॥ याते जीवन्मुक्तिका अभाव प्राप्त होगा ॥ शंका ॥ समूल अविषाकी निवृत्ति होती है। यह कथन ही नहीं संभवता ॥ क्योंकि अविषाको अनादि होनेसे तिसके मूलकी अनुपपत्ति है। और अधिष्ठान ही अविषाका मूल है। यह कथन भी नहीं संभवता। क्योंकि तिसको एक सत्यरूप होनेकर कल्पित पनेका असंभव है। और यदि अधिष्ठानको भी कल्पित मान लें तो शून्यताकी प्राप्ति होगी ॥ समाधान यहां इस शंकाकी प्राप्ति नहीं होती। क्योंकि “अहम्” इत्याकारक जो अध्यास है तिसको अविषाक होते हैं। भाष्यकार श्रीशंकराचार्यों ने तैसे ही कहा है ॥

❀ तमेतमेवलक्षणमध्यासंपंडिताअविद्येतिमन्यन्ते ❀

अ०॥ पूर्वजिसमें आत्मेपकिया गया पुनः जिसमें समाधान किया गया। इस प्रकार के लक्षणवाला जो अध्यास है। तिसको वेदांतशास्त्र के वेता पंडित “अविद्या” मानते हैं ॥ इति ॥ तिस अध्यासरूप अविद्या का कार्यकर्तृत्वादि हैं। और तिस अध्यास का मूलमूला अविद्या है। याते स मूल अविद्या की विद्यासे निवृत्ति होती है यह कथन संभवता है ॥ शंका ॥ सकार्य तथा स मूल अविद्या के नाश होनेसे विदेह मुक्तिसिद्ध हो जायेगी ॥ फिर जीवन्मुक्तिसे क्या प्रयोजन है ॥ समाधान ॥ तैसे माने हुए संप्रदाय का उच्छेद होगा ॥ क्योंकि “श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्” इस विशेषणसे जिस पुरुष को साक्षात्कार उत्पन्न हुआ है तिसको ही आचार्य पना है। और तिसको तात्कालिक अर्थात् ज्ञान समकाल ही विदेह के बल्क की प्राप्ति होनेसे ब्रह्मविद्या का उपदेश कौन करेगा ॥ और उपदेश के अभाव हुए ब्रह्मविद्या की संप्रदाय के से प्रवृत्त होगी ॥ याते संप्रदाय का अभाव होने पर वेदान्तों को अवोधकता लक्षण अप्रमाणाता की प्राप्ति होगी ॥ शंका ॥ तत्त्वज्ञानसे उत्तरकालमें ही विद्वान् के देह का पात होता है यह कथन अयुक्त है ॥ क्यों कि देह का कारण जो प्रारब्धकर्म का शेष है सो विद्यमान है। और प्रारब्धकर्म भी तत्त्वज्ञानसे निवृत्त हो जाता है यह कथन भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि प्रारब्धकर्मसे ज्ञान का विरोध नहीं ॥ और प्रारब्धकर्म के आश्रित ज्ञान की उत्पत्ति होने पर भी तिसकी निवृत्ति तत्त्वज्ञान नहीं करता ॥ याते प्रारब्धकर्म केवलसे विद्वान् के शरीर का पात नहीं होता। तिससे उपदेशादिसर्वव्यवहार संभवता है ॥ समाधान ॥ यद्यपि तत्त्वज्ञान का प्रारब्धकर्मसे विरोध नहीं तथापि वह प्रारब्धकर्म उपादान कारणसे विना तो स्थित नहीं

के अभावको बाधबोधन करता है। इस प्रकार प्रसिद्ध अधिष्ठान में अभाव प्रति योगित्व ही मिथ्यात्व है। इस कथन से यही पक्ष तिन्होने स्वीकार किया है। यदि विवर्णाचार्यों को यह पक्ष स्वीकार न होता। तो रजत के अभावको बाधबोधन करता है। यह कैसे कथन करते। और तत्त्वदीपनाचार्य तिस अभावपदको त्रैकालिक अभाव पर ताकर कैसे व्याख्यान करते। तिस कारण से संप्रदाय के जानने वालों ने यह पक्ष अवश्य स्वीकार किया है। याते यह पक्ष संप्रदायिक न ही। यह सिद्ध हुआ इति ॥ ४१ ॥

*** अथ पूर्वपक्ष ॥ जीवनमुक्तिके अभाव प्रतिपादन
द्वारा संप्रदायकालोपनि रूपण । ❀**

शंका ॥ हे सिद्धांतिन् विद्याको अविद्याका उपमर्दक पना युक्त नहीं। क्योंकि जीवनमुक्तिका अभाव प्राप्त होता है। तथाहि ॥ यदि विद्याको अविद्याका उपमर्दक माने तो विद्वान्को विद्याकी उत्पत्ति से अनंतर कार्यसहित अविद्या समूल विनाशको प्राप्त होगी। तिससे तिसी काल में विदेह केवलयकी प्राप्ति हुए तात्कालिक ही विद्वान्के देह का पात होगा ॥ याते जीवनमुक्तिका अभाव प्राप्त होगा ॥ शंका ॥ समूल अविद्याकी निवृत्ति होती है। यह कथन ही नहीं संभवता ॥ क्योंकि अविद्याको अनादि होनेसे तिसके मूलकी अनुपपत्ति है। और अधिष्ठान ही अविद्याका मूल है। यह कथन भी नहीं संभवता। क्योंकि तिसको एक सत्यरूप होनेकर कल्पित पनेका असंभव है। और यदि अधिष्ठानको भी कल्पित मान लें तो शून्यताकी प्राप्ति होगी ॥ समाधान यहाँ इस शंकाकी प्राप्ति नहीं होती। क्योंकि “अहम्” इत्याकारक जो अर्था स है तिसको अविद्या कहते हैं। भाष्यकार श्रीशंकराचार्यों ने तैसे ही कहा है ॥

तमेतमेवलक्षणा मध्यासंपंडिता अविद्येति मन्यन्ते ॥

अ०॥ पूर्वजिसमें आक्षेप किया गया पुनः जिसमें समाधान किया गया। इस प्रकार के लक्षणवाला जो अध्यास है। तिसको वेदांतशास्त्र के वेता पंडित “अविद्या” मानते हैं ॥ इति ॥ तिस अध्यासरूप अविद्या का कार्यकर्तृत्वादि हैं। और तिस अध्यास का मूलमूला अविद्या है। यातेस मूल अविद्या की विद्यासे निवृत्ति होती है यह कथन संभवता है ॥ शंका ॥ सकार्य तथास मूल अविद्या के नाश होनेसे विदेह मुक्तिसिद्ध हो जायेगी ॥ फिर जीवन्मुक्तिसे क्या प्रयोजन है ॥ समाधान ॥ तैसे माने हुए संप्रदाय का उच्छेद होगा ॥ क्योंकि “श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्” इस विशेषणसे जिस पुरुष को साक्षात्कार उत्पन्न हुआ है तिसको ही आचार्य्य पना है। और तिसको तात्कालिक अर्थात् ज्ञान समकाल ही विदेह केवल्य की प्राप्ति होनेसे ब्रह्मविद्या का उपदेश कौन करेगा ॥ और उपदेश के अभाव हुए ब्रह्मविद्या की संप्रदाय कैसे प्रवृत्त होगी ॥ यातेसंप्रदाय का अभाव होनेकर वेदान्तों को अवोधकता लक्षण अप्रमाणता की प्राप्ति होगी ॥ शंका ॥ तत्त्वज्ञानसे उत्तरकालमें ही विद्वान् के देह का पात होता है यह कथन अयुक्त है ॥ क्यों कि देह का कारण जो प्रारब्धकर्म का शेष है सो विद्यमान है। और प्रारब्धकर्म भी तत्त्वज्ञानसे निवृत्त हो जाता है यह कथन भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि प्रारब्धकर्मसे ज्ञान का विरोध नहीं ॥ और प्रारब्धकर्म के आश्रित ज्ञान की उत्पत्ति होनेकर भी तिसकी निवृत्ति तत्त्वज्ञान नहीं करता ॥ याते प्रारब्धकर्म केवलसे विद्वान् के शरीर का पात नहीं होता। तिससे उपदेशादिसर्वव्यवहार संभवता है ॥ समाधान ॥ यद्यपि तत्त्वज्ञान का प्रारब्धकर्मसे विरोध नहीं तथापि वह प्रारब्धकर्म उपादान कारणसे विना तो स्थित नहीं है

सकता॥ क्योंकिभावकार्यनिरूपादानकहींदेखानहीं। औरयदिबहुउपादानकेसहितहैतोवयाआत्मातिसकाउपादानहै। अथवाअविद्यातिसकाउपादानहै? इनमेंप्रथमपक्षतोनोंसंभवता। क्योंकिआत्माकोअकारणहोनेकरतिगकीउपादानताकाअसंभवहै॥ औरयदिद्वितीयपक्षकहो तोतिसमेंयहविचारकर्तव्यहै। क्यावहअविद्यानिवृत्तहोगईहै। अथवास्थितहै? प्रथमपक्षतोनोंसंभवता। क्योंकिप्रारब्धकोभी अविद्याकाकार्यहोनेकरतिसअविद्याकेअभावहुएवहकैसेस्थितहोसकनाहै। किंतुनहींस्थितहोसकता॥ जैसेतन्तुकेअभावहुएपटकीस्थितिकिसीप्रकारभीनहींहोसकती। औरप्रारब्धकर्मके फलभोगकानिर्वाहकरूपताकर तत्त्वज्ञानसेउत्तरकुछकालतक अविद्यास्थितरहतीहै। यदियहद्वितीयपक्षमानो तोयहभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिविद्यानिष्ठ जोअविद्याकेउपमर्दकपनेकास्वभावहै तिसकीहानिहोगी। औरयदियहकहो किप्रारब्धकर्मकेनिवृत्तहोनेसेअनन्तरही विद्यामेंयहस्वभावहोताहै। प्रथमनहीं। सोयहकथनभीअसंगतहै॥ क्योंकिएकपदार्थमें दोस्वभावअंगीकारनहींहैं। अन्यथाअग्निमेंभीदाहकत्वतथाअदाहकत्व इनदोस्वभावोंकीप्राप्तिहोगी॥ औरयदिऐसेकहो ॥ किप्रथम ज्ञानसेआवर्णाशक्तिप्रधानअज्ञान निवृत्तहोताहै। औरप्रारब्धकर्मकेनिर्वाहकरनेकेलिये विज्ञेयशक्तिप्रधानअज्ञान निवृत्तनहींहोता ॥ सोयहकथनभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिदोअज्ञानोंकाअभावहै ॥ एकहीअज्ञान सिद्धांतमेंस्वीकारहै ॥ यद्यपिएकहीअज्ञानउभयशक्तिविशिष्टहै तथापिएकहीकालमेंएकपदार्थकीस्थिति तथा निवृत्तिकाविरोधहै ॥ औरयदिऐसेकहो किअज्ञानकीशक्तिमात्रहीज्ञानसेनिवृत्तहोतीहै ॥ सोयहकथनभीसमीचीननहीं ॥ क्योंकि

शक्तिऔरशक्तिकालेकाअभेदहै। अथवाभेदहै? यहविचारकर्त्तव्यहै ॥
 यदिप्रथमपक्षकहो तोअज्ञानकीनिवृत्तिभीअवश्यमाननीहोगी।केवल
 शक्तिकीनिवृत्तिहीविवक्षितहै यहकथननहींसंभवेगा ॥ औरद्वितीय
 पक्षमेंतोअज्ञानरूपधर्मीकी निवृत्तिहीनहींहोगी।क्योंकिशेषप्रारब्धकर्म
 केभोगसेपूर्वथावरणशक्तिमात्रकोज्ञाननिवृत्तकरताहैऔरतिसकर्मभोग
 सेउत्तरकालमेंविद्वेषशक्तिको निवृत्तकरताहै ॥ औरशक्तिकाअज्ञानसे
 भेदहै।यातेअज्ञानरूपधर्मीके निवर्त्तककाअभावहोनेसेतिसकीनिवृत्ति
 नहींहोगी। औरप्रारब्धकर्मकीनिवृत्तिसे अज्ञानथापहीनिवृत्तहोजाये
 गा। यहकथनभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिप्रारब्धकीनिवृत्तिप्रमाणरूप
 नहीं ॥ शंका॥ अज्ञानकेनिवर्त्तकका अभावथसिद्धहै। क्योंकिज्ञान
 हीअज्ञानकानिवर्त्तकहै सोविद्यमानहै॥यद्यपिऐसेभानेहुए जीवन्मुक्ति
 कीसिद्धिनहींहोगी॥ तथापिशेषप्रारब्धकर्मकर वहज्ञानप्रतिबद्धहोताहै
 औरअप्रतिबद्धकारणहीकार्यकाजनकहोताहै॥ यातेशेषकर्मकीनिवृत्ति
 हुएप्रतिबंधककाअभावहोनेकरअप्रतिबद्धहुआतत्त्वज्ञानअज्ञानकोबाध
 करेगा॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिप्रारब्धकर्मकेनाशहुए ज्ञानकाही
 अभावहै ॥ औरयदिऐसेकहो किप्रारब्धकेनाशसेअनन्तर शरीरका
 नाशहोजाताहै। क्योंकिप्रारब्धकर्मकानाशशरीरनाशमेंहेतुहै। तिस
 कारणसेप्रारब्धकर्मकेनाशकीउत्पत्तिकालमेंप्रतिबंधककाअभावहै।और
 देहादिकारणसमुदायभीविनाशअवस्थाके सम्मुखहुआविद्यमानहै ॥
 यातेज्ञानतिसकालमेंउत्पन्नहोकर अज्ञानकाबाधकरेगा। सोयहकथन
 भीसमीचीननहीं। क्योंकिप्रारब्धकर्मकाशेषदेहरूपहीहै तिससेभिन्न
 तिसकाकारणरूपऔरकोईशेषशब्दकाअर्थनहींहै। क्योंकिदेहादिफल

रूपताकरपरिणामको प्राप्त हुए कर्मका और कोई रूपांतर नहीं ॥ तैसेमाने हुए शेषका जो नाश है तिसीको देहपात कहते हैं ॥ तिस कर्मशेषरूपदेह के पातसे अन्तरकारण के अभावसे ज्ञानका ही अभाव है तो अज्ञानको कौन निवृत्त करेगा ॥ और देहपातसे पूर्व प्रारब्धकर्मकर ज्ञानप्रतिबद्ध है। याते अज्ञानके निवर्त्तक का अभाव सिद्ध है ॥ शंका ॥ हेवादि न्यद्यापि मूलाऽविद्यातो ज्ञानकर निवृत्त हो गई है। तथापि तिसका संस्कारजो लेशाऽविद्या नामसे कहा जाता है तिसकी अनुवृत्तितो संभवती है। और ज्ञान तथा क्रिया का ही संस्कार होता है यह नियम नहीं। किंतु वस्तुका भी संस्कार होता है। क्योंकि संस्कारको नाश मात्र कर प्रयुक्तता है तिस कारणसे अपरोक्ष आत्मानिष्ठ संस्काररूप दोष के वशसे देहादियनात्माकारप्रतीतिका संभव हो जायेगा याते जीवन्मुक्तिकी सिद्धि हो जायेगी। और यदि ज्ञान तथा क्रिया का ही संस्कार होता है यह नियम माने तो संस्कारशब्दका अन्यही अर्थ है लेशाऽविद्याजो अविद्याकी अवस्थाविशेष है तिसीको संस्कार कहते हैं तिससे विद्वान् के शरीरादिकोंकी प्रतीतिका संभव हो जायेगा ॥ समाधान ॥ तिस संस्कारको भी अविद्याका कार्यपना है। अर्थ यह कि प्रथम संस्कारको अनादि पना तो नहीं संभवता। अन्यथा संस्कारपने का ही अभाव प्रसंग होगा। और यदि तिसको सादिमाने तो तिसका उपादान क्या आत्मा है अथवा अविद्या है ? प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता क्योंकि आत्माको निर्विकार होनेसे कारणताका अभाव है। और यदि द्वितीय पक्ष कहो तो अविद्याके नाश हुए वह संस्कार कैसे स्थित होगा। क्योंकि उपादान का ही अभाव है। और भावकार्य उपादान सहित ही होता है यह नियम है ॥ शंका ॥ अविद्याकी अवस्थाविशेष ही लेशशब्दका

वाच्यहुईसंस्कार नामसेकहीजातीहै ॥ समाधान ॥ तिसअवस्था
विशेषकाअविद्यासे भेदतथाअभेद निरूपणनहींहोसकता । क्योंकि
यदिअवस्थाविशेषका अविद्यासेभेदमाने तोतिसकीवहअवस्थानहीं
होगी। औरयदिअभेदमाने तोतिसमेंसंस्कारशब्दका प्रयोगकरना
निष्फलहै । औरशक्तिपक्षमें कथनकियेहुएदोषोंकी प्राप्तिहोनेसे
भी यहपक्षअयुक्तहै ॥ शंका ॥ (तस्यतावदेवचिरम्)
अ० ॥ तिसविद्वान्को तबतकहीविदेहकैवल्यमें विलंबहै ॥ और
(सचक्षुरचक्षुरिव) अ० ॥ वहविद्वान्वास्तवसे नेत्रादिइन्द्रिय
रहितहै।परन्तुवाचिताऽनुवृत्तिसेनेत्रादिइन्द्रिय सहितकीन्याईहै। और
* प्रजहातियदाकामान् सर्वान्पार्थमनोगतान् ।

(अ० गी० अ० २ । (५५)

अ० ॥ हेअर्जुनजिसकालमें यहविद्वान्मनमें प्राप्तसर्वकाम
नाथोंकोत्यागदेताहै । इत्यादिकश्रुतितथास्मृतिकी प्रमाणातासे
विद्वान्को विदेहकैवल्यकीप्राप्तिमें विलंबप्रतीतहोताहै । तिसकारण
सेतिसकेशरीरकी स्थितिकल्पनाकीजातीहै। औरस्वहशरीरकीस्थिति
प्रारब्धकर्मसेविना अनुपपन्नहुईतिसकर्मकीभी कल्पनाकरातीहै ॥
यातेजीवन्मुक्तिकी सिद्धिहै ॥ समाधान ॥ (उभेइहैवैषण्ते
तरति) अ० ॥ यहविद्वान्ज्ञानसमकालही पुरायतथापापरूप
दोनोंकर्मोंकोनाशकरताहै ॥ और (क्षीयन्तेचास्यकर्माणि)
अ० ॥ इसविद्वान्के कर्मनाशहोजातेहैं । और (ज्ञानाग्निः
सर्वकर्माणि) अ० ॥ ज्ञानरूपअग्निसर्वकर्मोंको भस्मकरदेता

रूपताकरपरिणामको प्राप्त हुए कर्मका और कोई रूपांतर नहीं ॥ तैसेमाने हुए शेषका जो नाश है तिसीको देहपात कहते हैं ॥ तिसकर्मशेषरूपदेह के पातसे अनन्तर कारणके अभावसे ज्ञानका ही अभाव है तो अज्ञानको कौन निवृत्त करेगा ॥ और देहपातसे पूर्व प्रारब्धकर्मकज्ञान प्रतिबद्ध है। याते अज्ञानके निवर्तक का अभाव सिद्ध है ॥ शंका ॥ हेवादि न्यघापिमूलाऽविद्यातो ज्ञानक रनिवृत्त हो गई है। तथापि तिसका संस्कार जो लेशाऽविद्या नामसे कहा जाता है तिसकी अनुवृत्ति तो संभवती है ॥ और ज्ञान तथा क्रिया का ही संस्कार होता है यह नियम नहीं। किंतु वस्तुका भी संस्कार होता है। क्योंकि संस्कारको नाश मात्र कर प्रयुक्तता है तिसकारणसे अतरोक्ष आत्मानिष्ठ संस्काररूप दोष के वशसे देहादि अनात्माकार प्रतीतिका संभव हो जायेगा। याते जीवन्मुक्तिकी मिद्धि हो जायेगी। और यदि ज्ञान तथा क्रिया का ही संस्कार होता है यह नियम माने तो संस्कारशब्दका अन्यही अर्थ है लेशाऽविद्या जो अविद्याकी अवस्था विशेष है तिसीको संस्कार कहते हैं तिससे विद्वान् के शरीरादिकोंकी प्रतीतिका संभव हो जायेगा ॥ समाधान ॥ तिम संस्कारको भी अविद्याका कार्यपना है। अर्थ यह कि प्रथम संस्कारको अनादि पना तो नहीं संभवता। अन्यथा संस्कारपनेका ही अभाव प्रसंग होगा। और यदि तिमको सादिमाने तो तिसका उपादान क्या आत्मा है अथवा अविद्या है ? प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता क्योंकि आत्माको निर्विकार होनेसे कारणताका अभाव है। और यदि द्वितीय पक्ष कहो तो अविद्याके नाश हुए वह संस्कार कैसे स्थित होगा। क्योंकि उपादान का ही अभाव है। और भावकार्य उपादान सहित ही होता है यह नियम है ॥ शंका ॥ अविद्याकी अवस्था विशेष ही लेशाशब्दका

वाच्यहुईसंस्कार नामसेकहीजातीहै ॥ समाधान ॥ तिसअवस्था विशेषकाअविद्यासे भेदतथाअभेद निरूपणनहींहोसकता । क्योंकि यदिअवस्थाविशेषका अविद्यासेभेदमाने तोतिसकीवहअवस्थानहीं होगी। औरयदिअभेदमाने तोतिसमेंसंस्कारशब्दका प्रयोगकरना निष्फलहै । औरशक्तिपक्षमें कथनकियेहुएदोषोंकी प्राप्तिहोनेसे भी यहपक्षअयुक्तहै ॥ शंका ॥ (तस्यतावदेवचिरम्) अ० ॥ तिसविद्वान्को तत्रतकहीविदेहकैवल्यमें विलंबहै ॥ और (सचक्षुरचक्षुरिव) अ० ॥ वहविद्वान्वास्तवसे नेत्रादिइन्द्रिय रहितहै।परन्तुवाधिताज्जुवृत्तिसेनेत्रादिइन्द्रिय सहितकीन्याईहै। और

❀ प्रजहातियदाकामान् सर्वान्पार्यमनोगतान् ।

(अ० गी० अ० २ । (५५)

अ० ॥ हेअर्जुनजिसकालमें यहविद्वान्मनमें प्राप्तसर्वकाम नाथोंकोत्यागदेताहै । इत्यादिकश्रुतितथास्मृतिकी प्रमाणतासे विद्वान्को विदेहकैवल्यकीप्राप्तिमें विलंबप्रतीतहोताहै । तिसकारण सेतिसकेशरीरकी स्थितिकल्पनाकीजातीहै। औरवहशरीरकीस्थिति प्रारब्धकर्मसेविना अनुपपन्नहुईतिसकर्मकीभी कल्पनाकरातीहै ॥ यातेजीवन्मुक्तिकी सिद्धिहै ॥ समाधान ॥ (उभेद्वैवैषण्ते तरति) अ० ॥ यहविद्वान्ज्ञानसमकालही पुराणतथापापरूप दोनोंकर्मोंकोनाशकरताहै ॥ और (क्षीयन्तेचास्यकर्माणि) अ० ॥ इसविद्वान्के कर्मनाशहोजातेहैं । और (ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि) अ० ॥ ज्ञानरूपअग्निसर्वकर्मोंको भस्मकरदेता

है। इत्यादिकश्रुतितथास्मृतिका विरोधहोनेसे कल्पनाकीअनुपपत्ति है। यद्यपिजीवन्मुक्तिकाअभाव मानेहुए जीवन्मुक्तिकेप्रतिपादक वचनोंकाविरोधहोगा। तथापिअध्ययनविधिका विरोधहोनेकर जीवन्मुक्तिके प्रतिपादकवचनोंका स्वार्थमेंतात्पर्यनहीं।यातेतिनका विरोधनहीं ॥ शंका ॥ यद्यपिजीवन्मुक्तिकाप्रतिपादन साक्षात्तिन वचनोंकाप्रयोजननहीं। तथापिसुखस्वरूपआत्माके साक्षात्कारकेहेतु जोश्रवणादिसाधनहैं। तिनमेंप्रवृत्तिकेजनकहोनेकर परंपरासेजीवन्मुक्तिकाप्रतिपादनतिनकाप्रयोजनहै।यातेस्वार्थमेंतिनकातात्पर्यसंभवता है ॥ समाधान॥ जीवन्मुक्तिके प्रतिपादनकरनेवालेशास्त्रकोश्रवणादिकोंमेंप्रवृत्तिकीजनकतास्वीकारकरेहुएयहविचारणीयहैक्यावहशास्त्र श्रवणादिकोंमेंसाक्षात्हीमुमुक्षुपुरुषोंकीप्रवृत्तिकरताहै। अथवाश्रवणादिकोंकेविधायकवाक्यका शेषरूपहोकरप्रवृत्तिकरताहै?।प्रथमपक्ष तोनहींसंभवता।क्योंकितिसमेंविचारके विधानकरनेवालेपदकाअभाव है। औरयदिश्रवणादिविधिका अर्थवादरूपवहशास्त्रहैयहद्वितीयपक्ष मानो तोस्वार्थ में तिसकोप्रमाणतानहींहोगी ॥ शंका॥ जहांप्रमाण काविरोधहो। अथवाप्रमाणकासंवाद होतहांअर्थवादवाक्योंकोप्रमाण तानहींहोती ॥ औरयहांतोवहदोनोंहीनहीं याते “देवताअधिकरण न्याय” सेतिनकोस्वार्थमेंप्रमाणताकैसेनहींहोसकती ॥ समाधान ॥ शुक्तिकेसाक्षात्कारहुए कार्यसहितअविद्याकाबाधहोताहै॥ औरशुक्ति केसाक्षात्कारकाअभावहुए सकार्यअविद्याकाबाधनहींहोता ॥ इस प्रकारका अन्वयन्यतिरेकरूपलौकिकप्रमाणहै॥ और (क्षीयंतेचास्यकर्माणि) इत्यादिवैदिकप्रमाणहै ॥ तिनदोनों

काविरोधहोनेसे देवताऽधिकरणन्यायकी यहांप्राप्तिनहीं होसकती यातेजीवन्मुक्तिकेप्रतिपादकशास्त्रकरविद्वान्केदेहकीस्थितिनहींकल्प नाकरसकते ॥ शंका ॥ जेसेधनुषसेछूटेहुए बाणकीक्रियाकाप्रारंभ कियेहुएवेगके नाशसेहीनाशहोताहै अन्यप्रकारसेनहीं । तैसेप्रारब्ध कर्मकाभोगरूपकार्यके नाशसेहीनाशहोताहै अन्यकिसीप्रकारसेनहीं । इसप्रकारशास्त्रकारोंने प्रारब्धकर्मकीस्थितिसिद्धकीहै । यातेजीवन्मु क्तिकासंभवहै ॥ समाधान ॥ दृष्टांतकीविषयताहोनेसेपूर्वकथन नहींसंभवता । क्योंकिदृष्टांतमें तोक्रियाकेउपादानभूतबाणकानाश नहींहुआ ॥ यातेप्रारब्धवेगकेक्षयसे तिसकानाशसंभवताहै । और दार्ष्टांतमें तोप्रारब्धकर्मकेउपादानभूत अज्ञानकीभीनिवृत्तिहुईहै । यातेतिसकी स्थितिनहींसंभवती ॥ शंका ॥

❀ अनारब्धकार्यएवतुपूर्वतदवधेः ॥ ३०मी०॥४॥१॥१५ ❀

अ० ॥ यहअधिकरणसूत्रहै । यहांअधिकरणरचनाऐसेहै ॥ ज्ञानजन्यजो कर्मकाविनाशहै वहक्यासकलरूपतासे कर्ममात्रकाहोता है । अथवा प्रारब्धकर्मसेभिन्नकर्मकाविनाशहोताहै? । यहसंशयहै । तहांपूर्वपक्षप्राप्तहुआ ॥ (क्षीयन्तेचास्यकर्माणि) इसश्रुतिमें सामान्यरूपतासेसकलकर्मोंकाविनाशश्रवणहोताहै । यातेकर्ममात्रका विनाशहोताहै ॥ इसप्रकारपूर्वपक्षकेप्राप्तहुए सिद्धांतनिरूपणकरतेहैं । जोपुरायतथापापरूपकर्मइसदेहमेंसुखतथादुःखकेअनुभवअर्थप्रवृत्तहुए हैं वहप्रारब्धकार्यवालेकहेजातेहैं । तिनसेभिन्न जोअनारब्धकार्यवाले कर्मजोअनादिसंसारचक्रमेंज्ञानकी उत्पत्तिपर्यन्तसंचयकियेहैं वही विनाशकोप्राप्तहोतेहैं । प्रारब्धकर्मविनाशकोनहींप्राप्तहोते । क्योंकि

❀ तस्यतावदेवचिरंयावन्नविमोक्ष्येऽथसंपत्स्ये ॥❀

छा० उ० अ० द्वावि १३।२

अ० ॥ तिसविद्वान्कोतवतकहीविलंबहै जवतकप्रारब्धकर्मको भोगकर शरीरकोनहीं त्यागता । तिससेअनन्तर विदेहकैवल्यकोप्राप्त होताहै । इसश्रुतिसेविद्वान्के देहपातका अवधिमुनाजाताहै इस प्रकारसूत्रकारोंने जीवन्मुक्तिका उपपादनकियाहै । और

❀ नत्वारब्धकार्ये सामिमुक्तफले ❀

अ० ॥ आरब्धकार्यवालेजोकर्मजिनकाआधाफलभोगलियाहै तिनकाविनाशनहींहोता । इत्यादिग्रंथकरभाष्यकारोंनेभी जीवन्मुक्ति काप्रतिपादनकियाहै । और ॥

❀ नत्वारब्धविपाकंसंपादितजात्यायुर्वितेत्यादिना❀

अ० ॥ जातितथाआयुऔरधनरूप फलकाजिनकर्मोंनेआरंभ कियाहै तिनकाज्ञानसेविनाश नहींहोता । इत्यादिग्रंथकरवाचस्पति मिश्रोंनेभीजीवन्मुक्ति प्रतिपादनकीहै ॥ तथा

❀ ननुकर्मणामपिनिवृत्तत्वात्कथंद्वैतदर्शनं ।

नैषदोषइत्यादिना ॥❀

अ० ॥ शंका ॥ ज्ञानसेसर्वकर्मोंकोभी निवृत्तहोनेसे पुनः विद्वान्कोद्वैतदर्शनकैसेभोगा ॥ समाधान ॥ हेवादिन्यहदोषनहीं इत्यादिग्रंथसे विवरणाचार्योंनेभी जीवन्मुक्तिकथनकीहै ॥ और ॥

❀ आरब्धफलशेषैकहेतुत्वात्तदेहसंस्थितेः ।

रागादिप्रत्योद्भूतिरिषुचक्रादिवेगवत् ॥❀

अ०॥ प्रारब्धकर्मकेफलकाशेषही विद्वान्केदेहकीस्थितिकाएक हेतुहै इसीकारणसे तिसकोरागादि प्रत्ययोंकीउत्पत्तिकासंभवहै । यहाँरागादिकोंकीप्रतीति आभासरूपजाननी । जैसेप्रारब्धवेगवाले वाणकीक्रियाकावेगके नाशसेही नाशहोताहै । औरकुलालकेचक्रकी क्रियाकाभीप्रारब्धवेगकेनाशमेहीनाशहोताहै । तैसेविद्वान्केदेहका पातभीप्रारब्धकर्मकेफलभोगसे अनन्तरहीहोताहै । इत्यादिग्रंथकरके वार्तिककारोंनेभीजीवन्मुक्तिका उपपादनकियाहै । तिसजीवन्मुक्ति केनस्वीकारकरनेसे तिनसर्वमहानुभावोंकाकथन अयुक्तहोगा । क्योंकिअप्रामाणिकअर्थकाजोशास्त्रकारोंने उपपादनकरनाहैसोव्यर्थ है॥ औरजीवन्मुक्तिविषयक सर्वलोकोंकी प्रसिद्धिकाभीव्याघातनहीं होसकता। यातजीवन्मुक्तिसंभवहै॥ समाधान॥ शिष्यकोअविद्यावत्ता होनेकरगुरुविषयकथ श्रद्धाहोजायेगी । तिसअश्रद्धाकीनिवृत्तिरूप प्रयोजनहोनेकर तिनमहानुभावोंकाकथननिष्फलनहीं किंतुसफलहै औरजीवन्मुक्तिमेंप्रमाणका अभावहोनेकर लोकप्रसिद्धितोअन्यपरं परारूपहोनेसे त्यागनेयोग्यहै । इसप्रकार सर्वदोषोंसे रहित रूपताकर उपपादनकियेहुए विदेहमुक्तिपक्षको समाप्तकरते हुए पूर्वपक्षकाफल निरूपणकरतेहैं ॥ पूर्वउक्तप्रकारसे विद्याको अविद्याकाउपमर्दक स्वभावहोनेकर विद्वान्कोज्ञान समकालही मुक्तिकेप्राप्तहुए उपदेशकेअभावसे विद्याकीउत्पत्ति किसहेतुसे होगी किंतुकिसीहेतुसेनहींहोगी । तिससेसंप्रदायकालोपप्राप्तहोगा। शंका ॥ विद्याकीउत्पत्तिमेंआचार्यक्याकरेगा। क्योंकिआपहीयह अधिकारीतर्कादिकोंसे विद्याकोसंपादनकरलेगा । यातेविद्याकी

उत्पत्तिसंभवेहै ॥ समाधान ॥ आचार्यकीअपेक्षासेविनाहीविद्या
उत्पन्नहोजायेगी यहकथननहींसंभवता । क्योंकिऐसामाननेसेबहुत
श्रुतिवचनोंकाविरोधप्राप्तहोताहै॥तथाहि (आचार्यवान्पुरुषोवेद)

अ० ॥ आचार्यवालापुरुषहीआत्माकोजानसकताहै ॥ और
[नैपातर्कणामतिराम्रेया] अ० ॥ हेनचिकेतायहआत्मविद्या
तर्कसेप्राप्तहोनेयोग्यनहीं और [प्राप्यवरान्निबोधत] अ० ॥
उत्कृष्टआचार्योंको प्राप्तहोकरतुमआत्मतत्त्वकोजानो ॥ और

❀ आचार्यस्तेगतिंवक्ता डा० अ० ४ ख० १४ क० १❀

अ०॥ हेब्राह्मणआचार्यहीतुम्हकोमोक्षमार्गकाउपदेशकरेगा॥और

❀अनन्यप्रोक्तेगतिरत्रनास्ति । प्रोक्तान्येनैवसु

ज्ञानायपेष्ट ॥ क० ड० ॥ अ० १ ब० २ पं० ८६॥

अ० ॥ अभेदवादिआचार्यकर कथनकियेहुए आत्मतत्त्व
विषयकसंशयनहींहोता । और हेप्रियतमभेदवादीसेभिन्नब्रह्मवेत्ता
आचार्यकर कथनकियेहुए वेदान्तवाक्यअपरोक्षबोधकेअर्थहोतेहैं ॥
इत्यादिश्रुतिवचनोंनेआचार्यसापेक्षहीब्रह्मविद्याकीउत्पत्तिकथनकीहै ।
औरपूर्वउत्तरीतिसेआचार्यकाअभावहै । यातेविद्याकीउत्पत्तिनहींसंभ
वती ॥ इतिपूर्वपक्ष ॥ अथसिद्धांत ॥

❀तात्कालिकमुक्तिपक्षकास्वीकारतथासंप्रदायके
लोपकापरिहार ॥

समाधान ॥ हेवादिन् ज्ञानसमकालहीविदेहकैवल्यकीप्राप्ति
विद्वान्कोहोतीहै।यहपक्षहीश्रेष्ठहै ॥ औरविद्याकीसंप्रदायकाअभाव

होनेकरविद्याकाअसंभवरूपदोषजोपूर्वपक्षीनेकहाथा।सोभीनहींसंभवता
क्योंकि स्वअज्ञानकर कल्पितआचार्यविद्यमानहै ॥ शंका ॥ हे
सिद्धांतिन् कल्पितजोमिथ्यारूपआचार्यहै।तिसको उपदेष्टापनाकैसे
संभवेगा । औरयदिमिथ्याकोभी उपदेष्टापनामानलें। तोअर्थक्रिया
काकर्ताहोनेसेतिसकोमिथ्यापनानहींसंभवेगा।क्योंकिमिथ्यापदार्थअर्थ
कासाधकनहींहोता ॥ अन्यथामरुभूमिकेजलसेभी पिपासाउपशम
-हुईचाहिये ॥ समाधान ॥

❀मू०॥ कल्पितोप्युपदेष्टास्याद्यथाशास्त्रंसमादिशेत् ।

नचाविनिगमोदोषोऽविद्यावत्त्वेननिर्णयात् ॥४२॥❀

स्वैयाछंद ॥ मिथ्यावेदसत्यजिमबोधक तिमकल्पितगुरुदेउपदेश ॥

असत्प्रतिविंबविंबसत्बोधक वादृष्टांतलखोरिदिदेश ॥

विनिगमविरहदोषनहिआवत यामेंहैइकहेतुविशेष ॥

अविद्यावानशिष्यहैकल्पकयानिर्णयतेतजोक्लेश॥३६॥

टी० ॥ हेवादिन् यद्यपिपूर्वआचार्यका अभावकथनकियाहै ।

तथापिकल्पितभी अचार्यसत्यकीन्याईसम्यकउपदेशकरसकताहै ॥

शंका ॥ तिसकल्पितआचार्यको उपदेष्टापनायुक्तनहीं । क्योंकिवह

निःस्वरूपहै॥ समाधान ॥हेवादिन् निःस्वरूपयदितुमलुच्छपदार्थको

कहो तोवहहमअंगीकारनहींकरते ॥ औरयदिमिथ्याकानामनिःस्व

रूपहै तोतिसकोउपदेशकर्तृत्वजनजायेगा । क्योंकिजैसेकल्पितभी

वेदस्वार्थकोबोधनकरदेताहै । तैसेकल्पितभीआचार्यउपदेशकरदेगा॥

औरतत्त्वसाक्षात्कारसे प्रथमअधिकारीको आचार्यनिष्ठमिथ्यात्वज्ञान

काअभावहै।औरतत्त्वसाक्षात्कारसेअनंतरआचार्यकीअपेक्षाकाअभाव

होनेसेकोईदोषनहीं ॥ औरशास्त्रकोअपौरुषेयहोनेसे तिसकोकल्पित पनानहींसंभवता यहजोमीमांसककहतेहैं । तिनकेप्रतिअन्यउदाहरण निरूपणकरतेहैं ॥ जैसेकल्पितभीप्रतिविंब सत्यविंबकीप्रतीतिकाहेतु स्वीकारकियाहै । तैसेमिथ्याआचार्य्यभी सत्यवस्तुकाउपदेशकरसकता है ॥ यहांयहअनुमानजानना ॥

❀ विमतं विंबपूर्वकं प्रतिविंबत्वात् संमतवत् ❀

अ० ॥ विवादकाविषयजोकोईप्रतिविंबहै वहविंबपूर्वकहै । जोजो प्रतिविंबहोताहै । सोसोविंबपूर्वकहीहोताहै । जैसेप्रमिद्धमुखकाप्रति विंबहै ॥ इति ॥ औरयदिऐसेकहो किविंबज्ञानमेंप्रतिविंबज्ञानहीकारण है प्रतिविंबनहीं । सोयहकथनभी ममीचीननहीं । क्योंकिज्ञानमात्र को तोहेतुताहैनहीं । किंतुप्रतिविंबाज्वच्छिन्नज्ञानकोहेतुताहै । औरप्रति विंबाज्वच्छिन्नज्ञानकोहेतुतामानेहुए प्रतिविंबकोभी विंबज्ञानकीहेतुता दूरनहींहोसकती ॥ क्योंकिविशिष्टवृत्तिधर्मकोविशेषणमेंवर्तनेकानियम है ॥ यातेकोईअनुपपत्तिनहीं ॥ शंका ॥ एकद्वीजीवहै । इतरजीवा भासतिसकी अविद्याकरकल्पितहैं यहआपकामतहै । तिसमें शिष्यके अज्ञानकरगुरुकल्पितहै । अथवागुरुके अज्ञान अशिष्यकल्पितहै ? इसप्रकार काविनिगमना विरहदोषप्राप्तहुए शिष्यकी श्रवणादिकों में प्रवृत्तिका अभावहोगा ॥ समाधान ॥ हेवादिन् अज्ञानीकोहीकल्पकपनाहै । क्योंकितिसमेंकल्पनाका बीजभूतअज्ञानविद्यमानहै । औरविद्वान्में कल्पनाकेबीजभूतअज्ञानकाअभावहै । यातेविनिगमनाविरहदोषकी प्राप्तिकाअभावहोनेसे शिष्यकीश्रवणादिकों मेंप्रवृत्तिकासंभवहै । इस प्रकारसर्वअनात्मपदार्थोंकोकल्पितपनाहै । औरभेदकानिरूपणभी

कोई करने को समर्थ नहीं ॥ और प्रत्यक्षादिप्रमाणाभास भेद को विषय नहीं कर सकते ॥ और अविद्या का विद्याकर उपमर्दन होने का स्वभाव है ॥ और अन्वयव्यतिरेकादिकों से शोधन किये हैं तत्त्वंपदार्थ जिसने ऐसे अधिकारी को गुरु उपदिष्ट तत्त्वमस्यादि महावाक्य से भाग त्याग लक्षण कर विद्या की उत्पत्ति का भी संभव है । और उत्पन्न हुई विद्याकर के सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्मात्मा के अंश भेद का आवरण जो अज्ञान तिसका बाध होता है ॥ तिस से निर्दोष तथा सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म मैं हूँ इस प्रकार के स्वरूप से अधिकारी अवस्थित हूँ आकृतार्थता को प्राप्त होता है । इस रीति से अब इस आनंदपद की व्याख्या को उपसंहार करते हैं । जिस कारण से विनिगमना विहादि दोषों का अभाव है । तिसी कारण से शास्त्र तथा गुरु के प्रसाद से प्राप्त जो तत्त्वमस्यादि महावाक्य तिन से उत्पन्न हुए आत्मसाक्षात्कार से मोक्ष के आविर्भाव का प्रतिबंध जो अज्ञान तत्कार्य तिसका बाध होता है । तिस से अनंतर नित्य तथा शुद्ध अज्ञान तथा मुक्त स्वभाव और अद्वितीय तथा आनंद स्वरूप ब्रह्म मैं हूँ । ऐसे यह अधिकारी मानता है । तिस से अनंतर सर्वकर्तव्य का अभाव रूपकृत कृत्यता को प्राप्त होता है ॥ इसी कारण से ग्रंथ के आदिश्लोक में श्रेष्ठ कथन किया है ।

❀ आत्मानमानंदं साक्षात् विनिश्चित्य ❀

अ० ॥ आनंद स्वरूप आत्मा का श्रुति से साक्षात् निश्चय करके यह अधिकारी कृतार्थ होता है ॥ इति ॥ पूर्व कथन की हुई युक्तियों को श्रुतिमूलकता होने पर तिनमें आभास पने की निवृत्ति करने के लिये आत्मा की आनंद स्वरूपता कथन करने वाली श्रुतियों को पठन करते हैं ।

❀ विज्ञानमानंदं ब्रह्म ❀ (बृ० उ० अ० (५) ब्रा० ६ पं० २८)

अ० ॥ विज्ञानतथाआनंदस्वरूपब्रह्म है ॥ और

❀ कोह्येवान्यात्कः प्राण्याद्यद्येपत्राकाशआनंदो नस्यात् ॥ तै० उ० ब्र० व० अनु० ७) ❀

अ० ॥ यदिहार्दाकाशमें यहआनंदस्वरूपआत्मानहोतोअपान चेष्टाकोकौनकरेतथा प्राणनचेष्टाकोकौनकरो। क्योंकिआनंदपूर्वकही प्राणऔरअपानकी क्रियाहोतीहै ॥ और

❀ सैषानंदस्य मीमांसाभवति॥ तै० उ० ब्र० व० अनु० ८ ❀

अ० ॥ सोयहआत्माके आनंदस्वरूपका विचारहै ॥ इत्यादि वाक्यसेलेकर ॥

❀ यश्चायं पुरुषेयश्चासावादित्येसएकएव ॥ ❀

(तै० उ० ब्र० व० अनु० ८)

अ० ॥ जोयहआनंदस्वरूपआत्माइसशरीरमेंहै। औरजोवहआनंद स्वरूपआत्माआदित्यमंडलमें है वहएकहीहै । इत्यादिवाक्यपर्यंत तैतरेयउपनिषद्गत आनंदवल्लीमें आत्माकीआनंदस्वरूपता कथन कीहै । औरतिसीउपनिषद्गतभृगुवल्लीमें ॥

❀ भृगुर्वैवारुणिवरुणापितरमुपससार अधीहिभग वोब्रह्मेति ॥ तै० उ० मृ० व० अनु० १ ❀

अ० ॥ वरुणऋषिकापुत्रभृगुऋषि अपनेवरुणापिताकेसमीप प्राप्तहुआ । औरकहाहेभगवन्मुझेआपब्रह्मउपदेशकरो ॥ इत्यादि वाक्यसेलेकर ॥

❀ आनंदोब्रह्मेतिव्यजानात् तै० उ० मृ० व० अनु० ६ ❀

अ० ॥ आनंदस्वरूपब्रह्म है ऐसे भृगु ने जाना इस वाक्य पर्यंत आत्मा की आनंदस्वरूपता कथन की है । और छांदोग्य उपनिषद् के षष्ठम अध्याय में भी ॥ (यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति)

अ० । जो व्यापक वस्तु है वह सुखस्वरूप है । परिच्छिन्न वस्तु में सुख नहीं है । इत्यादि वाक्यों के आत्मा की आनंदरूपता कथन की है । यहां अनेक वेद की शाखागत श्रुतियों को पढ़न करने वाले सिद्धांती ने आत्मा की आनंदस्वरूपता के प्रतिपादक वाक्यों का स्वार्थ में तात्पर्य है । इसमें अभ्यास रूप लिंग दिखलाया है ॥ और केवल श्रुति प्रमाण से ही आत्मा की आनंद रूपता सिद्ध नहीं किंतु मैत्रेयी ब्राह्मण में युक्ति कर भी आत्मा की आनंद रूपता सिद्ध है ॥ तथा हि ॥

❖ नवात्ररेपत्युः कामायपतिः प्रियो भवति आत्म
नस्तु कामायपतिः प्रियो भवति । ६० उ० मै० ब्रा० कं० ६

अ० ॥ अरे मैत्रेयी पतिकी कामना के लिये स्त्री को पतिप्यार नहीं । किंतु अपनी कामना के लिये पति तिसको प्यारा है । इत्यादि वाक्य से लेकर

❖ नवात्ररे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मन
स्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ॥ (६० उ० मै० ब्रा० कं० ६)

अ० ॥ अरे मैत्रेयी सर्वकी कामना के लिये सर्वप्यारे नहीं किंतु आत्मा की कामना के लिये सर्वप्यारे हैं । इस वाक्य पर्यन्त आत्मा की आनंद स्वरूपता युक्ति से कथन की है या ते पूर्व उक्त युक्तियों आभासरूप नहीं । इति । ४२

❖ अथ पूर्वपक्ष । आत्मा की आनंदरूपता की
असिद्धि निरूपण ❖

आत्माकी आनंदरूपताश्रुतियोंने प्रतिपादनकी है। ऐसे कथन करनेवाले सिद्धांतीने ब्रह्मरूप आत्मामें आनंदत्वधर्मकथन किया है। यह हमको प्रतीत होता है। तैसे सत्त्वित् आदि शब्दोंके प्रयोगकर्ता सिद्धांतीने ब्रह्मात्मामें सत्त्व तथा चित्त्वादिधर्मभी अर्थसे कथन किये हैं। यह भी प्रतीत होता है। तिसमें हम यह विचार करते हैं। हे सिद्धांतिन् आनंदत्वादिधर्म आत्मामें वर्तते हैं। अथवा नहीं वर्तते। आनंदत्वादिधर्म आत्मामें हैं इस प्रथम पक्षमें यह विचारणीय है। क्या वह धर्म सत्य हैं अथवा आरोपित हैं प्रथम पक्षमें तो द्वैत की प्राप्ति होगी और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता। क्योंकि वह आनंदत्वस्वरूप से ही कल्पित है। अथवा आत्मामें ही वह कल्पित है। यह विचारकर्तव्य है प्रथम पक्षमें तो धर्मोंको अनानंदरूपता की प्राप्ति होगी। अर्थ यह कोई पदार्थ आनंदस्वरूप नहीं सिद्ध होगा ॥ अथ द्वितीय पक्षको अन्य अर्थके कथन द्वारा निषेध करते हैं ॥ जैसे रजतत्व जिस अधिकरणमें आरोप किया जाता है वह अधिकरण रजतरूप नहीं होता ॥ तैसे आनंदत्व भी आत्मामें आरोपित है वह आत्मा आनंदस्वरूप नहीं हो सकता ॥ शंका ॥ हेवादिन् यह अनानंदत्व जो आत्मामें तुम आपादन करते हो सो क्या है। आनंदसे भिन्न को अनानंदत्व कहते हो। अथवा आनंदत्वके अनधिकरणत्वको अनानंदत्व कहते हो? प्रथम पक्षमें तो हमको आपाद्य की अप्रसिद्धि है क्योंकि आनंदसे भिन्न घटादिक अनात्मा हैं। आत्मा आनंदसे भिन्न नहीं याते आपादन करने योग्य आनंदत्व तिसमें नहीं प्राप्त होता ॥ समाधान ॥ यद्यपि आनंद भिन्नत्वरूप अनानंदत्व सिद्धांतीके प्रति आपादन करने योग्य नहीं तथापि आनंदत्वानधिकरणत्वरूप अनानंदत्व तिसमें होनेकर आनंदरूपता सिद्ध नहीं हो सकती। इसी अर्थको सिद्ध करनेके

लिये प्रसंगसे आत्मामें आनंदत्व असत्तु है इस आद्यद्वितीयपक्षको भी दूषित करते हैं। और यह द्वितीयपक्ष भी नहीं संभवता। क्योंकि आनंदत्व के अनधिकरणमें आनंदव्यवहार कहीं देखनेमें नहीं आता। अर्थ यह कि व्यवहारनाम शब्दप्रयोग का है। और आनंदपदकी आनंदत्वविशिष्टमें ही शक्तिग्रहण की है या तो आनंदत्व के अनधिकरणघटादिकोंमें आनंदपदका प्रयोग लक्षणव्यवहार जैसे देखनेमें नहीं आता। तैसे आत्मामें भी आनंदपदका प्रयोग लक्षणव्यवहार नहीं होगा। इस प्रकार आनंदत्वानधिकरणत्वरूप अनानंदत्वही सिद्धांती के प्रति आपादन करने योग्य है। शंका। हेवादि नृजहां प्रसिद्ध विषयानंदोंमें आनंदपदकी शक्तिग्रहण होती है। तहां आनंदतत्त्वयाव्यभिचारदोष के दूर करने के लिये आनंदत्वविशिष्ट आनंदव्यक्तियोंमें आनंदशब्द प्रवृत्त हो परन्तु यह ब्रह्मानंद तो उपस्थित नहीं है। क्योंकि सर्वप्रमाणोंसे अतीत होने के अलौकिक है। तिस कारणसे आनंदत्वानधिकरणब्रह्मानंदमें लौकिक व्यवहारका अभाव आपादन करना हमको अनिष्ट नहीं। और (यौ वैभूमा तत्सुखम्) इस वैदिक सुखादिशब्द के प्रयोगसे परीक्षकपुरुषों को तिस अलौकिक ब्रह्मानंदमें आनंदव्यवहार संभवता है। जैसे स्वर्गमें वैदिक सुखादिशब्दसे सुखव्यवहार परीक्षकों को स्वीकार है। या तो आत्मा आनंदस्वरूप है ॥ समाधान ॥ हे सिद्धांतिन् अलौकिक आनंद के स्वीकार करे हुए ब्रह्मानंदमें वैदिकशब्दोंसे आनंदव्यवहार सिद्ध हो जायेगा ऐसे कथन करने वाले आप हमारे कर प्रत्यक्षने योग्य हो। क्या पदार्थरूपता के वेद अलौकिक आनंदको प्रतिपादन करता है। अथवा वाक्यका अर्थरूपता के प्रतिपादन करता है? प्रथम पक्ष कहो तो नहीं संभवता। क्योंकि लौकिक तथा वैदिक पदों का एक ही अर्थ है ॥ शंका ॥ लौकिक

आत्माकी आनंदरूपताश्रुतियोंने प्रतिपादनकी है। ऐसे कथन करनेवाले सिद्धांतीने ब्रह्मरूप आत्मामें आनंदत्वधर्मकथन किया है। यह हमको प्रतीत होता है। तैसे सतचित् आदि शब्दोंके प्रयोगकर्ता सिद्धांतीने ब्रह्मात्मामें सत्त्व तथा चित्त्वादिधर्मभी अर्थसे कथन किये हैं। यह भी प्रतीत होता है। तिसमें हम यह विचार करते हैं। हे सिद्धांतिन् आनंदत्वादिधर्म आत्मामें वर्तते हैं। अथवा नहीं वर्तते। आनंदत्वादिधर्म आत्मामें हैं इस प्रथम पक्षमें यह विचारणीय है। क्या वह धर्म मत्त्य है अथवा आरोपित है प्रथम पक्षमें तो द्वैत की प्राप्ति होगी और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता। क्योंकि वह आनंदत्वस्वरूप से ही कल्पित है। अथवा आत्मामें ही वह कल्पित है। यह विचार करने पर प्रथम पक्षमें तो धर्मीको अनानंदरूपता की प्राप्ति होगी। अर्थ यह कोई पदार्थ आनंदस्वरूप नहीं सिद्ध होगा ॥ अब द्वितीय पक्षको अन्य अर्थके कथन द्वारा निषेध करते हैं ॥ जैसे रजतत्व जिस अधिकरणमें आरोप किया जाता है वह अधिकरण रजतरूप नहीं होता ॥ तैसे आनंदत्व भी आत्मामें आरोपित है वह आत्मा आनंदस्वरूप नहीं हो सकता ॥ शंका ॥ हे वादिन् यह अनानंदत्व जो आत्मामें तुम आपादन करते हो सो क्या है। आनंदसे भिन्न को अनानंदत्व कहते हो। अथवा आनंदत्वके अनधिकरणत्वको अनानंदत्व कहते हो? प्रथम पक्षमें तो हमको आपाद्य की अप्रसिद्धि है क्योंकि आनंदसे भिन्न घटादिक अनात्मा हैं। आत्मा आनंदसे भिन्न नहीं याते आपादन करने योग्य आनंदत्व तिसमें नहीं प्राप्त होता ॥ समाधान ॥ यद्यपि आनंद भिन्नत्वरूप अनानंदत्व सिद्धांतीके प्रति आपादन करने योग्य नहीं तथापि आनंदत्वानधिकरणत्वरूप अनानंदत्व तिसमें होनेकर आनंदरूपता सिद्ध नहीं हो सकती। इसी अर्थको सिद्ध करनेके

लिये प्रसंगसे आत्मा में आनंदत्व अस्तवै इस आद्यद्वितीयपक्षको भी दूषित करतें हैं। और यह द्वितीयपक्ष भी नहीं संभवता। क्योंकि आनंदत्व के अनधिकरण में आनंदव्यवहार कहीं देखने में नहीं आता। अर्थ यह कि व्यवहारनाम शब्द प्रयोग का है। और आनंदपदकी आनंदत्वविशिष्टमें ही शक्तिग्रहण की है या ते आनंदत्व के अनधिकरण घटादिकों में आनंदपदका प्रयोग लक्षणव्यवहार जैसे देखने में नहीं आता। तैसे आत्मा में भी आनंदपदका प्रयोग लक्षणव्यवहार नहीं होगा। इस प्रकार आनंदत्वानधिकरणत्वरूप अनानंदत्व ही सिद्धांती के प्रति आपादन करने योग्य है। शंका। हेवादि नृजहां प्रसिद्ध विषयानंदों में आनंदपदकी शक्तिग्रहण होती है। तहां आनंत्य तथा व्यवभिचारदोष के दूर करने के लिये आनंदत्वविशिष्ट आनंदव्यक्तियों में आनंदशब्द प्रवृत्त हो परन्तु यह ब्रह्मानंद तो उपस्थित नहीं है। क्योंकि सर्वप्रमाणों से अतीत होने के अलौकिक है। तिस कारणसे आनंदत्वानधिकरणब्रह्मानंद में लौकिकव्यवहारका अभाव आपादन करना हमको अनिष्ट नहीं। और (यो वै भूमा तत्सुखम्) इस वैदिक सुखादिशब्द के प्रयोग से परीक्षक पुरुषों को तिस अलौकिक ब्रह्मानंद में आनंदव्यवहार संभवता है। जैसे स्वर्ग में वैदिक सुखादिशब्द से सुखव्यवहार परीक्षकों को स्वीकार है। या ते आत्मा आनंदस्वरूप है ॥ समाधान ॥ हे सिद्धांतिन् अलौकिक आनंद के स्वीकार करे हुए ब्रह्मानंद में वैदिकशब्दों से आनंदव्यवहार सिद्ध हो जायेगा ऐसे कथन करने वाले आप हमारे कर्ण छूने योग्य हो। क्या पदार्थरूपता करवेद अलौकिक आनंदको प्रतिपादन करता है। अथवा वाक्यका अर्थरूपता कर प्रतिपादन करता है? प्रथमपक्ष कहो तो नहीं संभवता। क्योंकि लौकिक तथा वैदिक पदों का एक ही अर्थ है ॥ शंका ॥ लौकिक

प्रमाणकीविषयतातथाअविषयताकर विषयानंदतथाब्रह्मानंदकीविलक्षणतापूर्वकथनकीहै ॥ समाधान ॥ इसअवांतरविषयतासे यदि लौकिक तथावैदिकपदोंका एकअर्थनहींमानोगेतोलोकवेदाधिकरणन्यायकाविरोधप्राप्तहोगा। औरजैसेनीलपीतादि अवांतरअनेकप्रकारकापटव्यक्तियोंकापरस्परभेदहुएभी सामान्यपटत्वरूपताकर उपस्थित हुए तिनसर्वपटोंकोपटशब्दकीवाच्यताहै ॥ तैसेसर्वआनंदव्यक्तियोंकापरस्परअवांतरभेदहुएभी सामान्यआनंदत्वरूपताकर वेष्टितकीहुई तिनसर्वआनंदव्यक्तियोंको आनंदपदकी वाच्यतायुक्तहीहै ॥ और यदिऐसेकहो कि लौकिक आनंदशब्दकीही आनंदत्वविशिष्टव्यक्तिमें शक्तिग्रहणकीहै वैदिकआनंदशब्दकीनहीं। सोयहकथनभी समीचीन नहीं । क्योंकिलौकिकतथावैदिक शब्दोंकाअभेदहै। औरतिनशब्दोंकेभेदकाकथन स्वरादिउपाधिप्रयुक्तहै । इसप्रकारआनंदत्वकेअनधिकरणयात्मामें आनंदव्यवहारनहींसंभवता । लोकवेदाऽधिकरणन्यायजोपूर्वकहाथा। सोपूर्वमीमांसाके प्रमाणलक्षणरूपप्रथमअध्यायमें स्थितहै ॥ तथाहि

❧ प्रयोगचोदनाभावादर्थैकत्वमविभागात् ॥❧

पृ० शी० ॥ १ ॥ ३ ॥ २६ ॥

अ० ॥ इमयाकृतिअधिकरणमें उपोद्घातरूपताकरलौकिक तथावैदिकपदपदार्थोंकाभेदतथाअभेद विचारकियाजाताहै ॥ तहांयह अधिकरणरचनाहै । लौकिकतथावैदिकपदपदार्थोंकाभेदहै । अथवा अभेदहै?। इससंजयकेहुएपूर्वपक्षप्राप्तहुआ लोकतथावेदमेंपदोंकाभेद है । क्योंकिस्वर्गादिधर्मकाभेद प्रतीतहोताहै ॥ औरपदोंकेभेदसेतिन

के अर्थका भी भेद है ॥ ऐसे पूर्वपक्षके प्राप्त हुए सिद्धांत निरूपण करते हैं ॥
 (अर्थेकत्वं) पद तथा पदार्थों का भेद है। क्योंकि (अविभागात्) यहाँ
 प्रत्यक्ष प्रत्यभिज्ञा होती है। जो ही वर्ण लौकिक पद में प्रतीत होते हैं वही वर्ण
 वैदिक पद में प्रत्यभिज्ञा के विषय प्रतीत होते हैं ॥ और वर्णात्मक ही पद होता
 है। तिस कारण से लौकिक पद से वैदिक पद का भेद नहीं सिद्ध हो सकता ॥
 और जो स्वरादि धर्म भेद से पदों का भेद पूर्वपक्षीने कहा था वह भी नहीं संभ
 वता ॥ क्योंकि अर्थ के भेद का कारण जो धर्म भेद है वही पद के भेद का हेतु
 है ॥ और सर्व ही धर्म भेद के हेतु नहीं संभवते ॥ क्योंकि विकल्प से होने
 वाले स्वरादिकों में व्यभिचार है ॥ अर्थ यह तहाँ धर्म का भेद हुआ भी पद का
 भेद नहीं है ॥ इस प्रकार लौकिक तथा वैदिक पद पदार्थों का भेद माने हुए
 क्रिया तथा कारक का संबंध रूप प्रयोग विधियों का भी संभव है ॥ और यदि
 तिन का एकत्व नहीं मानेंगे तो वैदिक पदार्थ के ज्ञान का उपाय न होने का
 और संबंध को शास्त्र मात्र कर सिद्ध होने से (प्रयोग चोदनाभावात्) प्रयोग
 विधियों का अभाव प्राप्त होगा। या तो लौकिक तथा वैदिक पदार्थों का
 भेद ही स्वीकार करने योग्य है। इस प्रकार पदार्थ रूपता के वेद अलौकिक
 आनंद को प्रतिपादन करता है यह प्रथम पक्ष नहीं संभवता। और वाक्या
 र्थ रूपता के वेद आनंद स्वरूपता को प्रतिपादन करता है यह द्वितीय पक्ष
 भी संभवीचन नहीं। क्योंकि वाक्यार्थ स्वरूपता का भी आनंदत्व का प्रति
 पादन नहीं कर सकते। अखंडार्थ में वेद का तात्पर्य स्वीकार है। विशिष्ट
 अर्थ में नहीं। और हमारे मत में तो लौकिक तथा वैदिक सर्व वाक्यों में
 वाक्यार्थ अलौकिक ही हैं। या तो लोक वेदाधिकरण न्याय का विरोध नहीं।
 और ब्रह्मानंद को कामना का विषय होने से भी अलौकिक पद नहीं। क्योंकि

सर्वप्रकारसे अलौकिक आनंदमें किसीको भी कामना नहीं संभवती। स्वर्गादिकोंको भी लौकिक सुखके सजातीय होनेसे ही पुरुषोंकी तिनमें कामना होती है॥ इस प्रकार द्वैतापत्ति आदिक दोषोंसे आनंदत्व का सतत तथा असत् रूपता कर आत्मा में निरूपण होनेसे आत्मा आनंदरूप नहीं॥ इति पूर्वपक्ष॥

❀ अथ एकदेशी संक्षेप शारीरकाचार्यके मतसे

पूर्वपक्षका समाधान निरूपण । ❀

इस पूर्वपक्षका समाधान कोई एक आचार्य ऐसे कहते हैं। अनानंदकी व्यावृत्ति मात्र ही आनंदत्व है प्रसिद्ध विषयानंदस्वरूप ही आत्मा नहीं। क्यों कि धर्म धर्मिभाव अनंगीकार है यह वार्ता सर्वज्ञात्ममहामुनियों ने कथन की है

❀ ब्रह्मेतराणि किल नास्य वपूषिते पांबुद्धौ स्फुरन्त्य
पररूपनिवृत्तिभावात्॥

अ० ॥ ब्रह्मसे भिन्न नित्यत्वादिक इस ब्रह्मका स्वरूप रूपता कर बुद्धिमें नहीं स्फुरण होते। क्योंकि तिन नित्यत्वादिकोंको कालपरिच्छेदादिकोंकी निवृत्तिरूपता है ॥ याते “आत्मानंदः” इसका क्या अर्थ है ऐसी अपेक्षाके हुए कहते हैं। अनानंदकी व्यावृत्ति मात्र ही आनंदपदका अर्थ है। तिस कारणसे अनानंदकी व्यावृत्तिरूप उपाधिसे आत्मा में आनंदशब्द प्रवृत्त होता है॥ आनंदत्वधर्मको सन्मुखस्वरूप आनंदशब्द आत्मा में नहीं प्रवृत्त होता॥ याते पूर्वउक्त विकल्पोंका अवकाश नहीं॥ शंका ॥ आनंदत्वधर्मकी न्याई वह व्यावृत्ति भी क्या सत है अथवा असत है?। इस विकल्पसे द्वैतापत्त्यादि दोष पूर्वकी न्याई ही अवस्थित हैं॥ समाधान ॥ हेवादि नव्यावृत्तिसे द्वैतकी प्राप्ति नहीं होती॥ क्योंकि तिस व्यावृत्तिको अधिष्ठान आत्मा से भिन्न पान नहीं है ॥ इस प्रकार आनंदत्वधर्मको ले कर जो दूषणवादी ने

कहेथेतिनकोनिषेधकरके अतिसीन्यायसेज्ञानत्वादिधर्मप्रयुक्तदूषण समुदायकोनिषेधकरतेहैं ॥ अज्ञानव्यावृत्तिहीज्ञानशब्दसेप्रतीतहोती है ॥ यातेअज्ञानकीव्यावृत्तिस्वरूपआत्मामेंही ज्ञानशब्दकीप्रवृत्तिहै ज्ञानत्वधर्मविशिष्टआत्मामें ज्ञानशब्दकीप्रवृत्तिनहीं ॥ यहरीति सत्यादिशब्दोंमेंभीजानलेनी ॥ इति ॥

❀ अथ एकदेशीके मतकी असमीचीनताकानिरूपण ❀

सोयहएकदेशीकामतसमीचीननहीं। तथाहि । आत्मामेंआनंदादि शब्दकीप्रवृत्तिमेंव्यावृत्तिक्याउपाधिहै। अथवाआनंदादिपदोंकावहवाच्य है? प्रथमपक्षकहोतोवहनहीं संभवता। क्योंकिव्यावृत्तिकोआत्मासेभिन्न तुमनेमानानहीं। इसीसेतिसकोउपाधिरूपतायुक्तनहीं । औरद्वितीयपक्ष भीनहींसंभवता। क्योंकिव्यावृत्तिकिसीपदकाअर्थनहींहै। औरव्यावृत्तिको पदार्थमानेहुएअपोहवादकीप्राप्तिभीहोगी॥ औरअन्योऽन्याश्रयदोषकी प्राप्तिसेअपोहवादभीयुक्तनहीं। क्योंकिव्यावृत्तिकीसिद्धिअर्थव्यावर्तक धर्मअवश्यकथनकरनेयोग्यहै। अन्यथाव्यावृत्तिकीही सिद्धिनहींहोगी औरव्यावर्तकधर्मकीसिद्धिव्यावृत्तिकेआधीनहै ॥ औरयदिस्वरूपसे व्यावृत्तिकीसिद्धिकहो तोयहभी समीचीननहीं। क्योंकिआत्माअव्या वृत्तस्वरूपहै । यदिआत्माकोअव्यावृत्तस्वरूपनहींमानोगे तोवस्तुपरिच्छेदयुक्तहोनेसे तिसकोअब्रह्मपनाप्राप्तहोगा ॥ यातेयहमतसमीचीन नहीं ॥ इति ॥

❀ अथ एकदेशिविवरणाचार्यकीरीतिसेपूर्व

पक्षकासमाधान ❀

औरकोईअन्यथाचार्ययहकहतेहैं । आनंदत्वादिधर्म जिनमें

कल्पितहैं वहहीआनंदादिपदोंकेअर्थ लोकतथावेदमेंप्रसिद्धहैं॥शंका
लोकमेंतोविषयजन्यसुखकोहीआनंदकहतेहैं। तिसमेंआनंदत्वकल्पित
नहीं ॥ समाधान ॥ हेवादिन् तिसविषयसुखमेंभीआनंदत्वकल्पित
है ॥ औरतिनकाधर्मधर्मिभावभेदाज्जेदरूपताकरननिरूपणहोनेकर
अयुक्तहै ॥ शंका ॥

❀ आत्माकल्पितःकल्पितधर्माऽधारत्वात् ।

मिथ्यारजतवत् ❀

अ०॥ आत्माकल्पितहै। कल्पितधर्मकाआधारहोनेसे । जोजो
कल्पितधर्मकाआधारहोताहै । सोसोमिथ्याहोताहै। जैसेमिथ्यारजत
है॥ इति ॥ इसअनुमानसेआत्माकोकल्पितपनामानेहुए पुरुषार्थरूप
ताकरवहउपादेयनहींहोगा ॥ समाधान ॥ हेवादिन् आनंदत्वको
कल्पितमाननेकरआनंदरूपताकी किंचित्मात्रभीहानिनहीं । क्योंकि
धर्मकोअनुपादेयहोनेकरतिसके आश्रयभूतव्यक्तिकोहीपुरुषार्थरूपता
सेउपादेयताहै। औरजोकल्पितधर्मकाआधारहोताहै सोकल्पितहोताहै
इसव्याप्तिकाकल्पितरजतके आधाररूपशुक्तिखंडमें व्यभिचारहै । तिस
कारणसेयहांयहअनुमानजानना ॥

❀ विमतःआत्माआनंदरूपःआनंदत्वाधिकरणात्वात्।

लौकिकानंदवत् ॥❀

अ० ॥ विवादकाविषयआत्मा आनंदस्वरूपहै।आनंदत्वका
अधिकरणहोनेसे ॥ जोजोआनंदत्वकाअधिकरणहै।सोसोआनंदरूप
है॥ जैसेप्रसिद्धविषयानंदहै॥इति॥ इसप्रकारआनंदत्वधर्मकोसन्मुख
रखकरआनंदशब्द आत्मामेंप्रवृत्तहोताहै ॥ औरतिसकोकल्पितहोने

करद्वैतकीप्राप्तिभीनहींहोती ॥ इति ॥

❀ अथएकदेशीकेमतकानिराकरणा ॥❀

सोयहएकदेशीकामतभी विनाविचारसे सुंदरवस्तुकीन्याई सुंदरभासताहै । विचारकरनेसे समीचीननहीं । यहांयहतात्पर्यहै । 'आनंदत्वधर्मआनंदशब्दकीप्रवृत्तिमें उपलक्षणहै।अथवाविशेषणहै॥ प्रथमपक्षतोनहींसंभवता ॥ क्योंकिव्यक्तिमात्रमेंशक्तिहोनेसेअनंत शक्तियोंकीकल्पनाप्राप्तहोगी । औरआनंदपदसेकिसीविशेषव्यक्तिकी प्रतीतिभीनहींहोगी । क्योंकिआनंदत्वधर्म सर्वआनंदव्यक्तियोंका समानउपलक्षणहै । किसीविशेषव्यक्तिकाउपलक्षणनहींमाना।याते प्रत्येकव्यक्तिकीसमानरूपतासे उपस्थितिहुए किसीविशेषव्यक्तिकी प्रतीतिआनंदपदसेनहींहोगी । औरद्वितीयपक्षमें यहविचारकर्तव्यहै क्याशुद्धव्यक्तिसेविशिष्टपदार्थभिन्नहै। अथवाअभिन्नहै॥ इनमेंप्रथम पक्षतोनहींसंभवता । क्योंकिविशिष्टकोहीआनंदपदका अर्थहोनेसे व्यक्तिमात्रमें आनंदपदकीवाच्यताअनुपपन्नहै।औरतिसविशिष्टको आनंदपदकाअर्थमानेहुएअखंडवाक्यार्थकीअसिद्धिहोगी।औरद्वितीय पक्षभीनहींसंभवता॥ क्योंकिकल्पितआनंदत्वके आश्रयकोअनानंद त्वप्रसंगकीनिवृत्तिनहींहोसकती ।' इसीअर्थकोस्पष्टकरतेहैं ।' जो धर्म जिसअधिकरणमें स्वाभाविकनहीं । वहअधिकरणतिसधर्म वालापदार्थनहींहोसकता।यदिऐसेनहींमाने तोकल्पितरजतकेआधार शुक्तिकोभीरजतपदकीअर्थताहोगी। यहांयहतात्पर्यहै । कल्पितधर्म केआश्रयकोवास्तवसे तिसधर्मकीआधारतानहीं । यदिऐसेनमानेतो धर्मकोकल्पितपनाही नहींसिद्धहोगा ॥ किंवा ॥

❀ आत्माकल्पितः कल्पितधर्माधारत्वात् ॥

।मथ्यारजतवत् । ❀

इसपूर्वोक्तअनुमानसेआत्माकोकल्पितपनाभीहोगा।औरशुक्ति
खंडमेंजोहेतुका व्यभिचारपूर्वकहाया सोभीनहींसंभवता । क्योंकि
कल्पितरजतकी आधारता शुक्तिकेस्वरूपप्रयुक्तनहीं । यदिआधारता
कोशुक्तिकेस्वरूपप्रयुक्तमानोगे तोरजतकीनिवृत्तिहीनहींहोगी। और
अज्ञातशुक्तिकोही आधारताहै शुद्धकोनहीं।औरअज्ञानविशिष्टशुक्ति
कोशुद्धशुक्तिरूपताकाअभावहै । तिसकारणसेहेतुव्यभिचारीनहीं ।
इसप्रकारदोनोंएकदेशियोंकेमतोंको निषेधकरके अवसिद्धांती स्वमत
कीरीतिसे पूर्वपक्षकासमाधाननिरूपणकरताहै ॥

❀ अथसिद्धांतरीतिसे पूर्वपक्षकासमाधान ❀

मू०। उपाधिसंश्रयोह्यात्मा आनंदत्वंतदाश्रयः ।

विशिष्टशक्यपक्षेतु व्यक्तिर्वाशक्तिगोचरः ॥४३

तारकखंड ॥ यहआत्मदेवउपाधियुताहो, विवरूपधरेसुखआनंदतासो

इमवाच्यविशिष्टविषेयहरीता, पदवाचलव्यक्तिविषेसुनमीता।

टी०॥ यदिलोकमेंआनंदत्वधर्मविशिष्ट आनंदहीआनंदशब्द
काअर्थहै तोइसपक्षमेंभीआत्माही आनंदपदार्थहै । क्योंकिविशिष्ट
पदार्थविशेषणतथाविशेषादिरूपहीहोताहै । तेसमानेहुए विशेषणजो
आनंदत्वसामान्यहै।औरतिसकाआश्रयभूतजोआनंदव्यक्तिहैवहदोनों
आत्माहीहैं। आत्माकोउभयरूपताकिसप्रकारहै । ऐसीजिज्ञासाकेहुए
कहतेहैं जिसेएकहीस्वरूपजोसर्वकल्पनासेरहितमुखतयाचन्द्रादिहैं ॥
तिनमेंबिंबतथाप्रतिबिंब औस्वरूपयहतीनप्रकारकाव्यवहार उपाधिमें

प्रविष्टत्वके आरोपसे अनन्तर देखनेमें आता है। यह पूर्व लक्षणास्थलमें कह आए हैं। तैसे सर्वकल्पनासे रहित एक ही आत्मा अन्तःकरण की वृत्ति विशेष रूपाना उपाधियोंमें प्रतिविम्बित होकर तिन वृत्तियोंकर अवच्छिन्न हुआ व्यक्ति रूपता को प्राप्त होता है। और उपाधियोंकर भेद को प्राप्त हुई तिन आनन्द व्यक्तियोंमें विवकीन्याई अनुगत बुद्धि का उत्पाद कहनेसे आत्मा ही आनन्द त्वस्वरूप सामान्य को प्राप्त होता है। या ते सर्वप्रकारसे मुख्य आत्मा ही आनन्द पद का अर्थ है। इस प्रकार व्यक्ति ही अनुगत बुद्धि का कारण होनेसे सामान्य शब्द का वाच्य है। और विशेषाकार बुद्धि का हेतु होनेसे व्यक्ति शब्द का वाच्य है। यह वार्त्ता तंत्र स्तननाम ग्रंथके कर्त्ताने भी कही है ॥

❀ नहि जातिर्नामव्यक्तेरर्थांतरभूतं किमपितत्त्व
मस्त्यपितुवस्त्वेव हि एकं व्यावृत्तानुगततया बुद्ध्यते।

अ० ॥ व्यक्तिसे भिन्न जातिनाम कोई भी पदार्थ नहीं है ॥ किंतु एक ही पदार्थ भिन्न भिन्न तथा अनुगतरूपता कर जाना जाता है ॥ इति आत्मा की उभयरूपता लोकमें अग्रसिद्ध है इस अग्रिमाय को लेकर पक्षांतर को सिद्धांती निरूपण करता है। अथवा व्यक्ति ही लोकमें तथा वेदमें पद की शक्तिका विषय है ॥ शंका ॥ व्यक्ति शक्तिवादमें सर्व व्यक्तियोंमें शक्तिका ग्रहण होता है। अथवा किन्ही विशेष व्यक्तियोंमें शक्तिका ग्रहण होता है? प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि व्यक्तियों को अनन्त होनेकर पदसे सर्व की उपस्थिति अनुपपन्न है और द्वितीय पक्ष भी असंगत है। क्योंकि जिन विशेष व्यक्तियोंमें पद का वाच्य वाचक भाव संबंध ग्रहण हुआ है तिनसे भिन्न व्यक्तियोंमें प्रवर्तमान हुआ शब्द अपने वाच्यार्थसे व्यभिचारी हो जायेगा। और यदि तिन व्यक्तियोंमें भी अन्य शक्तिकी कल्पना करें तो अनन्त शक्तियों

कीकल्पनाप्राप्तहोगी ॥ यातेव्यक्तिशक्तिपक्षत्रयुक्तहै ॥ समाधान ॥
 हेवादिन्जहांदोनोपक्षोंमें तुल्यदोषहोतहांपरिहारकीभीतुल्यताहोती
 है ॥ सोयहांविशिष्टशक्तिपक्षमेंभी आनंत्यतथाव्यभिचारदोषकीतुल्य
 ताहै ॥ अवग्रहानंत्यादिदोष विशिष्टशक्तिपक्षमेंभी उपपादनकरनेके
 लिये सिद्धांतीविशिष्टकी अनेकरूपताकोनिरूपणकरताहै ॥ विशेषण
 कोएकहुएभीविशेष्योंके भेदसे विशेष्यविशेष्यप्रतिविशिष्टकाभेदहै ॥
 जैसेघटत्वरूप विशेषणकोएकहुएनी धटव्यक्तिरूपविशेष्यकोअनंत
 होनेकर विशिष्टभीअनंतहैं ॥ औरयदिऐसेकहोकिविशेषणकोएकहोने
 करविशिष्टकीभीएकतासंपादनहोसकतीहै सोयहकथनभीअयुक्तहै ।
 क्योंकिअशक्यअर्थके संपादनकरनेकोकोईभीसमर्थनहींहोसकता ॥
 औरवहविशिष्टकीएकता असत्होनेसेजाननेयोग्यभीनहीं ॥ याते
 विशिष्टकोपदका वाच्यमाननेमेंभी आनंत्य तथाव्यभिचारदोष
 अवश्यहीप्राप्तहोताहै ॥ शंका ॥ व्यक्तिकोनानाहुएअनुगतव्यवहार
 कैसेसिद्धहोगा ॥ औरवाच्यभूतव्यक्तिकी अन्यअवाच्यपदार्थोंसे
 भिन्नरूपताकाप्रतीतिकैसेहोगी । औरग्रहानंत्यादिदोषकापरिहारकैसे
 है ॥ समाधान ॥ हेवादिन्जिसकारणमे विशिष्टपक्षमेंभीदोषोंकी
 तुल्यताहैतिसकारणसेआनंदपदकाअवाच्यजोवाच्यताकाअवच्छेदक
 आनंदत्वहै तिसकरही अनुगत वाच्यव्यवहारतथा अवाच्यकी
 व्यावृत्तिव्यवहारसंभवताहै ॥ शंका ॥ हेसिद्धांतिन्अवाच्यजोवाच्यता
 काअवच्छेदकहै तिसकरअनुगतादिव्यवहारहोताहैयहआपकैसेकथन
 करतेहोजिसकारणसेगोपदसेगोत्वविशिष्टव्यक्तिकीहीउपस्थितिहोतीहै ।
 याते तिसवाच्यता अवच्छेदकमेंभीपदकीशक्तिहै ॥ समाधान ॥ हेवादिन्

वाच्यता अथच्छेदकमैशक्तिकल्पनाकरनेमें प्रमाणका अभाव है । जैसे कारणताका अथच्छेदक कारणके स्वरूपसे वाह्य होता है । तैसे वाच्यताका अथच्छेदक भी वाच्यसे वाह्य है । तिसमें पदकी शक्ति नहीं ॥ और गोपदसे गोत्वकी प्रतीति तो शक्तिसे विना भी संभवती है । क्योंकि गोपदकी गो व्यक्तिमें शक्तिग्रहणसे उत्पन्नहुए संस्कारकेवलसे गोत्वकी उपस्थिति होती है ॥ तिसमें गोपदकी शक्ति नहीं ॥ शंका ॥ हे सिद्धांतिन् इस प्रकार आपकी भी उक्त संस्कारसहकृत आनंदादिपदसे आनंदत्वविशिष्ट आत्माकी प्रतीति होनेसे आनंदपदसे शुद्धकी उपस्थिति नहीं होगी । तिससे अखंडवाक्यार्थ नहीं संभवेगा ॥ समाधान ॥ हेवादिन् आनंदत्वभी पूर्वउत्तरीतिसे आत्मा ही है । क्योंकि व्यक्तिसे भिन्न सामान्य ग्रंथीकार नहीं है ॥ और उपाधिको वाच्यकोटिसे तटस्थ होनेकर आनंदादिपदसे शुद्ध लक्ष्यार्थकी ही उपस्थिति संभवती है ॥ याते अखंडार्थकी अनुपपत्ति नहीं ॥ यह अर्थ पूर्वनिरूपण कर आए हैं ॥ तिस कारणसे आत्माकी आनंदस्वरूपतामें कोई भी अनुपपत्ति नहीं ॥ इति ॥ ४३ ॥

❀ अथ आचार्यकी कृतकृत्यताका निरूपण ❀

इस प्रकार आत्माकी आनंदादिरूपता श्रुति तथा युक्तिसे निर्णीत हुए तत्त्वमस्यादि महावाक्यसे उत्पन्नहुए ब्रह्मात्माके साक्षात्कारसे आत्माके आवरक अज्ञानके बाधितहुए स्वात्मारामजो आचार्य है वह अथनीकृत कृत्यता जिज्ञासुके बोधकी दृढता अर्थप्रकट करता है ॥

मू० ॥ आनंदरूपमात्मानं सचिद्व्यतत्त्वकम् ।

अपूर्वादिप्रमाणोक्तं प्राप्याहंतदपुःस्थितः ॥ ४४ ॥

सैव ॥ जाहिनिमित्तसवी प्रियलागत तां हि तु आनंदरूपवत्त्वानां ।

बाधविहीनचिदेकसुभावजु आतमद्वैतविहीनलखाना।

श्रुतियुक्तिवखानतजाहसरूपह सोहमितीअपरोक्षपद्याना।

जानभलेनिजआतमकोततरूपअवस्थितमेंनिरखाना॥२७॥

टी० ॥ श्रुतिप्रमाण औतिसकेअनुसारीयुक्तिनेजिसआत्माको सत्त्वित्आनंदतथाअद्वैतस्वरूप प्रतिपादनकियाहै ॥ वहसत्त्वित् आनंदतथाअद्वैतस्वरूपब्रह्ममेंहूँऐसेतिसआत्माकोसाक्षात्कारकरकेतिस आनंदादिरूपताकरही मैंस्थितहुआहूँ ॥४४॥ शंका ॥ द्वैतसहितको अद्वयस्वरूपतानहींसंभवती ॥ क्योंकिद्वैतग्राहिप्रमाणकाविरोधहै ॥ समाधान ॥

मू० ॥ योहमद्वयवस्त्वेवसद्वयेदृढनिश्चयः ।

प्राप्यचानंदमात्मानंसोहमद्वयविग्रहः ॥४५॥

नास्तिब्रह्मसदानंदमितिमेदुर्मतिःस्थिता ।

कगतासानजानामियदाहंतद्वयुःस्थितः ॥४६॥

स्व० ॥ द्वैतविहीनजुषस्वमेंसदु तीयविषेदृढनिश्चितहुआ।

आनंदआतमलाभभएअव मैंअद्वितीयसरूपसुहुआ ।

सत्आनंदआतमनासतभान सदोपसदाधिरमेमनहुआ ।

नहिजानपरेकहिभागगयोजवहीततरूपअवस्थितहुआ॥३८॥

टी०॥ जोमैंप्रथमअद्वयवस्तुहुआहीप्रांतिकरद्वैतविशिष्टस्वरूपमेंदृढ निश्चयवालाहुआथा अवआनंदस्वरूपआत्माको प्राप्तहोकरसोईमें अद्वैतस्वरूपस्थितहूँ।तात्पर्ययहहै।अद्वैतस्वरूपआत्माकोसत्वरूपताकर अधिष्ठानताहोनेसेतिससे भिन्नद्वैतकोअज्ञानकरकल्पितपनाहै। याते द्वैतप्रतीतिकोअमपनाहोनेसे अद्वयस्वरूपतामें किसीप्रमाणकाविरो

धनहीं ॥ ४५ ॥ शंका ॥ ब्रह्मको सत्स्वरूप होने से अधिष्ठानता है यह कह्यन नही संभवता ॥ क्योंकि “ब्रह्म नहीं है” यह प्रतीति ब्रह्म के असत्पने को विषय करती है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् “अस्ति ब्रह्मेति चेद्वैद” इत्यादि श्रुतिजन्य बोध का विरोध होने से वह प्रतीति नहीं संभवती इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं ॥ “सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्म नहीं है” यह दुष्ट बुद्धि जो मेरे हृदय में स्थित थी जब मैं तिस ब्रह्म रूपता कर स्थित हुआ तब मैं नहीं जानता जो वह दुर्बुद्धि कहाँ चली गई ॥ ४६ ॥ शंका ॥ पूर्वोक्त दुर्मतिके नाश हुआ भी “देहो हम्” इत्यादि आंतरजगत्वाह्य जगत्की न्याई सत् है मिथ्या नहीं ॥ समाधान ॥ हेवादि जगत् हनुम्हारा दृष्टांत असिद्ध है “तथा हि” ॥

मू०—पूर्णानंदाद्वये तत्त्वे भेदादि जगदाकृतिः ।

बोधेऽबोधकृतैवासीदबोधः स्वगतोऽधुना ॥ ४७ ॥

संसाररोगसंग्रस्तो दुःखराशि रवापरः ।

आत्मबोधसमुन्मेषादानंदाब्धिरहो स्थितः ॥ ४८ ॥

स्वै० ॥ दैतविहीन सुपूजन आनंद तत्त्वविषे जगत् आकृत जोई ।

भासत थी तम आत्म केवल बोध भए अथ सो कहत गोई ॥

जग रोग न ते बहु पीडित थो दुखराशि समान भयो अथ मोई ।

बोध निजा तम के प्रगटे अथ आनंद सिन्धु विषे थिर होई ॥ ३६ ॥

टी० ॥ पूर्ण तथा आनंद और दैत से रहित अनारोपित स्वरूप आत्मा में मेरु आदि काह्य जगत् का आकार जो भासता है सो अज्ञान का कार्य होने से मिथ्या है ॥ शंका ॥ प्रपंच को अज्ञान का कार्य माने हुए भी अज्ञान को अबाधित होने से वह अज्ञान ब्रह्म की न्याई मत्प है । पाते तत् मूलक जगत् भी

मिथ्यानहीं किंतु सत्य है ॥ समाधान ॥ हेवादि नृजैसे दीपक के उदय हुए प्रतीत नहीं होता जो अन्धकार कहां भाग गया ॥ तैसे ब्रह्मात्मा का साक्षात्कार उदय होने से जानानहीं जाता जो अज्ञान कहां चला गया ॥ याते ज्ञान कस्वाध के योग्य अज्ञान मिथ्या है और तत् मूलक जगत् भी मिथ्या है ॥ ४७ ॥ शंका ॥ ज्ञान तथा अज्ञान का ही विरोध है । तिस कारण से सुख स्वरूप आत्मा का आवरण जो अज्ञान है । तिस की तत्त्वज्ञान से निवृत्ति हुए भी संसार की निवृत्ति कैसे होगी । क्योंकि तिस के साथ ज्ञान का विरोध नहीं ॥ समाधान ॥ हेवादि नृ उपादान की निवृत्ति होने से कार्य की भी निवृत्ति हो जाती है । जैसे तंतु रूप उपादान के नाश से पटकाना श हो जाता है ॥ इसी अभिप्राय से कहते हैं । बोध से पूर्व जो मैं संसार रूप रोग से अत्यंत ग्रस्त हुआ दुःख की राशि वत् अति दीन हुआ था । अब आत्म बोध के सम्यक् प्रकट होने से आनंद का समुद्र हुआ मैं स्थित हूं यह अत्यंत हर्ष है (४८) “आनंदाब्धिः” यह विशेषण पूर्व कारिका में जो कहा था तिस का फल उत्तर कारिका में कहते हैं ॥

मू० ॥ यो ह म ल पे पि वि प ये रा ग वा न ति वि ह व लः ।

आनंदात्मनिसंप्राप्ते सरागः क्व गतोऽधुना ॥ ४९ ॥

यस्य मे जगतां कर्तुः कार्यै रप ह ता त्म नः ।

आविर्भूत परानंद आत्मा प्राप्तः श्रते र्वलात् ॥ ५० ॥

स्वै० ॥ जुड़ मैं अति अल्प विषे सुख में अति रागि व्याकुल भाय फिरा ।

सत् आनंद आत्म लाभ भये अवरग कहां वह जाय फिरा ।

जग के करता मुझ को जु सरूप सुकार जने बहु भांति हिरा ।

अब आविर्भूत परानंद आत्म लाभ भयो बल वेद शिरा ॥ ४० ॥

टी० ॥ जोमैं अत्यंत तुच्छ विषय सुखमें प्रीतिवाला हुआ अत्यंत व्याकुल चित्त हुआ था ॥ अब आनंद स्वरूप आत्मा का सम्यक् लाभ हुआ जानानहीं जाता । जो वहराग कहां चला गया । और रागमूल कहीं प्रवृत्ति होती है । और निरतिशय सुखमें सर्व विषय सुखों का अंतर्भाव होने से निरतिशय सुख के प्राप्त हुए वह सर्व विषय सुख प्राप्त हो जाते हैं । और प्राप्त वस्तु में कामना का अभाव होता है । या तो विषय सुख के अर्थ प्रवृत्ति का अभाव संभवता है ॥ ४१ ॥ शंका ॥ अज्ञान को आनंद स्वरूप आत्मा का आवरण कपनानहीं संभवता ॥ क्योंकि सुषुप्तिकालमें अज्ञान को विद्यमान हुआ भी सुख की प्रतीति होती है । यदि ऐसे न माने तो “सुखमहमस्वाप्सम्” यह स्मरण भी सुषुप्ति से उठे हुए पुरुष को नहीं होगा ॥ समाधान ॥ हेवादिन् कार्याकार परिणाम को प्राप्त हुआ अज्ञान सुख के भान का प्रतिबंधक है । स्वरूप से प्रतिबंधक नहीं । इसी अभिप्राय से कहते हैं । जिस मुक्त जगत के अधिष्ठान का स्वरूप बोध से पूर्व कार्याध्यासों का अन्धकार था । अब श्रुति जन्य बोध से वही मेरा परमानंद स्वरूप निरावरण हुआ प्राप्त हुआ है ॥ ४० ॥ शंका ॥ हे सिद्धांतिन् आत्मा प्रथम सर्व को अपरोक्ष भान होता है ॥ क्योंकि “अहमस्मि” यह प्रतीति सर्व को होती है ॥ और तिस आत्मा से भिन्न ब्रह्म भी अपरोक्ष है । और आत्मा पूर्व उक्तरीति से भान होता ही है ॥ तैसे माने हुए ब्रह्म साक्षात्कार तो प्रथम ही सिद्ध है । पुनः संसार का भान कैसे होता है ॥ समाधान ॥ हेवादिन् यहां आत्मा का ज्ञान तुम के साकल्य होता है । क्या “मैंकर्ता हूं” इस प्रकार का आत्मा का ज्ञान है ॥ अथवा “मैं शुद्ध ब्रह्म स्वरूप हूं” ऐसा आत्मा का ज्ञान है । इनमें प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि वह ज्ञान तो अनात्मा को विषय करने वाला है । तिससे संसार की प्रतीति

दूरनहीं हो सकती। और द्वितीयपक्षभी नहीं संभवता क्योंकि विचार से प्रथम ऐसे आत्मसाक्षात्कारकी असिद्धि है। इसी तात्पर्य से कहते हैं ॥

मू० ॥ परामृष्टोसिलब्धोसिप्रोपितोसिचिरंमया ।

इदानीं त्वामहं प्राप्तो न त्यजामि कदाचन ॥५१॥

त्वां विनानिःस्वरूपो हं मां विना त्वं कथं स्थितः ।

दिष्टयेदानीं मया लब्धो योसि सोसि न मोस्तुते ५२

स्वे० ॥ चिरकालवियुक्तहुते मुझसे अन्वेषण ते अवलाम तुझे ।

तुझको हुड़प्राप्त में अबही नहि दूस्को कबहीं मिलुं तुझे ।

किहु तो रविनाम मरूप नहीं अरु मोरविनाथित के स तुझे ।

हमरे कर लब्ध भए अबहो पुन जो तुम मो तुम वंद तुझे ॥४१॥

टी० ॥ हे परमात्मन् दीर्घकाल से आप मेरे से वियुक्त हुए थे। अब वेदांत विचार मे आपका लाभ हुआ है। अब आपको मैं अभेद रूपता से प्राप्त हुआ कदाचिन त्याग नहीं करूंगा ॥ ४१ ॥ शंका ॥ तुम त्याग कर दो निम मे क्या दोष है ॥ समाधान ॥ हे परमात्मन् आप से विना मैं निःस्वरूप हूं । क्योंकि ब्रह्म को मन रूप होने के निमित्त मे भिन्न को अमत्पने की प्राप्ति होगी । इस कारण मे आपका त्याग नहीं संभवता । और मुझ से विना आपकी भी स्थिति के मे संभवगी । क्योंकि ब्रह्म को प्रत्यगात्मा मे भिन्न माने हुए जड़ता की प्राप्ति होती है । इसलिये आपको भी मेरा त्याग नहीं संभवता । अत्यंत हर्ष है जो आज मुझ मे अभिन्न रूपता के आप प्राप्त हुए हो । इस कारण मे जे मे आप हो वे मे आप ही हो अन्य किसी को आपकी तुल्यता का अभाव होने मे आप उपमा मे गड़ित हो । यानि आप को नमस्कार है ॥ ४२ ॥ मिथ्याबंध को निवृत्ति रूप उपकार के कर्ता

होनेसे आपनमस्कारके योग्यहो इसीअभिप्रायसे कहते हैं ॥

मू० ॥ देहेऽहं माननिगडैर्वद्धोऽवोधाख्यतस्करैः ।

चिरं ते दर्शनादेव त्रुटितं बन्धनं क्षणात् ॥ ५३ ॥

विशुद्धोऽस्मि विमुक्तोऽस्मि पूर्णात् पूर्णतमाकृतिः

असंस्पृश्यतमात्मानमंतर्ब्रह्माण्डकोटयः ॥ ५४ ॥

स्वै० ॥ तन आत्म बुद्धि कुबंधहुते तमसंज्ञकचौरनवांधलयो ।

चिरसेतुमरेकरदर्शनदेव कुबंधनतूटछिनेकगयो ।

अतिशुद्ध विमुक्तसरूपअहं पुनपूरनतेअतिपूरभयो ।

ममरूपविपेजगकोटिवसे परताहिसपर्शनलेशभयो ॥ ५२ ॥

टी० ॥ अज्ञानादिकचौरोंने देहविषयकअहंबुद्धिआदिकदृढ
बंधनोंसेजोमैंचिरकालसेबांधाहुआथा। अबहेस्वप्नकारास्वरूपपरमात्मन्
आपके दर्शनमात्रसेही चौरोंकेसहित वहसकलबंधन एकक्षणमें
विनाशकोप्राप्तहोगये ॥ इसहेतुसे आपनमस्कारकेयोग्यहो ॥ ५३ ॥
शंका ॥ बद्धतथामुक्तमेंक्याविलक्षणताहै? ॥ क्योंकिआत्मातोदोनों
मेंतुल्यहै ॥ समाधान ॥ हेवादिबद्धतथामुक्तकीविलक्षणतालोकमें
हीप्रसिद्धहै ॥ क्योंकिबद्धपुरुषमें मालिनतातथान्धनताऔरदीनता
देखनेमेंआतीहै ॥ औरबंधनसेरहितमुक्तपुरुषमें बद्धसेविलक्षणता
शुद्धतादिकदेखेजातेहैं । इसीअभिप्रायसे कहतेहैं ॥ मैंअविद्यादिमलसे
रहितविशुद्धहूँ ॥ क्योंकिद्वितीयवस्तुकाअभावहै । औरपूर्णजो
आकाशादिकहैं तिनसेभीमैंअतिपूर्णहूँ ॥ यातेत्रिविधपरिच्छेदसेमें
रहितहूँ ॥ इसनिरतिशयमहत्त्वकोहीस्पष्टकरतेहैं । मुझग्रंथात्माको
नस्पर्शकरकेअनंतब्रह्मांडकल्पितरूपताकरमेरेआश्रितहैं। इसीसेमैंपूर्णसे

अतिपूर्णस्वरूपहूँ। इसप्रकार आत्मा को समान हुआ भी ज्ञान तथा अज्ञान कृत विलक्षणता मुक्त तथा बद्ध में संभवती है ॥५४॥ तत्त्वसाक्षात्कार का साधन जो अंतःकरण की शुद्धि है तिसके हेतु भूतवेदाध्ययन तथा यागादि साधनों का अनुष्ठान भी आत्मसाक्षात्कार रूप कार्यलिंग से ब्रह्मवेत्ता में सिद्ध है । इसी अभिप्राय से कहते हैं ॥

❀ मृ० ॥ तत्त्वमादिवचो जालमावृत्तमसकृत्पुरा ।

इदानीं तत् श्रवादेव पूर्णानंदो व्यवस्थितः ॥५५॥

चौ० ॥ वेदवाक्य जो आह समस्ते । अनेकवार पूर्व अभ्यस्ते ॥

अवतत् श्रौत बोधते केवल । पूर्णानंद धिरामें केवल ॥४३॥

टी० ॥ पूर्व सकल वेदवचनों का अनेकवार मैंने अभ्यास किया ।

यह वेदवचनों का अभ्यास अन्य साधनों का भी उपलक्षक है। इसलिये अष्टा चत्वारिंशत् संस्कार रूप वहिरंग तथा नित्यानित्यवस्तु का विवेक तथा वैराग्यादि अंतरंग साधन भी मुझमें प्राप्त है ॥ अष्टा चत्वारिंशत् संस्कार यह हैं । गर्भाधान १ । पुंसवन २ । सीमंत ३ । जातकर्म ४ । नामकरण ५ । अन्नप्राशन ६ । चौल ७ । उपनयन ८ । चारवेद व्रत १२ । स्नान १३ । सह धर्मचारिणी संयोग १४ ॥ यह गर्भा धानादि चतुर्दश संस्कार कहे जाते हैं । चारवेद व्रत यह हैं । प्राजापत्य १ सौम्य २ । आग्नेय ३ । वैश्वदेव ४ ॥ और देवयज्ञ १ । भूतयज्ञ २ । पितृयज्ञ ३ । ब्रह्मयज्ञ ४ । मनुष्ययज्ञ ५ ॥ यह पांच महायज्ञ हैं । और अष्टका १ । पार्वण २ । श्राद्ध ३ । श्रावणी ४ । आग्रहायणी ५ । चैत्री ६ । आश्वयुजी ७ ॥ यह सप्तसोम संस्था हैं । और अग्न्या धान १ । अग्निहोत्र २ । दर्शपूर्णमास ३, ४ । आग्रयण ५ ।

चातुर्मास्य ६ । निरुद्धपशुबन्ध ७ । यहसप्तहविसंस्थाहैं ॥ और
सौत्रामणि १ । अग्निष्टोम २ । अत्यग्निष्टोम ३ । उक्थ ४ । पौडशि ५ ।
वाजपेय ६ । अतिरात्र ७ । यहसप्तपाकसंस्थाहैं । और अन्ननभक्षणकर
केवेदसंहिताका अध्ययन १ । प्रायण २ । कर्म ३ । जप ४ ।
उत्क्रमण ५ । दैहिक ६ । भस्मकाएकत्रकरना ७ । अस्थियोंका
संचयन ८ । यहपूर्वउक्तसर्वमिलाकर अष्टाचत्वारिंशत्संस्कारहोतेहैं ।
सोब्रह्मवेत्तानेयहसर्वही पूर्वअनुष्ठानकरलियेहैंयहभावहै । इसप्रकार
साधनसंपन्नहोकर गुरुशरणपूर्वकवेदांतविचारसेउत्पन्नहुआ जो आत्म
साक्षात्कारतिसेहीसुक्तिहोतीहै कर्मसहितज्ञानसेनहीं ॥ इसलिये
संन्यासकोभीआत्मसाक्षात्कारकीसाधनताहै ॥ इसअर्थकोसूचनकरने
केलियेकहतेहैं । अबवेदांतश्रवणादिजन्यआत्मसाक्षात्कारसेहीपूर्ण
तथाआनंदरूपताकर्मस्थितहुआहूँ ॥५५॥ इतिआनंदपदव्याख्या ॥

✽ अथआत्माकीआनंदरूपताकीअस्फुरतिमेंप्रतिबं
धकनिरूपणद्वाराअदृष्टद्वयपदकीव्याख्याकाप्रारंभ ।

अथपूर्वपक्ष ॥ हेसिद्धांतिन् पूर्वआत्माकीआनंदरूपताकथन
की सोनहींसंभवती ॥ क्योंकिआनंदरूपताकरआत्माप्रतीतनहींहोता
यहांयहअनुमानजानना ॥

✽ आत्मानआनंदरूपःतद्रूपेणाप्रतीयमानत्वात् ।
घटादिवत् ॥✽

अ० ॥ आत्माआनंदस्वरूपनहींहै । आनंदरूपताकरनप्रतीतहोनेसे।
जोआनंदरूपताकरनहींप्रतीतहोता । वहआनंदरूपनहींहोता । जैसे
घटादिकहैं ॥ इति ॥ शंका ॥ यहपूर्वपक्षहीनहींसंभवता । क्योंकिअद्वयानंद

रूपताकरतिसयात्माकोयज्ञानकीविषयताहै॥ इसस्थलमेंपूर्वहीआनंद
 अंशकोयज्ञानकरयावृत्तपनाअस्फुरणमेंकारणकथनकियाहै। यातेपुनः
 तिसीअर्थकाविचारकरनेसे पुनरुक्तिदोषप्राप्तहोगा ॥ समाधान ॥
 तथापिआवरण करनेवालेयज्ञानादिविषयकविचारद्वारातिसीअर्थको
 अत्यंतदृढ़करनेकेलिये “स्थूणानिखननन्याय” सेपुनः ग्रंथकर्ता
 आचार्यप्रवर्तमानहोताहै । यातेपुनरुक्तिदोषकीप्राप्तिनहीं ॥ इसीसे
 यदिपूर्वानंदस्वरूपआत्माहै तोसंसारकालमें सर्वकोक्योंनहींमान
 होता? ॥ यहपूर्वपत्रसंभवताहै ॥ शंका ॥ हेवादिन् (मानभूवम्
 किंतुभूयासमेव) अ० ॥ भेनहोवोंयहनहोकिंतुमेंसर्वकालहोवोंइस
 प्रकारकीनिरुपाधिक इच्छाकाविषयरूपताकर आत्माप्रथमतःसर्वकोमान
 होताहै ॥ वहीसुखकास्फुरणहै ॥ तिससेभिन्नसुखनहींहैं। भावयहपरम
 प्रीतिकाविषयरूपताकर जोआत्माकास्फुरणहै । यहीआनंदस्वरूपका
 स्फुरणहै। याते “अप्रतीयमानत्व” हेतुस्वरूपामिद्धहै ॥ समाधान ॥
 हेसिद्धांतिन् । क्यावास्तवसेनिरतिशय आनंदरूपआत्मा परमप्रीति
 काविषयरूपताकग्भासताहै ॥ अथवानिरतिशयआनंदस्वरूपमेंहूं
 पेसायहपुरुषयभिमानकरताहै? प्रथमपत्रतोहमकांभीस्वीकारहै । और
 द्वितीयपत्रनहींसंभवता ॥ क्योंकितिमप्रकारकेअभिमानकाअभावहै।
 यद्यपि “सुखमहमस्वाप्मम्” इसपरमर्शमें सुखरूपताकायहपुरुषयभि
 मानकरताहीहै। क्योंकिअनुभवपूर्वकही स्मृतिज्ञानहोताहै । तथापि
 एतस्यैवानंदस्याऽन्यानि भूतानिमात्रामुपजीवन्ति ।

(५८ ३० अ० ६ भा० ३ कं ३२)

अ०॥ इसआनंदस्वरूप आत्माकेहीलेशमात्रआनंदकोआश्रयण

करके अन्यसर्वप्राणधारिजीवनको धारणकरते हैं ॥ इत्यादि श्रुतिसे मोक्षकालमें जो सा आनंदस्वरूप आत्मा सुना जाता है। तैसे आनंद का अभिमान किसी को भी नहीं होता ॥ शंका ॥ हेवादिन् जो सुखसुपुष्टिकाल में भान होता है वह भी निरतिशय सुख ही है। क्योंकि नित्य आत्मसुखमें किसी प्रकार की अतिशयता नहीं संभवती ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन्

❀ आनंदं ब्रह्मणो रूपं तच्च मोक्षे प्रतिष्ठितम् ❀

अ० ॥ जो आत्मा की आनंदस्वरूपता है सो मोक्षकालमें ही अवस्थित है। इस श्रुतिसे मोक्षकालमें तिस नित्य आनंद की अभिव्यक्ति श्रवण होती है ॥ याते संसार अवस्थासे मोक्षकालमें आनंद की अधिकता होनेसे नित्य सुखमें भी अतिशयता का संभव है ॥ और "मै आनंदस्वरूप हूं" इस प्रकारके अभिमानको ज्ञानविशेष होनेकर सुपुष्टिकालमें तिसका अभाव है। याते तिसकालमें आनंद भासता हुआ भी स्पष्ट नहीं भासता। शंका ॥ हेवादिन् आत्माके आनंदस्वरूप की जो अतिप्रतीति है। सो आत्मा की अनानंदरूपतासे नहीं किंतु संसार अवस्थामें प्रतिबंधके सद्भावसे है। इस कारणसे आत्मा की अनंदरूपताके भासमान हुए भी इस पुरुषको विशेष अभिमान नहीं होता ॥ समाधान ॥

अथ आनंदरूपताके अभिमानमें प्रतिबंधक का विचार ।

हेसिद्धांतिन् वह प्रतिबंधक कौन है। क्या अज्ञान है ॥ अथवा तिस का कार्य है ? प्रथम पक्षमें भी यह विचारणीय है ॥ क्या जीव का अज्ञान आनंदरूपताके भानमें प्रतिबंधक है। अथवा परमात्मा का अज्ञान प्रतिबंधक है ? अन्त्यपक्ष तो नहीं संभवता । क्योंकि सर्वज्ञ तथानिर्दोष तिस परमात्मा निष्ठ अज्ञान का अभाव है । और प्रथम पक्ष भी नहीं संभवता । क्योंकि

❀ नान्योतोस्तिद्रष्टा।अननजीवेनात्मना।तत्त्वमासि।❀

अयमात्माब्रह्म ॥

इत्यादिकश्रुतिवचनोंसे तिसजीवात्माका परमात्माकेसाथअभेद
श्रवणहोताहै॥ यातेतिसजीवमेंभी अज्ञानकाअभावहै॥ और्यदिऐसे
कहो किजीवनिष्ठभीकल्पनामात्रसेहीअज्ञानहै वास्तवसेनहीं। सोयह
कथनभीअसंगतहै। क्योंकिपरमात्मामेंभी अज्ञानप्राप्तहोगा। जिस
कारणसेजीवकेसाथ तिसकाअभेदहै ॥ शंका ॥ हेवादिन् अज्ञान
जीवात्मामेंभीनहीं है।तथाविंचरूपपरमात्मामेंभीनहीं है।किंतुनिर्विभाग
चेतननिष्ठअज्ञानहै। यहपूर्वनिर्णयकियाहै। यातेवहअज्ञानसर्व
रूपतासेआनंदकेभानकाप्रतिबंधकहीहै ॥ समाधान ॥ हेसिद्धांतिन्
तिसअज्ञानसेआत्माकीआनंदरूपताकाजोप्रतिबंधहै।सोक्यावास्तवहै।
अथवाअनवधानमात्रसेआनंदकीअप्रतीतिहोनेसेवहप्रतिबंधकल्पितहै?
प्रथमपक्षतोनोंसंभवता॥ क्योंकियदिसंसारअवस्थामेंप्रतिबंधसेरहित
आनंदकाभानहीनहींहोता तोकिसकीप्राप्तिसेबंधकीनिवृत्तिहोगी ॥
संसारीकीप्राप्तिसेतोसंसारकीनिवृत्तिनहींसंभवती। और्यदियहद्वितीय
पक्षकहो किंसंसारअवस्थामेंभी वास्तवप्रतिबंधसेरहितआनंदविद्यमान
हीहै परन्तुआनंदस्वरूपआत्मामें अज्ञानसे “अनवधान” अर्थात्
प्रमादमात्रहीप्रतिबंधहै वास्तवसेकोईप्रतिबंधनहीं ॥ इसीअर्थकोउप
पादनकरतेहैं।केवलअज्ञानसेउत्पन्नहुआ जोदैतरूपसंसार तिसकेअंतः
पातिजोशब्दादिविषयरूपविष तिसकेआधीनहुआ जोपुरुषहै। पुनः
तिनविषयोंकेदर्शनकालमेंभी तिनकीअत्यंतभावनासे प्रादुर्भावहुई
जोविषयरूप कुंडितिसकर जिसकाहृदय आकर्षण कियाहुआहै ॥

पुनःपरमप्रियतमतथासर्व जगतके ईश्वस्तथासर्व अंगोंमें थोत प्रोत रूपताकर अत्यंतसमीपस्वस्वरूपकेदर्शनकोक्षणमात्रभी जोप्राप्तनहीं होसकता।यहांपरयहभी जानलेना (यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म) इसश्रुतिसेसिद्ध जो “अतिसमीपता” तिसकरएकतादर्शनकेयोग्यहै यहसूचनकिंया ॥ और (योवैभूमातत्सुखम्) इसश्रुतिसे ब्रह्म कीसुखरूपताश्रवणहोतीहै।सो “परमप्रियतम”इसपदसेकथनकी।और

❀ आनन्दोऽखल्वेमानिभूतानिजायन्ते ❀

अ०॥ आनन्दसेही यहदृश्यमानभूतउत्पन्नहोतेहैं । इसश्रुतिसे अनन्दस्वरूपआत्माकोजगत् की कारणाता श्रवण होनेसेईश्वरपनाभी कथनकिंया।और “थोतप्रोत” पदसेउपादानताकथनकी। इति। तिस पूर्वउक्तविशेषणयुक्तपुरुषको विषयोंकेदर्शनसेआत्मामें सुखरूपताका अनवधानमात्रहीप्रतिबंधहै वास्तवसेकोई प्रतिबंधनहीं ॥ जैसेअपने कंठमेंस्थितमालादिकोंकाअज्ञानसेअनवधानमात्रही प्रतिबंधहोता है वास्तवनहीं ॥ शंका ॥ जैसेविषभीऔषधादिकउपायनसेत्यागाजाता है।तैसेविवेकसे विषयरूपविषका त्यागभीसंभवता है ॥ समाधान ॥ तिन विषयोंके दर्शनादिकोंकीकामनावाले पुरुषको विवेकहीउदय नहींहोसकता । यातेतिसकात्यागनहीं संभवता ॥ शंका ॥ यद्यपि विवेकनहींसंभवता ॥ तथापिविषयानन्दको क्षणिकहोनेसेही तिससे वैराग्ययुक्तहोनातोयोग्यहीहै॥ समाधान ॥ विषयोंकेदर्शनकरहीसर्व आयुकोपूर्णहोनेसेवैराग्यका होनाभीदुर्घटहै। यातेआत्माकीविस्मृति संभवती है । इसप्रकार अद्वैततथासुखस्वरूपआत्मामें दुःखादितथा द्वैतसाहित्यादिकोंकादर्शनहीप्रतिबंधहै। यहांअज्ञानकाकार्यप्रतिबंधहै

यह पूर्वकथन किया हुआ द्वितीय पक्ष इसीके अंतर्भूत जान लेना। सो यह द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि द्वैत दर्शन रूप प्रतिबंधके आश्रय कानिश्चय नहीं हो सकता ॥ तथाहि ॥

❀ अथ द्वैत द्रष्टा के स्वरूप का विचार और तिसका निषेध ❀

वह द्वैत द्रष्टा कौन है। क्या वह परमात्मा है। अथवा जीव है? अथवा कोई अन्य है? इनमें प्रथम पक्ष तो नहीं संभवता। क्योंकि तिस सर्वज्ञ परमात्मा निष्ठभ्रम के कारण रूप अज्ञान का अभाव होने पर तिसको द्वैत दर्शन की अनुपपत्ति है। और।

❀ यस्याज्ञानं भ्रमस्तस्य भ्रान्तः सम्यक् च वेतिसः ❀

अ० ॥ जिसको अज्ञान होता है तिसीको भ्रम होता है। और भ्रम युक्त हुआ वही यथार्थ जानता है” ॥ इस न्यासे अज्ञान और भ्रम तथार्थ अज्ञान इन तीनों को समानाधिकरण्यात्मा निश्चय होने से अविद्यावाले में ही तिनका संभव है ॥ अविद्यादि दोष से रहित परमात्मामें इनका संभव नहीं। इसलिये परमात्मामें द्वैत द्रष्टृत्व नहीं संभवता। और यदि अविद्या वाला जीव द्वैत का द्रष्टा है यह द्वितीय पक्ष कहो तो यह भी नहीं संभवता। क्योंकि (नान्यो तो ऽस्ति द्रष्टा) इत्यादि श्रुतियोंमें तिस जीव का परमात्मा के साथ अभेद कथन किया है। इस कारण से सर्वज्ञ परमात्मा से अभिन्न जीव निष्ठभ्रम के कारण रूप अज्ञान का अभाव होने से तिस भ्रम का किया हुआ द्वैत दर्शन भी तिसको नहीं संभवता ॥ शंका। जैसे “तदेवेदं सुखम्” इस प्रत्यभिज्ञा से विवेक तथा प्रतिविवेकी एकता के हुए भी श्यामता तथा लघुतादि धर्म प्रतिविवेकमें भासते हैं ॥ और स्वच्छता तथा विशालतादि धर्म विवेकमें होते हैं ॥ क्योंकि उपाधिको प्रतिविवेक पक्ष पातित्व का नियम है

तैसे अज्ञानरूपउपाधिकृत द्वैतदर्शन तथा अल्पज्ञतादिधर्मजीव निष्ठहीहोतेहैं । सर्वज्ञपरमात्मानिष्ठनहींहोते। यातेजीवतथा ईश्वरका अभेदहुएभीविंवप्रतिविंवकीन्याई सर्वज्ञतातथाद्वैतदर्शनकीउपपत्तिहै । समाधान॥ यहांदृष्टांततथादार्ष्टांतकी विषमताहोनेसेपूर्वउक्तव्यवस्थानहींसंभवती । इसीकोस्पष्टकरतेहैं ॥ दृष्टांतमेंतोदर्पणरूपउपाधि प्रथमसिद्धहै । तिसमेंप्रतिविंवभावहोनेसेअनंतर मलिनतातथास्वच्छतादिधर्मोंकीव्यवस्थाकर उपपत्तियुक्तहै ॥ औरदार्ष्टांतमेंतोअन्योन्याश्रयदोषप्राप्तहोनेसे सर्वज्ञतादिधर्मोंकी व्यवस्थानहींसंभवती । क्योंकिद्वैतदृष्टिकरप्रकटहुआजो अज्ञानतत्कार्यरूपद्वैतहैतिसकोविंवप्रतिविंवभावकाउपाधिहोनेकर तिसमेंप्रवेशसे अनंतरतिसकेसंबन्धसेविंवप्रतिविंवभावकीकल्पना होतीहै॥ औरतिसकल्पनाकेहुए प्रतिविंवरूप जीवद्वैतकादृष्टाहै यहकल्पनाहोतीहै ॥ इसप्रकारद्वैतद्रष्टाप्रथमसिद्धहो तोअज्ञानादिरूपउपाधिकीसिद्धि औरउपाधिकेसिद्धहुएद्वैतदुष्टाकी सिद्धिहै । तिसउपाधिकीसिद्धिसेपूर्वद्वैतद्रष्टाके व्यवस्थापकीअनुपपत्तिहै ॥ यातेअन्योन्याश्रयदोषप्राप्तहोनेसे यहप्रकारनहींसंभवता । शंका। अनादिसिद्धअज्ञानरूपउपाधिमें प्रतिविंवरूपद्रष्टाकोभीअनादि होनेकर “तिसप्रतिविंवकल्पनासेपूर्व दृष्टाकीव्यवस्थानहींसंभवती” यहवादीकाकथननहींसंभवता॥ यातेअन्योन्याश्रयदोषकीप्राप्तिनहीं होती ॥ समाधान ॥ पूर्वउक्तप्रकारसेजीवद्रष्टाहो परंतुवहसादिहै ॥ अथवाअनादिहै ? । यहविचारकर्त्तव्यहै ॥ प्रथमपक्षकहोतोजीवको दृष्टापनासिद्धनहींहोगा ॥ क्योंकिअनादिसिद्ध अज्ञानकेद्रष्टाको भीअनादिसिद्धताहीकहनेयोग्यहै । यातेप्रथमपक्षअसंगतहै॥शंका॥

जीवसेभिन्नपरमात्माही अनादिसिद्धद्रष्टाहो॥समाधान॥ वहअनादि
 सिद्धद्रष्टाकथनकरनेके अयोग्यहै ॥ शंका द्वैतकेंद्राकाअभावतुम
 किसप्रकारकहतेहो जिसकारणसे साक्षीहीद्वैतकाद्रष्टाविद्यमानहै ॥
 समाधान॥ वहसाक्षीक्यापरमात्माहै।अथवाजीवहै? प्रथमपक्षमेंभीयह
 कहाचाहिये ॥ क्यावहपरमात्मारूपसाक्षी स्वअविद्यादिकोंकाद्रष्टाहै
 अथवाजीवनिष्ठ अविद्यादिकोंकाद्रष्टाहै ? ॥ इनमेंप्रथमपक्षतो
 नहींसंभवता।क्योंकितिसर्वज्ञपरमात्मानिष्ठ स्वअविद्याकाअभावहोने
 करतिसकाद्रष्टापनाअनुपपन्नहै ॥ औरसर्वज्ञकोभीअन्यकीअविद्या
 काद्रष्टाहोनेसेकोईविरोधनहीं यदियहद्वितीयपक्षकहो तोतिसमें भीयह
 विचारकर्तव्यहै । क्याजीवब्रह्मकाभेदवास्तवहै अथवाअवास्तवहै? ॥
 अन्त्यपक्षतोनोंसंभवता ॥ क्योंकिअपनेसेभिन्नजीवकीअविद्याका
 द्रष्टाहोनेकरपरमात्माको भ्रान्तपनाप्राप्तहोगा॥तात्पर्ययहहै।किस्वविषय
 क्तोअविद्याकाअभावहै ॥ क्योंकिवहसर्वज्ञहै।औरअपनेसेभिन्नअन्य
 कोईअविद्याकाआश्रयनहींहै ॥ इसकारणसेस्वभिन्नमें अविद्याको
 देखतेहुएपरमात्मानिष्ठ भ्रान्तत्वप्रमंगअवश्यहोगा ॥ औरयदिब्रह्ममें
 भ्रान्तपनानिवारणकरनेकेलिये जीवब्रह्मकावास्तवहीभेदहै यहप्रथम
 पक्षस्वीकारकरो तोयहभीनहींसंभवता॥क्योंकि (नान्योतोस्ति
 द्रष्टा) इसशास्त्रकाविरोधप्राप्तहोगा ॥शंका ॥ परमात्माहीद्वैतका
 द्रष्टाहो।औरद्वैतकाद्रष्टामाननेसे सर्वज्ञताकाभीविरोधनहीं । क्योंकि
 अविद्याकेनिवर्तकप्रमाणजन्यज्ञानकी आश्रयताका नामसर्वज्ञतानहीं
 किंतुस्वरूपचेतनसेअपनेमेंअध्यस्तसर्वजगतकीप्रकाशकताहीसर्वज्ञता
 है॥औरस्वरूपचेतनअविद्याकाविरोधीभीनहीं।क्योंकितिसकोअविद्या

कासाधकपनाहै ॥ यातेपरमात्माहीद्वैतकाद्रष्टाहै ॥ समाधान ॥
 परमात्माकोद्वैतद्रष्टृत्वनहींसंभवता ॥ क्योंकि ॥ (निरवद्यनि
 रंजनं) थ० ॥ वहपरमात्माअविद्यासेरहितहै ॥ औरतत्कार्य
 सेभीरहितहै ॥ इसश्रुतिने अविद्यातत्कार्यकातिसमें निषेधकथन
 कियाहै । औरयदिऐसेकहो कियहवाक्यवास्तव अविद्याकानिषेध
 कहै ॥ कल्पितअविद्याका निषेधकनहीं । यातेअविद्याके निषे
 धकवाक्यकाअन्यविषय होनेकर कल्पितअविद्यादिकों के निषेध
 कोवहनहींकथनकरता ॥ सोयहकथनभीसमीचीननहीं । क्योंकि
 अविद्यामात्रमेंशक्तिवाला जोअविद्याशब्दहै तिसकोवास्तवअविद्या
 परमानेहुए लक्षणाकीप्राप्तिहोगी । औरमुख्यअर्थकीअनुपपत्तिसेविना
 लक्षणाकास्वीकारदोषरूपहै । किंवा ॥ वास्तवरूपअविद्याप्रसिद्धहै । वा
 नहीं ? । प्रथमपक्षमेंतोदितापत्तिहोगी । औरब्रह्मकीन्याईतिसकानिषेध
 भीनहींसंभवेगा । औरद्वितीयपक्षमेंभीनिषेधनहींसंभवता । क्योंकि
 अप्रसिद्धवस्तुकानिषेध कोईनहींकरसकता किंतुप्रसिद्धकाही निषेध
 कियाजाताहै ॥ इसप्रकारपरमात्माकोद्वैतद्रष्टृत्वनहींसंभवता ॥ और
 अनादिसिद्धजीवरूपसाक्षीद्वैतकाद्रष्टाहै । यहद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता
 क्योंकिजीवभावकोअविद्याकेउत्तरभावीहोनेकर अनादित्वकाअसंभव
 है ॥ औरयदिऐसेनमानेतोअविद्याकीनिवृत्तिहुएभीजीवभावकीनिवृत्ति
 नहींहोगी ॥ क्योंकिअनादिभावकीनिवृत्तिनहींहोती ॥ औरसंसारि
 भावकेअनिवृत्तिहुएअनिर्मुक्तप्रसंगहोगा ॥ पूर्वजीवसादिहैवाअनादि
 है यहदोविकल्पकियेथे । तिनमेंअनादिपक्षका निराकरणइसपूर्वउक्त
 अनादिपक्षके निराकरणसेहीजानलेना ॥ इति ॥ अवअन्यहीकोई

द्रष्टा है इस तृतीयपक्षको निषेध करते हैं ॥ और तृतीयपक्ष भी नहीं संभवता क्योंकि जीव तथा परमात्मा से भिन्न सर्व अनात्म पदार्थोंको जड़ होने का द्रष्टा पने का ही अर्थ संभव है ॥ और यदि ऐसा हो कि जीव तथा ईश्वर इन दोनों में अनुगत जो सामान्य चेतन है वही द्वैत का द्रष्टा है ॥ सो यह कहन भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि तैसमाने हुए अविद्याको भी तिस अनुगत चेतन निष्ठ ही कहन करना उचित है ॥ तिस कारण से परमात्मा की न्याई निर्दोष तथा भ्रम से रहित जीवको भी यनायास सर्वज्ञता तथा नित्य मुक्तता की प्राप्ति होगी क्योंकि तिसमें भी परमात्मा की न्याई अविद्या का अभाव है ॥ किंवा जीव तथा ईश्वर में अनुगत सामान्य चेतन द्वैत का द्रष्टा है । इस पक्ष में अन्योन्याश्रय दोष की भी प्राप्ति होती है ॥ तथा हि ॥ तृतीयपक्ष में अनुगत चेतनको द्रष्टा पना सिद्ध हुए तिमके आधीन उपाधिशब्द के बान्धन रूप अज्ञानादिकों की सिद्धि है ॥ और तिम उपाधिके सिद्ध हुए तिमके आधीन विवर्ति विवसंज्ञक परमात्मा तथा जीव रूप दोष प्रकार के विभाग की अपेक्षा कर सामान्य चेतन रूप तृतीय प्रकार की सिद्धि है ॥ इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष की प्राप्ति से यह पक्ष भी समीचीन नहीं ॥ याने द्रैत द्रष्टा की अमिद्धि होने कर तिमके आश्रित रहने वाला द्वैत दर्शन रूप प्रतिबंध भी अमिद्ध है ॥ इति ॥

ॐ अथ गुरु गिष्य के संवाद द्वारा पुनः द्वैत द्रष्टा के स्वरूप का विचार ॐ

शंका ॥ हे शिष्य अविद्याको अनेगों कारणों से हुए तिम विषयक प्रश्न और आक्षेप नहीं संभवता ॥ इससे तु भ्रम प्रकर्ता अथवा आक्षेपकर्ता की ही अविद्या का द्रष्टा पना युक्त है ॥ यह वार्त्ता [प्रश्नस्य ज्ञानपूर्वत्वात्] इसका गिरा के व्याख्यानमें जो अविद्या विषयक प्रश्न करने वाला है वही

अविद्याकादृष्टाहै॥ ऐसेअर्थसेकथनकरआएहैं ॥अथवा।आक्षेपकरने
वालाहीतिसकादृष्टाहै। इसप्रकारद्वैतदृष्टाकास्वरूपपूर्वनिरूपणकरनेसे
पुनःतिसविषयप्रश्नहींसंभवता।समाधान। हेभगवन्यद्यपिसामान्यसे
मुक्तद्वैतदृष्टाकास्वरूपपूर्वनिरूपणकियाहै।तथापितिसीमुक्तद्वैतदृष्टाका
स्वरूपअवविशेषकरआपनेतत्त्वनिर्णयकेअर्थ कथनकरनाचाहिये।और
यदिआपऐसेकहोकिजोतुमअपनेआत्माकोभीनहींजानते“कियहमैंहूँ”
औरसहमैंपूछताहूँ ॥ ऐसेतुमकोप्रश्नकरनाहीकैसेसंभवेगा । क्योंकि
कौनद्वैतकादृष्टाहै?इसप्रकारकाप्रश्नअविद्याकेदृष्टातुमको अपनेस्वरूप
केनजाननेकरनहीं संभवता ॥ प्रश्नकेविषयकाअज्ञानहुए तिसविषय
कशब्दप्रयोगकीहीअयोग्यताहै । सोयहआपकाकथनभीसमीचीन
नहींप्रतीतहोता ॥ क्योंकिअज्ञातअर्थविषयकहीप्रश्नसंभवताहै॥ यदि
ऐसेनहींमानोगे तोप्रष्टव्यअर्थके ज्ञानसेतथाप्रष्टव्यअर्थके अज्ञानसे
प्रश्नकरनानहींसंभवेगा ॥ और

नाष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्नचान्यायेन पृच्छतः॥

जानन्नपि च मेधावीजडवल्लोकमाचरेत् ॥

अ० ॥ यहविद्वान्पूछाहुआ किसीकोनकथनकरे ॥ और
अन्यायसेअर्थात्केवलबुद्धिकी परीक्षाकेअर्थ प्रश्नकरनेवालेकोभीन
कथनकरे ॥ औरसर्वअर्थकोजानताहुआभी तथाअर्थकीस्मृतिवाला
हुआभीजडकीन्याईलोकमेंविचरे ॥ इसन्यायसे आपभीविद्वान्कथन
करनेकोअसमर्थहै । यातेसर्वशास्त्रआरायका रोदनहोजायेगा ।
अर्थात्निष्फलहोगा ॥ शंका ॥ हेशिष्य प्रश्नकेविषयकाअज्ञानहुए
तिसविषयकशब्दका उच्चारणरूपशब्दरचना कैसेसंभवेगी॥ क्योंकि

तिसकारणसे शरीरही आत्मा है । ऐसे स्थूलदर्शि चार्वाकबौधकहते हैं । और कोई इन्द्रियोंको ही आत्मा कहते हैं क्योंकि ज्ञानके साथ इन्द्रियों का अन्वयव्यतिरेक प्रतीत होता है ॥ जब इन्द्रिय ही तो ज्ञान होता है मृतशरीरमें इन्द्रिय नहीं होते तब ज्ञान भी नहीं होता ॥ इस प्रकारके अन्वयव्यतिरेकसे इन्द्रियोंको ज्ञानकी कारणता सिद्ध हुए उपादानको श्रेष्ठता होने से तिन इन्द्रियोंको द्रष्टा पना उचित है । और “अहंकाणः । अहंवधिरः” इत्यादि अहंप्रत्ययकी विषयता भी तिनमें होनेसे इन्द्रिय ही द्रष्टा है । और कोई एक ऐसे कहते हैं । स्वप्नमें इन्द्रियोंको स्वस्वव्यापार से उपरत हुए मनकी तिसकालमें अनुवृत्ति होनेसे तथा बंध मोक्षादि सर्वव्यवहार मनके आधीन होनेकर और “अहंमनः” इस अहंप्रत्ययकी विषयतासे मन ही आत्मा है । यद्यपि “अहंमनः” यह प्रतीति स्पष्ट नहीं । तथापि “हर्षशोकवानहम्” यह प्रतीति सर्वको प्रसिद्ध है । और हर्षशोकादि धर्मबाला मन ही है । याते “अहंमनः” यह प्रतीति भी संभवती है । और क्षणिकविज्ञानवादीबौध तो यह कहते हैं । क्षणिकविज्ञानरूपबुद्धि मे भिन्नमनका अभाव है क्योंकि बुद्धिके आधीन ही मनका व्यापार होता है । याते विज्ञान ही आत्मा है । यहां बुद्धिपर्यंत पदार्थोंका जो कथन है वह अन्य अन्तरपदार्थोंका भी उपलक्षक है ॥ इसलिये यथायोग्य अंतर तथा अव्यभिचारिरूपासे जो संभव हो वह भी स्वस्वरूपकर ग्रहण करने योग्य है बुद्धिसे अंतर जो आनंद मय कोश है तिसको नैयायिक और भाट्ट तथा प्राभाकरमतवाले तथा शून्यवादिबौध आत्मा कहते हैं । याते इनमें किसी एकको अथवा इनके समुदायको तुम आत्मरूपताकर ग्रहण करो इस प्रकार श्री गुरुकरशिष्यका स्वरूप उपदेश किये हुए अवशिष्यतिन

सबको निषेध करता है ॥ समाधान ॥

* देह-आत्मवादिकों का निराकरण *

हे भगवन् तिन शरीरादि पदार्थों के मध्य कोई एक एक अथवा तिनके समुदायको आत्मस्वरूपता की अनुपपत्ति है । तिनको आत्मस्वरूपता की अनुपपत्ति में चार प्रकारका अन्वयव्यतिरेक हेतुरूपता कर सकते हैं ॥ जिस कारण से शरीरादिक सर्वपदार्थ अज्ञानका कार्य हैं इसी से तिनको व्यभिचारी होने पर आत्मरूपता नहीं संभवती ॥ इस कथन से कार्यकारणका अन्वयव्यतिरेक दिखलाया । यद्यपि अज्ञान ही कारण है आत्मा नहीं याते अज्ञान को ही आत्मरूपता होगी । तथापि अज्ञान की अधिष्ठानता से आत्मा को कारणता पूर्व अनेकवार प्रतिपादन कर आए हैं । और अहं प्रत्यय भी इनमें उपचारिक है ॥ क्योंकि यह सर्व ही मम प्रत्यय का विषय है । याते “ममेदंशरीरम्” इस भेद प्रतीति से आत्मा का तथा शरीर का भेद प्रतीत हुए “अहं मनुष्यः” यह अहं भेद प्रतीति उपचारिक है । और यह जो पूर्व कहा था ॥ कि “ममात्मा” यह भेद प्रतीति जे से उपचारिक है तै से “ममेदंशरीरं” यह भेद प्रतीति भी उपचारिक हो जायेगी । सो यह विपरीत कथन भी समीचीन नहीं ॥ क्योंकि दृष्टांत की विषमता है । तथाहि ॥ दृष्टांत में तो आत्मशब्द की समीपता से वह संबंध प्रत्यय उपचार के योग्य है । क्योंकि अपने में अपना भेद नहीं संभवता । और यहां दृष्टांत में तो आत्मशब्द की समीपता है नहीं । याते संबंध प्रत्यय उपचार के योग्य नहीं हो सकता ॥ और देहादिकों में अहं प्रत्यय तो आत्मा के अध्यास से भी संभवता है ॥ शंका ॥ अहं प्रत्यय को देहादिकों में आत्मा के अध्यास से माने हुए “ममेदंशरीरादि” यहां ममपद से उत्तरवर्तिषट्विभक्ति

सेकौनसंबंधप्रतिपादनकियाहै ॥ ममाधान ॥ हेभगवन्गणेश
 भावसंबंधकोही पण्डितविभक्तिबोधनकरतीहै। क्योंकिजैसेछत्रचामरादि
 इतरयनात्मपदार्थमेरेभोगकामाधानहैतैसेयहशरीरादिकभीमेरेभोगका
 साधनहै यातेयनात्माहै। औरइनकोमेरागणेशहोनेमेभी यनात्मताहै।
 इसहेतुसेइनमेकोईएक यथवाइनकासमुदाय मेरास्वरूपनहींहोसकता।
 क्योंकियात्मवस्तु यज्ञानतत्कार्यसे विलक्षणहै ॥ औरहेयउपा
 देयसेरहितस्वभावहै ॥ यहांयात्मामें ग्रह्यरूपता कहनेवालेशिष्यने
 तिसकीयानंदरूपताऔरशरीरादिप्रपञ्चनिष्ठ दुःखरूपतासूचनकी। और
 इसकथनसे दुःखित्वतथापरमप्रेमास्पदत्वके अन्वयव्यतिरेकभीदिखला
 दिये। औरसर्वविकारोंसेरहितहोनेसे यात्माअनुपादेयहै। औरजैसे
 देहादिकों में यहप्रत्ययगौणहैतैसे यात्मामेंवहप्रत्ययगौणही। क्योंकि
 यात्मामेंममप्रत्यकी विषयताकाअभावहै। औरयात्मापरमप्रियतमहोने
 सेअन्यसर्वयनात्मपदार्थोंमें अनुपसर्जनअर्थात्प्रधानहै। औरअपने
 सेभिन्नसर्वयनात्मपदार्थोंकाप्रकाशकहोनेसेमाक्षिस्वरूपहै। इसकथन
 सेसाक्षीतथामाक्ष्यके अन्वयव्यतिरेकदिखलादिये। औरयज्ञानादिसर्व
 कल्पितपदार्थोंमेंअनुगतहोनेकर यहयात्मा अव्यभिचारिस्वभावहै ॥
 और अर्थसेदेहादि व्यभिचारिस्वभावहै। इस कथनसेअनुगततथा
 व्यभिचारिकाचतुर्थ अन्वयव्यतिरेकभी दिखलादिया। इस प्रकार
 स्थूलशरीरसेलेकरबुद्धिपर्यन्तपदार्थ कोईभीमेरास्वरूपनहीं॥शंका॥हे
 शिष्यदेहसेआदिलेकरबुद्धिपर्यन्तपदार्थोंसेभिन्नजोस्वरूपतुमनेपरिशेष
 कियाहै वहीतुमअपनास्वरूपनिश्चयकरो॥समाधान॥ हेभगवन्तिस
 प्रत्यक्षचेतनकामुझकोयज्ञानहै। औरयदिआप यहकहो किअज्ञान

कोत्यागकरके तिसकाविषयजोस्वरूपमात्र प्रत्यक्चेतनतत्त्वहैवहथप
नास्वरूपग्रहणकरनेयोग्यहै । सोयहकथनभीनहींसंभवता ॥ क्योंकि
तिसप्रत्यक्चेतनकोभीजीवतथाईश्वरथौतिससेभिन्नशुद्धचेतनमात्ररूप
करनिर्णयकरनेकीअसामर्थ्यसेसंदेहकीविषयताहै॥शंका॥हेशिष्यजीव
तथाईशादिरूपताकरनिर्णयकरनेसेक्याप्रयोजनहैवस्तुकाजैसास्वरूपहै
वहतुमकोनिर्णीतहीहै ॥ समाधान॥ हेभगवन्सकलविशेषरूपतत्त्वके
जाननेकीइच्छावालेप्रतियहउत्तरनहींसंभवता॥यातेविशेषस्वरूपथापने
कथनकरनाचाहिये ॥ शंका ॥ हेशिष्य सामान्यविशेषभावसेरहित
आत्मवस्तुमेंविशेषकरजाननेकीइच्छाहीनहींसंभवती ॥ समाधान ॥
हेभगवन् तिससामान्यविशेषभावसे रहितवस्तुकास्वरूपही आपकर
कथनकरनेयोग्यहै ॥ शंका ॥ हेशिष्यजोसंदिग्धार्थहोताहै वही
जिज्ञासाकाविषयहोनाहै।औरअज्ञानपर्यंतपदार्थोंसेभिन्नरूपताकरपरि
शेषसेनिश्चितवस्तुमें संशयनहींसंभवता । औरसंशयके अतंसंभवसे
जिज्ञासाकीअनुपपत्तिहै।यातेतिसकेस्वरूपविषयकप्रश्नसेक्याप्रयोजन
है? ॥ समाधान ॥ हेभगवन् स्वरूपविषयकअज्ञानतोअवपर्यंतभी
निवृत्तनहींहुया । यातेजिज्ञासाकासंभवहै ॥ शंका ॥ अज्ञानन
निवृत्तहो।परन्तुनिश्चितवस्तुमेंसंदेहकेनदेखनेसे जिज्ञासाकैसेसंभवेगी
समाधान॥अज्ञानकेस्थितहुएहीविवेकदृष्टिसेतिसअज्ञानसेभिन्नआत्मा
कास्वरूपनिर्णयहुएभी तिसहीअज्ञानकर विषयकीहुईवस्तुमेंसंदेहकी
उपपत्तिहै।क्योंकिविवेकज्ञानकोअन्वयव्यतिरेकरूपयुक्तिकरजन्यहोने
सेपरोक्षताहैयातेतिसको अपरोक्षसंशयादिकोंकानिवर्त्तकपनानहींसंभ
वता ॥शंका॥ अज्ञानादिकोंसे आत्मवस्तुको भिन्नरूपताकरनिश्चित

हुएभी यज्ञान औततप्रयुक्तसंशयहोताहै ॥ इसतुम्हारेकथनसे यज्ञा
नादिकोंकेविद्यमानहुए निश्चयहीनहींहोगा । औस्यदिनिश्चयतुम
मानोंगे॥तो यज्ञानादिकोंका सद्भावनहीहोगा॥इसीअर्थकोस्पष्टकरते
हैं । अध्यस्तसेजोअधिष्ठानकाभेदहै इसीकोविवेककहतेहैं । और
कल्पितयज्ञानकेस्वरूपकीस्थितिहुएतिसकेअधिष्ठानआत्माकाअन्यत्व
रूपविवेककिसीप्रकारभी ज्ञातनहीहोसकता ॥ क्योंकिअध्यस्तपदार्थ
काअधिष्ठानकेसाथ तादात्म्यहोनेकर तिससेभिन्नअध्यस्तकेस्वरूप
काअभावहै। औस्यदिविवेकदृष्टिसे अधिष्ठानरूपआत्मवस्तुनिश्चित
है तोतिसमेंअध्यस्तयज्ञानअथवातिसकाकार्यतिससे भिन्नकरकेतिस
अधिष्ठानमेंनहींहै ॥ ऐसेनिर्णयकरकेहीआत्मतत्त्वनिश्चयकरनेयोग्य
है ॥ तैसेमानेहुए तिसमें यज्ञानकेअभावसे संदेहकीअनुपपत्तिहै ।
औरसंशयकेअभावसे प्रशंसीनहींसंभवता ॥ समाधान ॥ हेमगवन्
इतनेकथनसेभीद्वैतद्रष्टाकास्वरूप आपनेनहींकथनकिया । यद्यपि
आपकरकथनकीहुईयुक्तिसे यज्ञानादिकोंकेनिपेधहुए मोक्षसंबंधीशुद्ध
विकाररहितचेतनशेषहताहै ॥ परन्तुअनिष्टप्राप्तिसे तिसकोद्वैतका
द्रष्टापनानहींसंभवता ॥ क्योंकियदिशुद्धकूटस्थचेतनकोद्वैतकाद्रष्टा
मानोंगे तोमोक्षकालमेंभी द्वैतदर्शनकीप्राप्तिहोगी।यहीअनिष्टप्रसंग
है ॥ शंका ॥ हेगिण्यमोक्षकोनित्यहोनेकर वहसर्वकालमें विद्यमान
है ॥ यातेसर्वहीकालमोक्षकालहीहै ॥ यद्यपिमोक्षकोज्ञानकरसाध्य
होनेसेतिसको नित्यपनायसिद्धहै ॥ तथापि ॥

(विमुक्तश्चविमुच्यते) य०॥ प्रथमभीसुक्तहीथा परंतुयज्ञान
केअभावसेअविमुक्तपनेकाभ्रमहुए तत्त्वसाक्षात्कारकरयज्ञानकेवाधित

हुएविमुक्तहोताहै ॥ ऐसाउपचारिककथनहोताहै ॥ इसशास्त्रसेमोक्ष
कोप्रथमहीसिद्धहोनेसेजन्यपनानहीं है॥औरयदितुमऐसेनहींमानोगे
तोमोक्षकोकादाचित्कहोनेसे अनित्यत्वप्रसंगहोगा। औरअजन्यहोने
से मोक्षकोनित्यपनाहै। यातेमोक्षकालमेंद्वैतकादर्शनअनिष्टनहींहै ॥
क्योंकिइसकालमेंद्वैतका दर्शनविद्यमानहै औरमोक्षभीविद्यमानहै ॥
समाधान ॥ हेभगवन्द्वैतदर्शनतथामोक्ष इनदोनोंकाएककालमें
होनाक्यालौकिकअनुभवकेवलसे आपकल्पनाकरतेहो। अथवाश्रुतिके
बलसेकल्पनाकरतेहो?। प्रथमपक्षमेंतोलौकिक अनुभवकाविरोधप्राप्त
होगा। क्योंकिद्वैतदर्शनकालमें कोईभीमोक्षकोनहींअनुभवकरता।
प्रत्युतसर्वलोकद्वैतकोही अनुभवकरतेहैं ॥ यातेप्रथमपक्षअयुक्तहै।
औरद्वितीयपक्षभीनहींसंभवता।क्योंकिसर्वलोकोंसेविरुद्धअर्थकोश्रुति
भीनहींप्रतिपादनकरसकती ॥ औरयदिलोकविरुद्धअर्थकोभीश्रुति
प्रतिपादनकरेगी॥ तोशिलाप्लवनादिवाक्योंकोभी स्वार्थमेंप्रमाणता
हुईचाहिये। इसप्रकारसर्वलोकोंके अनुभवकाविरोधहोनेसे सर्वही
कालमोक्षकालहै यहकथननहींसंभवता। तैसेमानेहुएद्वैत द्रष्टाका
स्वरूपभीनिर्णीतनहुआ।यातेतिसकास्वरूपथापनेकथनकरनायोग्यहै
यहशिष्यकाअभिप्रायहै ॥ इतिपूर्वपक्ष ॥ (अथसिद्धांत ॥)
यहाँपर्यंतगुरुशिष्यकेसंवादद्वारापूर्वपक्षनिरूपणकिया। अबगुरुशिष्य
केसंवादद्वाराहीसिद्धांतनिरूपणकरतेहैं। द्वैतकेअनुभवकरनेवालेमोक्ष
कोनहींअनुभवकरसकते। शिष्यकेइसकथनकोआश्रयणकरकेश्री
गुरुउत्तरकथनकरतेहैं ॥ समाधान ॥ हेशिष्यअनुभवतयादर्शनशब्द
कोपर्यायहोनेसे जोसर्वद्वैतकेअनुभवकरनेवालेहैं वहीद्वैतदेन्द्रियहैं ॥

यहतुमनेआपही निश्चयकरलियाहै । इसकारणसे अपनीबुद्धिकर
निश्चितार्थमेंपुनःप्रश्नकरनाप्रतिआश्चर्यहै । औरतिसमेंहमारेनिरू
पणकापरिश्रमभीपिष्टपेणन्यायसेव्यर्थहै ॥ शंका ॥ हेभगवन्द्वैत
केअनुभवकरनेवालेहीद्वैतकेदृष्टाहैं । ऐसेनिर्णयहुएभीमोक्षकोकादा
चित्कहोनेसे अनित्यत्वकीप्राप्तिमेंकौनउत्तरहै ॥ समाधान ॥ हेशिष्य
इनकोजोद्वैतकादर्शनहै वहद्वैतदर्शनही सच्चिदानंदपरिपूर्णआत्मस्व
रूपमोक्षके अनुभवकाप्रतिबंधकहै । यहतुमनिश्चयकरो । तैसेमाने
हुएमोक्षनित्यहीहै । परन्तुप्रतिबंधकेवशसेपुरुषोंकोतिसका अनुभवनहीं
होता । जैसेग्रंथकाररूपप्रतिबंधसे गृहकेमध्यदेशमें अवस्थितहुए
घटादिकोंका अनुभवनहींहोता ॥ शंका ॥ हेभगवन् द्वैतदर्शनकोपूर्व
उक्तविशेषणयुक्तमोक्षकाप्रतिबंधकहुएजिनकोद्वैतदर्शनहैतिनकोप्रति
बंधहै । परन्तुमुझद्वैतकेनदेखनेवालेकोकिसकारणसेमोक्षका अनुभव
नहींहोता? यातेद्वैतदर्शनमोक्षके याविर्भावकाप्रतिबंधकनहीं ॥ समाधान
हेशिष्यद्वैतकाग्रदृष्टापना तुमकोप्रसिद्धहै । इसीअर्थकेसिद्धकरनेके
लियेहमतुमसेयहपूछतेहैं । क्यातुमद्वैतकेअनुभवकरनेवालेपुरुषोंसे
भिन्नहोजिसकरद्वैतकोनहीं देखते? ॥ शंका ॥ हेभगवन्इसमेंक्यासंशयहै।
अ्योंकिमेंतिनकोप्रपनास्वरूपनहींदेखता । जिसकारणसेतिनकेसुख
दुःखादिकोंकामुझकोलेपनहींहै । इसीसेमुझकोसुखदुःखादिकोंके
लेपकाप्रभावद्वैतदृष्टाओंसेमेरेभेदविनाअनुपपन्नहुआ तिनसेमेरेभेदको
कल्पनाकराताहै । यातेभेदमेंसुखादिव्यवस्थाकी अनुपपतिरूपअर्था
पतिप्रमाणहै ॥ समाधान ॥ हेशिष्यदृष्टाओंकेभेदमें प्रमाणकथन
करनेवालेतुमने द्वैतकाअनुभवितृत्वअपनेमेंस्थापनकिया । इसीको

स्पष्टकरते हैं । अति आश्चर्य है । अनेक प्रकार से देव तथा तिर्यक और मनुष्यादि भेद कर भिन्न तिन द्वैत द्रष्टाओं को देखता हुआ मैं द्वैत को नहीं देखता ऐसे कथन करने वाले तुम्हका वचन कैसे विश्वास करने योग्य होगा ॥ किंतु मिथ्यावादि पना तुम्हको प्राप्त होगा ॥ शंका ॥ हे भगवन् कथामें प्रतिवादी के व्यामोह करने के लिये अथार्थ भी कथन करने योग्य होता है ॥ समाधान ॥ हे शिष्य मोक्ष की कामना वाले तथा संन्यासी औतत्त्व के जानने की इच्छा वाले तुम्हको यह मिथ्या भाषण करना उचित नहीं । पूर्व यह कथन किया था क्या तुम्हसे भिन्न है जिसकर द्वैत को नहीं देखता ? यहां क्या शब्द से सूचन किये हुए अभेद पक्ष को शिष्य ग्रहण करता है ॥ शंका ॥ हे भगवन् मैं आपसे अभिन्न हूं । याते तुम्हको जो मिथ्यावादित्व आप कहते हो । वह मिथ्यावादित्व आपमें ही प्राप्त होता है ॥ यहां यह अभिप्राय है जैसे दर्पणादि उपाधिके भेद से प्रतिबिम्बों के औपाधिक भेद को ग्रहण करके चलनादिव्यवस्था की उपपत्ति है । तैसे सुखादि व्यवस्था की अनुपपत्ति से औपाधिक भेद को ग्रहण करके व्यवस्था का संभव है । याते व्यवस्था की अनुपपत्तिको स्वभावविक्रियात्मा के भेद का प्रमापक पना नहीं ॥ इस हेतु से मैं उपात्मिक योग्य नहीं हूं ॥ अब इसी पक्ष को स्वीकार करके श्रीगुरु उत्तर कथन करते हैं ॥ समाधान ॥ हे शिष्य यदि द्वैत द्रष्टा वास्तव से तेरे से भिन्न नहीं हैं किंतु तेरा आत्मा ही है तो ऐसे माने हुए तुम्हको आत्मरूप देखता हुआ तू कैसे देखता है अर्थात् क्या तुम्हको द्वैत सहित देखता है अथवा अद्वितीय रूप देखता है ॥ प्रथम पक्ष में तो यह और दोष तुम्हको प्राप्त होगा । क्योंकि जो भेद विद्वान् तथा तेरा ही आचार्य और ब्रह्मरूपता से अवस्थित और द्वैत की वार्त्ता को भी न जानने वाले तिस तुम्हको तुमसद्वितीय रूप

कल्पनाकरतेहो ॥ कलंकरहितमेंकलंकदेखनामहान्दोषहै । और
आत्माकोसद्वितीयदेखनेमें श्रुतिका विरोधभीप्राप्तहोगा ॥ क्योंकि

❀ एकमेवाद्वितीयं नैहनानास्ति किंचन । ❀

इत्यादिश्रुतियों में आत्माकी अद्वितीयरूपताही कथनकीहै ॥
यातेप्रथमपक्षनहींसंभवता । औरआपकोमें अद्वितीयरूपदेखताहूं ।
यदिइसद्वितीयपक्षकोमानो तोइसपक्षमें यद्यपिपूर्वकथनकियेमिथ्या
भाषणादिदोषोंकी प्राप्तिनहींहोती । तथापिइसकालमें तुमने हमको
अद्वितीयआत्मरूपकिसहेतुसेजाना अर्थात्अवपूर्णात्माकादर्शनतुम्हें
कोकिसहेतुसेप्राप्तहुआ? ॥ शिष्यउवाच ॥ हेभगवन् पूर्वउक्तप्रत्युत्तर
रूपआपकेवचनसे मैंनेअद्वितीयआत्माकोजाना ॥ यद्यपिवचनको
युक्तिका प्रतिपादकहोनेसे उपजीव्यप्रमाणकीअपेक्षाहै । तथापिपूर्व
कथनकिया जो (एकमेवाद्वितीयम् ॥) इत्यादिशास्त्रयही
उपजीव्यप्रमाणहै ॥ श्रीगुरुवाच ॥ हेशिष्ययदियुक्तिसहकृत
शास्त्रसे अद्वैत आत्माकासाक्षात्कार तुमको उत्पन्नहोगया तोइससे
पश्चात्अन्यज्ञातव्यका अभावहोनेसे प्रश्ननहींसंभवता ॥ क्योंकि
आत्मवस्तुकेज्ञातहुए तिससेभिन्नअन्यअज्ञात वस्तुकोईनहींजो
प्रष्टव्यहो ॥ शंका ॥ हेभगवन्यद्यपिआत्माको ज्ञातहोनेसे तिस
विषयकप्रश्ननहींसंभवता । तथापिअनात्मातोअज्ञातहै तिसविषयक
प्रश्नसंभवताहै । समाधान ॥ हेशिष्यआत्माकादर्शनहुए इतरसर्व
अनात्मपदार्थका दर्शनहोजाताहै । यहवार्ताश्रुतिमेंप्रसिद्धहै ।

❀ आत्मनोवाअरेदर्शनेन श्रुत्यामत्याविज्ञानेनेदं
सर्वविदितं ॥ ❀ वृ० उ० अ० (४) मे० प्रा० (४) (५)

अ० ॥ अरुमैत्रेयीआत्माके दर्शनसेअर्थात् विचारकेसा १क
 आपातज्ञानसे और तिसकरसाध्यविचाररूप श्रवणसे तथामनन
 सेउत्पन्नहुए विज्ञान अर्थात् साक्षात्कारसेयहसर्वअनात्मपदार्थ
 जानेजातेहैं।इसश्रुतिसे आत्मज्ञानसे सर्वकाज्ञान कथनहोनेसे अज्ञात
 वस्तुकाअभावहोनेकर औरकोईजाननेयोग्य शेषनहींरहा ॥ याते
 प्रश्नहींसंभवता ॥ शंका ॥ हेभगवन् क्याश्रुतिने कथनक्रियाजो
 अर्थ वहीग्रहणकरनेयोग्यहै। अथवायोग्यअर्थ ग्रहणकरनायोग्यहै?
 प्रथमपक्षतोनहींसंभवता ॥ क्योंकि (शिलाप्लवन्ति) अ० ॥
 शिलातरतीहैं । इत्यादिवाक्योंका अर्थभीस्वीकार करनेयोग्यहोगा ।
 औरयदिद्वितीयपक्षकहो तोतिसमेंयोग्यतानहींसंभवती । क्योंकिइतर
 सर्वअनात्मपदार्थआत्मासेभिन्नहैं।अथवाअभिन्नहैं? यहविचारणीयहै
 प्रथमपक्षतोनहींसंभवता।क्योंकिअन्यकेज्ञानसे अन्यकेजाननेकोकोई
 भीसमर्थनहींहोता । जैसेघटकेदर्शनसे पटकाभीदर्शनहोजाताहैऐसे
 कथनकरनेकोकोईभीसमर्थनहीं । यदिऐसेनहींमाने तोघटऔंपटका
 अभेदप्राप्तहोगा । औरद्वितीयपक्षभी नहींसंभवता । क्योंकिप्रत्यक्
 तथापराक् रूपतासे आत्मातथाअनात्माके स्वभावकाविरोधहै। किंवा
 आत्मा तथाअनात्माकाअभेदमानेहुए क्याआत्मामेंअनात्माकाअंत
 भाविहै। अथवाअनात्मामें आत्माकाअंतर्भावहै? । प्रथमपक्षतोनहीं
 संभवता।क्योंकिपरमार्थसत्यस्वरूपआत्मासेअभिन्नअनात्माका(नेति
 नेति)वाक्योंसेनिषेधकरनेकोअशक्यहोनेकरतिसकाबाधनहीं संभवेगा
 औरयदिद्वितीयपक्षमानो तोअनात्माकेअन्तर्भावहोनेकर आत्माका
 भीबाधहोजायेगा । तिससेशून्यहीशेषरहेगा ॥ यातेआत्माकेदर्शनसे

सर्वहीअनात्मपदार्थदेखेजातेहैं यहकथनअयुक्तहै ॥ इति ॥

❀ अथआत्मदर्शनसेसर्वजगत्कादर्शननिरूपण ❀

अधिष्ठानकास्वरूपही अध्यस्तकास्वरूपहोताहै। क्योंकिअधिष्ठान सेभिन्नरूपताकरतिसका निरूपणनहींहोसकता । यहवार्त्ताघटकी आत्मरूपताकेविचारादिकोंमें अनेकवारपूर्व निरूपणकीगईहै ॥ यातेअध्यस्तकीअधिष्ठानसे भिन्नसत्ताकाअभावहुए जगत्केअधिष्ठान आत्माकास्वरूपजानेहुए जगत्कास्वरूपभीजानाजाताहै॥ इसप्रकार जगत्काविदितपनाअर्थात्ज्ञानपनाब्रह्मात्माके अभेदज्ञानसेयुक्तिकर संभावनाकियाजाताहै ॥ तिमकीयोग्यताहोनेकर श्रुतितिसकोबोधन करतीहीहै ॥ ऐसेउत्तस्कोश्रीगुरुकथनकरतेहैं ॥समाधान ॥

मू०॥ आत्मसत्तैवद्वैतस्यसत्तानान्यायतस्ततः ।

आत्मन्येवजगत्सर्वदृष्टेदष्टंश्रुतश्रुतम् ॥५६॥

भूलना ॥ आत्मरूपहिद्वैतकोरूपदिजान नअन्यसरूपहैताहिकेरो । जासकेदेखनेजगतसबदृष्टहुइ श्रवणतेश्रवणहुइजातहेरो । मननतेमननहुइजातक्षणएकमें जानयहमरममनवेदकेरो । ज्ञातव्यअवशेषनहिरहयो कोईयाहेतुतेप्रश्ननबनेतेरो॥४४॥

टी० ॥ हेशिष्ययहपूर्वउक्तदोष नहींसंभवता ॥ क्योंकिआत्म सत्तासेभिन्नअज्ञानतत्कार्यरूपद्वैतकीसत्ताकाअभावहै ॥ जैसेरज्जुके स्वरूपकादर्शनहुएतिसमेंअध्यस्तमालादंडादिकोंका स्वरूपदेखाजाता है। तैसेआत्माकेदर्शनहुए सर्वअनात्मपदार्थदेखेजातेहैं॥ यहवार्त्ताअनुप पन्ननहींकिंतुउपपन्नहै॥ यहांपरयहअर्थजानलेना॥ कारिकामेंकथन कियाहुआ “सत्ता” शब्दस्वरूपकावाचकहै । नेयायिकोंकोअभिमत

सत्तासामान्यकावाचकनहीं ॥ क्योंकितिससत्ताजातिकोविशेषव्यक्ति कीअपेक्षासहितहोनेकर परमार्थरूपताकीअनुपपत्तिहै। इसीकारणसे दृष्टान्तमेंस्वरूपशब्दकाहीग्रहणकियाहै ॥ इति ॥

❀ अथविधिनिषेध उपदेशकीव्यवस्थानिरूपण ❀

पूर्वउक्तयुक्तिसे आत्मासे भिन्नरूपताकर अभिमतसकल अनात्मपदार्थोंको आत्मरूपताकेसिद्धहुए तिससेभिन्नकरकेतिनका असत्त्वजानेहुए विधिनिषेधशास्त्रभीउपपन्नहोसकताहै ॥ अबइसी अर्थकोनिरूपणकरतेहैं ॥ हेशिष्य आत्मस्वरूपसेइतरद्वैतकेस्वरूपका अभावहोनेसे विधिनिषेधशास्त्रकीभी अनुपपत्तिनहीं। तिनमेंप्रथम विधिशास्त्रको उदाहरणकरतेहैं ॥

❀ इदं सर्वं यदयमात्मा । स देवसौम्येदमग्र आसीत् ।

एकमेवाद्वितीयम् ॥ ऐतदात्म्यमिदं सर्वं । ब्रह्म

वा इदमग्र आसीत् । अहं मनुरभवं सूर्यश्च ॥

यत्र त्वस्य सर्वात्मैवाभूत् । नारायण एवेदं सर्वं

यद्भूतं यच्च भाव्यम् ॥ ❀

अ० ॥ जोब्राह्मणत्वजातिआदिकसर्वजगत् प्रत्यक्षादिप्रमाण करउपस्थितअर्थात् प्रसिद्धहै वहसर्वजगत्आत्माहीहै ॥ औरहेप्रिय दर्शनश्वेतकेतो यहसर्वजगत् अपनीउत्पत्तिसे पूर्वकालमें एकसत् आत्मरूपहीथा यहकार्यजातकिंचित्मात्रभीनहींथा । आत्माकेभेद मेंजोनिमित्तहै तिसकोनिषेधकरतेहैं॥ वहआत्माद्वैतसेरहितहै । और यहसर्वजगत्आत्मस्वरूपहीहै । औरयहदृश्यमानजगत् उत्पत्तिसेपूर्व ब्रह्मात्मस्वरूपहीथा । औरमैंमनुहुआतथामैंहीसूर्यहुआ । औरजिस

निर्विशेषव्यवस्थामें इसविद्वान्कोसर्वजगत्प्राप्तिरूपहीहुया ॥ और
यहभूतभविष्यत् वर्तमानकालीनसर्वजगत् नारायणस्वरूपहीहै ।
इत्यादिकविधिशस्त्रहै ॥ अत्रनिषेधशस्त्रकोपठनकरतेहैं ।

❀ नेहनानास्तिकिंचन । अथातआदेशोनेतिनेति॥नहो
तस्मादितिनेत्यन्यत्परमस्ति । अतोऽन्यदार्त्तं ।
नतुतत्तद्वितीयमस्ति॥ नैवेहकिंचनाग्रव्यासति॥
नासदासीन्नोसदासीत् ॥ ❀ वृ० ७० ॥

अ० ॥ (अथ) सत्यस्वरूपकेनिरूपणसे अनंतर (अतः)
जिसकारणसेसत्यकाजोसत्यहै वहीनिरूपणकरनेयोग्य शेषरहताहै
तिसीकारणसे (आदेशः) ब्रह्मकाउपदेशअर्थात्ब्रह्मकेस्वरूपका
प्रतिपादनहै॥ तिसब्रह्ममें गुणक्रियादिकशब्दकी प्रवृत्तिकेनिमित्तोंका
अभावहोनेसेवहयहीहै ऐसेकथनकरनेकी अयोग्यताकेहुएभीप्रपंचका
अपवादकरके तिसनिषेधकाअवधिभूत अधिष्ठानब्रह्मस्वरूपहै ॥ इम
प्रकारश्रुतिरूपशब्दकथनकरताहै ॥ तिसउपदेशकाहीस्वरूपकहतेहैं ।
(नेतिनेति)जोऽजोदृश्यरूपतासेप्राप्तहैवहब्रह्मनहीं।(हि) जिसकारण
से (एतस्मात्नेतीति) इसनिषेधमुख्यउपदेशसे (अन्यत्परमस्ति)और
अधिकउपदेशब्रह्मकानहींसंभवता। तिसकारणसे यहीब्रह्मका उपदेश
संभवताहै। औरइसब्रह्मात्मासेभिन्नसर्वजगत्मिथ्याहै। औरसुषुप्तिव्यव
स्थामेंसाभासअंतःकरणरूपप्रमातृउपलक्षितद्वैतप्रपंचकाअभावहै। और
इसअधिष्ठानब्रह्ममेंउत्पत्तिसेपूर्वकिंचितमात्रभीनहींथा। औरतिसकालमें
सूक्ष्मप्रपंचनहींथा । औरस्थूलप्रपंचभीनहींथा । इत्यादिनिषेधशस्त्र
है । यातेआत्मासेभिन्नद्वैतकाअभावमानेहुए यहदोनोंप्रकारकाउप

देशभीसमीचीनहोसकताहै। जैसेइसलोकमेंरज्जुस्वरूपअधिष्ठानमेंमाला सर्पादिकोंके आरोपवालेपुरुषको विधितथानिपेधरूप दोप्रकारका उपदेशहोताहै। कियहसर्पमालादिकरज्जुस्वरूपहैं। बाइसमेंमालादिक नहीं हैं। तैसेप्रकरणमेंभीजानना॥ शंका ॥ हेभगवन् यद्यपिआत्मा कादोप्रकारकाउपदेशसंभवताहै। तथापिदोनोंप्रकारकेउपदेशों में कौन साउपदेशश्रेष्ठहै॥ समाधान ॥ हेशिष्य यद्यपिदोनोंप्रकारकेउपदेशों कोएकअर्थत्वकाही बोधकपनाहै। तथापिविधिसुखउपदेशमेंकिंचित् अतिशयताभीहै॥ तथाहि ॥ तिसविधिसुखउपदेशमें दृश्यमानपदार्थों काजोस्वरूपहै मोआत्माहीहै। ऐसेकथनकरेहुए तिसआत्मासेभिन्न किंचित्मात्रभीनहीं किंतुआत्माही एकरूपपरिपूर्णहै। यहज्ञान विधि वाक्यसेसाक्षात्ही उदयहोताहै। औरनिपेधसुखउपदेशसे तोसर्वदृश्य केनिपेधकरेहुएनिपेधकाअधिष्ठानरूपताकरआत्माकाज्ञानअर्थसेहोता है साक्षात्तनहीं ॥ इतनेमात्रहीदोनों उपदेशोंकी विलक्षणताहै ॥ औरकोईविलक्षणतानहीं ॥ शंका ॥ हेभगवन् जबविधिसुखउपदेश कोअतिशयहोनेकरतिससेही परमपुरुषार्थकीप्राप्तिहोतीहै॥ तोपुनःदो प्रकारकेउपदेशकीप्रवृत्तिकैसेसंभवेगी ॥ समाधान ॥ हेशिष्य अधिकारीभेदसेदोनोंप्रकारके उपदेशकीउपयोगताहै। इसीअर्थकोप्रथम दृष्टांतद्वारास्पष्टकरतेहैं जैसेकोईपुरुषरज्जुमें सर्पभ्रमकोप्राप्तहोकरभय सेकम्पायमानहोताहै। तिसकेप्रति रज्जुकेस्वरूपकाज्ञाताकोईदयालु पुरुष “नाज्यसर्पः” ऐसा निपेधसुखउपदेशही प्रथमकथनकरताहै॥ और “अयंरज्जुरेव” ऐसाविधिसुखउपदेशनहींकरता ॥ तैसेजोपुरुषजन्मा दिसंसारदुःखसेअत्यंतभययुक्तहुआ तिसकीनिवृत्तिकीहीप्रथमकामना

करता है ॥ तिसके प्रतिप्रथम निषेधवाच्य ही उपयोगी है ॥ और विधिवाक्य पश्चात् कहने योग्य है ॥ और जैसे रज्जु में सर्प भ्रम को प्राप्त होकर मणि मंत्र औपधादिकों से तिसके प्रतीकाज्ञान कर निर्भय हुआ जो पुरुष है वह रज्जु के ज्ञाता पुरुष से पूछना है ॥ यह पुरुष वर्तिपदार्थ क्या है ॥ तिसके प्रति “अयं रज्जुरेव” ऐसा ही उत्तर देना युक्त है ॥ “नाऽयं मर्पः” ऐसा निषेध रूप उत्तर युक्त नहीं ॥ तैसे जो पुरुष संसार से अत्यंत उद्वेग युक्त नहीं ॥ किंतु इस दृश्य मान जगत का वास्तव स्वरूप क्या है ॥ ऐसी जिज्ञासा करता है ॥ तिस पुरुष के प्रति [इदं सर्वं यदयमात्मा] इत्यादि विधिवाक्यों से ही उत्तर देना युक्त है ॥ और निषेध मुख उपदेश पश्चात् कहना योग्य है ॥ इस प्रकार अधिकारी के भेद से दोनों प्रकार के उपदेशों का उपयोग होने कर किसी को भी व्यर्थ नाना ही हो सकती ॥ इमहेतु से विधितथानिषेध रूप दोनों प्रकार के उपदेशों को समतुल्य चित्प्राप्तानंद परिपूर्ण स्वरूप प्रत्यक्ष आत्मा है ॥ यह अर्थ मिद्ध हुआ ॥ इति ॥ ४६ ॥

[पुनः हेतुदृष्टा के स्वरूप का विचार] शंका ॥ हे भगवन् यद्यपि हेतुदृष्टा वास्तव मुक्त भिन्न नहीं ॥ इमपन्न में यद्वेत्यात्मसाक्षात्कार को मिद्ध होने कर आत्मा मे भिन्न अनात्मा के स्वरूप का यभाव होने से सर्व अनात्म पदार्थ भी विदित अर्थात् जाने जाते हैं ॥ याते पृच्छने योग्य अन्य पदार्थ को ईशपन ही गदा ॥ तथापि वह हेतुदृष्टा कौन है ॥ यह यत्र पश्यंत भी निर्णय नही हुआ ॥ ममाधान ॥ हे शिष्य यदि तुम हेतुदृष्टाओं से भिन्न नहीं हो तो तुम प्रश्न करने वाले ही हेतु के दृष्टा हो ॥ शंका ॥ हे भगवन् मैं कौन हूं ॥ अर्थ यह ॥ क्या मैं ममागिम्बभाव हूं ॥ अथवा तिम से विलक्षण अयं ममागिम्बभाव हूं? ॥ यद्यपि देहादिकों की आत्मरूपता को

निषेधकरनेवालेऔरकर्तृत्वादि प्रपंचकोमिथ्यात्वबोधन करनेवाले शिष्यनेब्रह्मरूपताआत्माकी पूर्वनिर्णीतकीहै ॥ यातेतिसमेंपुनःउत्तर नहींसंभवता ॥ तथापिपदार्थशोधनद्वाराअर्थसे ब्रह्मात्माकीएकता सिद्धहोतीहै ॥ औरयहांतोसाक्षात्शब्दसे वहएकताकथनकरने योग्यहै ॥ यातेतिसकेअर्थ इसविचारकाआरंभसंभवताहै । इसप्रकार जिसनेतत्त्वंपदार्थशोधनकियेहैं । औरशरणागतहै । तिसअधिकारी केप्रति कृपापरबशहुएथीयुरु पुनः उत्तरनिरूपणकरतेहैं॥ समाधान॥ हेशिष्यतूअसंसारिब्रह्मस्वरूपहैं ॥ शंका ॥

❀ द्वैतद्रष्टृपदार्थके अवयवनकानिरूपण ॥ ❀

हेभगवन् यदिमुझद्वैतके द्रष्टाका ब्रह्मकेसाथअभेदहै । तोब्रह्म कोविकारिनाप्राप्तहोगा। यद्यपिविकारसमूह अविद्याकाकार्यहोनेसे मिथ्याहै ॥ यहपूर्वअनेकप्रकारसे निरूपणकरआएहैं । तथापिअन्य प्रकारसेतिसकानिर्णयकरनेकेलिये इसविचारकाआरंभहै। समाधान । हेशिष्यब्रह्मकोद्वैतद्रष्टासे अभिन्नमानेहुए विकारिपनेकीप्राप्तिहोगी । ऐसेकथनकरनेवालेलुभको हमयहपूछतेहैं । यहांद्वैतद्रष्टामेंतीनपदार्थ वर्ततेहैं। द्वैतऔरतिसकीदृष्टि औरएकस्वरूपहै।तहांतिनमेंजोस्वरूपहै तिसकेसाथब्रह्मकाअभेदहोनेसेद्वैतद्रष्टाकेसाथअभेदमानेहुएविकारित्व कीप्राप्तिजोतुमअपादनकरतेहो सोसर्वप्रकारसे नहींसंभवती। क्योंकि वहविकारक्याहै।द्वैतहै अथवातिमकीदृष्टिहै॥यहवक्तव्यहैयदिद्वैतको विकारकहो तोयहपक्षसमीचीननहीं ॥ क्योंकिब्रह्मसेभिन्नसकलद्वैत का “नेतिनेति” यहश्रुतिनिषेधकरतीहै॥ शंका ॥ हेभगवन् “भूतले

घटोनास्ति” इसप्रकारनिषेधकियाहुआभीघट जैसेमृत्तिकाकाविकारहै॥
 तैसेश्रुतिकरनिषेध कियाहुआभीद्वैत किसीका विकारक्योंनहो ?
 समाधान ॥ हेशिष्य परमतकीरीतिसेसर्वथाघटकानिषेधनहीं। किंतु
 सन्मुखदेशवर्तिभूतलसे अन्यदेशमें घटविद्यमानहै ॥ औरप्रपंचतो
 अधिष्ठानब्रह्मसेअन्यस्थलमेंहैनहीं ॥ जोअधिष्ठानमेंभीतिसका
 अभावबोधनकियातोअसत्होनेसेवहकिसीकापरिणामनहींहोसकता।
 इसमेंउचितदृष्टांतकोकहतेहैंजैसेअसत्नरशृंगकिसीकाभीपरिणामनहीं
 शंका ॥ हेभगवन् नरशृंगसेद्वैतनिष्ठविलक्षणताहै ॥ क्योंकिनरशृंग
 किसीकोप्रत्यक्षनहींप्रतीतहोता ॥ औरसहप्रपंचतोसर्वकोप्रत्यक्षप्रतीत
 होताहै॥इसप्रकारद्वैतमेंनरशृंगसेविलक्षणताकाप्रयोजकधर्मदृष्टिहैइसी
 हेतुसेद्वैतकोविकारपनासंभवताहै॥समाधान॥हेशिष्यप्रपंचकोनरशृंग
 सेविलक्षणतामानेहुए तिसंकविकारपनेमेंद्वैतत्वधर्मप्रयोजकनहीं ॥
 किंतुअपरोक्षप्रतीतिरूपदृष्टिकेसाथ संबंधित्वरूपधर्मप्रयोजकहै ॥
 तैसेमानेहुए (सविशेषणैहि) इसन्यायसेदृष्टिकेप्राप्तहुएद्वैतनिष्ठविकार
 पनाप्राप्तहोताहै॥औरदृष्टिकेअप्राप्तहुएद्वैतमेंविकारपनानहींप्राप्तहोता।
 यातेदृष्टिहीविकारहै यहपक्षतुमकोमाननाउचितहै॥ किंवा ज्ञान तथा
 ज्ञेयकाभेदपूर्वनिरासकियाहै॥यातेपरिशेषसेभीदृष्टिकोहीविकारकहना
 योग्यहै॥इसप्रकारश्रीगुरुकरअंगीकारकरायेहुएदृष्टिनिष्ठविकारत्वपक्षको
 शिष्यअंगीकारकरताहै॥शिष्यउवाच॥हेभगवन्दृष्टिहीविकारहैयहपक्ष
 मुझकोस्वीकारहै ॥ श्रीगुरुवाच ॥ हेशिष्यदृष्टिशब्दसेक्यावृत्तिका
 ग्रहणहैयथवाविषयनिष्ठअभिव्यक्तहुएफलनामवालेचेतनकाग्रहणहै॥
 इनमेंप्रथमपक्षकहो तोनहींसंभवता ॥ क्योंकिवृत्तिकोस्वभावसेजड

होनेकर प्रकाशकपनेकी अनुपपत्ति है ॥ यातेतिसको दृष्टिपनानहीं
 संभवता । औरद्वितीयपक्षभी असंगत है । क्योंकि फलचेतनको आत्म
 स्वरूपसे अभिन्न होनेकर आत्माके परिमाणपनेका असंभव है । जिस
 कारणसे अपना आपही परिणाम नहीं संभवता ॥ किंवा ॥ यदि आत्मा
 भी परिणामको प्राप्त होता है तो क्या वह स्वरूपतासे परिणामको प्राप्त होता
 है । अथवा किसी एक देशसे परिणामको प्राप्त होता है ? प्रथमपक्षमें तो आत्मा
 का ही अभव प्राप्त होगा सो अनिष्ट है । याते प्रथमपक्ष असंगत है । और
 द्वितीयपक्ष भी नहीं संभवता । क्योंकि आत्मानि स्वयं है ॥ याते कात्स्न्य
 तथा एक देश विकल्पसंज्ञक दोषकी प्राप्ति होनेकर परिणामपक्ष नहीं संभ
 वता ॥ शंका ॥ हे भगवन् यह कात्स्न्य अर्थात् स्वरूपता तथा एक देश
 विकल्पाख्य दोष विवर्त्तपक्षमें भी तुल्य ही है ॥ समाधान ॥ हे शिष्य
 विवर्त्तके स्वरूपका ही तुम्हको अज्ञान है । यदि विवर्त्तका स्वरूप तुम जानते
 तो यह दोषकी आशंका तुम्हको न होती ॥ क्योंकि अधिष्ठानके स्वरूपसे
 भिन्न विवर्त्त किंचित् मात्र भी वस्तु नहीं । जिसको आश्रयण करके कात्स्न्य
 तथा एक देश विकल्पाख्य दोषकी प्राप्ति हो किंतु अधिष्ठान ही दोषके वश
 से विलक्षण प्रकारसे भासमान हुआ विवर्त्त कहा जाता है ॥ शंका ॥
 हे भगवन् वह विलक्षण प्रकार ही किसका है । यह आपने कहा चाहिये ॥
 समाधान ॥ हे शिष्य क्या प्रातिभासिक आकार किसका है यह तुम पूछते
 हो । अथवा वास्तव आकार किसका है यह पूछते हो ? ॥ यदि प्रथमपक्ष कहो
 तो वह प्रातीतिक आकार अधिष्ठान का ही है । यह हम अपने कवाग्रोधन
 कर आए हैं । और द्वितीयपक्ष भी नहीं संभवता । क्योंकि वास्तव आकार
 तो वह किसी का भी नहीं । जिस कारणसे आत्माकी वास्तव्यनात्माकारता

निषेधवाक्योंकर बाधितहोनेसेनहींसंभवती॥ औरआत्मासेअन्यस्थल मेंतिसआकारकी अप्रतीतिहोनेसे वहांभी तिसकाअभावहै । याते वास्तवसेविलक्षणकार किसीकाभीनहीं यहसिद्धहुआ ॥ शंका ॥ हेभगवन् विवर्त्तवादकेव्याजअर्थात्त्वहानेसेअसत्ख्यातिवादकाहीयह आपनेउपपादनकियाहै ॥ समाधान ॥ हेशिष्य असत्ख्यातिवाद कायहउपपादननहीं। क्योंकिअसत्ख्यातिवादीचार्वाकनेऐसेअंगीकार नहींकिया। तथाहि तिसकमतमेंतोज्ञानअध्यस्तनहीं । औरहमारेमतमें तोख्याति अर्थात्ज्ञानभीअध्यस्तहै । यातेसर्वरूपतासेसमतानहीं औरसमताकेअभावहुए परसिद्धांतकीप्राप्तिभीनहींहोसकती । और सर्वपदार्थोंकोशून्यकहनेवालेवादीकामत तोपूर्वहीनिरासकरआएहैं॥ शंका ॥ हेभगवन् ख्यातिनामस्वरूपचेतनकाहै । तिसकोअध्यस्त मानेहुए शून्यताकी प्राप्तिहोगी॥ यातेख्यातिनिष्ठअध्यस्तपनाक्याहै समाधान॥ हेशिष्य स्वरूपसेरजतकीन्याई ख्यातिअध्यस्तहै यहहम नहींकहते ॥ किंतुवास्तवसेनिःप्रकारिकख्यातिकोअर्थात्प्रकारशून्य ख्यातिकोआकारांतररूपताकरमानहोनेसे वहअध्यस्तहै।ऐसेहमकहते हैं।यातेशून्यताकीप्राप्तिनहींहोती॥ शंका ॥हेभगवन् तिसआकारांतर कास्वरूपकहाचाहिये। यदिआकारांतरकोआपआत्मस्वरूपहीमानोगे तोआत्मरूपताकरही वहसर्वकोक्योंनहींप्रतीतहोता? ॥समाधान ॥ हेशिष्य द्वैतकावास्तवस्वरूपआत्माहीहै।यहप्रतीतिक्याआत्माकेअपरो ज्ञानवालेकोआपादनकरतेहो।अथवाअज्ञानीकेप्रतिआपादनकरतेहो? प्रथमपक्षमेंतोहमकोभीइष्टापत्तिहै । क्योंकिआत्माकेअपरोज्ञानवाले पुरुषकोयहद्वैतनिर्विकल्पकख्यातिअर्थात्आत्मस्वरूपहीभासताहै ॥

और द्वितीयपक्ष भी नहीं संभवता। क्योंकि अन्यप्रकारके आकारकी प्रतीति कालमें स्वरूप प्रतीति का विरोध होनेसे भ्रांत पुरुष को तिसकी अयोग्यता है ॥ शंका ॥ हे भगवन् भ्रमज्ञान का विषय अधिष्ठानसे भिन्न कोई है ? अथवा नहीं ॥ यदि अन्त्यपक्ष कहो तो तिसको भ्रान्त पना कैसे होगा। क्यों कि उसने अधिष्ठान ही देखा है ॥ और यदि प्रथमपक्ष कहो तो तिस विषय का स्वरूप आपकर कथन करने योग्य है ॥ समाधान ॥ हे शिष्य अधिष्ठानसे भिन्न किंचित् मात्र भी नहीं ॥ यद्यपि ऐसा माने हुए तिसको भ्रांत पना नहीं होगा तथापि अन्यवस्तु विषयक प्रतीतिको अन्यविषयत्वके अभिमानसे ही तिसको भ्रांत पना है । जैसे लोकमें रज्जु को देखता है । और “अयं सर्पः” ऐसे सर्प का अभिमान करता है ॥ तैसे आत्मा को देखता है । और “इदं जगत्” ऐसा अभिमान करता है ॥ और यदि तुम यह कहो कि वह अभिमान क्या है । सो तुम श्रवण करो ॥ परमार्थसे स्थित विषय को भासमान हुए भी जो तिसमें अस्तित्व निश्चय अर्थात् भ्रम है वही अभिमान है ॥ शंका ॥ हे भगवन् यदि वास्तवसे पुरुष को रज्जु विषयक ही प्रत्यय होता है तो पुनः “यह सर्प है” ऐसे सर्प के उल्लेखवाला होकर वह प्रत्यय कैसे स्फुरण होता है ॥ समाधान ॥ हे शिष्य रज्जु तथा सर्प का सादृश्य है । तिसीसे सर्प की प्रतीति होती है ॥ शंका ॥ हे भगवन् यदि सादृश्य दोष को आप अध्यास का कारण कहोगे । तो आत्मामें अन्याकारता की प्रतीति नहीं हुई चाहिये । क्योंकि निखयव होनेसे तिसमें अनात्मा के सादृश्य का अभाव है ॥ समाधान ॥ हे शिष्य आत्मामें तो अज्ञानरूप दोष के वशसे ही अन्याकारता की प्रतीति संभव है । या तो सादृश्यसे अथवा अज्ञानसे भ्रम प्रत्यय संभवता है । इस कारणसे ही “नायं सर्पः” इस वाधके उत्तर रज्जु ही मैंने

सर्परूपताकरदेखी।ऐसेयहपुरुषमानताहै । याते“अयंसर्पः” यहप्रत्यय
 असत्तत्त्वहै ॥ शंका ॥ हेभगवन्क्यासर्पउसने देखाहीनहीं ? यदि
 आपइसअर्थको स्वीकारकरलोगेतो अनुभवकाविरोधप्राप्तहोगा ।
 क्योंकिभ्रमकालमें सर्पकाअनुभवसर्वपुरुषोंकोप्रसिद्धहै ॥समाधान॥
 हेशिष्यभ्रांतपुरुषके अनुभवकाविरोधहुएभी विरोधनहींहोता।क्योंकि
 तिसभ्रांतपुरुषकोक्याप्रतीतहुआक्यानहींप्रतीतहुआइसप्रकारकेविवेक
 का प्रभावहै ॥ औरभ्रांतिसरहितपुरुषकोऐसाअनुभवहोतानहीं इसी
 से अनुभवकाविरोधनहीं है ॥शंका॥ हेभगवन् “रज्जुहीमैंनेदेखीसर्प
 नहींदेखा”ऐसेकथनकरेहुएप्रामाणिकपुरुषकेअनुभवकेअनुसारदृष्टान्तमें
 तोअधिष्ठानरज्जुऔरतिसकोविषयकरनेवालीप्रतीतियहदोपदार्थवर्त्ततेहैं
 सर्पतथासर्पकाज्ञानयहदोनोंनहींहैं। क्योंकिभ्रांतपुरुषकीप्रतीतिआदर
 करनेयोग्यनहीं । औरभ्रांतिज्ञानऔरतिसकेविषयकाअसत्त्वपूर्वसमीप
 हीकथनकरआएहैं।औरदार्ष्टान्तमेंतोस्वप्रकाशचेतनआत्माहीअधिष्ठान
 है । तिसविषयकदूसरीप्रतीतिकास्वीकारनहीं । क्योंकिअधिष्ठानऔर
 तिसकीप्रतीतिहदोनोंआत्माहीहैं॥ऐसेमानेहुएअधिष्ठानहीस्वस्वरूप
 कोनत्यागकरकरूपांतरसेभासमानहुआविवर्त्तहै। यहपक्षदूरहुआ।क्यों
 किअधिष्ठानसेभिन्नविवर्त्तकास्वरूपदिखलानेकेअयोग्यहै । यातेरूपां
 तरकाअभावहोनेसे भानकर्तृत्वकाभीअभावहै । इससेस्वसिद्धांतका
 परित्यागअतिस्पष्टहै॥ समाधान ॥ हेशिष्य स्वसिद्धांतकात्यागनहीं
 होता ॥ क्योंकितिसविवर्त्तवादकोमध्यमअधिकारियोंकेप्रतिबोध
 मात्रप्रयोजनवालाहोनेकरउपनिषदोंकेतात्पर्यकी विषयतातिसमेंनहीं
 है ॥ तात्पर्ययहहै ॥ किजैसेमंदरकेशिखरपरआरूढहोनेकीइच्छा

बालापुरषसोपानके एकपर्वसे दूसरेपर्वपरचरणस्वताहुआमंदरकेशिखर
परआरुढहोजाताहै । इससोपानारोहणन्यायसे अद्वितीयचेतनमेंबुद्धि
केप्रवेशअर्थप्रपंचका प्रथमआरोपकरके निषेधकरतीहुई श्रुतिभगवती
विवर्त्तमेंपर्यवसानताकोप्राप्तहोतीहै ॥ वास्तवसेअन्याकारप्रतीतिके
सद्भावप्रतिपादनमेंश्रुतिकातात्पर्यनहीं । अन्यथासमन्वयअधिकरण
काविरोधप्राप्तहोगा॥क्योंकितिसमिथ्याप्रतीतिकोआत्माकीन्याईप्रमाण
सिद्धहोनेकरतिससेहीद्वैतकीप्राप्तिहोजायेगी। यातेविवर्त्तमेंभीवास्तवसे
श्रुतिकातात्पर्यनहीं। इसीसेस्वसिद्धांतकीभीहानिनहीं॥शंका॥हैभग
वन्वहद्वैतदृष्टिमिथ्याहीहै।यातेदूसरीमन्वस्तुकाअभावहोनेसे द्वैतकी
प्राप्तिनहींहोती ॥ समाधान ॥ हेशिष्य द्वैतदृष्टिनिष्ठयहमिथ्यात्व
क्याहै ॥ क्यात्रैकालिकअमन्वका नाममिथ्यात्वहै । वाअसत्पनेके
तुल्यहुएभीकादाचित्कप्रतीति विषयत्वरूपमिथ्यात्वहै? द्वितीयलक्षण
गतपदोंकाप्रयोजनकहतेहैं॥ यदि“असत्”मात्रहीमिथ्यात्वकालक्षण
कहतेतोगगनकमलादिकोंमें अतिव्याप्तिहोती । तिसकेनिवारण
अर्थ“कादाचित्कप्रतीतिविषयत्व” यहपदकथनकियाहै।औरप्रतीतिभी
यहांअपरोक्षहीविवक्षितहै ॥ औरअसत्नामसद्विलक्षणकाहै । और
यदिकादाचित्कप्रतीतिविषयत्वही मिथ्यात्वकालक्षणकहें तोवृत्ति
व्याप्यत्वरूपताकर आत्मामेंभीमिथ्यात्वप्राप्तहोगा ॥ तिसकीनिश्चि
अर्थ “असत्” यहविशेषणकथनकियाहै। आत्मासत्त्वसेविलक्षणनहीं
किंतुसत्त्वरूपहै ॥ यातेतिसमेंमिथ्यात्वके लक्षणकीअतिव्याप्तिनहीं
होनी॥और“कादाचित्क”पदस्वरूपकथनपरहै। वहकिसीअव्यावर्तक
नहीं । यातेलक्षणकायहनिष्कर्षसिद्धहुआ ।

सद्वैलक्षण्ये सति अपरोक्षप्रतीतिविषयत्वां मिथ्यात्वम् ।

अ० ॥ सतसेविलक्षणहुया अपरोक्षप्रतीतिकाजोविषयहोसो मिथ्याहै ॥ इति ॥ इसप्रकारद्वितीयपक्षगतमिथ्यात्वका लक्षणकह करअवत्रैकालिकअसत् रूपहीप्रतीतिनिष्ठमिथ्यात्वहै। इसप्रथमपक्षकोइष्टा पत्तिसेदूषितकरतेहैं । प्रथमपक्षकहोतोवहहमकोभीस्वीकारहै। क्योंकि श्रुतिभगवतीद्वैतका त्रैकालिकअत्यन्ताभाव बोधनकरतीहै। औरद्वितीय पक्षभीनहीसंभवता । क्योंकितिसमिथ्याप्रतीतिसेभी अद्वैतकीहानि पूर्वकीन्याईहीअवस्थितहै । इसीअर्थकोस्पष्टकरतेहैं । “अयंसर्पः” इसप्रतीतिकोमिथ्या कथनकरनेवालेवादीनेतिस प्रतीतिविषयकऔर प्रतीतिअवश्यकहनेयोग्यहै ॥ क्योंकिमिथ्यात्वकालक्षणप्रतीति कर्मत्वअर्थात्प्रतीतिविषयत्वकरघटितहै नैसेमानेहुएवहप्रतीतिभि क्यामिथ्याहै। अथवापारमार्थिकसत् रूपहै ॥ वातुच्छहै? ॥अन्यपक्ष तोनहीं संभवता । क्योंकि अन्यप्रतीतिकीन्याई प्रथमप्रतीतिकोभी तुच्छताप्राप्तहोगी ॥ औरमध्यमपक्षभीनहींसंभवता॥क्योंकिद्वैतकी प्राप्तिहोतीहै । वहअनिष्टहै॥ औरअनवस्थादोषकीप्राप्तिहोनेसेप्रथम पक्षभीअसंगतहै ॥ यातेपूर्वउक्तमिथ्यात्वकालक्षणनहींसंभवता । शंका ॥ हेभगवन् “अयंसर्पः” इसप्रथमप्रतीतिकेमिथ्यात्वकानिर्वाह करनेकेलियेतिसविषयक अन्यप्रतीतिकास्वीकारहै ॥ औरतिसके माननेसेअनवस्थादोषकीभीप्राप्तिनहींहोती ॥ क्योंकिवहअन्यप्रतीति साक्षिरूपहै । औरतिसमाक्षीकोस्वप्रकाशताहोनेकर अन्यप्रतीतिकी भीअपेक्षानहीं। औरतिसकोआत्मस्वरूपहोनेकरद्वैतकीभीप्राप्तिनहीं। समाधान ॥ हेशिष्य (असंगोहायंपुरुषः) इसश्रुतिसेसाक्षि

निष्ठप्रसंगतहै । औरसंघसे विना प्रकाशकताका असंभवहै ॥
 औरसाक्षीमेंकादाचित्कपनेकीभी अनुपपत्तिहै । क्योंकिवहनित्यहै ॥
 इसीअर्थकोस्पष्टकरतेहैं। हेशिष्यसाक्षिशब्दसेअविद्याकीवृत्तिमेंआरुढ़
 चेतनकाग्रहणहै।अथवाशुद्धचेतनमात्रकाग्रहणहै?। प्रथमपक्षतोनहीं
 संभवता ॥ क्योंकिविशिष्टपदार्थमिथ्याहोताहै ॥ यदिविशिष्टकोभी
 पारमार्थिकमानों तोविशेषणरूपवृत्तिकोभीपारमार्थिकत्वप्रसंगहोगा ॥
 औरविशिष्टकोमिथ्यामानेहुए अनवस्थादोषपूर्वकीन्याईहीअवस्थित
 है॥औरयदिऐसेकहो किवृत्तिमेंप्रतिबिंबतचैतन्यस्वस्वरूप तथावृत्तिइन
 दोनोंकोप्रकाशकरदेगा।क्योंकिवहस्वप्रकाशस्वरूपहै ॥ सोयहकथन
 भीनहींसंभवता ॥ क्योंकिलक्षणमें प्रतीतिविषयत्वकथनकियाहै ॥
 औरएकहीपदार्थ मेंकर्तृकर्मविरोधहोनेसेप्रतीतिविषयत्वकाअसंभवहै ॥
 औरशुद्धचेतनमात्र साक्षिशब्दकाअर्थहै यहतृतीयपक्षयदिकहो तो
 तिसमेंयहविचारणीयहै वहसाक्षीस्वसंबंधिपदार्थकोप्रकाशकरताहै ॥
 अथवास्वअसंबंधीकोभीप्रकाशकरताहै?। प्रथमपक्षतोनहींसंभवता॥
 क्योंकितिसकाकिसीपदार्थसेसंबंधनहीं।यहअर्थश्रुतिमेंप्रसिद्धहै। और
 द्वितीयपक्षभी नहींसंभवता ॥ क्योंकिप्रदीपादिकों मेंस्वसंबद्धअर्थका
 हीप्रकाशकपनादेखाहै ॥ स्वअसंबद्धकानहीं ॥ तेसेसाक्षीभीस्वअसं
 बद्धअर्थकोकैसेप्रकाशकरेगा किंतुनहींकरसकता ॥ किंवा ॥ द्वैत
 दृष्टिजोहै।सोक्याप्रमाणसिद्धहै।अथवाअप्रमसिद्धहै?। प्रथमपक्षतोनहीं
 संभवता । क्योंकिअद्वैतप्रतिपादकश्रुतिकाविरोधप्राप्तहोगा । और
 द्वितीयपक्षभीनहींसंभवता । क्योंकिभ्रांतिसिद्धपदार्थनियमसेअसत्
 होताहै । औरयदिभ्रांतिसिद्ध पदार्थकोभीसत्मानोगे । तोतिसको

भ्रांतिविषयत्वकाहीअभावहोगा । इसपूर्वकथनसेयहअर्थसिद्धहुआ
किआत्मानिष्ठद्वैतदृष्टिकदाचिर्मीनहींसंभवती । इसीअर्थकोयह
श्रुतिभीकहतीहै ॥

❀ यद्वैतन्नपश्यति पश्यन्वतन्नपश्यति । ❀ ४० ३०

अ०॥ जोयहआत्मासुषुप्तिकालमेंकिसीद्वैतपदार्थकोनहींदेखता
सोदेखताहुआहीनहीं देखता।तात्पर्य्यहहै॥ तिसकालमेंआत्मादेखता
नहीं इसहेतुसेजडहै ऐसेनहींजानना किंतुआत्मातोअलुप्तदृष्टिहै
परन्तुकोईअनात्मपदाथवहांहैनहीं यातेकिसकोदेखे॥ यहश्रुतिअलुप्त
दृष्टिरूपआत्मानिष्ठ द्वैतदृष्टिकोनिवारणकरतीहै ॥ और

❀ बालान्प्रतिविवर्त्तोऽयं ब्रह्मणः सकलंजगत् ।

अविवर्त्तितमानंदवर्त्ततेकृतिनःसदा ॥ १ ॥ ❀

अ० ॥ (बालान्) मध्यमअधिकारियोंकेप्रतियहसर्वजगत्ब्रह्म
काविवर्त्तकथनकियाहै । और (कृतिनः) उत्तमअधिकारियोंको
तोविवर्त्तसेरहितआनंदस्वरूपब्रह्मही सर्वदाकालवर्त्तमानहै ॥ १ ॥
यहस्मृतिभीआत्मानिष्ठद्वैतदर्शनका अभावहीमानतीहै । इसप्रकार
आत्मामेंद्वैतदर्शनका अभावश्रुतितथास्मृतिकरसिद्धहैइति॥ शंका ॥
हेभगवन्कार्यसहित अज्ञानरूपद्वैतकाआत्मामेत्रैकालिकअत्यन्ताभाव
है ॥ इसपक्षमेंनित्यमुक्ततथा असंसारीआत्माकोतत्त्वमस्यादिशास्त्र
करसाध्यप्रयोजनकाअभावहोनेसे शास्त्रकोनिष्फलताकीप्राप्तिहोगी।
तथाहितत्वमस्यादिशास्त्रक्याप्रत्यक्ब्रह्मके अभेदकोप्रकाशकरताहै ।
अथवातिसकेअज्ञानादिकोकी निवृत्तिकरताहै । प्रथमपक्षतो नहीं
संभवता । क्योंकिप्रत्यक्ब्रह्मका अभेदचेतन रूपहोनेसेस्वप्रकाशहै॥

औरद्वितीय पक्षभी नहींसंभवता ॥ क्योंकि अत्यंत असत्पदार्थ
नित्यही निवृत्तहै ॥ इसप्रकारदोनोंपक्षोंमें शास्त्रकीनिष्फलता है ॥
समाधान ॥

***अथअसत्कानिर्वर्त्तकरूपकरशास्त्रकीसफलता
कानिरूपणा ॥ ❀**

हेशिष्यनित्यमुक्त तथाअसंसारी आत्मानिष्ठ अत्यंतअसत्
संसारकानिर्वर्त्तकरूपनाकरही शास्त्रकीसफलताहै । और “नासी
दस्तिभविष्यति” इत्याकारकबाधका उत्पादकत्वहीसंसारकानिर्वर्त्तक
त्व शास्त्रनिष्ठजानना॥औरध्वंसकानामनिवृत्तिनहींहै।क्योंकितिसको
पूर्वनिषेधकरआएहैं॥औरवहसंसारकानिर्वर्त्तकत्वभी शास्त्रकोप्रत्यक
तथाब्रह्मकेअभेदगोचर अपरोक्षवृत्तिके उत्पादनद्वाराहीजानना। यह
भावहै ॥ शंका ॥हेभगवन्अत्यंतअसत् पदार्थकोनित्यहीनिवृत्तहोने
करतिसमेंशास्त्रकाव्यापार निष्फलहीहै ॥ समाधान ॥ हेशिष्ययदि
शास्त्रअसत्कोनहींनिवृत्तकरता।तोअसत्कोनिवृत्तकरताहै। अथवा
अनिर्वचनीयको निवृत्तकरताहै? ॥ यहविचारणीयहै । प्रथमपक्षतो
नहींसंभवता । क्योंकिजैसेअसत्को शास्त्रनहीं निवृत्तकरता तेसे
सत्कोभीनिवृत्तनहींकरता। जिसकारणसे सत्कोशास्त्रनिवृत्तकरताहै
यहभीकहींनहींदेखा।अन्यथासत्आत्माकीभीनिवृत्तिहोगी॥औरयदि
अनिर्वचनीयकोशास्त्रनिवृत्तकरताहै।यहद्वितीयपक्षकोतोवहभीनहीं
संभवता । क्योंकितिसकीनिवृत्तिभीशास्त्रकर देखनेमेंनहींआती ॥
कारणयहहै।किअनिर्वचनीयपदार्थ निवृत्तहोताहै । इसवार्तामेंवादी
तथाप्रतिवादीकोनिर्णायितस्थलकोईभीनहीं ॥ यातेअनिर्वचनीयको

भीशास्त्रनहीं निवृत्तकरता ॥ शंका ॥ हे भगवन् जगत्को यत्न्यंत
 असत् प्रापने कथन किया । यौरतिमकानिर्वर्तकशास्त्र है ॥ यहवार्ता
 प्रापने नर्कसे प्रतिपादन की है ॥ प्रमाणकर सिद्ध नहीं । इस याशंकाको
 श्रीगुरु निषेध करते हुए यौर शास्त्रकी सार्थकरूपतासे प्रमाणताको
 उपसंहार करते हुए उत्तर कहते हैं ॥ ममाधान ॥ हे गिष्य जिस कारणसे
 प्रपंच यत्न्यंत यमत् है इसी कारणसे

❀ विमुक्तश्च विमुच्यते । निवृत्तं च निवर्तते ॥ ❀

इत्यादि शास्त्रमें यत्न्यंत यमत् मंसारका निर्वर्तकरूपता कर ही
 शास्त्र निष्ठ प्रामाण्य की मिद्धि है । यह श्रुति ग्रन्थ पर है इस याशंकाको
 निवारण करने वाला मंत्र पशारीरुकाश्लोक पठन करते हैं ॥

❀ नित्यबोधपरिपीडितं जगद्विभ्रमं नुदति वाक्यजामतिः ।
 वासुदेवनिहतं धनं जयो हन्ति कौरवकुलं यथा पुनः ॥ ❀

(अ० २ श्लो० ३८)

अ० ॥ नित्यज्ञानस्वरूप आत्मामें स्वप्रकाशस्वरूप बोधके प्रभाव
 से यह जगत् रूप भ्रम “पीडित” कहिये यमत् है ॥ तिस नित्य निवृत्त मंसारको
 हीतत्वमस्यादि वाक्यसे उत्पन्न हुआमात्रात्कार पुनः निवृत्त करता है । जैसे
 श्रीकृष्ण भगवान् कहन न करे हुए सौरवकुल को पुनः अर्जुन हनन करता है ।
 यह स्मृति भी नित्य बोधस्वरूप आत्मामें स्वरूपका विचार करके जगत् रूप
 भ्रम के यत्न्यंत यमत्त्व को ही कथन करती है । याते यमत् की निवृत्ति करके
 ही शास्त्र में मफलता है । यह यर्थ मिद्धि है ॥ किंवा ॥ शास्त्रको अनर्थक
 रूपता कर ग्य प्रामाण्य का जो प्रापादन है । मोस्याद्वैतवादी के प्रति है । अथवा
 अद्वैतवादी के प्रति है । प्रथम पत्र में तो ब्रह्ममें भिन्न शास्त्र यमत् रूप है ऐसे

माननेवालेवादियोंकेप्रतिशास्त्रनिष्ठअप्रमाणताकीप्राप्तिरूपदोषहोगा ॥
 क्योंकिवहप्रमाणकोहीमुख्यमानतेहैं ॥ औरअद्वैतवादियोंकेप्रतितिसदोष
 केआपादनकीअयोग्यताहै ॥ क्योंकिजोद्वैतकीवार्त्ताभीनहींजानते।
 किंतुसदाहीअद्वैतहै ऐसामानतेहैं । तिनकोयहदोषकैसेप्राप्तहोसकता
 है ॥ शास्त्रअथवातिसकीप्रमाणता ब्रह्मसेभिन्नतिनकोस्वीकारहीनहीं
 यदिब्रह्मसेभिन्नइनदोनोंकोमाने तोइनदोनोंकरहीअद्वैतकीहानिहोगी
 ॥ शंका ॥ हेभगवन् यदिवेदको आपअप्रमाणमानोगे तोआपको
 पाखंडत्वप्राप्तहोगा ॥ क्योंकिवहवेदकोप्रमाणनहींमानता ॥ समाधान ॥
 हेशिष्य वेदमेंहमअप्रमाणताभी नहींमानते ॥ यातेपाखंडपनेकीप्राप्ति
 हमकोनहींहोती ॥ औरवास्तवसेतोपाखंडत्वभी आत्मासेभिन्नअत्यंत
 असत्हीहै। अद्वैतवादीकेप्रतितिसकाआपादनहीनहींसंभवता ॥ यहभाव
 है ॥ शंका ॥ हेभगवन् वेदकीअप्रमाणताके अनंगीकारकरेहुएभी
 तिसकीप्रमाणता आपअंगीकारकरतेहो। वानहीं? प्रथमपक्षमेंतोद्वैतकी
 प्राप्तिहोगी। योंकिब्रह्मसेभिन्न तिसकीप्रमाणताआपनेमानीहै। और
 द्वितीयपक्षमें ब्रह्मात्माकेअभेदकीअसिद्धिहोगी। क्योंकितिसमेंप्रमाण
 काअभावहै ॥ समाधान ॥

अथअद्वैतनिष्ठअप्रामाणिकत्वशंकाकापरिहारनिरूपण

हेशिष्य यहतुम्हाराविकल्प द्वैतदर्शकिंप्रतिहै। अथवाअद्वैतदर्श
 केप्रतिहै? । प्रथमपक्षकहो तोहमारीआहानिहै । क्योंकिप्रमाणके
 आधीनआत्माकी सिद्धिमाननेवाले द्वैतदर्शकिंप्रति तिसदोषकीप्राप्ति
 होगी। औरद्वितीयपक्षमें तोप्रमाणप्रमेयभावकीहीअसिद्धिहै ॥ क्योंकि
 [यत्रत्वस्यसर्वात्मैवाभूत्] इसश्रुतिनेअद्वैत आत्माकाही

प्रतिपादन किया है ॥ किंवा ॥ प्रमाणका अन्वेषण तुम किसलिये करते हो। यदि यह कहो। कि अद्वैत आत्मा की प्रतीतिके अर्थ प्रमाणका अन्वेषण है तो यह कथन नहीं संभवता । क्योंकि स्वप्रकाशरूपता कर ही अद्वैत आत्मा की सिद्धि है ॥ यह अर्थ विस्तार से पूर्व निरूपण कर आएं ॥ और यदि अज्ञान की निवृत्ति अर्थ प्रमाण की अपेक्षा कहो तो भी अद्वैत को सिद्ध होने पर तिसमें प्रमाण की अपेक्षा नहीं। या ते अद्वैत को अप्रामाणिकता की प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ इति ॥ द्वैत दर्शक प्रति तिसको दोषरूपता है यह पूर्व कहा था। तिसको ग्रहण करके पुनः शिष्य शंका करता है ॥

✽ अथ द्वैत दर्शित्व पदार्थ के विचार निरूपण पूर्वक द्वैत निष्ठ तुच्छत्व का प्रतिपादन ॥ ✽

शंका ॥ हे भगवन् द्वैत दर्शित्व क्या आत्मा का धर्म है ॥ अथवा आत्मा का स्वभाव है ॥ प्रथम पक्ष में भी पुनः यह विचार कर्तव्य है। वह धर्म क्या सत् है अथवा असत् है ॥ द्वितीय पक्ष तो नहीं संभवता ॥ क्योंकि असत् बंध्या के पुत्र को किसी का धर्म पना दे खान नहीं ॥ और प्रथम पक्ष कहोगे तो द्वैत की प्राप्ति होगी ॥ और आद्य द्वितीय पक्ष में दर्शन का द्वैत को विशेषण पना ही कहने योग्य है उपलक्षण पना नहीं। क्योंकि द्वैत को उपलक्षण माने हुए “दर्शित्व” ही आत्मा का स्वभाव सिद्ध होगा । वह स्वदर्शित्व रूपना कर भी बन सकता है। या ते द्वैत पद का ग्रहण व्यर्थ होगा । इससे यह अर्थ सिद्ध हुआ कि द्वैत विशिष्ट दर्शित्व आत्मा का स्वभाव है ऐसे माने हुए सर्व द्वैत की भी स्वतः सिद्धि होगी ॥ क्योंकि विशिष्टवृत्ति धर्म का विशेषण में वर्तने का नियम है ॥ समाधान ॥ हे शिष्य द्वैत को आत्मा का स्वभाव माने हुए तिसकी भी स्वतः सिद्धि होगी। यह तुम्हारा कथन नहीं संभवता ।

क्योंकि इसमें यह विचार कर्तव्य है। क्या आत्मा स्वरूप ही द्वैत है ऐसा अंगीकार करके तुम द्वैत की स्वप्रकाशता आपादन करते हो। अथवा स्वतंत्र रूपता कर द्वैत की स्वप्रकाशता कहते हो? प्रथम पक्ष में तो हम को भी इष्टा पत्ति है। क्योंकि आत्मा की स्वप्रकाशता स्वतः सिद्ध है। और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि (निवृत्तं च निवर्त्तते) यह श्रुति आत्मा से भिन्न सर्व को तुच्छता बोधन करती है। और पूर्ण आत्मा के प्रतिपादक श्रुति वाक्य का सिद्ध पूर्ण आत्म स्वरूप की अनुपपत्ति से भी द्वैत निष्ठ तुच्छता है। या तो स्वतः अथवा परसे द्वैत की सिद्धि अयोग्य होने से द्वैत अत्यंत अलीक है ॥ इति। श्रुति सिद्ध आत्मा के स्वरूप की अनुमाता से द्वैत को तुच्छ पना कथन किया ॥ तिसके उपपादन करने के लिये पुनः शिष्य आशंका करता है ॥

❀ अथ लौकिक तथा परीक्षक पुरुषों के तुच्छत्ववाद का अनंगीकार निरूपण ❀

शंका ॥ हे भगवन् आत्मा से भिन्न द्वैत औत्तिसका दर्शन यह दोनों तुच्छ हैं ॥ इसमें यह प्रष्टव्य है। कियहम तलौकिक पुरुषों को स्वीकार है। अथवा परीक्षक पुरुषों को स्वीकार है? ॥ यहां पर शास्त्र संस्कार रहित बुद्धि वाले पुरुष लौकिक कहे जाते हैं ॥ और शास्त्र संस्कार सहित बुद्धि वाले पुरुष परीक्षक कहे जाते हैं ॥ यदि प्रथम पक्ष कहो तो वह नहीं संभवता ॥ क्योंकि तिन लौकिक पुरुषों को प्रपंच विषयक अज्ञात त्व बुद्धि की भी दूर नहीं होती तो तिसमें तुच्छत्व बुद्धि तो अत्यंत दूर से ही निरास की गई ॥ और द्वितीय पक्ष भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि सर्व परीक्षकों की एक मति नहीं है ॥ तथा हि ॥ तिनमें सर्व प्रमाण प्रमेय व्यवहार के लोप करने वाला प्रामाणिक जो सर्व शून्यवादी है ॥ तिसने सर्व पदार्थों का तुच्छ पना स्वी

कारकियाहै॥ और शून्यत्वसे विरुद्ध नित्य तथा अनित्य के विभाग कर कोई कथा काशादिक पदार्थ सकल कालमें सत्य हैं॥ और कोई कघटादि पदार्थ कादाचित्क सत्य हैं॥ इस प्रकार कणाद तथा गौतमादि प्रामाणिक पुरुषों ने स्वीकार किया है ॥ और दोनों प्रकार की पदार्थों की सत्ता से विरुद्ध सर्व कालमें सर्व पदार्थों की सत्ता है । यह सांख्य तथा योगशास्त्र के कर्ता कपिल तथा पतंजलि महर्षि ने स्वीकार किया है ॥ क्योंकि तिनके मत में कार्य भी सत् है ॥ तथा हि प्रथम वह कार्य उत्पत्ति से पूर्व भी अस्त नहीं । क्योंकि तिस कालमें भी सूक्ष्म रूप से कार्य विद्यमान है ॥ और वर्तमान कालमें तो विद्यमान होने से ही कार्य अस्त रूप नहीं ॥ और ध्वंस भी तिरोधान मात्र रूप है अभाव कानाम ध्वंस नहीं ॥ याते नाश से अनन्तर भी तिरोधान हुआ कार्य विद्यमान है ॥ इस प्रकार सर्व कालमें सर्व पदार्थ सत् रूप हैं । यह सांख्य तथा पातंजलादिकों का मत है ॥ इमरीति से सर्व परीक्षकों का परस्पर विरोध होने से आत्मा से भिन्न सर्व अनात्मामें तुच्छता किसी को भी स्वीकार नहीं तैसे द्रुएल्लोकिक तथा परीक्षक पुरुषों से विरुद्ध जगत् का तुच्छत्व कैसे स्वीकार करने के मार्गमें आरुढ़ होगा किंतु नहीं होगा । और यदि आप ऐसे कहो कि परीक्षकों का मत भी परस्पर विरुद्ध होने से त्यागने योग्य है ॥ सो यह कहन भी नहीं संभवता । क्योंकि तिस तिस शून्य तथा सर्वदा सत्त्व तथा कादाचित्क सत्त्वादि जो पक्ष हैं तिनमें एक एक परीक्षक का अंगीकार तो अव्याहत है अर्थात् अबाधित है । और तुच्छत्व पक्षमें तो किसी का भी अंगीकार नहीं आते वही त्यागने योग्य है । और यदि सिद्धांती ऐसे कहें कि तुच्छत्व पक्षमें परीक्षक के अंगीकार का अभाव असिद्ध है । क्योंकि

मुझपरीक्षकका अंगीकारतिसमेंविद्यमानहै ॥ सोयहकथनभीअसं
गतहै । क्योंकितुझकोअप्रामाणिकपनाहैअर्थात्प्रमाणसेपरीक्षाकर
केव्यवहारकरनेवालेकानामपरीक्षकहै। औरतुच्छतामेंकोई प्रमाणनहीं
है । यदितुच्छतामेंभीकोईप्रमाण मानोगे तोतुच्छपनेकीहीहानि
होगी ॥शंका॥ वस्तुकेदोरूपनहींसंभवते । इसहेतुसेसर्वपक्षप्रामाणिक
कहीहैं । यहनहींकथनकरसकते । इसप्रकाससर्वको परस्परविरुद्ध
होनेकर इनमेंकौनपरीक्षकहै।औरकिसकामतसमीचीनहोनेसेउपादेय
है । औरकिसकामतअसमीचीनहोनेसे त्यागनेयोग्यहै । इसअर्थमें
नियामककाअभावहोनेसे एककाभी ग्रहणनहींहोगा । किंतुसर्वमतों
कात्यागहोगा ॥ समाधान ॥ नित्यतथानिर्दोषवेदमूलकताकेसद्भाव
तथाअसद्भावकोही इनकी विशेषतामें नियामकताहै ॥ अर्थात्
जिसकामतवेदमूलकहै।वहग्रहणकरनेयोग्यहै ॥ औरजिसकामतवेद
मूलकनहीं वहत्यागनेयोग्यहै । जैसेपाखंडियों कामतवेदमूलकन
होनेसेत्यागनेयोग्यहै॥ इसप्रकारशिष्यद्वारा पूर्वपक्षकेप्राप्रहुए श्रीयुरु
द्वारासिद्धांतीउत्तर निरूपणकरताहै ॥ समाधान ॥

❀ अथश्रुतिप्रमाणसे तुच्छत्ववादकाउपपादन ❀

हेशिष्य यहतोअत्यंत हर्षकीवात्ताहै ॥ क्योंकिअंतकोजाकर
भीपुनःयदिश्रुतिपरही तुम्हाराविश्वासहै ॥ तोश्रुतिसिद्धजोनिर्दोष
मतहैवहीग्रहणकरनेयोग्यहै । तिससेभिन्नसर्वहीत्यागनेयोग्यहैं ॥
क्योंकिवहअप्रामाणिकहैं ॥ शंका ॥ हेभगवन् इतस्मतअप्रामाणिकहैं
यहकथनअयुक्तहै। क्योंकिइतरपक्षभी प्रत्यक्षादिप्रमाणमूलकहीहैं ।
समाधान ॥ हेशिष्य श्रुतिक्राविरोधहोनेसेप्रत्यक्षादिप्रमाणआभास

रूपताको प्राप्त होते हैं ॥ या तो इतर मतों में अप्रमाणिकता सिद्ध है ॥ शंका ॥
 हे भगवन् श्रुतिसाक्षात् प्रपञ्चकी तुच्छता के बोधन में तात्पर्यवाली नहीं
 क्योंकि समन्वय अधिकरण का विरोध होगा । तिसमें सर्व वेद का तात्पर्य
 एक अद्वितीय वस्तु में प्रतिपादन किया है ॥ समाधान ॥ हे शिष्य श्रुतियें
 तो आत्मा से भिन्न सर्व अनात्म पदार्थों में तुच्छता का अभिमान करती हैं ।
 उन श्रुतियों को ही पठन करते हैं ॥

❀ सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयं । नेह नाना
 स्ति किञ्चन । स एष नेति नेतीति । ❀

❀ अथ तस्यायमादेशः अमात्रश्चतुर्थो व्यवहार्यः प्रपञ्चो
 पशमः शिवोऽद्वैतः ॥

अ० ॥ यह नित्य अपरोक्ष आत्मा कार्य कारण तथा स्थूल सुक्ष्म रूप
 नहीं । अथ तिसका यह निषेध सुख उपदेश है । तथा हि ॥ जो वस्तु प्रमा
 का विषय हो तिसको मात्रा कहते हैं । जो मात्रा से भिन्न हो । सो अमात्र कहा
 जाता है । अथात् अप्रमेय है ॥ अथवा ॥ मात्रा नाम अवयव का है तिस
 से रहित कानाम अमात्र है । इस कथन से स्वगत भेद का निषेध आत्म में
 सिद्ध हुआ ॥ और तुरीय चेतन कानाम ही चतुर्थ है ॥ और (अव्यवहार्यः)
 कथनादिव्यापार का अविषय है ॥ तिस आत्मा की पुरुषार्थ रूपता को
 कहते हैं ॥ (प्रपञ्चोपशमः) दुःख रूप प्रपञ्च का अत्यन्त भावरूप है ॥
 यहाँ आत्मा को प्रपञ्चाभावरूपता तभी सिद्ध हो जब प्रपञ्च असत् रूप सिद्ध
 हो । क्योंकि असत् का अभाव सत् रूप होता है ॥ जैसे असत् सर्प का अभाव
 सत् रज्जु रूप है ॥ इस कथन से विजातीय भेद का भी आत्म में निषेध किया
 तिस आत्मा की सुख रूपता कहते हैं ॥ (शिवः) वह आत्मा सुख स्वरूप है ।

और (अद्वैतः) सजातीयभेदसे रहित है ॥ इसप्रकार त्रिविधभेदका निषेध करने से श्रुतार्थापत्तिप्रमाणप्रपंचका त्रैकालिक अभावबोधन करता है ॥ शंका ॥ इसप्रकार त्रैकालिक अभावका प्रतियोगिरूपता करजब श्रुतिबोधन करेगी ॥ तो प्रपंचकी प्रमाणसे सिद्धि प्राप्त होगी ॥ समाधान भ्रान्तिकर उपस्थित हुए पदार्थको भी अभावकी प्रतियोगिता संभवती है यदि ऐसे न मानें तो (नसुरांपिवेत्) अ० ॥ सुराको यह पुरुषपान न करे। इत्यादि निषेधक वाक्यों से भी सुरापान निष्ठ प्रामाणिकता हुई चाहिये जैसे रागसे प्राप्त सुरापानके निषेधको श्रुतिबोधन करती है। परन्तु तिस निषेधका प्रतियोगिरूपता कर सुरापान प्रामाणिक नहीं हो सकता ॥ तैसे दार्ष्टान्त में भी जानना ॥ और “श्रुतियें अभिमान करती हैं” ॥ इस कथनसे समन्वय अधिकरणका विरोध भी दूर हुआ जानना ॥ क्योंकि सजातीय आदिक भेदसे रहित अद्वैत आत्माको श्रुतिबोधन करती है। यदि प्रपंचकी उच्छ्रिताको श्रुति न माने तो विवक्षित आत्माकी सिद्धि ही नहीं होगी ॥ इसप्रकार अद्वैत आत्माकी सिद्धिके निमित्त प्रमाणों का श्रुतिमाननीयता ॥ तात्पर्य तो अद्वैत आत्मा में ही है ॥ ॥ शंका ॥ हे भगवन् श्रुतिप्रपंचकी उच्छ्रिताको ही क्यों मानती है ॥ जिस कारणसे उक्त आत्माके स्वरूपकी सिद्धि तो प्रपंचको मिथ्या मानने से भी बन सकती है ॥ समाधान ॥ हे शिष्य तिस आत्मासे भिन्न किसी प्रकार का भी द्वैत माने हुए अर्थात् मिथ्यारूपता कर अथवा सत्स्वरूपता कर द्वैतकी सत्ता माने हुए भी अद्वैतसिद्धांतकी हानि होती है ॥ शंका ॥ हे भगवन् यदि प्रपंचकी उच्छ्रिता ही श्रुति अनुसारि है तो विवर्तवाद तथा परिणामवादका स्वीकार किसलिये किया है ॥ समाधाना ॥

❀ विवर्तवादादिकैस्वीकारकीव्यवस्था तथा जगत्कीतुच्छतानिरूपणकाउपसंहार ❀

हेशिष्यजिसकारणसे प्रपंचकाकिसीप्रकारसेभी मत्त्वमानेहुए
अद्वैतसिद्धांतकीहानिहोतीहै । तिसीकारणसेजगत्निष्ठतुच्छताश्रुति
अनुसारीहै । औरविवर्तवादतथापरिणामवादको युक्तितथालौकिक
प्रमाणमूलकहोनेसेवहभी अधिकारिभेदसे स्वीकारकियेजातेहैं। याते
विरोधनहीं ॥ अर्थयह किमध्यमअधिकारीकेलिये विवर्तवादहै। और
मंदअधिकारीकेलिये परिणामवादहै । यहअर्थगौडपादाचार्यों
नेभीकहा है ॥

❀ तुच्छानिर्वचनीयाचवास्तवीचेत्यसौत्रिधा ।

ज्ञेयामायात्रिभिर्बोधैः श्रौतयौक्तिकलौकिकैः १ ॥ ❀

अ०॥ श्रुतिजन्यतथायुक्तिजन्यऔरप्रत्यक्षादिप्रमाणजन्ययहजो
तीनप्रकारकेबोधहैं। निन्होंकरअज्ञानतत्कार्यतुच्छतथा अनिर्वचनीय
औरपरिणामरूपताकर तीनप्रकारसेही जाननेयोग्यहै। अर्थात्जोपुरुष
लौकिकप्रमाणकोआश्रयणकरनेवालेहैं। तिनकोतोअज्ञानतत्कार्यसत्य
भासताहै ॥ यहपरिणामवादवेदांतवादकीप्रथमभूमिकाहै । और
युक्तिको आश्रयणकरनेवालेनिपुणमतिपंडितोंको यहअज्ञानतत्कार्य
अनिर्वचनीयभासताहै ॥ यहविवर्तवादवेदांतवादकीदूसरीभूमिका
है । औरउत्तमभूमिकामें आरूढविद्वान् जिसकोश्रुतिजन्यबोधप्राप्त
हुआहै तिसकोअज्ञानतत्कार्य तुच्छरूपतासे भासताहै ॥ इति ॥ इस
प्रकारप्रपंचकीतुच्छतामें श्रुतिप्रमाणकोकथनकरके अवतिसमेंस्मृति
कीसंमतिभीकहतेहैं । वसिष्ठभगवान्भी प्रपंचकीतुच्छताकोआश्रव

र्यकीन्याईकथनकस्तेहैं ॥

अहोनुचित्रं यत्सत्यं ब्रह्मतद्विस्मृतं नृणाम् ।

यदसत्यमाविद्याख्यं तत्पुरःपरिवल्गति ॥ १ ॥

अहोनुचित्रं पद्मोत्थैर्बद्धांस्तं तुभिरद्रियः ।

अविद्यमानायाविद्यातया विश्वं खिलीकृतम् ॥ २ ॥

अ० ॥ हे राम बहुत आश्चर्य है । जो सत्य ब्रह्म था वह पुरुष को विस्मृत हो गया । और जो असत्य अविद्या तत्कार्य था वह सन्मुख सत्य प्रतीत होता है ॥ १ ॥ हे राम बहुत आश्चर्य है । जैसे कमल से उत्पन्न हुए तंतुओं को पर्वत वांधे हुए हैं तेसे अविद्यमान अर्थात् असत् जो अविद्या तिस कर रही सर्वजगत् दृढ़ किया हुआ है ॥ इति ॥

✽ अथ अष्टद्वयपदकी व्याख्या का उपसंहार ✽

हे शिष्य जिस हेतु से द्वैत त्रौतिसका दर्शन तुच्छ होने से असत् है तिसी हेतु से स्वतः सिद्ध शुद्ध बुद्ध औमुक्त स्वभाव परिपूर्ण आनन्द स्वरूप आत्मा की अदृष्टद्वयता उपपन्नतर है । अर्थ यह जो अति शयकर संभवती है । तात्पर्य यह है । द्वैत को विवर्तमाने हुए भी अदृष्टद्वयता आत्मा की उपपन्न है । अवतोल प्रपंच को तुच्छ माने हुए वह उपपन्नतर है । अदृष्टद्वय ही आत्मा का वास्तव स्वरूप है इस अर्थ में श्रुति प्रमाण निरूपण करते हैं ।

नानिरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।

न मुमुक्षुर्न वैमुक्त इत्येवापरमार्थता ॥ १ ॥

तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरंजनम् ।

तत् ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते ध्रुवम् ॥ २ ॥

निर्विकल्पमनंतं च हेतुदृष्टान्तवर्जितम् ।

अप्रमेयमनादिंचयज्ज्ञात्वामुच्यतेबुधः ॥३॥

अ० ॥ नकोईप्रलयहे । औरनकोईउत्पत्तिहै ॥ औरनकोईबांधा हुआहै ॥ औरनकोई वैदिककर्मके अनुष्ठानकरनेवाला साधकहै । औरनकोईमुमुक्षुहै ॥ औरनकोईमुक्तहोयहीवास्तवसेसिद्धांतहै ॥ (१) औरवहीब्रह्मतत्त्व(निष्कलं)निखयवहै ॥ और (निर्विकल्पं) विशेषरूप नहीं । और (निरंजनम्) अविद्यादिदोषसेरहितहै । सोततपदकालक्ष्यार्थब्रह्ममेंहूँ।ऐसेसाक्षात्कारकरकेयह अधिकारिपुरुषआपही(ध्रुव) निश्चलकूटस्थब्रह्मभावकोप्राप्तहोताहै ॥२॥ औरजोब्रह्म(निर्विकल्पम्) गुणक्रियाजातिसेरहितहै । और (अनंतं) नाशसेरहितहै । और (हेतुवर्जितं) आपत्कार्यहै । और (दृष्टांतवर्जितं) अनुपमअर्थात् अपनीतुल्यतासेरहितहै ॥ इसकथनसे सजातीयभेदकानिषेधकिया ॥ और (अनादिं) आपकिसीकाकारणनहीं । और (अप्रमेयं) अविषय स्वभावहै।ऐसेब्रह्मस्वरूपकोयह अधिकारीआत्मरूपतासेसाक्षात्कारकरकेअविद्यातत्कार्यरूपबंधनसेमुक्तहोताहै ॥३॥ इत्यादिकश्रुतिवाक्य आत्मतत्त्वकोद्वैतदर्शनसेशून्यत्वहीप्रतिपादनकरतेहैं । यातेअदृष्टद्वयस्वरूपहीआत्महै । यहअर्थसिद्धहुआ ॥[इतिअदृष्टद्वयपदव्याख्या] मू० । अथआत्मसाक्षात्कारकाफलतथातिसकोनिर्पेक्ष मोक्षकीसाधनताकानिरूपण ॥

शंका ॥ हेभगवन् इसप्रकारकाआत्मतत्त्वहो।परन्तुतिससेक्या सिद्धहोताहै ॥ समाधान ॥

❀मू० ॥ सत्यंज्ञानमनंतंचपूर्णानंदविग्रहम् ।

मांत्रवीणाकमात्मानंविनिश्चित्यविसुच्यते ॥५७॥

चौ ॥ सत्यज्ञानअनंतस्वरूपं । पूर्णआनंदरूपअनूपं ।

मंत्रउक्तआतमपहचाना । तांकरकियोबंधसबहाना ॥४४॥

टी० ॥ हेशिष्य जिसहेतुसेपूर्वउक्तवास्तववृत्तांतहै । तिसीसे

“सत्यंज्ञानमनंतंब्रह्म” इसमंत्रवर्णकरसिद्धसत्य तथाज्ञान औरअनंत तथापूर्णऔरआनंदस्वरूपआत्माको अपनेसेअभिन्न अर्थात् “सोई में हूं”ऐसेसाक्षात्कारकरके यहअधिकारीअविद्यादिबंधनसे विमुक्तहोताहै यातेआत्मसाक्षात्कासे स्वस्वरूपावस्थानरूपफलसिद्धहोताहै ॥इति ॥५७॥शंका॥ हेभगवन् यदिऐसाज्ञानकिसीकोहो तोघटादिज्ञानकी न्याईतिसकीउपलब्धिभीहो । परन्तुसाधनकेअभावसेऐसाज्ञानकिसी कोउत्पन्नहीनहींहोता॥ समाधान ॥ हेशिष्यऐसाज्ञानकिसीकोउत्पन्न नहींहोतायहतुम्हाराकथनअसंगत है ॥ क्योंकि तिसकासाधनमहा वाक्यरूपप्रमाण विद्यमान है ॥ और अनुपलंभ काविरोधभी नहीं संभवता ॥ क्योंकि ॥

✽ पश्यन्प्रतिपेदे । योयोदेवानांप्रत्यबुद्ध्यत्
सएवतदभवत् ✽

इत्यादिश्रुतियोंसेवामदेवादिकों में तिसज्ञानकीउपलब्धिप्रसिद्ध है॥ और साधनों के विद्यमानहुएभी ज्ञाननहींउत्पन्नहोतायहकथन अयुक्त है॥ क्योंकि वेदाध्ययनादि साधनों के अनुष्ठानसे जिसको विविदिपाउत्पन्नहूँ है ॥ और ॥

अथातोब्रह्मजिज्ञासा ॥ शा० । १ । १ । १॥

इससूत्रमेंअथशब्दसेसूचनकिये हुए विवेकादिचतुष्टयसाधन संपन्नजोपुरुष है ॥ तिसकोश्रोत्रियब्रह्मनिष्ठयुक्तरूपदिष्टमहावाक्य

केविचारसेअनंतज्ञानकीउत्पत्तिदेखनेमें आती है ॥ सूत्रकायहअर्थ है ॥ (अथ) साधनचतुष्टयसंपत्तिसेअनंतर (अतः) जिसकारणसे वेदहीअग्निहोत्रादिकर्मोंका अनित्यफल और ब्रह्मज्ञानकानित्यफल बोधनकरताहै ॥ इसीहेतुसेयहअधिकारी (ब्रह्मजिज्ञासा) ब्रह्मज्ञानके अर्थवेदांतविचारकरे ॥ इति ॥ शंका ॥ हेभगवन्जिनपुरुषोंनेवेदान्त काश्रवणकियाहै ॥ तिनको भी संसारकीप्रतीतिपूर्वकीन्याईहीदेखने मेंआती है ॥ समाधान ॥ हे शिष्य असंभावनातथाविपरीतभावना यहदोनोंआत्मसाक्षात्कारकेप्रतिबंधकहैं ॥ तिनकानिर्वर्त्तकमननतथा निदिध्यासनसहकृतऔश्रुतिकेतात्पर्यज्ञानकेअनुकूलमानसव्यापाररूप ऐसाजोवाक्यकाविचाररूपश्रवणतिसकेअनुष्ठानसेप्रतिबंधसेरहितज्ञान अवश्यउत्पन्नहोताहै॥ यदिऐसेनहींमाने तोतादृशआत्माकेस्वरूपका प्रतिपादकजोशास्त्रहै।तिसकोअप्रमाणताकीप्राप्तिहोगी।शंका।हेभगवन् ज्ञानसेमोक्षहोताहै इसकथनकाक्याअर्थहै। क्याज्ञानहीमोक्षकासाधन हैयहतिसकाअर्थहै।अथवाज्ञानभीसाधनहै तथाअन्यकर्मादिभीसाधन हैंयहतिसकाअर्थहै? ॥ प्रथमपक्षतोनोंसंभवता ॥ क्योंकि ॥

❀ विद्यांचाविद्यांचयस्वेदोभयंसह ❀ उ० ई० मं० (११)

अ०—ज्ञानतथाकर्मइनदोनोंकेसमुच्चयकोजोजानताहै। इत्यादि समुच्चयप्रतिपादकवाक्यका विरोध होगा ॥ और द्वितीयपक्षभीनहीं संभवता ॥ क्योंकि ॥

❀ कर्मणैवहिसंसिद्धिमास्थिताजनकादयः ❀

मं० गी० अ० ३ ॥ २० ।

अ०—कर्मकरकेही जनकादिक अधिकारिपुरुष मोक्षकोप्राप्तहुएहैं।

इत्यादिकेवलकर्मसे मोक्षप्रतिपादकवाक्योंका विरोधप्राप्तहोगा ॥
यातेजत्पन्नहुएज्ञानकोभीसाधनांतरकी अपेक्षाहोनेकरफलदेनेकेलिये
वहविलंबकरताहै ॥ समाधान ॥ हे शिष्य यहसमुच्चयवादनहींसंभवता
क्योंकि ॥

तद्धैतत्पश्यन्तृपिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽग्रहंमनुरभवं
सूर्य्यचेति । ब्रह्मवेदब्रह्मैवभवति । तरतिशोक
मात्मवित् ॥

अ०—(तत्) ब्रह्मको (एतत्) मैं हूं ऐसे (पश्यन्) साक्षात्कार
करताहूँआइसदर्शनसेहीऋषिभावकोप्राप्तहूँआनामसेवामदेव(प्रतिपेदेह)
निश्चयकरआत्मज्ञानकाफलरूपसर्वात्मभावकीप्राप्तिकेप्रतिपादक “मैं
हीमनुहुँआ” तथा “मैंहीसूर्य्यहूँआ” ॥ इत्यादिमंत्रोंकोदेखताभयाइत्या
दिकश्रुतियोंसेआत्मज्ञानऔरतिसकेफलमोक्षकोएककालीनत्वकाकथन
होनेसेमध्यमेंअन्यसाधनतथाकालकेविलंबकाअभावप्रतीतहोताहै। जैसे
“भुंजन्तृप्यति” अ० भोजनकरताहूँआतृप्तहोता है ॥ यहाँ भोजन
औतृप्तिकेमध्यमेंऔरकोईकार्यनहींप्रतीतहोता ॥ तैसे “पश्यन्तृपिपेदे”
यहाँभीदर्शनतथासर्वात्मभाव की प्राप्तिरूपपलकेमध्यकार्यातिरयथात्
अन्यकिसीसाधनकीप्रतीतिवर्तमानार्थिक “शतृ” प्रत्ययकेकथनसेनहीं
है। औरजिसकालमेंब्रह्मकोजानताहैतिसीकालमेंब्रह्मरूपहोताहै। इस
कथनसेब्रह्मज्ञानतथाब्रह्मरूपताहोनेको एककालमेंप्रतीतिहोनेसेकाल
काविलंबभीनहींप्रतीतहोता ॥ औरकर्महीमुक्तिके साधनहैं ॥ यह
कथनभीसमीचीननहीं ॥ क्योंकि

तमेवविदित्वाऽति मृत्युमेतिनान्यःपंथाविद्यतेऽयनाय

इत्यादिकथितियेअन्यसाधनका निषेधकरतीहैं ॥ और पूर्व जोस्मृतिकाविरोधतुमने कहाथावहभीनहींसंभवता ॥ क्योंकि “संसिद्धि” शब्दसेवहांतत्त्वज्ञानकाहीग्रहणहै ॥ और

❀ कृपायेकर्मभिःपक्वेततोज्ञानं प्रवर्त्तते ॥ ❀

अ०॥ कर्मोंकेअनुष्ठानसे पापरूपमलकेनिवृत्तहुए तिससेअनं तरज्ञानप्रवर्त्तमानहोताहै॥इसशास्त्रसेकर्मोंकोतत्त्वज्ञानकाकारणभूतजो अंतस्करणकीशुद्धितिसकीहेतुताप्रतीतहोतीहै।इसकथनसेसमुच्चयप्रति पादकवाक्यकाविरोधभीनिवारणकिया।क्योंकितहांही (अविद्या मृत्युंतीर्त्वा) इसवाक्यशेषकरके मृत्युरूपपापोंका निवर्त्तकत्वही अविद्याशब्दकेवाच्य कर्मोंकोप्रतीतहोताहै ॥ यातेज्ञानहीमुक्तिरूप फलकासाधनहै । यहअर्थनिर्दोषसिद्धहुआ ॥ यदिऐसेहै । अर्थात् आत्मज्ञानहीमुक्तिकासाधनहै । तोअवश्यहीजन्मादिसंसारदुःखसे भयभीतहुएपुरुषोंनेतिससंसारदुःखकी निवृत्तिकासाधन जोतत्त्वज्ञान वहश्रवणादिसाधनोंकर संपादनकरनेयोग्यहै यहअर्थप्रकरणकेउप संहारमिपसेकहतेहैं ॥ तिसहेतुसेसंन्याससहिततत्त्वज्ञानहीयत्नसेसंपा पनकरनेयोग्यहै ॥ यहां ॥

❀ त्यागएवहि सर्वेषांमुक्तिसाधनमुत्तमम् ॥ ❀

अ० ॥ यज्ञदानादिजोपरंपरासे मोक्षकेसाधनहैं ॥ तिनसर्वके मध्यसंन्यासहीमोक्षका उत्तमसाधनहै । इसशास्त्रकोआश्रयण करकेसंन्याससहिततत्त्वज्ञानमोक्षका साधनकहाहै ॥ यत्नसेतिसके संपादनमेंयहहेतुहै कितिसतत्त्वज्ञानके अभावहुएमहान्हानिश्रुतिने

कथनकी है ॥ तहांश्रुति ॥ (नचेदिहावेदिर्महतीविनाष्टिः)

अ० ॥ यदिहमइससंसारमंडलमें ब्रह्मकोअपनाआत्मारूपनहींजानेंगे तोतिससेहमब्रह्मात्मसाक्षात्कारसेरहितहोंगे॥शंका॥ ब्रह्मसाक्षात्कारसे रहितहोजायेंतिसमेक्यादोषहै॥समाधान॥ब्रह्मसाक्षात्कारकेअभावहुए जन्ममरणादिस्वरूपअनंतपरिमाणयुक्त विनाशप्राप्तदोगा ॥ तिसीसि अथवहीब्रह्मात्मसाक्षात्कारअधिकारिपुरुषोंने संपादनकरनायोग्यहै । इति ॥ ब्रह्मात्मसाक्षात्कारके उत्पन्नहुए संसारकीनिवृत्तिहोतीहै।इस अर्थमेंब्रह्मविदपुरुषोंका अज्ञानतत्कार्यकीनिवृत्ति रूपफलसहितउद्धार अर्थात्अनुभवभीप्रमाण रूपताकर स्मरणकियाजाताहै॥तथाहि॥

❀ विद्याविग्रहमग्रहेण पिहितं प्रत्यंचमुच्चैस्तरा ।
मुत्कृष्योत्तमपूरुषमुनिधियामुंजादिपीकामिव।कोशात्
कार्यकारणरूपविकृतात् पश्यामि निः संशयम् ॥
नासीदस्तिभविष्यतिक्वणुगतःसंसार दुखोदधिः ॥ ❀

स० शा० ४।५३ ॥)

अ०॥स्वप्रकाशचिद्एकरसजोपुरुषोत्तमहै। सोअत्यंतउच्चैरूपता करअविद्यासेआच्छादितहै। सहस्रोंप्रकारकेयत्नोंमे जोआच्छादितपने कोदुर्भेद्यताहै॥यहहीतिसपिधाननिष्ठ उच्चैस्तरत्वहै।औरवहीपुरुषोत्तम (प्रत्यक्) सर्वकाअंतरात्माहै निसको (मुनिधिया)श्रुतिअनुकूलमनन सेतीक्ष्णकिप्रेहुएविवेकज्ञानकरमुञ्जसे तूलीकीन्याईवाह्य अंतर्भावसे अनेकप्रकारकेविकारको प्राप्तहुएअन्नमयादिपंचकोशनसेपृथक्करके संशयसेरहित सोउत्तमपुरुषमेंहूं । इसप्रकारमेंदेखताहूं । जिसब्रह्म

दर्शनकेप्रभावसेयहसंसार दुःखकासमुद्रनपूर्वथा। औरनअवहै। औरन
आगेहोगा ॥ जानानहींजाता जोकहांगया। अर्थात्कभीहुआहीन
था ऐसेप्रतीतहुआ ॥ ५३ ॥ तथापिआभासरूपद्वैतअसंभावितभी
प्रतीतहोताहै ॥ यहकहतेहैं ॥

❀ पश्यामिचित्रामिवसर्वमिदं द्वितीयं। तिष्ठामिनिष्कल
चिदेकवपुष्यनन्ते । आत्मानमद्वयमार्चित्यसुखैक
रूपं पश्यामिदग्धरशनामिवचप्रपञ्चम् ❀ ॥

सं० शा० अ० ४ ॥ ५४ ॥

अ० ॥ सर्वइसद्वैतकोचित्रकीन्याई मेंदेखताहूं । इतनेमात्रसे
अर्थात्आभासरूपजीवनसेसुक्तिकीकिंचित्भीविकलतानहीं यहकहते
हैं (तिष्ठामीति) औरनिस्वयवतथाचेतनएकस्वरूपअनंतआत्मामें में
स्थितहूं ॥ औरद्वैतसेरहिततथामनकाअविषय औआनंदएकस्वरूप
आत्माकोमेंदेखताहूं ॥ शंका ॥ संसारदर्शन तथाब्रह्मदर्शनइनदोनों
कोविरुद्धहोनेसे एककालमेंतिनकी स्थितिकैसेहोगी॥ समाधान ॥
दग्धरज्जुकीन्याईइसप्रपञ्चकोमेंदेखताहूं ॥ यातेप्रतिभासमानद्वैतको
अर्थक्रियाकासामर्थ्यनहीं ॥ अर्थयह ॥ किअद्वैतदर्शनकरद्वैतप्रपञ्च
काबाधहीहोजाताहै ॥ यातेपूर्वउक्तशंकानहींसंभवती ॥ ५४ ॥
शंका ॥ द्वैतदर्शनसे अद्वैतदर्शनकाहीबाधक्योंनहो ॥ समाधान ॥

❀ अद्वैतमप्यनुभवामिकरस्थाविल्वतुल्यं शरीरमाहिनि
ल्वयनीववीक्षे । एवंचजीवनमिवप्रातिभासनंचनिः
श्रेयसाधिगमनंचममप्रसिद्धम् ॥ ❀ सं० शा० अ० ४।५५

अ० ॥ अद्वैतकोभीहस्तपरिस्थितविल्वफलकीन्याई मैं अनुभव करता हूँ । इसलिये अद्वैत अनुभवको कदाचित् भी परोक्षतानहीं ॥ और जैसे सर्पने परित्याग की हुई जो त्वचा है वह सर्परूप भासती है । तैसे शरीरादि संसार बाधित हुआ भी भासता है । या ते दैत दर्शन से अद्वैत दर्शन का बाधन नहीं होता । अन्यथा वस्तु के स्वभाव का परित्याग प्राप्त होगा । इस प्रकार जीवत की न्याई प्रतीति तथा मोक्ष की प्राप्ति यह दोनों मुझको प्रसिद्ध हैं ॥ ५५ ॥ तत्त्व साक्षात्कार काल में शरीर बाध के योग्य है । यह तो क्या ही कथन करने योग्य है । परन्तु तत्त्व साक्षात्कार से पूर्व भी दैत प्रपञ्च की प्रतीति जो मुझको हुई तिसमें भी मुझको आज आश्चर्य्य भाग्न होता है ॥ अर्थात् प्रथम ही यह प्रपञ्च बाधित था यह कहते हैं ॥

✽ आश्चर्य्यमद्यममभातिकथं द्वितीयं नित्येनिरस्त
निखलेशिवाचित्प्रकाशे । आसीत्पुरेति किमिमाः
श्रुतयोनपूर्वं येन द्वितीयमभवत्तातिमिरप्रसूतम् ✽

सं० शा० अ० ४ ॥ ५७

अ० ॥ आज मुझको यह आश्चर्य्य भासता है कि जो नित्य तथा अज्ञान तत्कार्य से रहित तथा आनन्द और स्वप्रकाश आत्मामें यह दैत पूर्व कैसे स्थित हुआ ॥ शंका ॥ इसमें क्या आश्चर्य्य है पूर्व काल में श्रुति जन्य बोधन ही था । और अब वह श्रुति जन्य बोध विद्यमान है । या ते तिस कर दैत बाधित होगया ॥ समाधान ॥ तत्त्वज्ञान के जनक वेदांत वाक्य क्या पूर्व न ही थे जिसकर यह अज्ञान से उत्पन्न हुआ दैत आत्मामें उपस्थित हुआ । अर्थात् अज्ञान के निर्वर्त्तक तत्त्वज्ञान के उत्पादक अथनादिसिद्ध निपेक्षकारण रूप वेदांत वाक्य पूर्व भी विद्यमान ही थे । तो भी अज्ञानादि दैत

प्रतीतहुआ यहहमकोआश्चर्य्यहै ॥ ५७ ॥ इसप्रकारशास्त्र और
आर्चर्य्यकेप्रसादसेजिसअधिकारीकोब्रह्मात्मनत्वकादृढसाक्षात्कारउदय
हुआहै ॥ तिसकेगुरुभक्तिकीप्रकटताभीस्मरणकीजातीहै । क्योंकि
गुरुभक्तिसेभीयहब्रह्मविद्याउत्पन्नहोतीहै ॥ तथाहि ॥

त्वत्पादपंकजसमाश्रयणंविनामेसन्नप्यसन्निवपरः
पुरुषःपुरासीत् । त्वत्पादपद्मयुगलाश्रयणादिदानीं
नासीन्नचास्तिनभविष्यतिभेदबुद्धिः । यस्मात्कृपा
परवशोममदुश्चिकित्संसंसाररोगमपनेतुमसिप्रवृत्तः
त्वत्पादपंकजरजःशिरसादधानःत्वामाशरीरपतना
दहमप्युपासे ॥ मे० शा० अ० ४ । ५८ । ५९॥

अ० ॥ हेभगवन् आपकेचरणारविन्दोंकोसम्यक्आश्रयणकरने
सेविनासुक्तकोपूर्वसर्व अनात्मासेउत्कृष्ट तथापूर्णरूपआत्मा सतभी
अमृतकीन्याईप्रतीतहुआ । अबआपकेदोनोंचरणकमलोंकेआश्रयण
सेवहभेदबुद्धि नपूर्वथी औरनअबहै औरनआगेहोगी ॥ ५८ ॥
जिसकारणसे कृपापरवशहुए आपमेरे असाध्यरोगके निवृत्तकरनेको
अर्थात् संसारकेनाशकरनेकोप्रवृत्तहुएहो । इसीकारणसेआपकेचरण
कमलोंकीरजशिरपरधारणकरताहुआमेंआपकोशरीरकेपातपर्य्यंतसेवन
करूंगा ॥ ५९ ॥ यातेब्रह्मविद्याकीकामनावाले जिज्ञासूजनोंनेगुरु
भक्तियवश्यकअनुष्ठानकरनीचाहिये ॥इति॥ शंका ॥

❀अथविद्यासेसंसारकीअनिवृत्तिनिरूपण❀

हेसिद्धांतिन् विद्याकरअविद्याकाबाधहुएभी संसारकीनिवृत्ति

कैसे हो सकती है। कैसा यह संसार है। जो इस लोक तथा परलोक में संचार वाला है। तथा नाना प्रकार की योनियों की प्राप्ति तथा परिहार करके अनेक प्रकार के दुःख कर संयुक्त है। तिसकी विद्या कर निवृत्ति कैसे होगी। क्योंकि तिसके कारण काम कर्मादि तो पूर्व की न्याई ही स्थित हैं। और यदि आप ऐसे कहो कि कर्म संसार का उपादान कारण नहीं। किंतु अविद्या उपादान कारण है। वह अविद्या ज्ञान से निवृत्त होगई तब अविद्या मूलक संसार भी निवृत्त हो जायेगा। सो यह कह्यन भी नहीं संभवता। क्योंकि जैसे वैशेषिक मत में उपादान कारण के नाश हुए भी एक क्षण पर्यंत कार्य पश्चात् अवस्थित रहता है। तैसे यहां भी उपादान कारण रूप अविद्या के नाश हुए प्रपंच की अविद्ये की शंका दूर नहीं हो सकती। और यदि ऐसे कहो कि द्वितीय क्षण में कार्य था पही नाश हो जायेगा। या ते दोष नहीं। सो यह कह्यन भी असंगत है। क्योंकि प्रथम क्षण की न्याई उत्तर क्षण में भी प्रपंच की अनुपपत्तिका अभाव अनुमान कर सकते हैं। सो अनुमान यह है ॥

❀ अविद्या निवृत्त्युत्तर तृतीय क्षणः प्रपंचानुपपत्त्या भाववान् । क्षणत्वात् । अविद्या निवृत्त्युत्तर द्वितीय क्षणवत् ॥ ❀

अ० ॥ अविद्या की निवृत्ति से उत्तर जो तृतीय क्षण है वह प्रपंच की अनुपपत्तिके अभाव वाला है। क्षण होने से। अविद्या की निवृत्ति से उत्तर द्वितीय क्षण की न्याई ॥ इति ॥ तिस कारण से अज्ञान के निवृत्त हुए भी संसार की निवृत्ति नहीं होगी ॥ क्योंकि तिस की निवृत्ति में प्रमाण का अभाव है। या ते प्रयत्न निष्फल है ॥ समाधान ॥

अथतत्त्वज्ञानसेसंसारकीनिवृत्तिकाप्रकारनिरूपण ।

हेवादिन् तत्त्वज्ञानका जैसेअज्ञानकेसाथविरोधहै । तैसेकर्मोंके साथभीतुल्यहीविरोधहै । यातेधर्मतथाअधर्मरूपकर्मभी तत्त्वज्ञानकर निवृत्तहोजातेहैं ॥ यहअर्थश्रुति तथायुक्तिकग्रसिद्धहै ॥ तथाहि ।

मू० ॥ कर्ममूलमनर्थानांतच्च ज्ञानेनबाध्यते ।

क्षीयन्तचास्यकर्मणि तथाचश्रुतिशासनम् ॥५८॥

दो० ॥ कर्ममूलानर्थको कियोज्ञाननेराप ।

तज्ञकर्मसवनाशहुइ तैसेश्रुतिवचभाष ॥ ४५ ॥

टी०॥ ज्ञानकेउत्पन्नहुएभी कर्ममूलकसंसारकीअनुवृत्तिहोगी यहजोवादीनेकथनकिया सोनहींसंभवता ॥ क्योंकिअविद्याकीन्याई अनर्थोंकेमूलभूतकर्मोंकाभी ज्ञानकरबाधहोजाताहै । जैसेज्ञानका अविद्याकेसाथविरोधहै तैसेतिसअविद्याकेकार्यकेसाथभीविरोधतुल्य हीहै । जैसेरज्जुकेसाक्षात्कारसे तिसकीअविद्याके निवृत्तहुए अविद्याकेकार्यसर्पादिकोंकीनिवृत्तिनहींहोती यहकथननहींसंभवता तैसेब्रह्मात्माके साक्षात्कारसे मूलाऽविद्याकी निवृत्तिहुए तिसकेकार्य प्रपंचकीअनुवृत्तिहोतीहै । यहकथनभीनहींसंभवता ॥ औरयदिलुम ऐसेकहोकि (यतोज्ञानमज्ञानस्यैवनिवर्त्तकम्) अ० ॥ जिसकारणसेज्ञानअज्ञानकाहीनिवर्त्तकहै । यहजोशास्त्रकारोंकाअवधारणहै । सोज्ञानकोकार्यकानिवर्त्तकमानेहुए अमभीचीनहोजायेगा सोयहकथनभीनहींसंभवता ॥ क्योंकिअज्ञानकाकार्यअज्ञानसेभिन्न नहीं । अज्ञानकेअभावहुए तिसकीसत्तानहींप्रतीतहोती।यातेतिनके

कथनसे विरोध नहीं । और तत्त्वज्ञानसे अज्ञान के निवृत्त हुए कर्मों की निवृत्ति में प्रमाण का अभाव है यह वादी का कथन भी नहीं संभवता ॥ क्योंकि साक्षात् श्रुति ही इस अर्थ में प्रमाण है ॥ तथाहि ॥

❀ मिद्यते हृदयग्रंथि छिद्यते सर्वसंशयाः ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ ❀

अ० ॥ पर कहिये हि राग गर्भादि वह हैं “अपर” कहिये निरुद्ध जिससे तिसका नाम परावर अर्थात् परब्रह्म है । तिस परब्रह्म का अपने आत्मा से अभिन्न रूपता कर साक्षात्कार हुए इस विद्वान् पुरुष की चिद्वज्रग्रंथि अर्थात् देहादि कों में जो आत्मबुद्धि वह निवृत्त हो जाती है । और सर्वसंशय नाश हो जाते हैं और सर्वकर्म भी निवृत्त हो जाते हैं ॥ इति ॥ और यदि वादी ऐसे कहें कि यह वाक्य अशुभ कर्मों की निवृत्ति का बोधक है ॥ सो यह कथन भी नहीं संभवता । क्योंकि कर्मशब्द शुभ तथा अशुभ में साधारण है । और विद्या का सामर्थ्य दोनों के नाश में साधारण है ॥ और

❀ ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं शाब्दं दैशिकपूर्वकम् ॥

बुद्धिपूर्वकृतं पापं कृत्स्नं दहति वह्निवत् ॥ १ ॥

अ० ॥ श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ आचार्य कर उपदिष्ट महावाक्य रूपशब्द से उत्पन्न हुआ जो ब्रह्मात्मा के अमेदका अपरोक्ष ज्ञान है वह बुद्धि पूर्वक किये हुए सर्वपाप कर्मों को दाह अर्थात् नाश करता है । जैसे अग्नि सर्वकाष्ठ को भस्म कर देता है । इस स्मृति से बुद्धिपूर्वक किये हुए पाप कर्मों का नाश कथन किया है । और

❀ यथैधांसिसमिद्धो ऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ।

ज्ञानाऽग्निसर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ।

(य० गी० अ० ४ ॥ ३७ ॥)

अ० ॥ हे अर्जुन जैसे प्रज्वलित अग्नि सर्व काष्ठों को भस्मरूप कर देता है । तैसे तत्त्वज्ञानरूप अग्नि भी सर्व कर्मों को नाश करता है । इस वाक्यमें श्रीकृष्ण भगवान् जीने भी सर्वशब्दसे सकल पुण्यपाप कर्मों को ग्रहण करके तिन सर्व काज्ञान अग्निसे दाह निरूपण किया है ॥ किंवा ॥ जिस विद्वान् के दर्शन मात्र में अन्य पुरुषों के पाप निवृत्त हो जाते हैं तिस ब्रह्मरूप ब्रह्म वेत्ता के पाप कर्म नाश हो जाते हैं यह तो क्या ही कथन करना है । इसी अर्थ को भगवान् वसिष्ठ जीने भी कहा है ॥

❀ यस्यानुभवपर्यन्तं तत्त्वे बुद्धिः प्रवर्तते ।

तत्तद्वाष्टिगोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥ ❀

अ०—जिस पुरुष की अपरोक्ष अनुभव पर्यन्त बुद्धि आत्मतत्त्वमें प्रवर्तमान होती है तिसकी कृपादृष्टिका विषय हुए सर्व जन सर्व पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥ १॥ इति ॥ और तैसे ही कुलपवित्रत्व की हेतुता भी ब्रह्म वेत्ता को स्मृतिमें कथन की है ॥ तथा हि ॥

❀ कुलपवित्रं जननीकृतार्था विश्वं भरापुण्यवती
चेतन । अपारसं वित्सुखसागरेऽस्मिन् त्नीनपरे
ब्रह्मण्यस्य चेतः । ❀

अ०—देशकालादि परिच्छेद से रहित तथा चेतन औ आनंद के समुद्र इस पर ब्रह्ममें जिस पुरुष का चित्त लीन हुआ है ॥ तिसकी कुलपवित्र है और तिसकी माता भी कृतार्थ है ॥ और तिस ब्रह्म वेत्ता करवह पृथ्वी भी पुण्य

वाली होती है जहाँ कि वह ब्रह्मविद् पुरुष निवास करता है ॥१॥ इति ॥५॥

इस प्रकार पूर्व उक्त युक्ति से जैसा ब्रह्मात्मा का अभेद विज्ञान कथन किया है। तिसकर यह अधिकारी पुरुष कृतार्थ होता है ॥ इस अर्थ में किंचित मात्र भी विवाद करने योग्य नहीं ॥ इति ॥ [अर्वांतर प्रयोजन निरूपण तथा ग्रंथ का उपसंहार] अब मुमुक्षु पुरुषों की प्रवृत्त्यर्थ ग्रन्थ का स्तवन करते हैं ॥

✽ प्रकाशानंदयतिना कृतिना आत्मशुद्धये।

सिद्धांतमुक्तावली रचितारं धूर्वाजिता ॥१॥ ✽

अ०—ब्रह्मात्मसाक्षात्कार संपन्न मुक्तप्रकाशानंदयतिने अंतस्करणीय शुद्धिके अर्थ दोषरूप छिद्र से रहित यह वेदांत सिद्धांत मुक्तावली रचना की है ॥ १ ॥ यह मुक्तावली कहाँ समर्पित है ॥ ऐसी आकांक्षा के दृष्ट कहते हैं ॥

✽ अद्वैतानंदसंदोहा सत्यज्ञानादिलक्षणा ।

नारायणसमासक्ता श्रियासापत्न्यद्रुषिता ॥२॥ ✽

अ०—अद्वैत तथा आनंद के समूह की प्राप्ति है जिससे और सत्यज्ञानादि स्वरूप आत्मा को बोधन करने वाली जो यह सिद्धांत मुक्तावली सोनासपत्नी में सम्पन्न आसक्त है अर्थात् समर्पित है। और लक्ष्मी के साथ सपत्नी भाव कद्रुषित है अर्थात् अन्य सर्व दोष से रहित है ॥२॥ अब ग्रन्थ का अर्वांतर प्रयोजन कहते हैं ॥

✽ शृणु प्रकाशराचितां सदैव ततिमरापहां ।

वादीभक्तुं भनिभेदसिंहदंष्ट्राधरी कृताम् ॥३॥ ✽

अ० ॥ हे वादियों के जय करने की इच्छा वाले पुरुष मुक्तप्रकाशानंद

करचनाकीहुईइससिद्धांतमुक्तावलीकोतृश्रवणकर कैसी यहसिद्धांत मुक्तावलीहै जोद्वैतकेसहितअज्ञानकोनाशकरनेवालीहै॥ तथावादी रूपहस्तियोंके मस्तकोंकोभेदनकरनेवालेमिंहकी दाढ़ेंभीजिसकरतिर स्कारकीगईहैं ॥ इसलियेवादियोंकेजयकरनेकीइच्छावालेपुरुषोंने इसीकाअभ्यासप्रयत्नसेकरनाचाहिये । यहभावहै ॥ ३ ॥ दुर्विज्ञेय अर्थमकलरूपतासेइसमेंकथनकियाहै यहकहतेहैं ॥

वेदांतसारसर्वस्वमज्ञेय मधुनातनैः ।

अशेषेणमयोक्तंततपुरुषोत्तमयत्नतः ॥ ४ ॥

अ० ॥ वेदांतोंकासर्वमार जोइदानीकालकेपुरुषोंकरजानना कठिनहै । वहसारअर्थसकलरूपताकर परमात्माकीप्रेरणासेप्राप्तहुए प्रयत्नकरमेंनेकथनकियाहै ॥ ४ ॥ ब्रह्मज्ञानमेंसर्वकर्मोंकाअंतर्भाव कहतेहुएग्रंथकोसमाप्तकरतेहैं ॥

❀ स्नातंतेनसमस्ततीर्थसलिलेसर्वापिदत्तावनिः।यज्ञा नांचकृतं सहस्रमखिलादेवाश्चसंपूजिताः॥ संसारा च्चसमुद्धृताःस्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योप्यसौ।यस्य ब्रह्मविचारणो क्षणमपिस्थैर्य्यं मनःप्राप्नुयात्॥५❀

अ० ॥ जिसमाधनसंपन्नअधिकारीकाचित्तएकक्षणमात्रभीब्रह्म विचारमेंस्थिरताकोप्राप्तहुआहै ॥ तिसनेसर्वतीर्थोंकेजलों मेंस्नानकर लिया ॥ औरसर्वपृथ्वीभीतिसनेदानकरदी ॥ औरहजारोंयज्ञोंका अनुष्ठानभी तिसनेकरलिया । औरसर्वदेवताओंकापूजनभी तिसने करलिया ॥ औरमंमारसेअपनेपितरोंकाउद्धारभी तिसनेकरलिया ॥

औरतीनलोकोंमेंस्थितप्राणियोंकरपूजनेयोग्यभीवहीहै । क्योंकि
ब्रह्मवेत्ताब्रह्मस्वरूपहै। औरब्रह्मविद्यामेंसकलकर्मतथाउपासनाकेफलका
अंतर्भावहै ॥ इसलियेब्रह्मविद्याकेअर्थमुमुजुजनोंनेसदाप्रयत्नकरना
यहभावहै ॥२॥ इति ॥अवटीकाकारश्रीनानादीक्षितविद्वान्स्वविनय
पूर्वकग्रंथकीसमाप्तिमेंनिर्युगवस्तुनिर्देशरूपमंगलकोकरतेहुएइसदीपिका
नाम्नीटीकाकोसमाप्तकरतेहैं ॥ यद्यपिवहमूलटीकायहांलिखीनहींगई
यातेइनश्लोकों कीव्याख्याकरनीअयुक्तहै तथापिवहटीकासमग्र यहां
भाषामेंविद्यमानहै यातेइनश्लोकोंकीभाषाव्याख्यायुक्तहीहै ॥

❀ नानादीक्षितसंज्ञन विदुपेयंविनिर्मिता ।

सिद्धान्तमौक्तिकश्रेणीदीपिकात्मप्रकाशिका॥१ ❀

अ० ॥ नानादीक्षितसंज्ञिकमुभविद्वान्नेयहसिद्धांतमुक्तावली
कीदीपिकानाम्नीटीका रचनाकीहै । कैसीयहटीकाहै जोआत्मतत्त्व
केप्रकाशकरनेवालीहै ॥ १ ॥ अबअगलेश्लोकमेंअपनीनप्रताको
प्रकटकरतेहैं ॥

❀ विदितसकल वेद्यैर्नप्रशंसंतिलोकेग्रथितमपिमहद्भिः

किंपुनर्मांशेन। इतिविफलसमेऽस्मिन् वाङ्मयेऽहं

प्रवृत्तः स्वमातेविमूलतायैक्षन्तु महींतिसंतः॥२॥ ❀

अ०॥ सकलवेदार्थकेजाननेवाले महानुभावपुरुषोंकररचनाकरे
हुएग्रंथोंकोभी सकलजनश्लाघानहींकरते।तोमुझजैसेमनुष्यकररचना
करेहुएग्रंथको लोगश्लाघानहीं करेंगेयहतोव्याहीकथनकरनाहै। इस
लियेनिष्फलतुल्यइसवाणीरूपग्रंथ रचनामें मैंप्रवृत्तहुआहूं । परन्तु
अपनेअंतःकरणकीशुद्धिकेअर्थ मेरीप्रवृत्तिसफलहै। यातेशांतचित्तमहात्मा

मेरेदोषोंकोक्षमाकरनेकेयोग्यहैं। २। अथवस्तुनिर्देशरूपमंगलकोकरतेहैं॥

यदज्ञानादिदंभातीयज्ज्ञानाच्च प्रलीयते ।

ब्रह्मस्यांतदहंनित्यं नित्यसंवित्सुखाद्वयम् ॥ ३ ॥

अ० ॥ जिसकेअज्ञानसेयहदृश्यमान जगत्भानहोताहै ।
औरजिसकेज्ञानसेअत्यंतनाशहोताहै ॥ सोनित्यतथाचेतनस्वरूप
औरआनंदतथाअद्वयस्वरूपब्रह्मसदामैंहूं ॥ ३ ॥

अवटीकानिर्माणका स्थानकहतेहुएसमाप्तकरतेहैं ।

अधिकाश्रयुपविश्वेशमियं सिद्धांतदीपिका ।

निर्मिताराजतांश्वत्सदानंद प्रदायिनी ॥ ४ ॥

अ० श्रीकाशीजीमें विश्वेश्वरमहादेवजीकेसमीपयहसिद्धांत
दीपिकानाम्नीटीका रचनाकीहै। सोसुसुछुपुरुषोंको सदाआनंदकेदेने
वालीहुईनिरंतरविराजमानहो ॥ (४) इति ॥

गीयामा० ॥ विनाशजाको काहूविधसो नाहिकोऊपावहै ।

जोसर्वजगअवभासको आनंदपरमसुभाव है ॥

सजातीयआदिद्वैतजामेंदृष्टनांहिआवहै ।

सोआतमाहै रामरमियो निखल वेदवताव है ॥ १ ॥

क०॥ सोईशुद्धब्रह्मपर मायिकस्वरूपधर देवनकेहितकर जगप्रगटएहैं ।

नीलमेघसमश्याम तनद्यतिअभिरामअतिछवपिखकाममनमोल

जएहैंनैनछवपिखमृग मौनमुरझायरहे कंजखंजभृंगमन माहि

विसमएहैं। कमलसदोपपद कमलअदोपसदा ताहिंरघुनाथको

प्रणामहमकरेहैं ॥ २ ॥

तोटकबं०॥ चहरामभण्युरुनानकहैं, कलिदोपनदाहकपावकहैं ।

जहदर्शनतेनिस्थादिटे, पदकंजनताहिनमोहमरे ॥ ३ ॥

चौ०॥ श्रीगुरुअंगदजनहितकारी, अमरदासजनकेदुखदारी ।

रामदासगुरुपरमकृपालू, श्रीगुरुअर्जुनजनप्रतिपालू ॥ ४ ॥

लुरकननाशकहरीगोविंद, श्रीहरीरायभक्तवत्सल ।

श्रीहरीकृष्णजननसुखदान, धर्मकेलुगुरुनवममहान ॥ ५ ॥

दो० ॥ इनसबगुरुनकेसदा चरणकलधरसीस ।

वंदोंविषकरजोरकर धरोध्यानअहिनीस ॥ ६ ॥

स्वै०॥ मुखजाहिंशशीसमशोभतहै परदोषविहीनतिसेअधिकाई ।

नैनसरोजसमं पिखिये परहैकरुणारसकीसरसाई ।

भुजदंडअहीसमशोभतहैं परदीननपालकताउचताई ।

तांगुरुगोविंदकेहरकेपद दुंदनमोममहोयसदाई ॥ ७ ॥

अनंगशेष॥ रचाअगारभोगमोक्ष सेवकानहीतसे परोपकारबीचनीत

चीतकोहुलासहै। हनामहातमोजिने सतीमतीप्रकाशदेक्षमादयादमो

सुशीलजाहिमेंनिवासहै । रिदेअडोलधीर आस्यकंजहैविकाशजां

पिखेत्रितापशांतहोत दोषभीविनासहै। हमेंअधारहैसदा धरोंसुचीत

ताहिके पदारविंदकोनमो जुमोरप्रथमासहै ॥ ८ ॥

दो० ॥ वेदपादकेआदिके वर्णवामगतिसान।

ममसद्गुरुकोनामहै भक्तनकोसुखदान ॥ ९ ॥

शिषरणी० ॥ रचीजांकीलीला सकलजगमेंहै वचनकी । गुणवंती

शोभा अकथशशिजैसे वदनकी। महावानीजानी दुस्त

सबहूँकेदलनमें। नमोवास्वामंभवतुल्यकोहैजननिमे ॥ १० ॥

सो० ॥ श्रीगुरुचरणध्यान भयोसहायकनीतमम ॥

कारजभयोमहान बुधजनकोञ्जुहर्षप्रद ॥ ११ ॥

स्वैया ॥ मोक्षददोहस्निग्धमनरोत्तम मित्रवरंममनीतसहाई ।

तांहिकिप्रेस्नधारहियेइस कारजकीमनमेंहुलसाई ।

सबसज्जनसंतनसोविनती ममदोषछर्मोमतिमेंलघुताई ।

भयिआजसमाप्तमिरीशुक्तावलि सीयपतिप्रतिदीनचढ़ाई ॥ १२ ॥

क०। मुकतिशुक्तिपुनसारमतिदेनवारीसारसुतीसमजगजानोमुकतावली

संशयविपरीतज्ञानवादीतर्कानगिरिनाशवेकोकुलिशबिडौजमुकतावली

त्यागभोगथावलीकोधरेमुक्तावलीजोकटेदुखथावलीकोयहीमुकतावली

आनंदभुवनमध्यदीपिकाप्रकाशयुनवेदकेसिद्धांतनकीलसेमुकतावली ॥

दो० ॥ सिद्धीदरशननाथशशि संवतफल्गुणमास ।

१३

श्वेतपक्षतिथिवेदशशि सुतग्रहिपूरविलास ॥ १४ ॥

सो० ॥ श्रीगुरुग्रन्थनथान तरनतारनचिर्यातजग ।

तहारंभइतिजान र्षीकेशसुस्मरितटे ॥ १५ ॥

इतिश्री १०८ मन्निर्मलमृताश्वतंसब्रह्मविदुत्तमहरिहरिपूज्यपाद

शिष्येणगुरुदत्तसिंहमाधुनाविरचितायांवेदांतसिद्धांतमुक्तावली

भाषायांउत्तराद्धम् ॥

इतिश्रीमत्परमहंसपरिवाजकाचार्यस्वामिप्रकाशाऽनंदयतिवरविरचित

वेदांतसिद्धांतमुक्तावलीग्रंथस्य श्रीनानादीक्षितविरचितसिद्धांत

दीपिकाटीकोपेतस्य श्रीमन्निर्मलमृताश्वतंस ब्रह्मविदुत्तम

हरिहरिपूज्यपादशिष्येण गुरुदत्तसिंहमाधुनाविर

चिताऽनंदभुवनाख्याप्राकृतभाषाटीकासमाप्ता

॥ ओ३म् ॥

अथ श्रीवेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली
मूलकारिकायाः शब्दार्थबोधिनी
भाषाटीकाप्रारम्भः ॥

९।० ॥ नैनवैनमनजानको नैनवैनमनजान ।

सोमैद्वैतविनाशविन चिदानन्दनिश्चान ॥ १ ॥

स्वैया ॥ बन्दनदोकरजोस्को रघुनन्दनकोसबदूपनिकन्दन ।

कन्दनदासनकेभवफन्धन हैजनतापमिटावनचन्दन ।

चन्दनताङ्कपावकथौसवि जोतिनजोतिकोसवनन्दन ।

मन्दनहीननकोकरनन्दन हैममपालकवैरघुनन्दन ॥२॥

चौ० ॥ गुरुनानकगोविन्दहरिवरके । चरणकमलकोवन्दनकरके ।

स्वगुरुरूपदपङ्कजधरध्यानू । मूलकारिकाथर्थवखानू ॥ ३ ॥

अदृष्टद्वयमानन्दमात्मानं ज्योतिरव्ययम् ।

विनिश्चित्यश्रुतेः साक्षाद्युक्तिस्तत्राभिधीयते ॥१॥

भा० ॥ (अव्ययम्) विनाशसेरहित (ज्योतिः) स्वप्रकाश

(आनन्दम्) परमपुरुषार्थ (अदृष्टद्वयम्) द्वैतदर्शनसेरहित (आत्मानम्)

आत्माको (साक्षात्श्रुतेः) साक्षात् उपनिषद्से (विनिश्चित्य) निश्चय

करके (तत्र) उक्तचतुष्टयविशेषणविशिष्ट आत्माके (युक्तिः) श्रुति

अनुसारीतर्क (अभिधीयते) निरूपणाकियाजाताहै ॥ १ ॥

आत्मानित्योऽथवानित्यो भेदस्त्वाद्येस्फुटोमतः ।

अन्त्येतुकृतहानिः स्यादकृताभ्यागमस्तथा ॥२॥

भा० ॥ (आत्मानित्यः) आत्मानित्यहै (अथवा अनित्यः) अथवाअनित्यहै (तुआद्ये) प्रथमपक्षमें (भेदः) देहादिकोंसेआत्मा काभेद (स्फुटोमतः) स्पष्टहीअंगीकारहै । (तुअन्त्ये) औरद्वितीय पक्षमें (कृतहानिः) कियेहुयेकर्मनकाभोगसेविनानाश [तथा] और तैसेही (अकृताभ्यागमः) नकियेहुएकर्मनकेफलकी प्राप्तिरूपदोष (स्यात्) होगा ॥ २ ॥

जीवाश्रयाब्रह्मपदाह्यविद्या तत्त्वविन्मता ।

तद्विरुद्धमिदं वाक्यमात्मात्वज्ञानगोचरः ॥ ३ ॥

भा० (अविद्या) अज्ञान (जीवाश्रया) जीवकेअश्रितहै । और (ब्रह्मपदा) ब्रह्मकोविषयकरताहै। यहवार्ता (तत्त्वविदमता) यथार्थजाननेवालोंको अंगीकारहै। इसलिये [आत्मातुअज्ञानगोचरः] आत्माही अज्ञानकाविषयहै [इदंवाक्यम्] यहवादीका कथन (तत्त्वविरुद्धम्) तिनके कथनसे विरुद्धहै ॥ [हि] जीवआश्रित अज्ञानमानेहुएभीतिसकोउपाधिहोनेकरआत्माश्रयदोषनहींआता॥३॥

प्रत्यक्षादिप्रमाणानां प्रमात्वंपरतोयदि ।

अनवस्थास्फुटातत्र स्वतस्त्वेदोपसंशयः ॥ ४ ॥

भा० ॥ [प्रत्यक्षादिप्रमाणानाम्] प्रत्यक्षादिप्रमाणोंनिष्ठ [यदि] जोकदाचित् [परतोप्रमात्वम्] परतोप्रमात्वमानोंतो (तत्र) तिसपक्षमें [अनवस्थास्फुटा] अनवस्थादोषस्पष्टहीप्राप्तहोगा ॥ और

[स्वत स्त्वे] परमात्मकोस्वतःग्राह्यत्वमाननेमें (दोषसंशयः) दोषकी संभावनाहोगी ॥ ४ ॥

❖ जीवब्रह्मप्रयोगाभ्यामेकं वस्त्वथवाद्वयम् ।

आद्येत्विष्टममैवस्यात् द्वितीयेत्वन्मतक्षतिः॥५॥

भा० ॥ (जीवब्रह्मप्रयोगाभ्याम्) जीवऔरब्रह्मइनदोशब्दोंसे [एकंवस्तु] एकहीपदार्थकहतेहो [अथवाद्वयम्] अथवादोपदार्थ कहतेहो । [आद्ये] प्रथमपक्षमें [तु] ब्रह्मशब्दसेभीआत्माकाही कथनहोनेसे [ममेव] मेराही [इष्टम्] इष्टसिद्ध [स्यात्] होगा ॥ [द्वितीये] द्वितीयपक्षमें [त्वन्मतक्षतिः] तेरेमतकीहानिहोगी ॥५॥

❖ अविद्यास्वाश्रयाभिन्नविषयास्यात्तमोयतः ।

यथाबाह्यंतमोदृष्टंतथाचैयंततस्तथा ॥६॥*

भा० ॥ [अविद्यास्वाश्रयाभिन्नविषयास्यात्] अविद्याअपने आश्रयसेअभिन्नकोविषयकरनेवालीहै ॥ (यतः) जिसकारणसे (तमः) तमरूपहै । (यथा) जैसे (बाह्यंतमः) बाह्यअन्धकार(दृष्टम्) अपनेआश्रयसेअभिन्नकोविषयकरताहुआदेखाहै । (तथाचद्वयम्) तैसे हीयहअविद्या(ततः)तमरूपहोनेसे(तथा)स्वाश्रयाभिन्नविषयणीहै॥६

❖ ब्रह्मात्मनोर्विभिन्नत्वेभेदः स्वाभाविकोयदि ।

ग्रौपाधिकोऽथवाभेदः सर्वथानुपपत्तिकः ॥७॥

भा० ॥ (ब्रह्मात्मनोर्विभिन्नत्वे) ब्रह्मऔरआत्माकाभेदमानेहुए (यदि) क्या (स्वाभाविकः भेदः) तिनकास्वरूपप्रयुक्तभेदहै (अथवाग्रौपाधिकःभेदः) अथवाउपाधिप्रयुक्तभेदहै॥ (सर्वथा) सर्व

प्रकारसे (अनुपपत्तिकः) भेद नहीं संभवता ॥ ७ ॥

❖ लौकिकी वैदिकी चापि नाऽज्ञाने दृश्यते प्रमा ।

कार्य्यदृष्ट्याऽथ कल्प्यं चेत्लाघवादेकमेव तत् ॥ ८ ॥

भा० ॥ [अज्ञाने] अज्ञानमें [लौकिकी] लौकिकप्रत्यक्षादि प्रमाण [च] अथवा [वैदिकी] वेद [प्रमाअपि] प्रमाणभी [न दृश्यते] नहीं देखा जाता [अथचेत्] यदि [कार्य्यदृष्ट्या] प्रपंच रूपकार्य्यको देखकर [तत्] वह अज्ञान [कल्प्यम्] कल्पना करने योग्य है तो [लाघवात्] लाघवसे [एवमेव] एक ही स्वीकार करो ॥ ८ ॥

❖ बन्धमोक्षव्यवस्थास्याज्जीवाभेदे कथं तव ।

यथा दृष्टं तथैवास्तु दृष्टत्वात् स्वप्नदृष्टवत् ॥ ९ ॥ ❖

भा० ५ ॥ [तव] तैरेमतमें [जीवाभेदे] जीवको एक माने हुए (बन्धमोक्षव्यवस्था) बन्ध तथा मुक्तिकी व्यवस्था (कथं स्यात्) कैसे होगी (उ०) (यथा दृष्टम्) जैसे तैरेमतमें व्यवस्था देखी है । (तथा एव अस्तु) तैसे ही हमारे मतमें हो (दृष्टत्वात्) देखनेसे (स्वप्नदृष्टवत्) स्वप्नमें बन्ध मुक्तिकी व्यवस्था जैसे देखी जाती है तैसे ॥ ९ ॥

❖ अज्ञातसत्त्वं नेष्टं चेद्व्यवहारः कथं भवेत् ।

न ह्यदर्शनमात्रेण विपरणो नाशनिश्चयात् ॥ १० ॥

भा० ॥ (चेत्) यदि (अज्ञातसत्त्वम्) प्रपंचनिष्ठ अज्ञातसत्ता (न दृष्टम्) अंगीकार नहीं तो (व्यवहारः) व्यवहार (कथं भवेत्) कैसे होगा (हि) जिस कारणसे (अदर्शनमात्रेण) पुत्रादिकों के अदर्शनमात्र कर तिनका (नाशनिश्चयात्) अभावनिश्चयसे कोई भी पुरुष (विपरणः न)

विषादयुक्तनहीं होता इस वास्ते प्रपंच की अज्ञात संप्रमाणनी योग्य है ॥१०॥

❖ सत्त्वत्रयं वदन्वादी प्रष्टव्योऽत्राधुना मया ।

सत्यं द्वैतमसत्यं वानासत्ये त्रिविधं कुतः ॥११॥❖

भा० ॥ [सत्त्वत्रयम्] त्रिविधसत्ता (वदन्) कहता हुआ
(वादी) एकदेशी (अत्र) यहां (अधुना) अब (मया) मेरे कर (प्रष्टव्यः)
पूछने योग्य है ॥ क्या (सत्यं द्वैतम्) द्वैतसत्य है (वाच्यसत्यम्) अथवा
अनिर्वचनीय है ॥ (न) प्रथमपक्षनहीं संभवता । क्योंकि द्वैतापत्तिरूप
दोष है ॥ और (असत्ये) प्रातीतिक द्वैतमाने हुए (त्रिविधम्) तीन
प्रकार की सत्ता (कुतः) - किस हेतु से है ॥ ११ ॥

❖ द्वैतभेदे प्रतिज्ञानं प्रत्यभिज्ञा कथं वद ।

दशानां युगपत् सर्पभ्रमे यद्वत्तथैव सा ॥१२॥❖

भा० प्र० ॥ (प्रतिज्ञानम्) ज्ञानज्ञानप्रति (द्वैतभेदे) द्वैतका भेद
माने हुए (प्रत्यभिज्ञा) सोई यह प्रपंच है यह प्रतिभिज्ञा (कथम्) किस
प्रकार होगी (वद) यह तुम कहो ॥ ३० ॥ (यद्वत्) जैसे (युगपत्)
एककालमें (दशानाम्) दशपुष्पांको (सर्पभ्रमे) सर्पभ्रम हुआ भ्रमरूप
प्रतिभिज्ञा होती है (तथाएव) तैसेही (सा) वह प्रपंच गोचर प्रतिभिज्ञा
भ्रमरूप है ॥ (१२)

❖ सर्पभ्रमाद्विशेषोऽस्ति जाग्रद्वोधेऽन्यथा कथम् ।

इन्द्रियादेरुपादानं तदभावे यतो न धीः १३॥❖

भा० ॥ (सर्पभ्रमात्) सर्पभ्रमसे (जाग्रद्वोधे) जाग्रतज्ञानमें
(विशेषः अस्ति) विलक्षणता है । (अन्यथा) यदि ऐसे न माने तो

(इन्द्रियादेः) इन्द्रियादिकोंका (उपादानम्) ग्रहण (कथम्) कैसेहोगा (यतः) जिसकारणसे (तत्प्रभावे) इन्द्रियोंकेप्रभावहुए (धीः) जाग्रत ज्ञान (न) नहींहोता ॥ १३ ॥

❀ इन्द्रियाणां कारणात्वे भवेच्चोद्यतदातव ।

स्वप्नभ्रमे यथा ते पामन्वयव्यतिरेकधीः ॥ १४ ॥ ❀

भा० ॥ हेवादिन् (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंको (कारणात्वे) जाग्रतज्ञानकेप्रतिकारणताकेहुए [तदा] तव (तव) तेरा (चोद्यम्) विकल्प(भवेत्) होसकेपरंतुऐसेनहीं क्योंकि (यथा) जैसे(स्वप्नभ्रमे) स्वप्नभ्रममें (तेषाम्) इन्द्रियोंका (अन्वयव्यतिरेकधीः) अन्वयव्यतिरेकज्ञानभ्रमरूपहै तैसेजाग्रतज्ञानकेप्रतिजानो ॥ १४ ॥

❀ मृदादीनां कारणात्वं न चेदिष्टं घटं प्रति ।

अविद्यायाः कारणात्वं कथं सिद्धयेत् प्रमां विना ॥ १५ ॥

भा० ॥ (चेत्) यदितुमको (मृदादीनाम्) मृत्तिकादिकोंकी (कारणात्वं) कारणता (घटंप्रति) घटकेप्रति (इष्टं) स्वीकारनहींहै ॥ तो (प्रमां विना) प्रमाणसेविना (अविद्यायाः) अविद्याको (कारणात्वं) प्रपंचकीकारणता (कथम्) कैसे (सिद्धयेत्) सिद्धहोगी ॥ १५ ॥

❀ यथा सतो जनिर्नैव मसतोऽपि जनिर्न च ।

जन्यत्वमेव जन्यस्य मायिकत्वसमर्पकम् ॥ १६ ॥

भा० ॥ (यथा) जैसे (सतः) सत्की (जनिः) उत्पत्ति (न) नहींहोती । (एवं) इसी प्रकार (असतः अपि) असत्की भी (जनिः) उत्पत्ति (नच) नहींहोती ॥ इसवास्ते (जन्यस्य) कार्य

पर्यन्तिष्ठ (जन्यत्वंएव) कार्यपनाही (मायिकत्वसमर्पकम्) आविद्यक
पनेकाज्ञापकहै ॥ १६ ॥

❖ प्रतीतिमात्रसत्त्वंचेत् सत्त्वंप्रातीतिकंमतम् ।

अविरोधान्ममापीष्टं तद्भेदवदकाप्रमा ॥१७॥❖

भा० ॥ (चेत्) यदि(प्रातीतिकंसत्त्वम्) प्रातभासिकसत्ता(प्रतीति
मात्रसत्त्वम्) प्रतीतिमात्रसत्ताही(मतम्)स्वीकारहै। तोइसपक्षमें (अवि
रोधात्) विरोधकाअभावहोनेसे(ममअपि) मुझकोभी(इष्टम्) इष्ट्यापत्तिहै॥
(तद्भेदे) औरज्ञानज्ञेयकेभेदमें(काप्रमा) कौनप्रमाणहै(वद) यहतुमकहो
अर्थात् ज्ञानज्ञेयकेभेदमें कोईभीप्रमाणनहीं ॥ १७ ॥

❖ प्रत्येतव्यप्रतीत्योश्चभेदः प्रामाणिकःकुतः ।

प्रतीतिमात्रमेवैतत् भातिचिश्चराचरम् ॥१८॥❖

भा० ॥ (प्रत्येतव्यप्रतीत्योःच) ज्ञानऔरज्ञेयका (भेदः) भेद
कुतः) किसहेतुसे (प्रामाणिकः) प्रमाणसिद्धहैकिंतुकिसीहेतुसेनहीं ।
इसवास्ते (एतत्) यह (विश्वम्) संसार(चराचरम्) स्थावरजंगमरूप
जो (भाति) भानहोताहै। वह (प्रतीतिमात्रंएव) ज्ञानमात्रहीहै॥१८॥

❖ ज्ञानज्ञेयप्रभेदेनयथा स्वाप्नंप्रतीयते ।

विज्ञानमात्रमेवैतत्तथा जाग्रच्चराचरम् ॥१९॥❖

भा० (यथा) जैसे(स्वाप्नं) स्वप्नकालीनजगत्विज्ञानमात्रस्वरूपहुआ
भी (ज्ञानज्ञेयप्रभेदेन) ज्ञानतथाज्ञेयकेभेदविशिष्ट (प्रतीयते) प्रतीत
होताहै।(तथा) तैसेही (एतत्) यह (जाग्रत्चराचरं) जाग्रत्कालीन
स्थावरजंगमरूपजगत् (विज्ञानमात्रंएव) विज्ञानमात्रस्वरूपहीहै॥१९॥

तन्तोर्भेदेपटायद्वच्छून्य एवस्वरूपतः ।

आत्मनोपितथैवेदं भानमात्रंचराचरम् ॥ २० ॥

भा०॥ (यद्वत्) जैसे (तन्तोः) तंतुसे (भेदे) भिन्नकियेहुए (पटः) पट (स्वरूपतः) स्वरूपसे (शून्यःएव) असत्हीहोजाताहै ॥ (तथाएव)तैसेही(इदम्)यह(चराचरम्)स्थावरजंगमरूपजगत्(आत्मनः)अपि) आत्मासेभिन्नकियाहुआभी असत्रूपहीहै ॥ क्योंकि (भान मात्रम्) विज्ञानमात्रस्वरूपहै ॥२०॥

रज्जुर्यथाभ्रान्तदृष्ट्यासर्प रूपाप्रकाशते ।

आत्मातथामूढबुद्ध्याजगद्रूपः प्रकाशते ॥ २१ ॥

भा० ॥ (यथा) जैसे (रज्जुः] जेवरी [भ्रान्तदृष्ट्या] भ्रान्त पुरुषकीदृष्टिसे[सर्परूपा] सर्परूप (प्रकाशते] प्रतीतहोतीहै । [तथा] तैसे (मूढबुद्ध्या) अज्ञानीकीदृष्टिसे [आत्मा] आत्माभी [जगत् रूपः] जगत् रूप [प्रकाशते] प्रतीतहोताहै ॥ २१ ॥

आत्मन्येवजगत्सर्वं दृष्टिमात्रमतत्त्वकम् ।

उद्भूयस्थितिमादाय विनश्यतिमुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥

भा० ॥ (सर्वं जगत्) सकलप्रपंच (दृष्टिमात्रम्) प्रतीतिमात्र (अतत्त्वकम्) तथा अवास्तवरूप (आत्मनिएव) आत्मामेंही(उद्भूय) उत्पन्नहोकर तथा (स्थितिम्) स्थितिको (आदाय)ग्रहणकरके (मुहुः मुहुः) पुनः पुनः (विनश्यति) विनाशहोताहै ॥२२॥

पूर्णानन्दाद्वयेशुद्धे पापदोषादिवर्जिते ।

प्रतिविंवमिवाभाति दृष्टिमात्रंजगत्त्रयम् ॥२३॥

भा० ॥ (पूर्णानंदा दये) पूर्ण औ आनंद तथा द्वैतसे रहित.
 (शुद्धे) अविद्या मल रहित तथा (पापदोषादिवर्जिते) पाप औ
 रगादि दोषसे रहित आत्मा में (जगत्त्रयम्) त्रयलोकात्मक प्रपंच
 (दृष्टिमात्रम्) प्रतीतिमात्र (प्रतिविंबव) प्रतिविंबके समान (आभाति)
 भासता है ॥ २३ ॥

यत्तत्त्वेदगुप्तं परमसुखतमं नित्यमुक्तस्वभावम् ।
 सत्यं सूक्ष्मात्सु सूक्ष्मं महदिदममृतं मुक्तमात्रैकगम्यम् ।
 यस्यांशे लेशमात्रं जगदिदमखिलं भ्रांतिमात्रैकदेहम् ।
 प्रत्यगज्योतिस्वरूपं शिवमिदमधुना कथ्यते युक्तितोऽत्र २४

भा० ॥ (यत्तत्त्वम्) जो अनारोपित आत्मा है (वेदगुप्तम्) वह वेद
 प्रमाण कर ही जानने योग्य है । और (परमसुखतमम्) वह सर्वोत्कृष्ट अत्यंत
 सुखरूप है । और (नित्यमुक्तस्वभावम्) सदा ही अविद्यातत कार्य से
 रहित स्वरूप है । और (सत्यम्) तीनों काल में बाधशून्य है । और (सूक्ष्मा
 त्सूक्ष्मम्) अघानादिकों से अत्यंत सूक्ष्म है । पुनः (महत्) वह निपेक्ष
 व्यापक है और (इदं अमृतम्) यह पूर्वोक्त तत्त्व ही मोक्ष स्वरूप है । और
 [मुक्तमात्रैकगम्यम्] केवल मुक्त पुरुष कर ही जानने योग्य है ॥ और 'इदं
 शिवम्' यह ही ईश्वर रूप है ॥ (यस्यांशे) जिस तत्त्व के मायिक प्रदेश में
 (भ्रांतिमात्रैकदेहम्) केवल भ्रम मात्र स्वरूप (इदम्) यह (अखिलम्) सर्व
 (जगत्) प्रपंच [लेशमात्रम्] लेश मात्र स्थित है । (और अत्यन्तः) सर्व से
 अंतर है तथा (ज्योतिः) स्वप्रकाश स्वरूप है । (अधुना) अब (युक्तिः)
 श्रुति अनुसारी तर्क से (अत्र) इसमें (कथ्यते) निरूपण किया जाता है ॥ २४ ॥

❖ आत्मा ज्यं सर्वसंबद्धो भानुभासक उच्यते ।

नित्यो ज्यमविनाशित्वाद् उपादेयः कथं भवेत् २५ ॥ ❖

भा० ॥ (आत्मा अयम्) यह आत्मा (सर्वसंबद्धः) सर्वको साथ संबन्ध वाला है । और (भानुभासकः) आदित्यवत् प्रकाशक (उच्यते) श्रुति ने कहा है ॥ और [अविनाशित्वात्] अविनाशि होने से [अयम्] यह आत्मा (नित्यः) नित्य है । वह [उपादेयः] ग्रहण के योग्य [कथम्] किस प्रकार (भवेत्) हो किंतु नहीं हो सकता ॥ २५ ॥

❖ य आत्मा सर्ववस्तूनां यदर्थं सकलं जगत् ॥

आनंदाब्धिः स्वतंत्रो सावनादेयः कथं वद ॥ ३६ ॥

भा० (सर्ववस्तूनाम्) सर्व अनात्म पदार्थों का [यः] जो [आत्मा] स्वरूप है । और (यत् अर्थम्) जिसके वास्ते [सकलं जगत्] सर्व जगत् है और जो [आनंदाब्धिः] आनंद का समुद्र है । और (स्वतंत्रः) स्वतंत्र है । (असौ) वह आत्मा (अनादेयः) ग्रहण के योग्य (कथम्) किस प्रकार हो सकता है हेवादिन् [वद] यह तू कथन कर ॥ ३६ ॥

❖ यदन्यत् वस्तु तत् सर्वं यद्भेदेन रश्मिगवत् ।

सत्ता सर्वपदार्थानामनादेयः कथं वद ॥ २७ ॥

भा० ॥ (यद्यन्यत्) जिससे भिन्न रूपता कर माना हुआ [तत् सर्वं वस्तु] वह सर्व अनात्मा [यत् भेदे] जिस आत्मा से भिन्न किया हुआ [नरश्मिगवत्] नर के शृंग सम अस्व हो जाता है ॥ और (सर्वपदार्थानाम्) सकल अनात्म पदार्थों का जो [सत्ता] स्वरूप है ! वह [अनादेयः] ग्रहण के योग्य [कथम्] किस प्रकार है [वद] यह तू कथन कर ॥ २७ ॥

❀ यद्वशे प्राणिनः सर्वे ब्रह्मादयः कृमयश्च ये ।

ईशानः सर्वभूतानामनादेयः कथं भवेत् ॥२८॥❀

भा० ॥ [ब्रह्मादयः] ब्रह्मासेयादिलेकर (कृमयः च) और कृमि पर्व्यन्त (ये) जो (सर्वे) सर्व (प्राणिनः) प्राणधारि हैं वह (यद्वशे) जिसके वशमें वर्तते हैं । और (सर्वभूतानां) सर्वभूतों का जो (ईशानः) नियन्ता है (अनादेयः) वह अनुपादेय (कथं) किस प्रकार (भवेत्) हो किंतु नहीं हो सकता ॥२८॥

❀ यच्चक्षुः सर्वभूतानां मनसो यन्मनो विदुः ।

यज्ज्योतिर्ज्योतिषां देवो नोपादेयः कथं विभुः ॥२९॥

भा० ॥ (यत्) जो आत्मा (सर्वभूतानां) सब लभूतों का (चक्षुः) प्रकाशक है । और (यत्) जो आत्मा (मनसः) मन का भी 'मनः' साक्षी है, ऐसे (विदुः) ब्रह्मवेत्ता जानते हैं । और (यत्) जो आत्मा (ज्योतिषां) सूर्यादि ज्योतिषों का भी (ज्योतिः) प्रकाशक है । वह (देवः) स्वप्रकाश (विभुः) व्यापक आत्मा (कथं) कैसे (उपादेयः न) उपादेय नहीं किंतु वह उपादेय अर्थात् पुरुषार्थरूप है ॥२९॥

❀ मोदप्रमोदपक्षाभ्यामनंदात्मा तमोगतः ।

जीवयत्यखिलां लोकान् नोपादेयः स्वयंकुतः ॥३०॥❀

भा० ॥ (आनंदात्मा) आनंदस्वरूप आत्मा ही (तमोगतः) यज्ञानोपहित हुआ (मोदप्रमोदपक्षाभ्याम्) मोद और प्रमोद इन दोनों पक्षों के (अखिलां लोकान्) सर्वलोकों को (जीवयति) जीवयता है । वह (स्वयं) आप (कुतः) किस हेतु से (उपादेयः न) पुरुषार्थरूप नहीं ॥ ३० ॥

❀ यस्यानंदसमुद्रस्यलेशमात्रंजगत्गतम् ।

प्रसृतं ब्रह्मलोकादौ सुखाविधकः परित्यजेत् ॥ ३१ ॥ ❀

भा० ॥ (यस्य) जिस (आनंद समुद्रस्य) आनंदसमुद्रका (लेशमात्रं) लेशमात्र आनंद (जगत्गतम्) जगत्में प्राप्त है और (ब्रह्म लोकादौ) ब्रह्मलोकादिकों में (प्रसृतं) फैला हुआ है । तिस 'सुखाविधं' सुखसमुद्रको (कः) कौन (परित्यजेत्) परित्याग करे किंतु कोई नहीं त्यागता ॥ ३१ ॥

❀ हेरगयगर्भमैश्वर्यं यस्मिन् दृष्टे तृणायते ।

सीमासर्वपुमर्थानामपुमर्थः कथं भवेत् ॥ ३२ ॥ ❀

भा० ॥ (यस्मिन् दृष्टे) जिस आत्मा के साक्षात्कार हुए (हेरगय गर्भमैश्वर्यं) हिरण्यगर्भका ऐश्वर्य (तृणायते) तृण के समान हो जाता है । और जो (सर्वपुमर्थानां) सर्वपुरुषार्थों की (सीमा) अवधि है । वह (अपुमर्थः) अपुरुषार्थ रूप [कथं] कैसे (भवेत्) हो किंतु नहीं हो सकता ३२

❀ यत्कामा ब्रह्मचर्य्यन्त इन्द्रादयः प्राप्त संपदः ।

स्वस्वभोगं त्यजं त्येवमपुमर्थः कथं नृणाम् ॥ ३३ ॥ ❀

भा० ॥ (प्राप्तसंपदः) संपदा की प्राप्ति वाले (इन्द्रादयः) इन्द्रादिक 'यत्कामाः' जिस आत्मा की कामना वाले हुए (ब्रह्मचर्य्यन्तः) ब्रह्मचर्य्य को धारण करते हुए (स्वस्वभोगम्) अपने अपने भोग को (त्यजन्ति) त्यागते भये । तो (एवम्) इस प्रकार (नृणाम्) मनुष्यों को वह आत्मा (अपुमर्थः) अपुरुषार्थ रूप (कथम्) किस प्रकार हो सके किंतु नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥

❖ यद्दृष्टाफलाः सर्वा वैदिक्यो विविधा क्रियाः ।

यागाद्याविहितास्तास्मिन्नुपेक्षावदते कथम् ॥ ३४ ॥ ❖

भा० ॥ (सर्वाः) सर्व (वैदिक्यः) वेदोक्त (विविधाः) नाना प्रकारकी (यागाद्याः) यागादिरूप (क्रियाः) क्रियायें (विहिताः) जो विधानकी हैं । कैसी वह क्रियायें हैं (यद्दृष्टाफलाः) जिस आत्मा के दर्शन की इच्छा ही फल है जिन्हों का (तस्मिन्) तिस आत्मों में 'ते' तुम्हें को [कथम्] किस प्रकार [उपेक्षा] अनुपादेयता है [वद] यह कहन कर ॥ ३४ ॥

❖ यद्दृष्टिमात्रतः सर्वाः कामाद्याः दुःखभूमयः ।

विनश्यन्ति क्षणेनासावुपादेयः कथं न ते ॥ ३५ ॥ ❖

भा० ॥ (यद्दृष्टिमात्रतः) जिसके दर्शन मात्रसे (कामाद्याः) कामादिक (सर्वाः) सर्व (दुःखभूमयः) दुःखके कारण 'क्षण' एक क्षण मात्रसे 'विनश्यन्ति' विनाश हो जाते हैं 'असौ' वह आत्मा 'ते' तुम्हें को 'कथम्' किस प्रकार 'न उपादेयः' उपार्थरूप नहीं यह कहन कर ॥ ३५ ॥

❖ अहंत्वाद रूपतां यस्य सुषुप्ते सर्वसाक्षिकी ।

तत्रापेक्षा भवेद्यस्य तदन्यस्यात् पशुः कथम् ॥ ३६ ॥ ❖

भा० ॥ 'यस्य' जिस आत्मा की 'अहंत्वाद रूपता' आनंदस्वरूपता 'सुषुप्ते' सुषुप्ति में 'सर्वसाक्षिकी' सर्वपक्षों के अनुभव सिद्ध है । 'तत्र' तिस आत्मा विषयक 'यस्य' जिसको 'उपेक्षा भवेत्' अनुपादेयता हो 'तदन्यः' तिससे भिन्न 'कथम्' और किस प्रकार 'पशु' स्यात् पशु होगा किंतु वही पशु है ॥ ३६ ॥

❖ विरुद्धयोरभेदोहिनवेदेनप्रमीयते ।

अनन्यगतिकत्वेनमानान्तरस्यबाधनम् ॥३७॥❖

भा० ॥ 'विरुद्धयोः' विरुद्धधर्मवालोंका 'अभेदः' एकत्व 'हि' जिसकारणसे 'वेदेन' वेदने 'नप्रमीयते' नहींबोधनकियाहैइसीसे 'अनन्यगतिकत्वेन' अन्यगतिकायभावहोनेकर 'मानान्तरस्य' अन्यप्रमाणका 'बाधनं' बाधयुक्तहै अन्यथानहीं ॥ ३७ ॥

❖ ब्रह्माऽज्ञानाज्जगज्जन्मब्रह्मणोऽकारणात्त्वतः ।

आधिष्ठानत्वमात्रेणकारणाब्रह्मगीयते ॥३८॥

भा० ॥ 'ब्रह्मणः' ब्रह्मको 'अकारणात्त्वतः' अकारणहोनेसे 'ब्रह्मअज्ञानात्' ब्रह्मकेअज्ञानसे 'जगत्जन्म' प्रपंचकीउत्पत्तिहोती है । और 'आधिष्ठानत्वमात्रेण' प्रपंचकाअधिष्ठानमात्रहोनेकर 'कारणा ब्रह्म' ब्रह्मकारणहै । ऐसा [गीयते] वेदान्तोंमेंकथनकियाहै ॥३८॥

❖ प्रश्नस्यज्ञानपूर्वत्वादाक्षेपेप्रतियोगिधीः ।

अवश्यंभाविनीपूर्वाविरोधःस्यादितोऽन्यथा ॥३९॥

भा० ॥ [प्रश्नस्य] प्रश्नको [ज्ञानपूर्वत्वात्] ज्ञान पूर्वकहोनेसे ज्ञातमेंप्रश्नव्यर्थहै । और [आक्षेपे] निषेधमें [प्रतियोगिधीः] प्रतियोगिज्ञान (अवश्यंभाविनीपूर्वा) अवश्यपूर्वहोताहै ॥ [इतः] इससे 'अन्यथा' अन्यप्रकारमानेहुए 'विरोधःस्यात्' विरोधहोगा ॥३९॥

❖ साक्षात्कृतेत्वधिष्ठानेसमनन्तरनिश्चितिः

अध्यस्यमानंनानास्तीतिबाधइत्युच्यतेबुधैः ॥४०॥❖

भा० ॥ [तुअधिष्ठानेसाक्षात्कृते] अधिष्ठानकेसाक्षात्कार

हुएपुनः [समनंतरनिश्चितिः] तिससेअनंतरजोनिश्चयउत्पन्नहोता हैकि [अध्यस्यमाने] कल्पितपदार्थ [नास्ति] अधिष्ठानमेंकालत्रय मेंनहींहै [बाध,इति] यहीबाध [बुधैः] विद्वानोंने [उच्यते] कथन कियाहै ॥ ४० ॥

❖ उपमर्द्यस्वभावत्वमविद्यायाविरोधिता ।

तत्कर्तृत्वंतुविद्यायाःप्रकाशतमसोरिव॥४१॥❖

भा०॥ [उपमर्द्यस्वभात्वे] उपमर्दकेयोग्यस्वभाव[अविद्यायाः] अविद्यानिष्ठ (विरोधिता) विरोधिपनाहै । (तु) और (तत्कर्तृत्वं) उपमर्दकत्वरूपविरोधिपना [विद्यायाः] विद्यानिष्ठहै ॥ [प्रकाश तमसोःद्वय] जैसेप्रकाशऔरअन्धकास्काविरोधहै ॥ ४१ ॥

❖ कल्पितोप्युपदेष्टास्याद्यथाशास्त्रंसमादिशेत् ।

नचाविनिगमोदोषोऽविद्यावत्त्वेननिर्णयात्॥४२॥

भा०॥ 'यथाशास्त्रम्' जैसेकल्पितभीशास्त्र 'स्यात्' बोधनकरता है। तैसे 'कल्पितःअपि' कल्पितभी 'उपदेष्टा' आचार्य 'समादिशे' सम्पूर्णउपदेशकरसकताहै। 'अविद्यावत्त्वेन' शिष्यकोअज्ञानीहोनेकर 'निर्णयात्' निर्णयहोनेसे 'अविनिगमःदोषःनच' विनिगमनाविरह दोषनहींप्राप्तहोसकता ॥४२॥

❖ उपाधिसंश्रयोह्यात्माआनन्दत्वंतदाश्रयः ।

विशिष्टशक्यपक्षेतुव्याक्तिर्वाशक्तिर्गोचरः ॥४३॥❖

भा० ॥ 'विशिष्टशक्यपक्षे' आनन्दत्वविशिष्टआनन्दआनन्दपद कावाच्यहै इसपक्षमें 'उपाधिसंश्रयः' उपाधियुक्तहुआ 'हियात्मा'

आत्माही 'आनंदत्वं' आनंदत्वधर्म 'तु' और 'तवयाश्रयः' तिसका आश्रयआनंदव्यक्तिरूपहै 'वा' अथवा 'व्यक्तिः' आनंदव्यक्ति 'शक्तिगोचरः' आनंदपदकीशक्तिकाविषयहै । इसपत्रमेंभीकोईदोष नहीं ॥ ४३ ॥

❀ आनंदरूपमात्मानंसच्चिदद्वयतत्त्वकम् ।

अपूर्वादिप्रमाणोक्तंप्राप्याहंतद्वपुःस्थितः ॥४४॥❀

भा० ॥ 'अपूर्वादिप्रमाणोक्तम्' श्रुतिआदिकप्रमाणकर सिद्ध 'आनंदरूपम्' आनंदस्वरूपतथा (सवचित्तद्वय तत्त्वकम्) सतचित्तद्वयस्वरूप (आत्मानम्) आत्माको (प्राप्य) साक्षात्कारकरके (नद्वपुः) आनंदादिस्वरूपही (अहम्) में (स्थितः) 'स्थित' हुआहूँ ॥ ४४ ॥

❀ योहमद्वयवस्त्वेवसद्वयेदृढानिश्चयः ।

प्राप्यचानंदमात्मानंसोहमद्वयविग्रहः ॥४५॥❀

भा० (यःअहम्)जोमैं (अद्वयवस्तुएव) अद्वैतवस्तुही [सद्वये] ईशविशिष्टमें [दृढनिश्चयः] दृढ़अभिमानवालाहुआथा [सःअहम्] सोमैं (च)पुनः (आनंदंआत्मानम्) आनंदस्वरूपआत्माको (प्राप्य) प्राप्तहोकर (अद्वयविग्रहः) अद्वैतस्वरूपस्थितहुआहूँ ॥ ४५ ॥

❀ नास्तिब्रह्मसदानंदमितिमेदुर्मतिःस्थिता ।

कगतासानजानामियदाऽहंतद्वपुःस्थितः ॥४६॥❀

भा० ॥ (सत्आनन्दम्) सत्ययोंआनन्दस्वरूप (ब्रह्मनास्ति) ब्रह्मनहींहै । (इतिदुर्मतिः) यहदुष्टबुद्धि (मेस्थिता) मुझमेंस्थितथी।

(यदा) जिसकालमें [अहम्] में (तद्वपुः) सत्यादिस्वरूप (स्थितः) स्थितहुआ [साक्वगता) वहकहांगई (नजानामि) यहमेंनहीं जानताहूं ॥ ४६ ॥

*पूर्णानिन्दाद्वयेतत्त्वेमेर्वादिजगदाकृतिः ।

बोधेऽबोधकृतैवासीदबोधःकगतोऽधुना ॥४७॥*

भा० ॥ [पूर्णानिन्दाद्वयेतत्त्वे) पूर्णतथाअद्वयानंदस्वरूपमें [मेर्वादिजगत्त्याकृतिः) सुमेरुआदिकजगत्काआकार [अबोधकृता एवआसीत्) अज्ञानकृतहीया (अधुना) अब (बोधे) आत्म साक्षात्कारकेदुष्ट (अबोधः) वहअज्ञान (क्वगतः) कहांगया ॥४७॥
*संसाररोगसंग्रस्तोदुःखराशिर्वापरः ।

आत्मबोधसमुन्मेपादानन्दाधिरहोस्थितः॥४८॥*

भा० ॥ (संसाररोगसंग्रस्तः) जो में संसाररूप रोग कर सम्यक् प्रसादहुआया और (दुःखराशिःइवअपरः) दुःखराशिकी न्याईनिकृष्टया [आत्मबोधममुन्मेपात] अबआत्म साक्षात्कारके सम्यक्उदयहोनेसे (आनंदाधिः) आनंदकाममुद्र (स्थितः) में स्थित हुआहूं (अहो) यहबहुतआश्चर्यहै ॥ ४८ ॥

*योऽहमल्पेपिविषयेरागवानतिविह्वलः

आनन्दात्मनिसंप्राप्तसरागःक्वगतोऽधुना ॥४९॥*

भा० ॥ (यःअहम्) जोमें (अल्पेअपिविषये) तुल्यविषयजन्य सुखमेंही (रागवान) प्रीतिवालाथी (अतिविह्वलः) अत्यंतदयाकुल हुआया (अधुना) अब (आनंदात्मनिर्गमप्राप्ते) आनंदस्वरूपआत्माके सम्यक्प्राप्तहुए (गमग) गमग (वपगव) कर्त्तव्यनागया ४९ ॥

भा० ॥ [अवोधाख्यतस्करैः] अज्ञानसंज्ञिकचौरैर्ने [दिहे] शरीर
में (अहंमाननिगडैः) अहंअभिमानरूपीबन्धनोंकर (चिरंबद्धः) दीर्घ
कालसेमेंपूर्ववांधाहुआथाअव(दिव) हेस्वप्नकाशात्मन् (तेदर्शनातएव)
तेरेसाक्षात्कारमात्रसे (बन्धनम्) वहबन्धन (क्षणावच्छ्रितं) एक
क्षणमात्रसेतूटगया ॥ ५३ ॥

❖ विशुद्धोऽस्मि विमुक्तोऽस्मि पूर्णातिपूर्णातमाकृतिः ।

असंस्पृश्यतमात्मानमन्तर्ब्रह्माण्डकोटयः ॥ ५४ ॥ ❖

भा० ॥ (विशुद्धः अस्मि) मैंअविद्यादिमलसेरहितहूं। (विमुक्तः
अस्मि) औरबन्धनसेरहितहूं॥ पूर्णातिपूर्णातमाकृतिः) औरआकाशादि
सेअतिपूर्णस्वरूपहूं॥ [तत्रात्मानम्] तिसमेरेस्वरूपको (असंस्पृश्य)
नस्पर्शकरके (ब्रह्माण्डकोटयः) अनंतब्रह्मांड (अन्तः) मुझमेंनिवास
करें तोमेरीक्याहानिहै ॥ ५४ ॥

❖ तत्त्वमादिवचो जालमावृत्तमसकृत्पुरा ।

इदानींतत् श्रवादेव पूर्णानन्दो व्यवस्थितः ॥ ५५ ॥ ❖

भा० ॥ (पुरा) पूर्व (तत्त्वं आदिवचः) तत्त्वं आदिक
वचनोंका (जालं) समूहअर्थात्संपूर्णवेदका (असकृत्) अनेक
बार (आवृत्तं) मैंनेअभ्यासकिया (इदानीं) अब (तत् श्रवात्एव) वेदांत
विचारजन्यसाक्षात्कारसेही (पूर्णानन्दो व्यवस्थितः) पूर्णआनन्दस्वरूप
मैंस्थितहुआहूं ॥ ५५ ॥

❖ आत्मसत्तैव हेतस्य सत्तानान्यायतस्ततः ।

आत्मन्येव जगत्सर्वदृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम् ॥ ५६ ॥ ❖

✽ यस्यमेजगतांकर्तुः कार्यैरपहृतात्मनः ।

आविर्भूतपरानन्दआत्माप्राप्तः श्रुतेर्वलात् ॥५०॥

भा० ॥ पूर्व (यस्यमे) जिसमुझ (जगतांकर्तुः) सकलजगतके अधिष्ठान (कार्यैः अपहृतात्मनः) तथाकार्याऽऽयासोंकर आच्छादित स्वरूपको (श्रुतेः वलात्) अब श्रुतिजन्यबोधसे (आविर्भूतपरानन्दः) निरावरणपरमानन्द (आत्माप्राप्तः) स्वरूपप्राप्तहुआ ॥ ५० ॥

✽ परामृष्टोऽसिलब्धोऽसिप्रोपितोऽसिचिरमया ।

इदानींत्वामहंप्राप्तोनत्यजामिकदाचन ॥५१॥

भा० ॥ (मया) मेरेसे (चिरम्) दीर्घकालसे (प्रोपितः असि) त्वयि उक्तथा (परामृष्टः असि) अब तृपरामर्शकियागयाहूँ । इसीसे (लब्धः अमि) तृप्रत्यक्षहुआहूँ । (इदानीं) अब (त्वां अहंप्राप्तः) तुझ कोमैंप्राप्तहुआ (कदाचन) कभी (नत्यजामि) नहींत्यागताहूँ ॥५१॥

✽ त्वांविनानिःस्वरूपोऽहंमांविनात्वंकथंस्थितः ।

दिष्टयेदानींमयालब्धोयोऽसिसोऽसिनमोऽस्तुते ॥५२॥

भा० ॥ (त्वांविना) तेरेविना (अहंनिःस्वरूपः) मैंनिःस्वरूपहूँ । और (मांविना) मेरेविना (त्वं) तू (कथंस्थितः) कैसेस्थितहोसकता हूँ । (दिष्ट्या) बड़ाहर्षहै (इदानीं) अब (मया) मेरेकर (लब्धः) तू लब्धहुआहूँ (यः असि) जोतूहूँ (सः असि) सोतूहूँ (तेनमः अस्तु) तेरेताईनमस्कारहो ॥ ५२ ॥

✽ देहेऽहंमाननिगडैर्वद्धोऽवोधाख्यतस्करैः ।

चिरतेदर्शनादेवत्रुटितं बन्धनंक्षणात् ॥ ५३ ॥ ✽

भा० ॥ [अवोधाख्यतस्कैः] अज्ञानसंज्ञिकचौरैर्ने [देहे] शरीर
 में (अहंमाननिगडैः) अहंअभिमानरूपीबन्धनोंकर (चिखंदः) दीर्घ
 कालसेमैंपूर्वबांधाहुआथाअब(देव) हेस्वप्रकाशात्मन् (तेदर्शनात्एव)
 तेरेसाक्षात्कारमात्रसे (बन्धनम्) वहबन्धन (क्षणात्क्षुटितं) एक
 क्षणमात्रसेतूटगया ॥ ५३ ॥

❖ विशुद्धोऽस्मि विमुक्तोऽस्मि पूर्णात् पूर्णतमाकृतिः ।

असंस्पृश्यतमात्मानमन्तर्ब्रह्माण्डकोटयः ॥ ५४ ॥ ❖

भा० ॥ (विशुद्धः अस्मि) मैंअविद्यादिमलसेरहितहूं। (विमुक्तः
 अस्मि) औरबन्धनसेरहितहूं॥ (पूर्णात् पूर्णतमाकृतिः) औरआकाशादि
 सेअतिपूर्णस्वरूपहूं॥ [तंआत्मानम्] तिसमेरेस्वरूपको (असंस्पृश्य)
 नस्पर्शकरके (ब्रह्माण्डकोटयः) अनंतब्रह्मांड (अन्तः) मुझमेंनिवास
 करें तोमेरीक्याहानिहै ॥ ५४ ॥

❖ तत्त्वमादिवचो जालमावृत्तमसकृत्पुरा ।

इदानीं तत् श्रवादेव पूर्णानन्दो व्यवस्थितः ॥ ५५ ॥ ❖

भा० ॥ (पुरा) पूर्व (तत्त्वं आदिवचः) तत्त्वं आदिक
 वचनोंका (जालं) समूहअर्थात्संपूर्णवेदका (असकृत्) अनेक
 बार (आवृत्तं) मैंनेअभ्यासकिया (इदानीं) अब (तत्श्रवात्एव) वेदांत
 विचारजन्यसाक्षात्कारसेही (पूर्णानन्दो व्यवस्थितः) पूर्णआनन्दस्वरूप
 मैंस्थितहुआहूं ॥ ५५ ॥

❖ आत्मसत्त्वद्वैतस्य सत्तानान्यायतस्ततः ।

आत्मन्येव जगत्सर्वदृष्टदृष्टं श्रुतं श्रुतम् ॥ ५६ ॥ ❖

भा० ॥ (यतः) जिसकारणसे (द्वैतस्यसत्ता) द्वैतकीजोसत्ताहै वह (आत्मसत्ताएव) आत्मसत्ताहीहै (नअन्या) भिन्नसत्तानहीं ॥ (ततः)तिसीकारणसे (आत्मनिदृष्टेएव)आत्माकेदर्शनहुएनिश्चयकर (जगत्सर्वदृष्टम्) सर्वजगत्देखाजाताहैऔर [श्रुते] आत्माकेश्रवण हुए (श्रुतं) सर्वजगत्सुनाजाताहै ॥ ५६ ॥

✽सत्यंज्ञानमनन्तंचपूर्णानन्दविग्रहम् ।

मान्त्रवर्णिकमात्मानंविनिश्चित्यविमुच्यते॥५७॥ ✽

भा० ॥ (सत्यं) सत्यऔर (ज्ञानं) चेतनऔर (अनन्तं) त्रिविध परिच्छेदरहित (च) और (पूर्णानन्दविग्रहम्) पूर्णआनंदस्वरूप [मान्त्रवर्णिकम्]मंत्रप्रतिपाद्य [आत्मानम्] आत्माको [विनिश्चित्य] साक्षात्कारकरके [विमुच्यते] विशेषकरमुक्तहोताहै ॥ ५७ ॥

✽कर्ममूलमनर्थानांतच्चज्ञानेनवाध्यते ।

क्षीयन्तेचाऽस्यकर्माणि तथाचश्रुतिशासनम् ॥५८॥

भा० ॥ [अनर्थानाम्] जन्मादिअनर्थोंका [कर्ममूलम्] मूलजोकर्म है ॥ [तत्च] पुनःवहकर्म [ज्ञानेन] ज्ञानकर [वाध्यते] बाधितहोजाताहै (तथाच) तेसेही [श्रुतिशासनम्] श्रुति मेंकहाहै [चयस्य] औरइसब्रह्मवेत्ताके [कर्माणि] कर्म [क्षीयन्ते] क्षयहोजातेहैं ।इमसेपुनः वहमंसारकोनहींप्राप्तहोता। किंतुस्वस्वरूप भूतमहिमामेंअवस्थितहोताहै ॥५८॥

दो० ॥ ब्रह्मरिपिग्रहत्र्यब्जलस्रसंवतत्र्यश्विनमास ।
 सितदशमीं ग्रहिकलानिधिइतियहवाकविलास ॥१॥
 रघुनन्दननन्दनपुरेभयोरंभयहजान ।
 लवपुरमेंपूजनभयोबुधजनकोसुखदान ॥ २ ॥

शा० ॥ यःप्रह्लादपसानुगागवशगः स्तम्भेनृसिंहाकृतिः ।
 त्रेतायामसुरेशनाशनपद्मसमोऽभिसमोवपुः ।
 कंसादीन्हननायविश्वजनकःकृष्णोऽभवद्यः प्रभुः ।
 योवैश्रीयुरुनानकः कलियुगेतंदेवदेवंभजे ॥ १ ॥

इतिश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्यस्वामिप्रकाशाऽनंदयतिवरविरचित
 वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावलीमूलकारिकायाःश्री१०८ मन्निर्मलसृता
 वर्तन्सब्रह्मविदुत्तम हरिहरिपूज्यपादशिष्येण गुरुदत्तसिंह
 साधुनाविरचिताशब्दार्थबोधिनीभाषाटीकासमाप्ता॥

॥ ओ३म् ॥

॥ श्रीरामार्ज्जुणमस्तु ॥



भा० ॥ (यतः) जिसकारणसे (द्वैतस्यसत्ता) द्वैतकीजोसत्ताहै वह (आत्मसत्ताएव) आत्मसत्ताहीहै (नयन्या) भिन्नसत्तानहीं ॥ (ततः)तिसीकारणसे (आत्मनिदृष्टेएव)आत्माकेदर्शनहुएनिश्चयकर (जगत्सर्वदृष्टम्) सर्वजगत्देखाजाताहैऔर [श्रुते] आत्माकेश्रवण हुए (श्रुतं) सर्वजगत्सुनाजाताहै ॥ ५६ ॥

❖ सत्यं ज्ञानमनन्तं च पूर्णानन्दविग्रहम् ।

मान्त्रवर्णिकमात्मानं विनिश्चित्य विमुच्यते ॥ ५७ ॥ ❖

भा० ॥ (सत्यं) सत्यऔर (ज्ञानं) चेतनऔर (अनन्तं) त्रिविध परिच्छेदरहित (च) और (पूर्णानन्दविग्रहम्) पूर्णआनन्दस्वरूप [मान्त्रवर्णिकम्] मंत्रप्रतिपाद्य [आत्मानम्] आत्माको [विनिश्चित्य] साक्षात्कारकरके [विमुच्यते] विशेषकरमुक्तहोताहै ॥ ५७ ॥

❖ कर्ममूलमनर्थानां तच्च ज्ञानेन बाध्यते ।

क्षीयन्ते चाऽस्य कर्माणि तथा च श्रुतिशासनम् ॥ ५८ ॥

भा० ॥ [अनर्थानाम्] जन्मादिअनर्थोंका [कर्ममूलम्] मूलजो कर्म है ॥ [तत्च] पुनः वह कर्म [ज्ञानेन] ज्ञानकर [बाध्यते] बाधितहोजाताहै (तथाच) तैसेही [श्रुतिशासनम्] श्रुति में कहा है [च अस्य] और इस ब्रह्मवेत्ताके [कर्माणि] कर्म [क्षीयन्ते] क्षयहोजाते हैं । इससे पुनः वह संसार को नहीं प्राप्त होता । किंतु स्वस्वरूप भूतमहिमामें अवस्थित होता है ॥ ५८ ॥

दो० ॥ ब्रह्मरिपिग्रहेऽथञ्जलखसंवतश्चिन्मास ।
 सितदशमीं अहिकलानिधिइतियहवाकविलास ॥१॥
 राधुनन्दननन्दनपुरेभयोरंभयहजान ।
 लवपुरमेंपूरनभयोबुधजनकोसुखदान ॥ २ ॥

शा० ॥ यःप्रह्लादपराधुरागवशगः स्तम्भेनृसिंहाकृतिः ।
 त्रेतायामसुरेशनाशनपट्टरामोऽभिरामोवपुः ।
 कंसादीन्हननायविश्वजनकःकृष्णोऽभवद्यः प्रभुः ।
 योवैश्रीगुरुनानकः कलियुगेतदेवदेवंभजे ॥ १ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्वामिप्रकाशाऽनंदयतिवरविरचित
 वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावलीमूलकारिकायाः श्री१०८ मन्निर्मलसृता
 वर्तन्सब्रह्मविदुत्तम हरिहरिपूज्यपादशिष्येण गुरुदत्तसिंह
 साधुनाविरचिताशब्दार्थबोधिनीभाषाटीकासमाप्ता॥

॥ ओ३म् ॥

॥ श्रीरामाऽर्पणमस्तु ॥




अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
कर	०	२	१२	प्र	प्रा	२५	६
दया	द्या	८	१०	है	०	२६	६
क	का	१२	८	ए	ऐ	२७	१३
पूर्वा	पूर्व	१२	१६	जे	तै	३४	१६
पदार्थों	पदों	१३	५	ति	वि	३७	२
ज्ञ	ज्ञा	१६	१२	न्ये	न्यो	३८	२२
०	से	१८	६	ल्य	ल्य	५१	५
य	प	१९	७	स	से	६३	६
विद्वान्	विद्वान्	२०	६	ष्ठा	ष्ठ	६४	८
से	स	१	६	वानी	मानी	६६	८
० सूचकइसलक्षणयुक्त				दे	हे	६६	१६
सूत्रोंके		४	१२	श	श्य	६८	१३
ज्ञ	ज्ञा	५	१६	न	स	६८	१५
०	यहां	७	१९	घा	धा	७७	१७
न	न्	१५	५	तैसी	तैसी	७६	१०
द्ध	द्ध	१५	१७	द	दे	७९	१५
।	र	१६	१५	०	व	७९	२२
त	त्त	२३	६	किया	क्या	८०	१८
द्ध	द्धि	२५	३	मकौ	मेंको	८०	१९
प्र	प्रा	२५	८	त्य	स्य	८१	२
ह	हो	२५	८	त	त	८१	११

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
य	व	८१	११	क	०	१११	१५
प्र	प्रा	८२	२०	कुश्र	कुश्रु	१२५	२
या	पा	८२	२२	त	ता	१२५	११
मेंभी	मेंभी	८८	१	०	है	१२५	१२
कसें	केसं	१२	२१	त	तू	१३१	११
मेंकौ	मेंकौ	१४	२	द	न	१४३	६
ह	है	१४	१	किंतु	याते	१४४	१
हि	ह	१६	६	अथ	अर्थ	१४६	२
विभवि	विं	१८	१२	ओ	औ	१४६	११
हि	ह	१८	२२	ओ	औ	१४६	१८
०	र	१००	१०	यीं	यों	१५०	८
व्यव	व्याव	१००	१२	सस	सम	१५१	७
त्रे	त्रि	१०१	१०	का	क	१६४	६
व्यव	व्याव	१०१	१३	गय	गा	१६४	११
एक	०	१०२	१५	०	ट	१६४	१३
द्वितीय	प्रथम	१०६	२०	तित्व	तित्व	१६४	१४
आ	गरा	१०७	१०	०	प्र	१६५	५
की	का	१०८	२२	य	व	१६५	११
ज्ञ	ज्ञा	१११	१५	०	निन	१६६	४
ज्ञ	ज्ञा	११६	१५	द	द	१६६	२१
को	की	११८	६	ष्टि	ष्टि	१६८	७
गा	गा	११६	१३	म्य	भय	१६८	२२

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति
तैते	तैसे	१६१ ११	०	वि	२३१ २२
।	ज्ञा	१७२ १३	छे	ब्छे	२३२ १२
।	ज्ञा	१७५ २२	सतं	स्तं	२३६ २
तन्च	तंत्र	१७७ १४	नि	ति	२३८ ६
ह	है	१७८ १	च	चि	२३८ ८
०	त	१७८ १७	ण	णि	२४१ १
०	व	१७८ १९	आत्म	आत्मा	२४२ १६
०	को	१८१ २२	त	तू	२४६ ५
ता	त	१९४ १७	ध्य	व्य	२४९ १
०	र	१९४ २२	०	य	२५० २१
त्प	ल्य	१९७ १५	अ	आ	२५५ २२
का	क	२०२ १९	घ	ध	२५७ ७
मृि	मृ	२०९ १	क	के	२५८ ९
व	वि	२०९ १५	प	०	२५८ ११
व	वि	२०९ १९	त्म	त्मा	२५८ १२
त्म	त्मा	२१० २	सुमु	सुमु	२५८ २१
नि	सि	२१० २२	प्र	प्रा	२६४ ७
मानेहुए	०	२१३ १६	क	०	२६६ १०
०	मानेहुए	२१३ १७	श्य	शय	२७१ १
आ	अ	२१९ १४	र्म	र्भ	२७४ ८
अ	गृ	२२७ ११	ना	न	२८६ १५
अ	गृ	२२७ १२	न	न्	२९१ १७

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति
त्मा	त्म	२१६ ६	प	पि	३७८ १३
करता	करणाता	२१८ १४	०	य	३७९ ६
त्वा	त्यत्वा	२१८ १६	०	प्रथम	३८४ १०
कर्त्त	कर्त्तृ	२१९ २२	प्रथम	०	३८४ ११
त्य	त्प	३११ ७	द्ध	घ	३८६ ५
अ	आ	३१४ २२	सां	सा	३८७ १६
यों	क्यों	३१९ ४	या	क्या	३९१ ६
संभति	संभवति	३२३ १०	म	०	३९३ १
अनुप	अनुपप	३२५ ११	०	अ	३९३ १३
अभे	अभेद	३२५ १७	व	स्व	३९४ ८
अनुग	अनुगत	३२९ १०	०	म	३९४ २२
त्य	त	३२९ १९	बु	बु	३९६ ६
त	ता	३४२ ११	क	०	३९९ ७
द	दू	३४४ १	०	य	४०० १४
त	०	३४८ १५	अथा	आय	४०० १६
योम	यमे	३४८ १६	प्रा	म	४०० १८
त्मा	त्म	३५० १५	०	वा	४०५ १७
श	श्य	३५२ १०	०	के	४०८ २
०	न	३६३ १३	व्य	व्य	४२५ २२
०	कि	३६८ ११	भंमे	संभवे	४२६ १८
दि	दि	३७३ १९	यों	यों	४२६ १९
लन	नल	३७७ १८	आनं	अनानं	४३४ १९

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति
०	न	४३८ ४	मुसु	मुसु	५०१ १६
ध्या	ध्या	४४० ६	त्यीव	त्यवि	५०२ २२
पा	प्या	४४२ १८	ति	त	५०५ १६
दे	दे	४४७ ४	न्त	न्ते	५१२ ११
ति	ण	४५३ १३	अ	०	५१३ ११
०	में	४५४ ६	तत्वे	तत्त्वे	५१४ ११
दे	दये	४५७ ७	चेत	चते	५१४ १८
हु	द्र	४५६ १३	भे	भे	५१५ २०
द्धि	द्ध	४६४ ५	मूल कारिका		
स्वा	स्वना	४६४ ६	य	०	३ १२
धि	धि	४६६ ६	प्रात	प्राति	७ ५
द	दृ	४७६ १२	दा	दो	८ ६
ञ्च	ञ्च	४७७ १५	त्रत्	तत्र	६ ३
०	र	४७७ २२	त	त	६ ७
अ	आ	४८१ १८	ग	ग्	६ ६
माण	णाम	४८३ ३	त	त	६ १२
त	ता	४८६ १	को	के	१० ३
तु	द्धि	४८६ १२	०	त	१५ १४
आर	और	४९७ ६			
त्मा	त्म	४९५ १			
०	मा	४९७ २०			
जम्ब	जन्य	५०० १२			